आधुनिक
राजस्थानी
साहित्य

आधुनिक राजस्थानी साहित्य
प्रेरणा-स्रोत और प्रवृत्तियाँ

[राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डॉ० किरण नाहटा, एम, ए पी-एच डी
प्राध्यापक हिन्दी विभाग
लोहिया महाविद्यालय
चूरू (राजस्थान)

मुख्य विक्रेता
चिन्मय प्रकाशन

समर्पण

राजस्थानी के

सर्जनशील

साहित्यकारों को

सादर ।

निवेदन

एम० ए० हिन्दी मे वैकल्पिक प्रश्न-पत्र के रूप मे डिंगल साहित्य (राजस्थानी साहित्य) का अध्ययन करते समय 'वेलि क्रिसन रुक्मणी री' (पृथ्वीराज राठौड), 'वीर सतसई (सूयमल्ल मिश्रण) एव 'ढोला मारु रा दूहा जसी राजस्थानी साहित्य की सरस एव उत्कृष्ट कृतियो ने सहज ही मन को बाध लिया। इन कृतियो के साहित्यिक सौन्दय ने प्राचीन राजस्थानी साहित्य के सम्बन्ध म तो अधिकाधिक जानने को प्रेरित किया ही किन्तु साथ ही साथ प्रारम्भ से ही चले आ रहे राजस्थानी साहित्य के प्रति मेरे आकषण को भी और अधिक प्रगाढ बनाया।

बपचन से ही मेरा लगाव राजस्थानी साहित्य की ओर रहा है। शिशु अवस्था म मा से सुनी सरस और रोचक कहानियो गाव की गलियो म नित्यप्रति गूजती रहने वाली लोकगीतो की मधुर एव करुण स्वर लहरियों तथा समय-समय पर 'धुंई (अलाव) के चारो ओर वातावरण को बाध लेने म सक्षम राव भाटो और कथावाचको की रोचक वातो ने मेरे मन म राजस्थानी लोकसाहित्य के अमित आकपण को जन्म दिया। यही आकपण कालान्तर म सजनात्मक साहित्य की ओर बढ चला जिसकी पृष्ठभूमि मे घर एव शाला का वातावरण विशेप प्रेरक रहा। वस्तुत राजस्थानी के प्रति मेरा यह आकपण मातृभापा के माधुय का ही आकपण था फलस्वरूप मैं धीरे धीरे आधुनिक राजस्थानी साहित्य का उत्सुक पाठक बन गया।

आधुनिक राजस्थानी साहित्य के प्रति इस विशेष लगाव के कारण मैं समय समय पर राजस्थान और राजस्थान के बाहर के साहित्यकारो एव मनीपियो मे आधुनिक राजस्थानी साहित्य के सम्बन्ध मे चर्चा करता रहता। उन चर्चाओ म मुझे अनुभव हुआ कि आधुनिक राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियो और गतिविधियो से व बहुत कम परिचित हैं। इस स्थिति न मुझे सोचने को विवश किया कि आखिर वे कौनसी परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण राजस्थानी का आधुनिक साहित्य विद्वत वग तक पहुँचने में असमथ रहा है। इसका मुख्य कारण मरी दृष्टि म आधुनिक राजस्थानी साहित्य के समुचित मूल्याकन एव प्रचार का अभाव है। इसी स्थिति के कारण वह साहित्यिक चर्चा का विपय बनने से वचित भी रहा। मैंने इन परिस्थितियो मे निश्चय किया कि मैं आधुनिक राजस्थानी साहित्य पर अपना शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करू, ताकि अन्य समसामयिक भारतीय भापाओ के साहित्य की तरह राजस्थानी साहित्य भी व्यापक चर्चा का विपय बन सके और राजस्थानी के सजनशील साहित्यकार इन चर्चाओ मे उत्साहित होकर अधिक सक्रिय हो।

इसी भावना के साथ एम० ए० करने के पश्चात मैं डाक्टर नरेन्द्र भानावत से अपन शोध निर्देशन के सम्बन्ध मे मिला और आधुनिक राजस्थानी साहित्य पर काय करन की अपनी इच्छा व्यक्त की। डाक्टर साहब ने मुझे प्रोत्साहित करते हुए 'आधुनिक राजस्थानी साहित्य प्रेरणा स्रोत और प्रवत्तियाँ' विपय सुझाया। मेरे प्रस्तुत अध्ययन का विपय यही है।

डाक्टर साहब से स्वीकृति पाकर मैं अपने काम में जुट गया। इस हेतु जब आधुनिक राजस्थानी साहित्य पर समालोचनात्मक दृष्टि से लिखी गयी सामग्री पर दृष्टिपात किया तो उसे अपने इस अध्ययन के लिए अपर्याप्त पाया। पत्र पत्रिकाओं में या अन्यत्र स्वतन्त्र रूप से आधुनिक राजस्थानी साहित्य पर बहुत कम लिखा गया था। यही नहीं जिन लघु शोध प्रबन्धों[1] में आधुनिक राजस्थानी साहित्य को अध्ययन का विषय बनाया गया था, उनमें भी सूचनात्मक कार्य अधिक मिला, विवेचनात्मक कम। ऐसी स्थिति में मैंने यह निश्चय किया कि मैं स्वयं साहित्यकारों से सीधा सम्पर्क स्थापित कर विवेचनात्मक दृष्टि को प्रमुखता देते हुए अपना अध्ययन प्रस्तुत करूं। इस हेतु जब राजस्थानी के वर्तमान साहित्यकारों से सम्पर्क स्थापित किया तो उन्होंने जिस उत्साह से मेरे कार्य का स्वागत करते हुए अपना हर संभव सहयोग देने में जो तत्परता दिखलायी, वह मेरे इस अध्ययन के लिए सर्वथा उपयोगी रही साथ-ही साथ मेरे लिए भी एक सुखद प्रेरणास्पद अनुभव था।

सर्जक साहित्यकारों की भांति ही राजस्थानी साहित्य में रुचि लेने वाले साहित्य मनीषियों सम्पादकों ने भी जिस उत्साह से मेरी पीठ थपथपाई उसने मुझे गंभीरता से कार्य करने को सजग किया। इस दृष्टि से मैं सर्व श्री अगरचन्द नाहटा, विद्याधर शास्त्री, डा० मनोहर शर्मा, रावत सारस्वत (स० मरुवाणी) किशोर कल्पना 'कांत' (स० ओळमो) का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने एक ओर अपने यहां संग्रहीत सामग्री के अध्ययन की पूरी सुविधाएं प्रदान की वहाँ दूसरी ओर समय समय पर आवश्यक परामर्श देते रहकर मेरे कार्य को सुगम बनाया। इसी क्रम में मैं हनुमान पुस्तकालय, रतनगढ़ (राज०) एवं गुण प्रकाशक सज्जनालय बीकानेर के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होंने भरतियाकालीन पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध करवाने में विशेष तत्परता दिखलायी।

प्रस्तुत अध्ययन में मैंने ई० सन् १९०० से आज तक प्रकाशित राजस्थानी साहित्य को आधार बनाया है। यहाँ राजस्थानी साहित्य से मेरा तात्पर्य राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य है अतः इस अवधि में राजस्थान में रचित हिन्दी (खड़ी बोली) एवं ब्रजभाषा के साहित्य को मैंने नहीं लिया है। इस सम्बन्ध में यह भी ज्ञातव्य है कि मेरे इस अध्ययन का आधार मूलतः प्रकाशित साहित्य ही रहा है। वैसे कहीं बहुत आवश्यक होने पर एकाध अप्रकाशित रचनाओं एवं पत्रों आदि का उल्लेख भी प्रसंगवश हुआ है।

मेरे प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र आधुनिक राजस्थानी साहित्य का गद्य और पद्य उभय क्षेत्रों में प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य रहा है किन्तु मैंने अपने विषय प्रतिपादन में दो बातों का विशेष ध्यान रखा है। प्रथम तो मैंने इस अध्ययन में विवेचनात्मक एवं समालोचनात्मक दृष्टि से साहित्य के मूल्यांकन को प्रधानता दी है और द्वितीय विधागत प्रवृत्तियों का अध्ययन ही मेरा अभीष्ट रहा है, अतः इस अध्ययन में विधा विशेष के ऐतिहासिक विकास क्रम पर विस्तार से विचार नहीं किया गया है और न किसी साहित्यकार विशेष को प्रधानता देकर उसका मूल्यांकन किया गया है। इस दृष्टिकोण के कारण संभव है कि कई प्रसिद्ध साहित्यकारों के सम्बन्ध में उतना कुछ नहीं लिखा जा सका हो जितना कि राजस्थानी साहित्य के स्वतन्त्र इतिहास लेखन के क्रम में संभव होता।

---

[1] (क) आधुनिक राजस्थानी काव्य सज्जन कुमारी भण्डारी (अप्रकाशित)
(ख) आधुनिक राजस्थानी साहित्य एक शताब्दी शांतिलाल भारद्वाज 'राकेश' (प्रकाशित)

अध्ययन के इस विशेष दृष्टिकोण का एक परिणाम यह भी हुआ है कि प्रस्तुत अध्ययन सामान्य शोध परम्परा से कुछ हटकर किया गया है। जहाँ सामान्यत शोध प्रबन्धो मे उपशीर्षको की परम्परा रही है, वहाँ मैंने विवेचनात्मक एव समालोचनात्मक दृष्टि की प्रधानता के कारण पूरे अध्याय को आदि से अन्त तक बिना किन्ही उपशीर्षको में विभक्त किये, धारा प्रवाह चलने वाले एक निबन्ध के रूप मे प्रस्तुत किया है। विभिन्न विधाओ की प्रवृत्तिगत विशेषताओं का अध्ययन करते समय जो यह दृष्टि अपनाई गई उसी के अनुरूप पूरे शोध प्रबन्ध म एकरूपता लाने के भाव से प्रेरित होकर 'विषय प्रवेश' 'प्रेरणा स्रोत' एव 'उपलब्धियाँ और मूल्याकन नामक अध्यायो मे भी उपशीर्षको का आयोजन नही किया गया है।

मैंने अपना प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पाच खण्डो के बीस अध्यायो म विभक्त किया है। प्रथम खण्ड 'विषय प्रवेश' से सम्बन्धित है। इसमे उन स्थितियो पर विचार किया गया है, जो आधुनिक राजस्थानी साहित्य को मध्यकालीन साहित्य से अलगाती है और उन बिन्दुओ पर प्रकाश डाला है, जिनके कारण राजस्थानी साहित्य मे नवयुग का सूत्रपात हुआ।

द्वितीय खण्ड 'प्रेरणा स्रोत' म आधुनिक राजस्थानी साहित्य क काल क्रम के सम्बन्ध म विस्तार से विचार करते हुए गत सत्तर वर्षों की उन विविध राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक, भौगोलिक साहित्यिक एव सास्कृतिक परिस्थितियो पर विचार हुआ है, जिन्होंने आधुनिक राजस्थानी साहित्य को व्यापक रूप से प्रभावित प्रेरित किया है। आधुनिक राजस्थानी साहित्य के विकास क्रम को ध्यान म रखते हुए इन सत्तर वर्षों की लम्बी अवधि को—१ १६०० ई० से १६३० ई०, २ १६३१ ई० स १६५० ई० और ३ १६५१ स १६७१ ई० तक के तीन भागो मे बाटकर उन पर अलग अलग विचार किया गया है।

तृतीय खण्ड म गद्य साहित्य की प्रवृत्तियो पर विस्तार स विचार किया गया है। प्रारम्भ म राजस्थानी गद्य साहित्य के इतिहास और उसकी सामान्य प्रवृत्तिया का सक्षिप्त परिचय दिया गया है और पश्चात अध्याय तीन स नौ तक क्रमश उपन्यास कहानी, नाटक, एकाकी, निबन्ध, रेखाचित्र और सस्मरण तथा गद्य काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियो पर विस्तार से विचार किया गया है और अन्त म निष्कर्ष रूप म आधुनिक गद्य साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियो का एक सामान्य लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ खण्ड 'पद्य साहित्य की प्रवृत्तियाँ मे प्रारम्भ मे प्राचीन राजस्थानी पद्य साहित्य की सामान्य विशेषताओ का सक्षेप म परिचय दिया गया है और पश्चात अध्याय दस से उन्नीस तक क्रमश प्रबन्ध काव्य, प्रकृति काव्य, गीति काव्य, प्रगतिशील काव्य, वीर एव प्रशस्ति काव्य, हास्य एव व्यग्य प्रधान काव्य, पद्य कथाए, भक्ति काव्य, नीति काव्य और नयी कविता की प्रवृत्तिया का विस्तार से अध्ययन किया गया है। अन्त म आधुनिक राजस्थानी पद्य साहित्य की सामान्य विशेषताओ की चर्चा की गयी है।

पचम खण्ड उपसहार 'उपलब्धियाँ एव मूल्याकन से सम्बन्धित है। इसम आधुनिक राजस्थानी साहित्य की उपलब्धियो पर सामान्य रूप से विचार करते हुए राजस्थानी साहित्य की मद गति के विभिन्न कारणो पर प्रकाश डाला गया है और अन्त मे चार पाच वर्षों के साहित्यिक एव साहित्येतर परिवर्तनो के परिप्रेक्ष्य मे उसके सभावित गतिक्रम पर विचार किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन के लिए मैं अपने निर्देशक डा० नरेन्द्र भानावत, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर का हृदय से आभारी रहूँगा। उन्होंने एक मित्र के समान बैठकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सभी पहलुओं पर विस्तार एवं गम्भीरता से चर्चा की। जहाँ मैं अपने दृष्टिकोण को सही रूप में प्रस्तुत कर सका उसे उन्होंने ज्यों का त्यों रहने दिया और जहाँ स्वाभाविक युवा उत्साह वश विवेचन कहीं असंगत एवं असंतुलित हुआ, वहीं उन्होंने सीमा में रहते हुए सन्तुलित विवेचन का परामर्श दिया। अपने विभागाध्यक्ष डा० सरनामसिंह शर्मा अरुण एवं भूतपूर्व विभागाध्यक्ष डा० सत्येन्द्र के स्नेह भरे प्रोत्साहन के प्रति कृतज्ञ हूँ। समय समय पर मुझे प्रोत्साहित करते रहने वाले साथी जोराराम गिया, नन्दलाल वर्मा और सोहनलाल बोथरा तो मेरे अपने ही हैं। इन्हें क्या धन्यवाद दूँ?

आशा है, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आधुनिक राजस्थानी साहित्य की अध्ययन परम्परा में एक महत्वपूर्ण कड़ी का कार्य करेगा। यदि मेरे इस अध्ययन से राजस्थानी के सृजनशील साहित्यकार किंचित् भी प्रेरित हुए तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

किरण नाहटा

विषय-सूची

प्रथम खण्ड
विषय प्रवेश

द्वितीय खण्ड
प्रेरणा-स्रोत

तृतीय खण्ड
गद्य साहित्य की प्रवृत्तियाँ

राजस्थानी गद्य साहित्य का सामान्य परिचय

चतुर्थ खण्ड
पद्य साहित्य की प्रवृत्तियाँ

राजस्थानी पद्य साहित्य का सामान्य परिचय

पंचम खण्ड

उपसंहार

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थों की सूची

1

विषय-प्रवेश

उन्नीसवी शती का भारतीय इतिहास पुनर्जागरण का इतिहास रहा है। जीवन के हर पहलू म पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क, औद्योगिक क्रान्ति के प्रसार और वज्ञानिक युग से परिचय के कारण परिवतन का जो व्यापक क्रम चला, उसने विशाल भू भाग वाले इस देश के भिन्न भिन्न प्रदेशो मे रहने वाले जन समुदायो को देर-सवेर अपने प्रभाव क्षेत्र म अवश्य लिया। एतिहासिक और भौगोलिक कारणो से इन भिन्न भिन्न भू भागो म परिवतन की प्रेरक परिस्थितियो के प्रसार म दशाब्दियो का अन्तर अवश्य रहा और उसी के अनुसार कोइ क्षेत्र विशेष आधुनिक युग स साक्षात्कार म आगे निकल गया या कि पिछड गया। राजस्थान अपनी विशेष भौगोलिक और राजनतिक परिस्थितियो के कारण देश क उन प्रान्तो म से एक है जहाँ नवयुग का प्रकाश बहुत देरी से पहुचा। इसका अवश्यम्भावी परिणाम यह निकला कि वह भारत के अन्य अन्य प्रान्तों की अपक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रगति कि दौड म पिछड गया। साहित्य भी उसके अपवाद स्वरूप नही बचा। तभी तो जो राजस्थानी साहित्य शताब्दियो की अविच्छिन्न साधना के फलस्वरूप विशाल परिमाण और वविध्यपूर्ण रूपो की परम्परा का धनी रहा वह उन्नीसवी सदी म उपेक्षित एव प्राय विस्मत कर दिया गया। १९ वी शताब्दी मे जिन प्रमुख विदेशी और भारतीय विद्वानो न भारतीय भाषाओ पर अपने अध्ययन प्रस्तुत किय, उन सबम राजस्थानी के सम्बन्ध म जो मत य प्रकट किय गये[1]

---

[1] ई० सन १८१६ से १८८० के मध्य तक भारतीय भाषाओ पर करी मार्शमन वार्ड, करी डाक्टर कैलाग, डाक्टर रामकृष्ण गोपाल भडारकर आदि विद्वानो ने जो काय किया उन सबम राजस्थानी को हिन्दी की एक विभाषा या बोली भर माना गया था। एक स्वतन्त्र भाषा क रूप म उसे सवप्रथम जाज ग्रियसन ने मान्यता दी (सन १९०८ इ०) और उन्ही के प्रयासो के आधार पर भारत सरकार ने भी राजस्थानी का एक स्वतन्त्र भाषा के रूप म उल्लेख करना आरम्भ किया।

स्रोत राजस्थानी का अध्ययन नरोत्तमदास स्वामी
राजस्थानी भाग–२ पृ० स० ५५

इस सम्बन्ध म श्री नरोत्तमदास स्वामी का कथन उल्लेखनीय है कि– इन विद्वानो क सामने राजस्थानी का साहित्य नही था। इनने अपना विवचन साहित्य के आधार पर नही किन्तु बोलचाल के आधार पर किया। जिन भाषाओ मे उन्हे साहित्य मिला जैसे बगला, गुजराती आदि उन्हे इनने भाषाओ का नाम दिया और बाकी को अन्यान्य भाषाओ की बोलियाँ लिखा। राजस्थानी के विशाल साहित्य से ये सवथा अपरिचित थे। उसकी झाकी भी उन्हें नही मिली। डाक्टर कलाग को अपने विवेचन का आधार पादरियो द्वारा प्रकाशित कुछ लोक गीतों को बनाने के लिए बाध्य होना पडा।

वही पृ० स० ५६

वे सब राजस्थानी भाषा सहित्य के प्रति तात्कालिक विद्वानों की अनभिज्ञता और राजस्थानवासियों की घोर सुषुप्तावस्था को ही बतलाते हैं।

उस समय स्थिति यह थी कि विदेशी या इतर प्रान्तीय विद्वानों को तो क्या स्वयं राजस्थानी विद्वानों को भी अपनी समृद्ध साहित्य परम्परा का ज्ञान बहुत थोड़ा था। ऐसी स्थिति में यहाँ विभिन्न राजाओं एवं सामन्तों के संरक्षण में जो साहित्य रचा जा रहा था—उसके स्वर एवं उसका स्वरूप अन्य तात्कालिक भारतीय भाषाओं के स्वर एवं स्वरूप से नितान्त भिन्न और मध्ययुगीन मनोवृत्ति का पोषक था। इस सबके मध्य २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ से राजस्थानी साहित्य का स्वर और स्वरूप जो एकदम बदला हुआ सा नजर आने लगा है उसकी पृष्ठभूमि में मुख्यतः दो कारण रहे हैं।

प्रथम, राजस्थानी समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग व्यापारियों के रूप में मुख्यतः महाराष्ट्र एवं बंगाल तथा छुट-पुट रूप में भारत के अन्य अन्य प्रान्तों में फैला हुआ था जिसने पीढ़ियों तक उन प्रान्तों में गुजार देने के बाद भी अपनी भाषा और परम्पराओं का त्याग नहीं किया था। उन प्रवासी राजस्थानियों ने मराठी और बंगाली साहित्य की बदलती स्थितियों और उसके परिणाम स्वरूप वहाँ के समाज के चिन्तन और आचरण में आये भारी परिवर्तनों को देखकर साहित्य की शक्ति को पहिचाना। फलस्वरूप उन्होंने भी राजस्थानी समाज की उन्नति हेतु युगानुरूप राजस्थानी साहित्य का सृजन शुरू किया। चूंकि ये लोग मराठी और बंगाली समाज और साहित्य से विशेष प्रभावित हुए अतः उन्होंने मुख्यतः उसी के अनुसरण पर राजस्थानी में नये साहित्य का सृजन प्रारम्भ किया। दूसरे उनके सामने भी अपने प्राचीन साहित्य की गौरवपूर्ण उपलब्धियों का कोई स्वरूप स्पष्ट नहीं था अतः उनको पाश्चात्य साहित्य की मराठी एवं बंगाली में स्वीकृत विभिन्न रूप विधाओं और प्रवृत्तियों को अपनाने में किसी प्रकार की परेशानी का अनुभव नहीं हुआ। इस प्रकार अपनी साहित्यिक परम्पराओं से अनभिज्ञ बने इन साहित्यकारों को जहाँ एक ओर अपने पूर्वजों की शानदार विरासत से वंचित रहना पड़ा वहाँ दूसरी ओर इसी कारण से उन्हें कई परेशानियों से बचने का अवसर भी मिला। हिन्दी साहित्यकारों की तरह इन प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों के सम्मुख प्राचीन साहित्यिक परम्पराओं के त्याग और नवीन प्रवृत्तियों के साथ उनके सामंजस्य जैसी कोई समस्या नहीं थी और न ही हिन्दी की तरह गद्य पद्य की भिन्न भाषाओं का सवाल ही इन्हें परेशान किये हुए था। यही नहीं जन भाषा और साहित्यिक भाषा के अन्तर और उसमें तालमेल बैठाने जैसी किसी समस्या से भी उन्हें नहीं उलझना पड़ा। उन्होंने तो बिना किसी दुविधा के बोलचाल की भाषा के साथ संस्कृत के आवश्यक तत्सम शब्दों को अपनाते हुए अपने साहित्य की सर्जना की।

आधुनिक राजस्थानी साहित्य-सृजन को दूसरी जिस बात ने बल प्रदान किया वह था २० वीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में ही देशी और विदेशी विद्वानों द्वारा प्राचीन राजस्थानी साहित्य के महत्व को स्वीकारते हुए उसके अन्वेषण और प्रकाशन कार्यों में रुचि प्रदर्शित करना। सर्व प्रथम डाक्टर ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं का भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किये गये अध्ययन क्रम में राजस्थानी भाषा के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकारा और उसके साहित्यिक वैभव की ओर इंगित

किया।[1] पश्चात उनकी ही प्रेरणा और प्रयासो के फलस्वरूप महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री[2] एल० पी० टस्सीटोरी[3] प्रभृति विद्वानो ने इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इन विद्वानो के कार्य का जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम सामने आया वह यह कि अब किसी को यह कहने की हिम्मत नही रही कि राजस्थानी भी कोई भाषा है क्या ? और न ही इस प्रकार प्राचीन साहित्यिक परम्परा के अभाव के नाम पर किसी राजस्थानी साहित्यकार को अपनी मातृभाषा मे साहित्य रचना करने के लिए प्रताडित या हतोत्साहित करने का ही दु साहस अब कोई कर सका।[4] इस अध्ययन अन्वेषण की स्वस्थ परपरा का जो दूसरा प्रभाव पडा वह यह कि इसके कारण राजस्थानी साहित्यकार के मन से हीन भावना निकल गयी और अब वह पूरे आत्म विश्वास के साथ नव सृजन मे प्रवृत्त हो गया।

---

१ राजस्थानी बोलिया मिलकर एक ऐसा वर्ग बनाती हैं जो एक ओर पश्चिमी हिन्दी से और दूसरी ओर गुजराती से भिन्न है। वे सब मिलकर एक स्वतन्त्र भाषा मानी जाने की अधिकारिणी हैं। पश्चिमी हिन्दी से वे पजाबी से भी दूर हैं। पश्चिमी हिंदी की बोलिया वे किसी प्रकार नही मानी जा सकती।'— ग्रियसन
राजस्थानी का अध्ययन श्री नरोत्तमदास स्वामी राजस्थानी भाग—२ पृ० स० ८७

२ बगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने प० हरप्रसाद शास्त्री को वि० स० १६६६ मे राजस्थानी साहित्य के शोध हेतु नियुक्त किया। उन्होने स० १६७० तक गुजरात और राजस्थान के तीन दौरे किये और चार रिपोर्ट तैयार की। स० १६७० मे ही उन्होने चारो रिपोर्टों को मिलाकर एक रिपोर्ट तैयार की जिसका कि बाद मे यथा समय प्रकाशन हुआ।
वही।

३ इटली निवासी डा० एल० पी० टस्सीटोरी ने प्राचीन राजस्थानी साहित्य के उद्धार की महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। ई० सन १६१४ से १६२० तक की ६ वर्ष की अवधि मे उन्होने सहस्रो हस्तलिखित ग्रथो का पता लगाया एव उनका सकलन किया, राजस्थानी ग्रथो से सम्बन्धित तीन विवरणात्मक सूचिया तैयार की और प्राचीन राजस्थानी के तीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का सम्पादन किया।
वही।

४ श्रीयुत शिवचन्द्र भरतिया ने जब सर्वप्रथम राजस्थानी (मारवाडी) भाषा मे लिखना प्रारम्भ किया उस समय उन्हे किन किन विरोधो का सामना करना पडा यह उनके ही वक्तव्यो से स्पष्ट हो जाता है—

(क) हिंदी भाषा कोविद महाशयो को अनुरोध छ के हिन्दी भाषा ने छोडकर मारवाडी भाषा माहे पुस्तका लिखकर विद्या को पथ सकीर्ण करणो वाजबी नही '
भूमिका
कनक सुन्दर शिवचन्द्र भरतिया किरण नाहटा पृष्ठ स० ६६

(ख) या पुस्तक लिखीजी जद प्रथम आछा आछा सज्जन पुरुषा ने दिखाइ तो उणाको अभिप्राय पड यो के मारवाडी भाषा माहे पुस्तक लिखवा को व्यर्थ परिश्रम कीना। इणसू तो हिन्दी माहे पुस्तक लिखना तो ठीक होता। मारवाडी कोई भाषा नही तिकासू इण पुस्तक को प्रचार होणो कठिन है ...।
भूमिका केसर विलास' शिवचन्द्र भरतिया (द्वितीय सस्करण)

प्राचीन साहित्य के शोध की यह परम्परा बाद म तो और अधिक विकसित होती गई। स्व० सूयकरण पारीक, ठाकुर रामसिंह श्री नरोत्तमदास स्वामी अगरचन्द नाहटा, कन्हैयालाल सहल प्रभृति विद्वानो न इस दिशा म महत्त्वपूर्ण काय किये। आज तो इस क्षेत्र म अनेक विद्वान दसों सस्थाएँ[1] और बहुत सी पत्र पत्रिकाए[2] सक्रिय है।

इस प्रकार प्रवासी राजस्थानियो म बगाली और मराठी समाज तथा साहित्य की नूतन स्फूर्ति के सम्पक स जागत उत्साह का भाव और विदेशी विद्वानो द्वारा प्राचीन राजस्थानी साहित्य के अन्वेषण प्रकाशन स उत्पन्न आत्म सम्मान के भाव न राजस्थानी साहित्य को एक नयी राह पर ला खडा किया। परिणामस्वरूप आधुनिक राजस्थानी साहित्य म जो परिवतन या विशेषताएँ उजागर हुई उन पर किंचित विस्तार स किया गया विचार प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य के अन्तर और उनकी सही स्थितियो को समझाने म अधिक सहायक सिद्ध होगा।

(ग) इस सम्बन्ध म राजस्थान के सुप्रसिद्ध विद्वान पण्डित रामकरण आसोपा के अनुभव भी कम कडवे नही रह। उन्होने अपनी मारवाडी व्याकरण की भूमिका म लिखा है कि—
एक दिन री वात है भाषा सम्बन्धी बात चाली तो भट एक परदेशी वोल उठियो क मारवाडी भाषा कोई शिष्ट भाषा थोडी ही है क्यू के न तो कोई इण री व्याकरण है और न काई इण म किताबा है और न कोई कोश (डिक्सनेरी) है और इण सू हीज यूनिवर्सीटी म मुकर नही है। आ तो सिफ जगली भाषा है जिणरो थे इतो मोद करो हो मा आ बात तो आक रो कीडा आक मे राजी वाली है।

मारवाडी व्याकरण पडित रामकरण शर्मा, पृ० स० ३ प्र० का०—स १९५३

१ राजस्थानी साहित्य के शोध सम्बन्धी काय मे निम्नलिखित सस्थाए मुख्य रूप से सक्रिय रही हैं —
(क) राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता।
(ख) सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर।
(ग) राजस्थानी साहित्य परिषद कलकत्ता।
(घ) राजस्थानी शोध सस्थान विसाऊ (राज०)
(ङ) भारतीय विद्या मन्दिर शोध प्रतिष्ठान बीकानेर।
(च) राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी, जोधपुर।
(छ) राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर।
(ज) रूपायन सस्थान बोरुदा (राजस्थान)
(झ) भारतीय लोक कला मण्डल उदयपुर।
(ञ) साहित्य सस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर।
(ट) बिडला एज्यूकेशन ट्रस्ट राजस्थानी शोध विभाग पिलानी (राज०)

२ इ० सन १९०० से अद्यावधि राजस्थानी भाषा मे निम्नलिखित पत्र पत्रिकाए प्रकाशित हो चुकी हैं या हो रही हैं—
मारवाडी मारवाडी भास्कर मारवाडी हितकारक आगीवाण मारवाडी जागती जोत मरवाणी ओळमा कुरजा जलमभोम जाणकारी हरावळ, लाडेसर हैलो विशाल मरुधर राजस्थानी मूमल जागती जोत।
इन पत्र पत्रिकाओ का विशेष विवरण परिशिष्ट मे दिया गया है।

प्राचीन साहित्य से भिन्न आधुनिक साहित्य की विशेषताओं पर जब विचार करते हैं तो कई तथ्य उभर कर सामने आते हैं, प्रथम राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र म भी पद्य की अपेक्षा गद्य को युग-वाणी को स्वर देने म अधिक सक्षम मानकर—उपन्यास, कहानी नाटक एकांकी, निबन्ध आदि नाना नवीन विधाओं का प्रारम्भ हुआ। यद्यपि हिन्दी की अपेक्षा राजस्थानी गद्य साहित्य की परम्परा बहुत समृद्ध रही है और केवल सर्जनात्मक साहित्य के लिए ही नहीं अपितु इतिहास लेखन एवं अन्य अन्य उपयोगी साहित्य के लिए भी बराबर व्यवहृत होता रहा है फिर भी आधुनिक राजस्थानी गद्य साहित्य ने उससे कोई सीधी प्रेरणा ली हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह सही है कि प्राचीन राजस्थानी म लघु और विशाल वातां की शानदार परम्परा रही है और व जनसाधारण के मध्य काफी लोकप्रिय भी रही हैं, किन्तु उन लघु या विशाल वातां से हम अर्वाचीन कहानी या उपन्यास का संबंध किसी प्रकार स्थापित नहीं कर सकते। प्रथम तो आज की कहानी और उपन्यास का शिल्प प्राचीन वातां के शिल्प से सर्वथा भिन्न पाश्चात्य साहित्य म सीधा ग्रहण किया हुआ है द्वितीय, इनके लेखन के उद्देश्य म भी भारी अंतर रहा है और तृतीय कहानी एवं उपन्यासों का कथ्य भी सर्वथा बदल हुआ है। कथ्य और शिल्प की भांति इनकी शैली म भी पर्याप्त अंतर है। तुकांत गद्य की परम्परा को तो आज का गद्यकार कभी का छोड़ चुका है किन्तु साथ ही अनावश्यक वर्णन विस्तार और पच्चीकारी की प्रवृत्ति से भी वह मुक्त हो चुका है। वातां और लम्बी वातां से तुलनीय कहानी और उपन्यास के अतिरिक्त गद्य साहित्य म प्रचलित शेष सभी विधाओं का प्राचीन गद्य साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं है उन्हें तो नवयुग की ही उपज माना जाना चाहिये।

आधुनिक काल म पद्य के क्षेत्र मे भी गद्य की भांति पर्याप्त परिवर्तन आया है। अब कविता केवल रसवादी साहित्य का सृजन कर ही अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाती अपितु उसका झुकाव वैचारिक एवं बौद्धिक पक्ष की ओर दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। वर्तमान जीवन की जटिलताओं और मानव मन की संश्लिष्टताओं को सही अभिव्यक्ति देने म ही वह अपनी सार्थकता समझती है। अब वह जीवन की शाश्वत एवं सामयिक समस्याओं को समान रूप से उठाती है और बदले हुए मानवीय मूल्यों और आस्थाओं की चुनौती को स्वीकारती हुई जनसाधारण तक उन सब परिवर्तित स्थितियों और

---

१ प्राचीन और अर्वाचीन गद्य शैली के अंतर को स्पष्ट करने की दृष्टि से दोनों के एक एक उदाहरण प्रस्तुत हैं —

(क) इण भांति मोवनिया चौफेर तरफां मंड मंडी ऊलळ्या लागी बगतररी कड़ी अर नाचवा लागी बड़ी-बड़ी। जिण भांति ढोलड़ा वागा नट नू नचनची नाग तिण भांति इण वला राजपूत वट जाग अब धावणा ज्यारा बधावणा। नावड़ा उबारणा, गीनड़ा गवावणा।'
रावत मोहकम सिंघ हरीसिंघोत री वात राजस्थानी वातां स० सौभाग्यसिंह शेखावत, पृष्ठ स० १२१

(ख) राजा विचार करण लागी—आज धन तेरस है अर काल रूपचवदस। आ सू नम (असाढ सुद नम) गई तो उण न परणियां नै पूरा तीन बरस हियां अर चौथो बरस लागग्यो। तीन बरसां म वे तीन वेळा घरे आया। बीस बीस दिन री छुट्टी मे। वा आगलियां माथ गिणण लागी।"
रूपाली राजा, अमर चूनड़ी नरसिंह राजपुरोहित, पृष्ठ संख्या १०

भावो को सप्रपित करने स नही वतराती । कविता के सम्ब घ म बदलते हुए इस दृष्टिकोण का परिण म यह हुआ है कि आज की कविता प्राचीन कविता स काफी बदल गयी है ।

अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन दूर की उड़ान अनावश्यक अलकारिकता छन्द के कठोर बन्धन और अनेक प्रक र के का य शास्त्रीय प्रतिबन्ध ये सब उसम बहुत पीछे रह चुके हैं । यह नही वीरता शृङ्गार करुणा वात्सल्य आदि मानवीय भावा का अथ भी उसके लिए ब ल चुका है । एक उदाहरण दृष्टव्य है--

भखारियाँ रीति
भीत ल बडा चिगळ
तवौ बनळावण करणी चा
चकना पड तर नी द
ऊ खळी म अक दत
हड हड हास
डागळ डाकण
फदाका भर
निस्कारा हाखनी
घर गी धिराणी
मन माई कळाप कर--
आलीजा आज्या घरा
क धान बिन भूखा मराँ ।[1]

पारम्परिक रचनाओ स इसका स्वर स्वरूप और मिजाज कितना बदल हुआ है यह ब लाने की आवश्यकता नही है । फिर भी यहा इतना तो जान ही लना चाहिये कि राजस्थानी कविता इस स्थिति को बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ म ही नही पहु च पाई थी अपितु सत्तर वर्षों की लम्बी अवधि म परिवतना की कई सरणियों स गुजर कर यहा तक पहु ची है ।

आधुनिक काल की कविता म प्राचीन काल की अपेक्षा एक और अ तर जो उभर कर सामने आया है वह है प्रकृति के प्रति उसका बदला हुआ दृष्टिकोण । आधुनिक युग से पूव के का य म प्रकृति का अकन अधिकाश मे उद्दीपन रूप म ही हुआ है किन्तु आधुनिक युग म आते आते प्रकृति स्वय आलवन बन गई । हिन्दी और अ य सम सामयिक भारतीय भाषाओ की तरह राजस्थानी म भी बादळी लू' वळायण' मेघमाळ एव दस देव जसी का य कृतियो और सकडो कविताओ म प्रकृति का आलम्बन रूप म बडा रम्य अकन हुआ है ।

इन परिवतना के अतिरिक्त भा आधुनिक युगीन का य के सम्बन्ध म कुछ ऐसी बातें और भी हैं जो कि उस प्राचीन का य स अलगाती है । युगानुकूल वश परिवतन की प्रक्रिया म आधुनिक कविता न डिंगल के वयण सगाई जसे अलकार की अनिवायता को सवथा नकार दिया है और ओजस्वी कठ से

---

१ आलीजा आज्यो घरा मणि मधुकर
राजस्थानी अेक स० तेजसिंह जाधा पृ० स० ६०

एक विशेष लहजे म पढे जाकर पूरे वातावरण को अपन म बाध [illegible] वाले [illegible] तथा उनके [illegible] के आस पास, भेद प्रभेदो का लगभग भुना सा दिया है।

आधुनिक राजस्थानी गद्य और पद्य साहित्य म आय इन परिवतनो की चचा के सम्बन्ध म उन दो एक बातो की ओर इगित कर दना भी आवश्यक प्रतीत हो रहा है जिनके प्रभाव सवव्यापी है और जो आधुनिक साहित्य की सबस बडी उपलब्धि है। य बाते हैं—प्रथम तो साहित्य का आम आदमी से जुड जाना और द्वितीय, यथाथ तत्त्व की ओर साहित्यकार का विशेष झुकाव।

निष्कषत प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारो म [illegible] एव मराठी समाज [illegible] साहित्य के सम्पक से उत्पन्न चेतना और विदशी विद्वानो के प्राचीन राजस्थानी भाषा-साहित्य [illegible] के प्रकाशन स राजस्थानी साहित्यकार म उत्पन्न आत्म-गौरव के भाव न उन्हें [illegible] से मुक्त कर आधुनिक युग की दहलीज पर ला खडा किया। परिणाम स्वरूप [illegible] साहित्य सामने आया वह गद्य के फलते दायरे साहित्य के बदलते प्रतिमानों और [illegible] जन-जीवन म आति नकटय के कारण प्राचीनकालीन साहित्य स काफी भिन्न एव [illegible]।

❀

द्वितीय खण्ड

२ प्रेरणा-स्रोत

2

प्रेरणा-स्रोत

शताब्दियों की समृद्ध एवं समुन्नत परम्परावाला राजस्थानी साहित्य १९वीं शताब्दी में अनेक ऐसी राजनैतिक सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के मध्य गुजरा जिसके फलस्वरूप २०वीं सदी में प्रवेश करते करते उसका स्वरूप एवं स्वभाव मध्यकालीन साहित्य की अपेक्षा काफी कुछ बदल गया। उसके इस बदलते हुए तेवर और मिजाज ने ही इसे पहली बार आधुनिक युग के द्वार पर ला खड़ा किया। यहां पहुँच कर उसने शताब्दियों के सामन्ती एवं राजदरबारी संरक्षण की उपेक्षा करते हुए नये आत्म विश्वास के साथ आगे बढ़कर जन साधारण का हाथ अपने हाथों में थाम लिया। इस प्रकार मध्ययुगीन संस्कारों से मुक्ति और साधारणजन से सहज सम्पत्ति आधुनिक मनोभूमि में उसके प्रवेश के ठोस आधार बने। वस गद्य के बढ़ते हुए महत्त्व पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन पाश्चात्य साहित्य से सम्पर्क के कारण नाना नवीन विधाओं का प्रवेश रूढ़ एवं पारम्परिक काव्य भाषा से मुक्ति और सहज किन्तु युग की चिन्तनाओं एवं अनुभूतियों को व्यक्त करने में सक्षम भाषा की स्वीकृति आदि अन्य अन्य बातों को भी हम ऐसे परिवर्तनों के रूप में ले सकते हैं—जो राजस्थानी साहित्य के आधुनिक युग में प्रवेश की निश्चित घोषणा करती हैं।

उपयुक्त परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में १९०० ई० में ही राजस्थानी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ माना जाना चाहिए। वस सर्व श्री मोतीलाल मेनारिया, नरोत्तमदास स्वामी पुरुषोत्तमलाल मेनारिया शान्तिलाल भारद्वाज प्रभृति विद्वान १९०० ई० की अपेक्षा वि०स० १९०० या कि प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (१८५७ ई०) के आस पास राजस्थानी साहित्य के आधुनिक काल का सूत्रपात हुआ मानते हैं।[1] इस सम्बन्ध में इन विद्वानों की मान्यता है कि १८५७ ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के

१ (क) राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल स्थूल रूप से सं० १९०० से प्रारम्भ होता है।
राजस्थानी भाषा और साहित्य डा० मोतीलाल मेनारिया पृ०सं० ३१४ (तृतीय संस्करण)

(ख) राजस्थानी के प्रसिद्ध कोशकार श्री सीताराम लालस ने भी अपने राजस्थानी सबद-कोस की प्रस्तावना में राजस्थानी साहित्य का परिचय देते हुए राजस्थानी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ वि० सं० १९०० से ही माना है।
राजस्थानी सबद कोस श्री सीताराम लालस (प्रथम खण्ड) प्रस्तावना पृ०सं० १७२

(ग) राजस्थानी साहित्य के शोधकर्ताओं और आलोचकों ने राजस्थानी का आधुनिक काल सं० १९०० से ही माना है अर्थात् सन् १८५७ के भारतीय स्वाधीनता संग्राम की चेतना को ही आधुनिकता की प्रेरक किरण माना जाना उपयुक्त ठहरता है।
आधुनिक राजस्थानी साहित्य-एक शताब्दी शान्तिलाल भारद्वाज अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध, एम०ए० (हिन्दी) पृ०१६, राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय जयपुर।

समय और उससे कुछ पूव के राजस्थानी साहित्यकार की भूमिका अंग्रेजी साम्राज्यवाद विरोधी भूमिका रही है, जो कि उसके प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचायक है। इसी अवधि म महाकवि सूयमल्ल की वीर सतसई की रचना हुई थी, जिसमे महाकवि ने किसी व्यक्ति विशेष के कार्यों की प्रशसा न कर सामान्य वीर को अपने काव्य का आधार बनाया। इस प्रकार महाकवि की इस कृति मे सहज ही यह निष्कष निकाला जा सकता है कि व्यक्ति विशेष के वचस्व को अस्वीकार कर जनशक्ति को स्वीकृति प्रदान करने वाली आधुनिक चेतना का प्रस्फुटन राजस्थानी साहित्य म इसी कृति के साथ हो चुका था अत राजस्थानी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारम्भ भी यही से माना जाना चाहिए।

सरसरी तौर पर देखने से तो उपयु क्त दोनो ही कथन सही प्रतीत होने हैं किन्तु जब क्वचित् गभीरता से विचार करते हैं तो स्थिति कुछ और ही नजर आती है। यह सही है कि उस अवधि म सर्जित साहित्य मे अंग्रेजी साम्राज्यवाद विरोधी स्वर काफी प्रबल थे किन्तु केवल अंग्रेजो या कि उनकी साम्राज्यवादी नीतियो का विरोध करना ही तो उन साहित्यकारो को आधुनिक चेतना का सवाहक नही बना देता। अगर उनका यह विरोधी स्वर अंग्रेजी साम्राज्यवाद के साथ साथ सामतवादी शोषण और अन्याय के विरोध मे होता तथा उसम सामान्य व्यक्ति की वकालत हुइ होती तो हम नि सन्देह उन साहित्यकारो को नवयुग के अग्रेसर मानते। यही बात महाकवि सूयमल्ल रचित वीर सतसई के सम्बन्ध म लागू होती है। यद्यपि उसमे व्यक्ति विशेष के वचस्व को प्रधानता नही दी गयी है और सामान्य वीर को काव्य का आधार बनाया गया है तथापि उस कृति म कवि की दृष्टि मुख्यत मध्यकालीन वीरता पर ही जमी हुई है और उसम सामान्य वीर से कही भी यह अपेक्षा नही की गयी है कि वह युगानुकूल नूतन समाज रचना का दायित्व वहन करे।

ऐसी स्थिति म न तो अंग्रेजी साम्राज्यवाद विरोधी भावना के पोषक उन बहुत सारे कवियो को ही यह श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होने राजस्थानी साहित्य मे आधुनिक युग का सूत्रपात किया और न ही महाकवि सूयमल्ल की वीर सतसई को ही आधुनिक राजस्थानी साहित्य की प्रथम सशक्त कृति होने का गौरव प्रदान किया जा सकता है। यही नही उस समय के राजस्थानी समाज म भी कही ऐसा कोई लक्षण दृष्टिगत नही हो रहा था—जिसके आधार पर हम यह कह सकें कि वहा नूतन परिवतनो के अनुकूल परिस्थितियो का निर्माण हो रहा था। इसके विपरीत यह समय तो राजस्थानी इतिहास म घोर निराशा अकमण्यता एव किकतव्यविमूढता का समय था।[1] अत हम किसी भी स्थिति-

---

१ वि०स० १६०० के आस पास राजस्थान पराभव के जिस दौर से गुजर रहा था, उस सम्बन्ध म श्री रघुवीरसिंह का यह कथन उल्लेखनीय है—

राजस्थान के लिए यह एक विषम सक्रांति काल था—वश परम्परागत राजपूती वीरता और सनिक क्षमता निरथक प्रतीत हो रही थी। अपने अयोग्य स्वार्थी कृपा पात्रो से घिरे हुए नरेश असहाय और विवशता से ऐश्वय विलास मे डूबे अपनी पराधीनता के कठोर सत्य को भूलकर उनकी राजनतिक श्रेष्ठता तथा गौरव का ढोग रचन वाल ऊपरी दिखावे को ही पूरा महत्त्व द रहे थे। साहित्य क्षेत्र म महाकवि सूयमल का एकछत्र शासन था। राजस्थान के इस घोर पतन को देखकर उसकी आत्मा रोती थी एव वह रागरग म डूबा हुआ विगत कालीन गौरव के स्मरण म ही आत्मतुष्टि का अनुभव करता था। सारे राजस्थान म इस समय अज्ञानता का घोर अधकार छाया हुआ था।

पूव आधुनिक राजस्थान श्री रघुवीरसिंह पृ०स० २८२-८३

म वि०स० १६०० के आस पास के काल को राजस्थानी साहित्य म आधुनिक चतना के प्रेरक तत्त्व क रूप म नही ले सकते ।

इसके विपरीत ई० सन १६०० के आस पास की अवधि म न केवल राजस्थानी समाज म ही वह कसमसाहट देखन को मिलती है जो कि जीवन के हर क्षेत्र म अपन पिछड़ेपन क अहसास के साथ उत्पन्न हुई थी अपितु राजस्थानी साहित्य जगत म भी ऐसी बहुत सी घटनाए एक दशक स कम की अवधि म घटित हुई जो राजस्थानी साहित्य के आधुनिक युग म प्रवेश की साक्षी हैं। यहा ऐसी कतिपय महत्त्वपूर्ण घटनाओ का उल्लेख करना अप्रासगिक नहीं होगा ।

१ समाज क सामान्य कहे जान वाले वर्ग और व्यक्ति क दनदिन जीवन की समस्याओ पर आधारित श्री शिवचन्द्र भरतिया के प्रथम नाटक 'केसर विलास' का प्रकाशन वि० स० १६५७ या कि ई० सन १६०० म हुआ । यह राजस्थानी साहित्य की प्रथम रचना थी जिसम कथ्य भाषा और प्रस्तुतीकरण (अभिव्यक्ति) एव शिल्प क स्तर पर प्राचीन स्थापनाओ को नकारते हुए पाश्चात्य शिल्प के अनुरूप नवीन मान्यताओ को अपनाया गया । इस नाटक के प्रकाशन के पश्चात तो एक दशक से भी कम की अवधि म ही श्री शिवचन्द्र भरतिया के 'कनक सुदर'[1] नामक उपन्यास एव 'बुढापा की सगाई'[2] तथा 'फाटका जजाल'[3] नामक नाटको श्री भगवतीप्रसाद दारूका क 'वृद्ध विवाह'[4] नामक नाटक श्री गगाराम बी ए के 'धर्मपाल'[5] नाटक एव श्री लछमनदास सालगराम के 'सगीत मोहन'[6] नाटक आदि ऐसी रचनाओ का प्रकाशन हुआ । इन सभी रचनाओ म मुख्यत पाश्चात्य साहित्य क शिल्प का ही अनुकरण हुआ है और इनकी भाषा प्राचीन काव्य भाषा से हटकर बोलचाल की साधारण भाषा है । वस्तुत य ही वे रचनाएँ थी जिनम पहली बार सामान्य व्यक्ति का साहित्य के साथ गहरा सम्बन्ध स्थापित हुआ ।

२ राजस्थानी भाषा के प्रथम पत्र 'मारवाडी भास्कर'[7] का प्रकाशन ई० सन १६०७ मे हुआ और उसी वर्ष राजस्थानी भाषा क दूसर पत्र 'मारवाडी'[8] का भी प्रकाशन हुआ ।

३ राजस्थानी भाषा का प्रथम व्याकरण[9] भी स्व० रामकरण आसोपा द्वारा तैयार करके इसी अवधि म अर्थात वि० स० १६५३ (ई० सन १८६६) म प्रकाशित करवाया गया ।

---

१ प्रकाशन काल १६०३ ई०
२ प्रकाशन काल १६०६ ई०
३ प्रकाशन काल (१६०७ ई०) वि० स० १६६४
४ प्रकाशन काल (१६०३ ई०) वि० स० १६६०
५ प्रकाशन काल वि० स० १६५७ स १६६४ के मध्य
६ प्रकाशन काल वि० स० १६५७ से १६६४ क मध्य
७ स० रामलाल बद्रीदास प्रकाशन स्थान—मीनापुर
८ स० किशनलाल बलदवा प्रकाशन स्थान—अहमदनगर
९ मारवाडी व्याकरण पडित रामकरण नामा
(जोधपुर मारवाड स्टेट प्रेस म पण्डित निरजन नाथ मैनेजर रा प्रबन्ध स छपी)

४ राजस्थानी भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकृति दिलवाकर प्रचलित करवाने के उद्देश्य से ही प्रेरित होकर स्व० रामकरण आसोपा ने राजस्थानी पाठ्य पुस्तकों[1] की रचना भी इसी अवधि में की।

५ राजस्थानी भाषा का पृथक अस्तित्व देशी विदेशी विद्वानों द्वारा इसी अवधि में स्वीकार किया गया और इसके पश्चात ही देशी विदेशी विद्वानों का ध्यान राजस्थानी साहित्य के अध्ययन अन्वेषण की ओर गया। फलस्वरूप विश्व के सामने पहली बार राजस्थान के विशाल और समृद्ध साहित्य की झांकी प्रस्तुत की गई और उसके महत्त्व को स्वीकारा गया जिसने परोक्षरूपेण राजस्थानी साहित्य सृजन को भी गति प्रदान की।

उपर्युक्त कुछ एक बातें साहित्य क्षेत्र की ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें रही है जिनके आधार पर सप्रमाण यह स्थापित किया जा सकता है कि राजस्थानी साहित्य में आधुनिक युग का सूत्रपात वि० स० १९०० से न मानकर ई० सन १९०० से हुआ। इन साहित्यिक परिवर्तनों एवं उपलब्धियों के अतिरिक्त भी राजस्थानी साहित्य को प्रभावित करने वाले वर्ग के सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में भी १९०० ई० के पश्चात ही वह हलचल देखने में आती है जो उसे एक मरणोन्मुखी समाज के स्थान पर क्रियाशील एवं युगानुकूल परिवर्तनों को झेलने में सक्षम समाज सिद्ध करता है। इसी अवधि में बहुत बड़ी संख्या में राजस्थान से बाहर भारत के इतर प्रान्तों में व्यापार रत प्रवासी राजस्थानियों के जीवन में तीव्र हलचल उत्पन्न होती है और सुधारों का एक तेज दौर-दौरा उनके मध्य गुजरता है। इधर राजस्थान में भी इसी अवधि के पश्चात सामन्तशाही के कठोर नियन्त्रण के बावजूद सामाजिक एवं राजनैतिक हलचलों का दौरदौरा प्रारम्भ होता है। प्रवासी राजस्थानियों ने इसी दशक में व्यापारिक सामाजिक शैक्षणिक और राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण प्रगतिशील कदम उठाये।[2] उधर राजस्थान

---

१ स्व० रामकरण आसोपा ने मारवाड़ी पहली पुस्तक मारवाड़ी दूजी पुस्तक मारवाड़ी तीजी पुस्तक मारवाड़ी चौथी पुस्तक और मारवाड़ी री भूगोल नामक पाठ्य पुस्तकों का प्रकाशन वि० स० १९५३ के पश्चात किया। वि० स० १९७२ तक इन पुस्तकों में किसी किसी के तो पांच पांच संस्करण निकल चुके थे। इन पुस्तकों को जोधपुर राज्य में पाठ्य पुस्तकों के रूप में भी सम्मिलित किया गया था—

मारवाड़ी भाषा रा प्रचार वास्ते म्हैं मारवाड़ी पहली और दूजी किताबां बणाई जिणांरी जसवन्त कालेज रा प्रिंसीपल व सरिस्ते तालीमरा सुपरडंट मान्यवर पण्डित जी श्री सूरजप्रकाशजी साहिब एम०ए०कदर कर मारवाड़ की हिन्दी पाठशालावां में मुकर करी जिणसूं उत्साहित हुय आ तीजी किताब बणाय प्रकाशित करी है।

भूमिका मारवाड़ी तीजी पोथी रामकरण आसोपा

आधुनिक राजस्थानी साहित्य भूपतिराम साकरिया पृ० स० ८

२ ई० सन १९०० के आस पास एवं पश्चात मारवाड़ी समाज में अनेक सार्वजनिक संस्थाओं का गठन हुआ जिनका उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों में मारवाड़ी समाज को आगे बढ़ाना था उनमें कतिपय प्रमुख संस्थाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है —

(क) मारवाड़ी एसोसियेसन स्थापना ई० सन १८९८ प्रमुख कार्यकर्ता-बाबू रंगलाल पोद्दार प्रमुख उद्देश्य—मारवाड़ियों के व्यापारिक हितों की रक्षा एवं उनमें सामाजिक जागृति हेतु विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन।

मे भी एक ओर समाज-सुधार की प्रवत्ति धीरे धीरे बढने लगी तो दूसरी ओर मिथ्या धार्मिक आडम्बरो के विरुद्ध आवाज भी इसी समय उठी और राजनतिक चेतना जगाने वाली स्वदेशी प्रयाग का लहर ने इसी अवधि म प्रथम बार राजस्थानी समाज का अपन स्पश से उद्वेलित किया।[1]

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थानी साहित्य म आधुनिक युग का प्रारम्भ १९०० ई० से ही हुआ है। तब से लेकर आज तक उसम निरन्तर साहित्य सजन का काय कभी क्षिप्रगति म ता कभी क्वचित शिथिलता के साथ होता रहा है। ७१-७२ वर्षों की इस अवधि म देश के राजनतिक सामाजिक आर्थिक एव धार्मिक जीवन म अनेक उतार चढाव आये हैं और उसी के अनुरूप साहित्य म भी परिवतनो का दौरदौरा चलता रहा है। आगे विस्तार से हम उन सब स्थितियो पर विचार करेंगे जिनस राजस्थानी का आधुनिक साहित्य प्रभावित प्रेरित हुआ है।

इन स्थितियो पर विचार करने से पूव एक बात का स्पष्ट हो जाना आवश्यक प्रतीत हो रहा है कि यह कोई आवश्यक नहीं है कि देश के घटनाक्रम म जिस रूप म परिवतन एव उतार चढाव आये हो उसी के समानान्तर साहित्य म भी वे सब उतार चढाव स्पष्ट होते जायें। इसके स्थान पर बहुत से भीतरी एव बाह्य कारणो के कारण कई बार साहित्य का इतिहास देश के इतिहास से थोडा

(ख) मारवाडी चेम्बर आफ कामस स्थापना—१९०० ई०, प्रमुख कायकर्ता—बाबू रिद्धकरण सुराणा, प्रमुख उद्देश्य—मारवाडी समाज के व्यापारिक हितो की रक्षा।

(ग) वश्य सभा, स्थापना—ई० सन १९०२ प्रमुख कायकर्ता—श्री रामकुमार गोयनका, उद्देश्य—समाज सुधार एव सामाजिक प्रगति।

सहायक सस्था—

बुद्धि-वर्द्धिनी सभा (डिबेटिंग क्लब)—इसके सभापति थे—बगला हितवादी के सम्पादक, प्रमुख राष्ट्रवादी विचारक एव प्रखर विद्वान पण्डित सखाराम गणेश देउस्कर। शिक्षा के लिए मारवाडी नवयुवको को प्रोत्साहित करना इसका प्रमुख उद्देश्य था।

(घ) बडा बाजार लाइब्रेरी स्थापना वि० स० १९५८, प्रमुख सस्थापक—केशवप्रसादजी मिश्र। यह सस्था आज भी कलकत्ता म कायरत है।

(ङ) मारवाडी सहायक समिति एव बाद म मारवाडी रिलीफ सोसाइटी—स्थापित १९१३ ई०, यह सस्था अपनी शानदार सेवाओ के कारण आज भारत भर म प्रसिद्ध है।

इन सस्थाओ के अतिरिक्त भी विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, रामचन्द्र गोयनका विधवा सहायक फण्ड, मारवाडी हिन्दू अस्पताल आदि दसो सस्थाए उस समय मारवाडी समाज म सक्रिय थी।

स्रोत— देश के इतिहास म मारवाडी जाति का स्थान बालचन्द मोदी प्र० का० वि० स० १९९६

१ इस स्वदेशी आन्दोलन की गूज राजस्थान के दक्षिण-पश्चिमी भाग म अवश्य सुन पडी। स्वदेशी प्रचार शिक्षा विस्तार आदि सदुद्देश्यो से सन १९०५ ई० म एक सम्प सभा की स्थापना सिरोही राज्य म हुई थी।'

पूव आधुनिक राजस्थान श्री रघुबीरसिंह, पृ० स० ३१२

दीनताभरी याचनाओं का तात्कालिक ब्रिटिश शासकों पर कोई विशेष असर दृष्टिगत नहीं हो रहा था फलत कांग्रेस में ही उग्रवादी विचारों के समर्थकों का जोर बढ़ता जा रहा था। उन लोगों को तिलक के रूप में एक बहुत ही ओजस्वी एवं उपयुक्त नेता प्राप्त हो गया था।

१६०३ ई० में दिल्ली दरबार एवं १६०५ ई० में बंग भंग की घटनाओं ने देश के राजनतिक जीवन में जबरदस्त हलचलें उत्पन्न कर दी और पूरे बंगाल में बंग भंग का घोर विरोध करते हुए विदेशी वस्त्रों की होलियां जलाई गई तथा स्वदेशी प्रोत्साहन के लिए नाना कदम उठाये गये। उग्रवादियों की इस नीति का व्यापक जन समर्थन मिलते हुए भी उन्हें कांग्रेस के उदारवादी नेताओं का विरोध सहना पड़ा और परिणाम स्वरूप कांग्रेस का विभाजन हुआ जो बाद में एनीबिसेण्ट के प्रयासों से ही रद्द हो सका। उधर प्रथम विश्व युद्ध (१६१४ ई०) ने अंग्रेजों को बढ़ती हुई जन चेतना को रोकने का एक सुनहरा बहाना प्रदान किया, किन्तु दमन से क्रान्ति की भावना को कुचलना क्या कभी सम्भव हुआ है? एक ओर तिलक और एनीबिसेण्ट के नेतृत्व में 'होम रूल' की मांग जोर पकड़ती गयी और दूसरी ओर महात्मा गांधी का प्रभाव कांग्रेस में धीरे धीरे बढ़ता गया। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर कांग्रेस के जो उदारवादी नेता अंग्रेज सरकार से न्याय और सुधारों की अपेक्षा लिए उनके सहयोग में पूरी तरह जुटे हुए थे, वे ही लोग १६१८ ई० के तथाकथित माण्टग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के प्रकाशन से बहुत निराश हुए और विवश होकर उन्हें विरोध का मार्ग अपनाना पड़ा। उधर अंग्रेजों ने भी युद्ध जीतकर जीत के मद में जन आन्दोलन को निर्ममता से कुचलने का अपना इरादा पक्का कर लिया, फलस्वरूप जलियावाला बाग का नृशंस हत्याकाण्ड हुआ।

अंग्रेजों की इस नियत से विवश गांधीजी को असहयोग आन्दोलन (१६२०–२१ ई०) छेड़ना पड़ा जिसमें पहली बार गांधीवादी सिद्धान्तों पर व्यापक जनमत को चलते हुए देखा गया किन्तु अनेक कारणों से आन्दोलन अपने लक्ष्य को नहीं पा सका और गांधीजी को चौराचौरी काण्ड के बहाने आन्दोलन वापस लेना पड़ा। परन्तु इससे बढ़ा हुआ जन असंतोष समाप्त नहीं हुआ। गांधीजी के विचारों से असहमत नेताओं ने स्वराज्य-दल का गठन किया और वे अपने ढंग से अंग्रेजों का विरोध करते रहे। इस अवधि में गांधीजी ने तो अपना ध्यान रचनात्मक कार्यों तक ही केन्द्रित कर लिया, किन्तु इससे देश के राजनतिक जीवन में गतिरोध नहीं आया। अंग्रेज और अंग्रेजी साम्राज्यवाद विरोधी भावनाएँ दिनों दिन बढ़ती गयी। इस बढ़ते हुए असंतोष ने आगामी राजनतिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया।

इस प्रकार १६०० ई० से १६३० ई० तक की इस अवधि में घटित इन प्रमुख घटनाओं का जन-साधारण पर दो दृष्टियों से व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रथम उन्होंने स्वदेशी के महत्त्व को समझा जिसमें अंग्रेजी सभ्यता के प्रति उनके मन में जो एक मोह एवं अपने प्रति जो हीनता का भाव था वह काफी हद तक दूर हुआ। दूसरे शब्दों में उनमें आत्म सम्मान का भाव जगा। दूसरा जो प्रभाव दृष्टिगत होता है वह है उनमें आत्मावलोचन की प्रवृत्ति का बढ़ना। समय-समय पर किये गये आन्दोलनों और उनकी विफलताओं ने उन्हें इस विषय पर सोचने को मजबूर किया कि आखिर वे कौनसी कमजोरियां हैं जिनके कारण विपुल जन शक्ति वाले भारतीय मुट्ठी भर अंग्रेजों से अपनी बात नहीं मनवा पा रहे हैं? फलस्वरूप उन्होंने और तेजी से अपने सामाजिक और वैयक्तिक जीवन को सक्षम और पूर्ण बनाने हेतु अनेक आवश्यक परिवर्तनों को स्वीकार किया।

भिन्न रूप में भी प्रस्तुत होता रहा है। आधुनिक राजस्थानी साहित्य के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ है। इन सत्तर वर्षो की लम्बी अवधि मे यह लगभग तीन युगो से गुजरा है—

१ १९०० ई० से १९३० ई०
२ १९३१ ई० से १९५० ई०
३ १९५१ ई० से अद्यतन

१९०० से १९३० ई० तक की अवधि में सर्जित साहित्य में प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों का प्रभुत्व रहा और उनके द्वारा सर्जित साहित्य ब्रिटिश भारत की राजनैतिक एवं सामाजिक उथल पुथल एवं उन प्रदेशों की साहित्यिक गतिविधियों से अधिक प्रभावित रहा।

१९३१ से १९५० ई० के मध्य हम आधुनिक राजस्थानी साहित्य का दूसरा युग प्रारम्भ हुआ मान सकते हैं। इस अवधि में जहां प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों का ध्यान क्रमश अपनी मातृभाषा और उसके साहित्य की ओर से हटता गया वहां राजस्थान में कतिपय प्रेरक व्यक्तियों के प्रयासों और यहां बढ़ती हुई राजनैतिक हलचलों के कारण साहित्य सर्जन की गति में तेजी आयी। साथ ही पारम्परिकता के मोह को तेजी से छोड़ते हुए साहित्य जगत के भिन्न भिन्न क्षेत्रों मे विचरण मे तत्परता दिखलाई गई।

१९५१ ई० से आज तक की अवधि में स्वतन्त्रता प्राप्ति जन्य सुविधाओं और साधनों के विस्तार ने साहित्य सर्जन की गति को अपेक्षया काफी तीव्रता प्रदान की और पद्य के समान ही गद्य साहित्य की नाना विधाओं के विकास की शानदार सम्भावनाओं के लिए ठोस धरातल तैयार किया।

इस विवेचन के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यहां जिस साहित्य को आधार बनाया गया है—वह केवल प्रकाशित साहित्य ही है। वैसे यह भी ज्ञातव्य है कि पारम्परिक शैली में काव्य रचना करने वाले कवियों की संख्या अब भी काफी बड़ी है किन्तु प्रथम तो उनका अधिकांश साहित्य अप्रकाशित है और द्वितीय उनमें युग के परिवर्तित स्वरूप की झलक बहुत कम मिलती है। अधिकांश में वह सामन्ती मनोवृत्ति का ही परिचायक या पोषक है एवं भाषा की दृष्टि से उसका झुकाव प्राचीनता की ओर अधिक रहा है या फिर वह पिंगल का साहित्य रहा है अतः उन सब पर इस अध्ययन मे बहुत कम विचार हुआ है।

१ सर्व प्रथम हम १९०० ई० से १९३० ई० के मध्य सर्जित साहित्य और उसको प्रभावित करने वाली परिस्थितियों पर विचार करते है। चूंकि इस अवधि में सर्जित साहित्य का अधिकांश प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों द्वारा सर्जित साहित्य रहा है अतः पहले ब्रिटिश भारत की विभिन्न इकाइयों में सर्जित इस साहित्य पर ही विचार करते हैं।

ब्रिटिश भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में बसे हुए प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों द्वारा सर्जित साहित्य उन बहुत सारी परिस्थितियों की उपज रहा है जिन्होंने वहाँ स्थित राजस्थानी (मारवाड़ी) समाज के चिन्तन एवं जीवन को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। अतः यहां संक्षेप में उन स्थितियों की ओर इंगित करना असंगत नहीं होगा।

पहले हम देश के राजनैतिक इतिहास पर ही विचार करते हैं। १८८५ ई० में स्थापित राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रभाव धीरे धीरे जनसाधारण पर बढ़ रहा था और उसके नेता लोग अंग्रेजों की न्याय प्रियता में विश्वास रखते हुए समय-समय पर शासन-सुधारों की मांग कर रहे थे किन्तु १९०० ई० तक इन

दीनताभरी याचनाम्रा का तात्कालिक ब्रिटिश शासको पर कोई विशेष असर दृष्टिगत नही हो रहा था फलत काग्रेस मे ही उग्रवादी विचारो के समथको का जोर बढता जा रहा था। उन लोगो को तिलक के रूप मे एक बहुत ही ओजस्वी एव उपयुक्त नेता प्राप्त हो गया था।

१६०३ ई० म दिल्ली दरबार एव १६०५ ई० म बग भग की घटनाम्रा न देश के राजनतिक जीवन म जबरदस्त हलचल उत्पन्न कर दी और पूरे बगाल म बग भग का घोर विरोध करते हुए विदेशी वस्त्रो की होलिया जलाई गई तथा स्वदेशी प्रोत्साहन के लिए नाना कदम उठाये गये। उग्रवादियो की इस नीति को व्यापक जन समथन मिलते हुए भी उन्हे काग्रेस के उदारवादी नेताम्रा का विरोध सहना पडा और परिणामस्वरूप काग्रेस का विभाजन हुम्रा जो बाद म एनीबिसेण्ट के प्रयासो से ही रद्द हो सका। उधर प्रथम विश्व युद्ध (१६१४ ई०) ने अग्रजो को बढती हुई जन चेतना को रोकने का एक सुनहरा बहाना प्रदान किया, किन्तु दमन से क्रांति की भावना का कुचलना क्या कभी सभव हुम्रा है? एक ओर तिलक और एनीबिसेन्ट के नतत्व म होम रूल की माग जोर पकडती गयी और दूसरी ओर महात्मा गाधी का प्रभाव काग्रेस म धीरे धीरे बढता गया। प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर काग्रेस के जो उदारवादी नेता अग्रेज सरकार से न्याय और सुधारो की अपेक्षा लिये उनके सहयोग म पूरी तरह जुटे हुए थे, वे ही लोग १६१८ ई० के तथाकथित माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के प्रकाशन से बहुत निराश हुए और विवश होकर उन्हे विरोध का माग अपनाना पडा। उधर अग्रेजो न भी युद्ध जीतकर जीत के मद म जन आन्दोलन को निममता से कुचलने का अपना इरादा पक्का कर लिया, फलस्वरूप जलियावाला बाग का नृशस हत्याकाड हुम्रा।

अग्रेजो की इस नियत से विवश गाधीजी को असहयोग आन्दोलन (१६२०–२१ ई०) छेडना पडा जिसमे पहली बार गाधीवादी सिद्धान्तो पर व्यापक जनमत को चलते हुए देखा गया किन्तु अनेक कारणो से आन्दोलन अपने लक्ष्य को नही पा सका और गाधीजी को चौराचौरी काण्ड के बहाने आन्दोलन वापस लेना पडा। परन्तु इससे बढा हुम्रा जन असतोष समाप्त नही हुम्रा। गाधीजी के विचारो से असहमत नेताम्रो ने स्वराज्य-दल का गठन किया और वे अपने ढग से अग्रेजो का विरोध करते रहे। इस अवधि म गाधीजी ने तो अपना ध्यान रचनात्मक कार्यो तक ही केन्द्रित कर लिया, किन्तु इससे देश के राजनतिक जीवन म गतिरोध नही आया। अग्रेज और अग्रेजी साम्राज्यवाद विरोधी भावनाएँ दिना दिन बढती गयी। इस बढते हुए असतोष ने आगामी राजनतिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया।

इस प्रकार १६०० ई० से १६३० ई० तक की इस अवधि मे घटित इन प्रमुख घटनाम्रो का जन साधारण पर दो दृष्टियो से व्यापक प्रभाव पडा। प्रथम उन्होने स्वदेशी के महत्त्व को समझा जिससे अग्रेजी सभ्यता के प्रति उनके मन म जो एक मोह एव अपने प्रति जो हीनता का भाव था वह काफी हद तक दूर हुम्रा। दूसरे शब्दो म उनमे आत्म-सम्मान का भाव जगा। दूसरा जो प्रभाव दृष्टिगत होता है, वह है उनमे आत्मावलोचन की प्रवृत्ति का बढना। समय-समय पर किये गये आन्दोलनो और उनकी विफलताम्रो ने उन्हे इस विषय पर सोचने को मजबूर किया कि आखिर वे कौनसी कमजोरिया हैं जिनके कारण विपुल जन शक्ति वाले भारतीय मुट्ठी भर अग्रेजो से अपनी बात नही मनवा पा रहे हैं? फलस्वरूप उन्होने और तेजी से अपने सामाजिक और वयक्तिक जीवन को सक्षम और पूर्ण बनाने हेतु अनेक आवश्यक परिवतनो को स्वीकार किया।

इस प्रकार भारतीय समाज म व्न हुए आत्म सम्मान के भाव और आत्मावलोचन की प्रवत्ति के दर्शन तात्कालिक साहित्य म भी बराबर होते हैं। राजस्थानी साहित्य भी इन सबसे अछूता नही बचा है। उसने भी स्वदेशी के समथन और विदेशी के बहिष्कार हेतु अपनी वाणी बुलन्द की। चू कि प्रवासी राजस्थानी समाज का मुख्य सम्बन्ध व्यापार व्यवसाय से ही था, अत उन प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारो न भी देशी उद्योग धन्धो क विकास की बात पर विशेष बल दिया। किन्तु साथ ही साथ उन्होने एक राष्ट भाषा की आवश्यकता एव हिन्दी की उसके लिए उपयोगिता प्रान्तीय या क्षेत्रीय अहमियताओ की समाप्ति एव उसक स्थान पर एक राष्ट्रीय स्वरूप क निर्माण और देश म सही जनतत्र हेतु शिक्षा के व्यापक प्रचार प्रसार की आवश्यकता आदि तात्कालिक प्रमुख राष्ट्रीय समस्याओ पर भी अपन विचार प्रस्तुत कर साधारण जन को इस दिशा म सोचन को प्रेरित किया।[1]

इस सन्दभ म यह ज्ञातव्य है कि तात्कालिक राष्ट्रीय आवश्यकताओ एव समस्याओ पर जिस उदार एव व्यापक दृष्टि का परिचय दते हुए श्री शिवचन्द्र भरतिया ने अपनी रचनाओ म विस्तार से विचार किया है उस उदार एव व्यापक दृष्टि का परिचय उनके अन्य समसामयिक या परवर्ती प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारो न नही दिया। उनम आत्मावलोचन की प्रवत्ति के दर्शन अवश्य होत हैं किन्तु उन्होन अपना ध्यान मारवाडी समाज की आवश्यकताओ तक ही विशेष रूप म सीमित रखा। दूसरे शब्दो म यदि यह कह दे कि उन्होने केवल समाजोत्थान की भावना से ही प्रेरित होकर लिखना प्रारभ किया तो अनुचित नही होगा।

यहाँ सहज ही मन म एक जिज्ञासा उत्पन होती है कि आखिर अधिकाश प्रवासी राजस्थानी साहित्यकार केवल अपन समाज और उसकी तात्कालिक समस्याओ के दायरे तक ही सीमित क्यो रहे ? जब इस तथ्य पर विचार करते हैं तो हम एक बार अपना सारा ध्यान प्रवासी राजस्थानियो की समस्याओ तक ही केन्द्रित करना पडता है।

---

१ (क) बाजा हुनर सू बणाकर घणी बचा खरीदो सदा।
लावा न परदश सू धन उठे भेजो करो लाभदा।।
रक्षा करो धरम की निज देश की ही,
सस्ती गिणो न महगी न भली बुरी ही।
ल्यो देश की बणि हुई निज चीज सारी
छोवा न अन्य करवा निज की खुवारी।।

भूमिका 'फाटका जजाल' नाटक

शिवचन्द्र भरतिया किरण नाहटा पृ० स० ७

(ख) हम ब्राह्मण क्षत्रिय, वश्य शूद्र हिन्दू मुसलमान-पारसी गुजराती बगाली मद्रासी मारवाडी महाराष्ट्री इत्यादि हैं—एसा परिचय न देकर हम एक मात्र भारतीय हैं एसा परिचय दना चाहिए।

(फाटका जजाल पृ० स० ६३)

वही पृ० स० ७

यह तो सर्वविदित है ही कि राजस्थान के ये मारवाडी व्यापारी आर्थिक कारणों से राजस्थान से दूर सुदूर प्रान्तों में अनेक संघर्षों के मध्य गुजरते हुए अपने व्यापार को जमाने और फैलाने की ही दृष्टि से यहां बसे थे। बहुत वर्षों तक ये लोग अपने व्यावसायिक जगत तक ही सीमित रहे। एक ओर ये अपने पूर्वजों की परम्पराओं और रूढ़ियों से ज्यों के त्यों चिपके रहे और दूसरी ओर अधिक से अधिक धन अर्जित करना ही इनका एकमेव लक्ष्य रहा। फलतः भारत में पुनर्जागरण की प्रथम लहर के समय ये लोग अपने आसपास के सामाजिक एवं राजनैतिक आन्दोलनों से लगभग सर्वथा अछूते ही रहे। इधर शिक्षा की ओर ध्यान न देने के कारण तथा बदली हुई स्थितियों की उपेक्षा करने के साथ ही साथ बसते हुए पैसे के कारण इनके मध्य अनेक आडम्बरपूर्ण एवं प्रतिगामी परम्पराओं ने भी अपना घर कर लिया था। प्रारम्भ में जो प्रवासी मारवाड़ी अपनी सूझ बूझ साहस और मेहनत के कारण इतर प्रान्तवासियों के मध्य अपनी प्रतिष्ठा एवं व्यापारिक धाक जमाने में सफल हुए थे वह उपर्युक्त सब कारणों से समाप्त हो गई। अपने इन्हीं अवगुणों के कारण वे स्थानीय लोगों की दृष्टि में गिरे ही नहीं अपितु पैसा होने के बावजूद भी बराबर तिरस्कृत एवं अपमानित भी हुए।[1]

ऐसी अवस्था में मारवाड़ी समाज के कतिपय प्रगतिशील विचारों के युवकों ने जब अपने समाज की तात्कालिक दुर्दशा पर गहनता से विचार किया तो उन्हें एक एक कर अपने समाज की अनेक कुरीतियां दृष्टिगत हुई। फलस्वरूप उनके मन में एक ओर यह संकल्प जगा कि हम अपने समाज को जागृत करने के लिए भरपूर प्रयत्न करेंगे और दूसरी ओर उन्होंने व्यावहारिक जीवन में उन सब बातों को अपनाना शुरू किया, जिसके सहारे पतनोन्मुखी मारवाड़ी समाज को ऊपर उठाया जा सके। इस प्रकार मारवाड़ी समाज के प्रगतिशील युवकों की यह आत्म-व्यथा एवं तज्जन्य क्रियाशीलता तो उनके उत्थान का प्रमुख कारण बनी ही किन्तु साथ ही साथ उन प्रान्तों का सामाजिक शैक्षणिक एवं साहित्यिक वातावरण भी उनके लिए एक प्रेरणा स्रोत बना।

इन सब बातों के अतिरिक्त उन गैर मारवाड़ी लोगों ने भी जो कि व्यापारिक या अन्य कारणों से मारवाड़ियों के निकट सम्पर्क में थे और हृदय से मारवाड़ियों का उत्थान चाहते थे मारवाड़ी समाज में सामाजिक चेतना उत्पन्न करने और राष्ट्रीय संस्कार भरने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य किया। एक ओर पंडित सखाराम गणेश देउस्कर पंडित छोटेलाल एवं माधव मिश्र जैसे गैर मारवाड़ी निरन्तर मारवाड़ियों को विभिन्न सुधारों की प्रेरणा देते रहे और दूसरी ओर मारवाड़ियों के पैसे से सचालित या किसी-न-किसी रूप में मारवाड़ियों से सम्बन्धित उस समय के हिन्दी के 'भारत मित्र

---

१ 'ममोइ आर बीका आजू बाजू का प्रा त माह मारवाड़ी ये चार अक्षर इतना सूगला और घृणित हो रया छ के 'श्यालक' यहूदी रे नावरा अक्षर भी इण रे आगे कुछ नहीं। ममोइ के माह साधारण गाडी रा कोचमान भी 'ए मारवाड़ी बाजू सरक' करन पुकारसी। उठी न हलका आदमी री उपमा हा पक्का मारवाड़ी आहे' अर्थात आ पक्को मारवाड़ी छ–इशी हा रही छ। उठी न गांव खेड़ा माह म्हे देख्यो छ के आछा आछा सा लखपति मारवाड़ी ने एक साधारण सरकारी चपरासी आसी तो हळको शब्द बोलकर कचेरी में ले ज्यासी। चपरासी तो दूर साधारण किरसाण कुडुबी उण की आसमी भी गाल भेलकर–कर सामने जासी।"

भूमिका कनक सुन्दर

शिवचन्द्र भरतिया किरण नाहटा पृ० सं० १०–११

'वश्योपकारक मारवाडी बन्धु' जैसे पत्रों ने मारवाडियों की सामाजिक कुरीतियों को मिटाने और शिक्षा तथा राष्ट्रीय आंदोलनों के प्रति उनका आकर्षण जगाने के लिए भी प्रशंसनीय कार्य किया। इतर मारवाड़ी सुधारकों और पत्रों का मारवाडी समाज में रुचि लेने का मुख्य कारण, जहाँ उनके हृदय की सद्वृत्ति एवं मारवाडियों से निकट सम्पर्क के कारण उनके साथ एक प्रकार का मधुर लगाव हो जाना रहा वहां दूसरी ओर वे नाम इस दिशा में सोद्देश्य प्रवृत्त हुए थे। विशेष रूप से दउम्कर जैसे प्रबल राष्ट्रवादी विचारकों ने तो आर्थिक दृष्टि से मारवाडी समाज को बहुत सम्पन्न समझकर उसके धन और प्रतिभा को राष्ट्रहित की दिशा में मोड़ने के लिए ही उसके मध्य कार्य करना स्वीकार किया था।

इन सब कारणों से मारवाड़ी समाज में जागृति की जो एक नयी हलचल पैदा हुई उसे सही दिशा देने के लिए मारवाडी समाज के कतिपय प्रमुख विचारशील विद्वानों ने मारवाड़ी समाज के मध्य शिक्षा प्रचार की सर्वाधिक आवश्यकता महसूस की। शिवचन्द्र भरतिया एवं भगवतीप्रसाद दारूका जैसे विचारकों ने इस बात को भी बड़ी गहराई से महसूसा कि समाज सुधार का साहित्य से अधिक सशक्त और उपयुक्त माध्यम अभी और कोई नहीं है। अतः उन्होंने ऐसे मनोरंजक और शिक्षाप्रद साहित्य सृजन का कार्य शुरू किया जो कि *शुगर कोटेड दवा की तरह मीठा पर असरकारक हो।* यही कारण है कि उस समय जिस साहित्य की रचना हुई उसमें नाटकों की संख्या सर्वाधिक रही। क्योंकि तात्कालिक परिस्थितियों में जनसाधारण में अपने विचारों के प्रसारण की दृष्टि से साहित्यकार के लिए नाटक सबसे अधिक उपयुक्त विधा थी। आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक काल में नाटकों के प्राधान्य का भी यही कारण रहा है। चूंकि नाटक को अभिनीत कर अशिक्षित एवं अल्पशिक्षित लोगों के मध्य भी अपने विचारों को बड़ी आसानी से प्रचारित किया जा सकता है और विभिन्न पात्रों के मुख से या उनके वार्तालापों के माध्यम से प्रमुख समस्याओं पर जिस प्रभावी रूप से प्रकाश डाला जा सकता है वैसा अन्य किसी विधा में संभव नहीं है अतः समाज सुधार को ही अपना प्रमुख उद्देश्य मान कर चलने वाले *प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों ने नाटक की ओर ही विशेष रूप से ध्यान दिया। यह बात दूसरी* है कि नाटकों में केवल समाज सुधार के बिन्दु पर सर्वाधिक रूप से ध्यान केन्द्रित किये जाने के कारण उनके कलात्मक सवरण का पक्ष सर्वथा उपेक्षित रहा।

इस समय के प्रमुख साहित्यकारों ने जिन समस्याओं और विषयों का चयन किया उनमें अधिकांश—बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, अशिक्षा, फिजूलखर्ची, आडम्बर, सट्टा फाटका, स्त्री शिक्षा, दहेज एवं शोषण आदि—सामाजिक जीवन की तात्कालिक कुरीतियों तथा आवश्यकताओं से ही संबंधित थे। इसी हेतु रचनाओं के नाम[1] भी अधिकांश में उन

---

1 बुढ़ापा की सगाई नाटक शिवचन्द्र भरतिया
फाटका जंजाल नाटक शिवचन्द्र भरतिया
बाल विवाह नाटक भगवतीप्रसाद दारूका
वृद्ध विवाह नाटक भगवतीप्रसाद दारूका
मारवाड़ी मोसर अर सगाई जंजाल नाटक श्री गुलाबचन्द्र नागोरी
इनके अतिरिक्त भी उस समय में लिखी गयी अन्य अनेक कहानियों कविताओं के नाम भी इसी प्रकार समस्याओं पर आधारित हैं।

समस्याओं के आधार पर ही हुए। इस प्रकार इन कृतियों का मुख्य स्वर समाज-सुधार ही रहा। फलत इन रचनाओं में किसी एक या एकाधिक सामाजिक कुरीतियों को आधार बनाया गया है और उनके भयानक परिणामों का विस्तार से अंकन हुआ है। इन रचनाओं में लक्ष्यकीय पक्ष को अधिक सबल बनाने की दृष्टि से एक ऐसे आदर्श पात्र या परिवार की सृष्टि की गई है जो उन सब कुरीतियों का त्याग करने के कारण अधिक सुखी और सन्तुष्ट जीवन यापित करता रहा है। इस प्रकार की दुहरे कथानकवाली इन रचनाओं में एक के त्याग और दूसरे के स्वीकार की प्रेरणा पाठकों को दी गयी है। श्री शिवचन्द्र भरतिया श्री भगवतीप्रसाद दारूका, श्री गुलाबचन्द्र नागौरी एवं श्रीनारायण अग्रवाल प्रभृति उस समय के सभी प्रमुख प्रवासी राजस्थानी लेखकों की रचनाओं में यह प्रवृत्ति स्पष्टत लक्षित की जा सकती है।

यहाँ तक तो मुख्य रूप से प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों द्वारा सर्जित साहित्य और उसको प्रभावित करने वाली स्थितियों पर ही विचार हुआ है। आगे इसी दृष्टि से, इस अवधि में राजस्थान में सर्जित साहित्य पर भी विचार करते चलते हैं। चूंकि इस अवधि में राजस्थान में सर्जित अधिकांश साहित्य या तो परम्परावादी रहा है या फिर प्रेस नियंत्रण की कठोरताओं और साधनों की अति सीमितता के कारण अप्रकाशित ही रहा है अत उसमें तात्कालिक जीवन की जीवन्त झांकी नहीं मिलती। फिर भी जो थोड़ा बहुत साहित्य सामने आ पाया है उसमें तात्कालिक जीवन के स्वरूप और स्थिति का तो अनुमान किया ही जा सकता है।

इस अवधि (१६०० ई० से १६३० ई० तक) का राजस्थान का राजनैतिक इतिहास ब्रिटिश भारत के हलचल भरे राजनैतिक इतिहास की अपेक्षा काफी स्थिर रहा है। ब्रिटिश भारत की जनता में राजनैतिक दृष्टि से जो जागृति इन तीस वर्षों में दिखलाई पड़ती है राजस्थानी जनता में उसका एक सीमा तक अभाव मिलता है। इसके कई कारण रहे हैं। एक तो राजाओं के प्रति जन-साधारण की पारम्परिक श्रद्धा न यहाँ ऐसे किसी आन्दोलन या ऐसी किसी विचारधारा को तेजी से नहीं पनपने दिया जो कि सीधी राजशाही पर प्रहार करता। द्वितीय, राजाओं के कठोर नियन्त्रण एवं दमनकारी शासन के कारण भी ऐसे प्रगतिशील विचारों के प्रसार का अवसर यहाँ बहुत कम था और तृतीय शिक्षा के प्रसार की दृष्टि से तो राजस्थान की स्थिति और भी अधिक दयनीय थी। अजमेर जैसे अंग्रेजों के सीधे नियन्त्रणवाले क्षेत्र में या फिर जयपुर जोधपुर जैसी रियासतों में ही आधुनिक शिक्षा का थोड़ा बहुत प्रचार था और उनका दायरा भी उन नगरों की सीमा तक ही सीमित था। अत यहाँ साधारण व्यक्ति ब्रिटिश भारत की तुलना में वैचारिक दृष्टि से काफी पिछड़ा हुआ था। ऐसी स्थिति में प्रजातान्त्रिक विचारों के प्रचार-प्रसार की गुंजाइश यहाँ काफी कम थी और उस पर भी कठोर प्रेस नियन्त्रण तथा अखबार एवं पत्र-पत्रिकाओं को प्रारम्भ से ही सन्देह की नजर से देखने का राजशाही का रवैया वातावरण को बहुत विषम बनाये हुए था। इस सब के बावजूद भी पाश्चात्य शिक्षा के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण वैचारिक जगत में उत्पन्न हो रही हलचल को रोकना तथा ब्रिटिश भारत के राजनैतिक आन्दोलनों के प्रभावों से यहाँ के जनसाधारण को सर्वथा अलग-थलग रखना यहाँ के शासकों के लिए सम्भव नहीं था। फलत यहाँ भी शनै शनै निरंकुश राजशाही के विरुद्ध आवाजें उठने लगी और जनता शोषण एवं अत्याचारों से मुक्ति की मांग करने लगी।

१६०० ई० से १६१५ ई० तक की अवधि में गुप्त क्रांतिकारियों का राजस्थान में सक्रिय होने का अभियान भी यहाँ के सुप्त स्वाभिमान को झकझोरने में लगा रहा जिसके कुछ तात्कालिक परिणाम भी सामने आये। इस दृष्टि से श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा अरविन्द घोष का राजस्थान में कुछ समय तक प्रवास और क्रांति के अनुकूल वातावरण निर्माण का प्रयास एवं रासबिहारी जैसे ख्यातनामा क्रांतिकारी का राजस्थान के कतिपय अंग्रेज विरोधी व्यक्तियों से सम्पर्क विशेष उल्लेखनीय बन पड़ा है। इन लोगों के सान्निध्य एवं प्रयासों से राजस्थान में जो थोड़े बहुत सशस्त्र क्रांति के समर्थक उत्पन्न हुए, उन्होंने देश के लिए अपना सर्वस्व होम देने में किसी प्रकार का संकोच नहीं किया। इस दृष्टि से कोटा के श्री केसरीसिंह बारहठ का नाम एवं काम अविस्मरणीय है। अपने क्रांतिकारी एवं स्वतन्त्र विचारों के कारण इन्हें स्वयं तो लम्बे समय तक कारावास की सजा भुगतनी ही पड़ी, किन्तु साथ ही साथ इनके पुत्र प्रतापसिंह को लार्ड हार्डिंग पर फेंके गये बम के अभियोग में अंग्रेजी जेल में ही कठोर यातनाओं के कारण मृत्यु से साक्षात्कार करना पड़ा। यही नहीं ठाकुर केसरीसिंह के भाई जोरावरसिंह को भी इसी कारण फरार होकर आजीवन भटकते रहना पड़ा। इसी सन्दर्भ में खरवा के राव गोपालसिंह, ब्यावर के सेठ दामोदर प्रसाद राठी एवं राजस्थान के बाहर से आकर राजस्थान को ही अपनी कर्मस्थली बनाने वाले युवक भूपसिंह (आगे चलकर विजयसिंह पथिक) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन लोगों के प्रयासों से यहाँ गुप्त क्रांतिकारी आन्दोलन कुछ बढ़ा किन्तु १६१५ ई० में अखिल भारतीय शस्त्र क्रांति की योजना के विफल होने के साथ ही राजस्थान के सभी प्रमुख क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिये गये और इसके साथ ही राजस्थान में सशस्त्र क्रांति के प्रयासों का एक प्रकार से अन्त हो गया। चूंकि एक तो इन क्रांतिकारियों की संख्या काफी कम रही एवं द्वितीय उनकी कार्य प्रणाली सर्वथा गुप्त एवं प्रच्छन्न रूप से संपादित होती थी अतः यहाँ के जनसाधारण पर उनका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता फिर भी 'चेतावणी रा चूंगटया'[1] जैसे इतिहासप्रसिद्ध दोहों के सर्जन का श्रेय क्रांतिकारियों के इस प्रभाव को ही दिया जा सकता है।

सशस्त्र क्रांति के इन प्रयासों की अपेक्षा इन तीस वर्षों की अवधि में राजस्थान के जन जीवन को प्रभावित करने वाली दो अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाएं रही हैं—वे हैं बिजोलिया एवं बेगूं के किसानों के

---

१ उदयपुर के महाराणा फतहसिंह जब १६०३ ई० में दिल्ली दरबार में भाग लेने जा रहे थे तब राजस्थान के स्वाभिमानी बारहठ केसरीसिंह ने चेतावणी रा चूंगटया नाम से तेरह दोहे कहकर महाराणा फतहसिंह को अपने वंश की शौर्य एवं स्वाभिमान की परम्पराओं का स्मरण कराते हुए दरबार में सम्मिलित होने से रोक दिया था। उन्हीं सोरठों में दो एक उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत हैं —

ओरां ने आसान, हांका हरवळ हालणो।
किम हालै कुळ राण, हरवळ साहां हांकिया॥
नरियंद सह नजराण, झुक करसी सरसी जिकां।
पसरैलो किम पाण, पाण छतां थारो फता॥
सकळ चढावै सीस, दान धरम जिण रो दियो।
रळणो पंगत राह, फाबै किम तोनै फता॥

आधुनिक राजस्थानी साहित्य भूपतिराम साकरिया पृ० सं० ४५

जागीरदारी अत्याचारो एव शोषण के विरुद्ध किय गय लम्ब सघष । इतिहास को नयी दिशा प्रदान करने वाले इन आन्दोलनो की भी बडी करुण कहानी रही है। राजस्थान म राजाओं के निरंकुश शासन स जनता जितनी परेशान नही थी उसस कही अधिक वह स्थानीय जागीरदारो के दमन एव अत्याचारो स पीडित थी । यहाँ किसान अकल्पनीय गरीबी और अपमान, प्रताडना एव तिरस्कार की जिस भीषण आग म जलता रहता था उसके लिए भूमि का भारी लगान सूदखोर बनिया का जाल का तरह उह चसने रहना और बगारी तथा लाग बाग की प्रथाए जिम्मेदार थी । उन पर यह अत्याचार इस सीमा तक बढ गया था कि किसान लोग खून पसीना एक कर जिस फसल को उगाते थ, उसका कुल १३ प्रतिशत ही उनके हाथ लगता था, शेष सब राजकोष या जागीरदारो के हाथो म चला जाता था।[1] इस प्रकार की स्थिति म किसानो के लिए निर्वाह करना कितना कठिन था इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । राजस्थान के सभी रजवाडो मे,किसान की स्थिति आमतौर पर एसी ही थी । एसीस्थिति में बिजोलिया में (मवाड राज्य) भूख और बगारी के मार किसानो न विवश होकर ठिकाने के विरुद्ध आन्दोलन खडा कर दिया । सौभाग्य मे उसी समय भूपसिंह, विजयसिंह पथिक का नाम धारण कर यहाँ आकर इस आन्दोलन का नेतृत्व करने लगे । लम्बे समय तक यह सघष चलता रहा । विजयसिंह पथिक के नेतृत्व एव प्रयासो के कारण ही देश के समाचार पत्रो म स्थान पा सकने म सफल होकर इस आन्दोलन न सवप्रथम राजस्थान की देशी रियासतो की ओर लोगो का ध्यान खीचा । फलस्वरूप आन्दोलनकारियो की सगठित शक्ति और बढत हुए जन समथन न अन्ततोगत्वा १९२२ २३ इ० मे आन्दोलनकारियो की बहुत सी माग मानने को सत्ताधारियो को विवश किया ।

इस आन्दोलन मे जहाँ एक ओर स्थानीय लोगो की दृढता एव जातीय व्यवस्था न महत्त्वपूण भूमिका अदा की, वहाँ दूसरी ओर मेवाडी म लिखे गय ओजस्वी गीतो ने जन जागृति की दृष्टि स महत्त्व पूण काय किया । इसी उद्देश्य को ध्यान म रखकर 'ऊपर माळ को डको'[2] नामक मेवाडी की एक हस्त लिखित पत्रिका निकाली गयी । इस प्रकार जन जागृति के लिए साहित्य को एक माध्यम के रूप म अपनाया गया । साहित्य और राजनीति का यह सम्ब ध आग तो और भी घनिष्ठ होता गया । इसके पश्चात राजस्थान मे जहा जहा भी राजशाही के विरुद्ध आन्दोलन हुए, वहा वहा लोक चेतना को उद्बुद्ध करने की दृष्टि से सामयिक गीतो का विशेष रूप से प्रयोग हुआ । बिजोलिया के इस आन्दोलन का असर अन्य पडोसी हलको पर भी पडा और परिणामस्वरूप भोमट एव बगू' म वहा के स्थानीय लोगो न जागीरी अत्याचारो एव शोषण के विरुद्ध आवाज बुलन्द की । इस क्षेत्र म नेतृत्व का भार भील नेता

---

१ हिसाब लगाने पर पता चला था कि बिजोलिया के किसान को लगान और लागतें चुकाने के बाद जमीन की पदावर म सिफ १३ फी सदी क करीब बचता था ।
वतमान राजस्थान (सावजनिक जीवन के संस्मरण), श्री रामनारायण चौधरी पृ० स ८१

२ बिजोलिया क रचनात्मक काल म मेरे निकट के सहायक साधु सीतारामदास जी थे । हमने मेवाडी भाषा म एक हाथ का लिखा साप्ताहिक पत्र भी निकाला जिसका नाम ऊपर माळ को डको रखा गया । उसकी हर चोट की गूज भी सभी सत्याग्रही क्षेत्रो म होन लगी ।
वतमान राजस्थान रामनारायण चौधरी, पृ० स० ९८ ९९,

मोतीलाल तजावत नामक एक वणिक युवक ने सम्भाला, जो अनेक कष्ट सहते हुए भी इस आन्दोलन को निरन्तर गति प्रदान करता रहा।

बिजोलिया बेगूं और भोमट के इन सगठित आन्दोलनो के अतिरिक्त भी इस अवधि म राजस्थान म राजनतिक जागरूकता लाने की दृष्टि स कई काय हुए। उनम राजस्थान सेवा सघ की स्थापना (१६२१ ई०), राजस्थान कसरी तरुण राजस्थान 'राजस्थान सदश त्यागभूमि आदि पत्रा का प्रकाशन एव राजस्थान चर्खा सघ की स्थापना आदि उल्लखनीय बातें है।

१९ ० ई० मे १६३० ई० तक की राजस्थान की राजनतिक स्थिति की चर्चा म अजु नलाल सेठी की चर्चा न करना अधूरा विवचन हागा। अपन सात्विक एव कठोर परिश्रमी जीवन के साथ उनम जो उत्कट देशभक्ति की भावना थी उसन रामनारायण चौधरी जसे बहुत से युवको को आजादी के सघष म कूद पडन को तयार किया।

इस प्रकार १६०० ई० म १६३० ई० के मध्य राजस्थान के राजनतिक जीवन म कई आन्दोलन गुजरे और वयक्तिक स्तर पर या कि भिन्न भिन्न माध्यमा से जन जागति एव राजनतिक चेतना उत्पन्न करन की दृष्टि से कई प्रयास हुए किन्तु इन प्रयासो म आपसी तालमल न बठ पाने और प्रान्त स्तरीय किसी एक प्रभावी नता क न पनपन के कारण उनका अपेक्षित प्रभाव दृष्टिगत नही होता।

यह तो हुआ १६३० ई० तक की राजनतिक हलचलो और उनका जीवन तथा साहित्य पर पडे प्रभावा का अकन। अब एक दूसरे क्षत्र की ओर दृष्टिपात करते है जिसने इन राजनतिक आदोलना की अपक्षा जनसाधारण को अधिक दूर तक प्रभावित किया। वह था दयानन्द विवेकानन्द प्रभृति मनीषियो का धार्मिक एव सामाजिक सुधारा स सम्बन्धित आन्दोलन। इनम भी स्वामी दयानन्द के आन्दोलन का प्रभाव कुछ अधिक स्पष्ट रूप म दिखाई पडता है क्य कि उन्होने राजस्थान की विभिन्न रियासतो म घूम घूम कर समाज सुधार और धार्मिक पाखण्डा के परित्याग के लिए काफी प्रयत्न किया था। स्वामीजी के इन प्रयासो का परिणाम जानन से पूव यहा के धार्मिक एव सामाजिक जगत की तात्कालिक परिस्थितिया पर विहगम दृष्टिपात करना आवश्यक है।

राजस्थान के धार्मिक जगत म वर्षो स किसी प्रेरक व्यक्तित्व के आविर्भाव के अभाव म एक ऐसी स्थिरता आ गई थी जो युगानुकूल परिवतन के अभाव मे कुछ कुछ सडाध उत्पन्न करने लगी थी। बाह्य आडम्बरो का तो प्राधान्य था ही किन्तु धम क ध्वजाधारी कहलाने वाले साधुओ के आचरण म भी शिथिलता एव स्खलन का जो दौरदौरा चल रहा था—वह सामाजिक जीवन को और अधिक विकृत किये दे रहा था। ऐसी स्थिति म स्वामी दयानन्द ने लोगा को अपन धम का सही मम समझान का प्रयास किया और फलस्वरूप ऊमरदान लालस जस साहित्यकारो न वस्तुस्थिति स साक्षात्कार कर बडी निर्भीकता स धम क नाम पर पाखण्ड फलाने वाल लोगा का पर्दाफाश किया।[1]

धार्मिक जीवन की भाति यहा का सामाजिक जीवन की भी अनकानेक रूढ परम्पराओ एव कुरीतियो का शिकार बनकर पगु बन चुका था। बाल विवाह कन्या विक्रय पर्दा प्रथा अशिक्षा जसी

---

१ इस दृष्टि म श्री ऊमरदान लालस कृत 'छोटे सन्ता री खुलासो और अमन्ता री आरसी नामक कविताएँ (ऊमर काव्य पृ० स० १६१ एव १६१ तृतीय सस्करण) द्रष्टव्य हैं।

अनेक व्याधियों से यहां का सामाजिक जीवन ग्रस्त था। शासकों की विलासी और उपेक्षापूर्ण प्रवृत्ति के अनुरूप ही यहां का सामान्यजन भी वासना के पंक में डूबा, विश्व की प्रगति से अनभिज्ञ तथा अज्ञान और विलासिता के क्षय से ग्रस्त था। ऐसी स्थिति में एक ओर तो यहां के कतिपय शिक्षित लोगों ने अपने समाज की तात्कालिक दुर्दशा पर मनन कर उसे दूर करने का व्रत लिया और दूसरी ओर स्वामी दयानन्द जैसे सुधारकों के प्रबल प्रयासों से जनसाधारण ने भी अपनी स्थिति पर सोचना शुरू किया। उधर नव युग की रोशनी से परिचित प्रवासी राजस्थानी बन्धुओं ने भी अपने प्रान्त के लोगों को इस दृष्टि से सजग करने हेतु धर्म प्रचारकों और समाज-सुधारकों को यहाँ प्रचार हेतु भेजना प्रारम्भ किया। इन सब प्रयासों का असर धीरे धीरे दृष्टिगत होने लगा तथा और जातीय पंचायतों के माध्यम से सुधारवादी विचारों का प्रसार किया जाने लगा। तात्कालिक साहित्य में भी हमें ऐसे प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रभाव के दर्शन स्पष्ट रूप से होते हैं। 'सीठणा (अश्लील गालियां)' के स्थान पर शुभ और काम गीतों के संग्रह निकलने लगे और गाली-संग्रहों का स्थान 'सभ्य गाली संग्रह' लेने लगे।[1] नाटक एवं ख्यालों के सहारे भी तात्कालिक सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति इस काल के अन्तिम चरण में पनपने लगी।[2]

कुल मिलाकर राजस्थान में १९०० ई० से १९३० ई० तक का समय नवयुग से साक्षात्कार का समय था। शताब्दियों से चली आ रही राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्थाओं की परिवर्तित कालचक्र के सन्दर्भ में प्रमाणित हुई व्यर्थता की ओर लोगों का ध्यान इस अवधि में पहली बार आकर्षित हुआ। फलस्वरूप उनके हृदय में भी परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन के भाव जागने लगे।

२ १९३१ ई० से १९५० ई० के मध्य राजस्थान के राजनैतिक जीवन की हलचल काफी तेज हो गयी।[3] अब राजशाही के विरुद्ध संघर्ष का क्षेत्र अजमेर-मेरवाड़ा या मेवाड़ की कतिपय जागीरों तक ही सीमित नहीं रहा अपितु जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा आदि प्रमुख शहरों में भी स्थानीय नेताओं के उदय के साथ-साथ फैल चुका था। राजस्थान की भिन्न भिन्न रियासतों में जहां क्षेत्रीय नेताओं के नेतृत्व में सुधारों की मांग जोर पकड़ने लगी वहाँ देश के राजनैतिक आन्दोलन का नेतृत्व करने वाली कांग्रेस पार्टी ने भी देशी रियासतों को अपने कार्यक्षेत्र में लेकर यहां भी अपनी सरगर्मियां तेज करदी।

इसी अवधि में सन १९३८ के हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में देशी राज्यों के सम्बन्ध में उसने अपनी एक निश्चित नीति निर्धारित की फलस्वरूप राजस्थान के राजनैतिक जीवन में काफी तेजी आयी एवं शेष भारत के साथ उसका सम्बन्ध और घनिष्ट हुआ। विभिन्न रियासतों में प्रजा मण्डलों का गठन हुआ और अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के अध्यक्ष पद पर पंडित जवाहरलाल नेहरू का चयन कर देशी राज्यों को कांग्रेस के और अधिक निकट लाया गया। इन सब बातों का अवश्यम्भावी परिणाम

---

१ सभ्य गाली संग्रह जिसको सामाजिक सुधारार्थ जोधपुर निवासी बिस्सा जेठमल ने कुलीन स्त्री पुरुषों के लिए छपाकर प्रसिद्ध किया। प्रकाशन काल – १९१५ ई०

२ जयपुर की ज्योणार (प्रथम खण्ड) पंडित मन्नलाल सिद्ध। प्रकाशन काल वि० सं० १९८५ (१९२८ ई०)

३ यद्यपि अपने देश को अगस्त १९४७ ई० में ही अंग्रेजों की दासता से मुक्ति मिल गयी थी किन्तु राजस्थान में देशी राजाओं से सत्ता हस्तांतरण का कार्य अप्रेल १९४९ ई० से पूर्व पूरी तरह सम्भव नहीं हो सका, अतः यहां हमने इस द्वितीय काल की सीमा १९४७ की बजाय १९५० ई० तक रखी है।

यह निकला कि अब यहा राजशाही के विरुद्ध सघर्ष का धरातल व्यापक हो चला और साथ-ही साथ प्रति क्रिया स्वरूप दमन चक्र की गति भी बढ चली । एक ओर वयक्तिक गिरफ्तारिया प्रताडनाएँ और राज नीति प्रेरित हत्याओ का दौरदौरा चला[1] और दूसरी ओर नृशस सामूहिक हत्याकाण्ड भी हुए ।[2] इन सब दमनकारी प्रयासो से जन चेतना को दबाया नही जा सका इसके विपरीत आन्दोलन को और अधिक गति मिली । १९३० ई० तक जहा इस क्षेत्र मे इने गिने नेता लोग थे वहा इस अवधि मे जयनारायण व्यास, हीरालाल शास्त्री माणिक्यलाल वर्मा हरिभाऊ उपाध्याय सागरमल गोपा रघुवीरदयाल गोयल नयनूमल नाथूराम गोकुलाल असावा बाबा नरसिहदास जसे पचासो आन्दोलनकारियो (नेताओ) ने पत्र पत्रिकाओ, सामूहिक प्रदर्शनो, निषधाज्ञाओ के उल्लघन एव अन्य कारगर उपायो से परतत्रता के विरुद्ध सघर्ष की ज्योति को प्रज्वलित किये रखा ।

जनतत्र की स्थापना हेतु चल रहे इस सघर्ष को विद्रोही प्रवत्ति के साहित्यकारो ने भी पूर्वापेक्षा काफी अधिक सहयोग प्रदान किया । जयनारायण व्यास, गणेशीलाल व्यास उस्ताद माणिक्यलाल वमा हीरालाल शास्त्री, सुमनेश जोशी जसे कवि और गीतकारो ने अपनी ओजस्वी रचनाओ से जन-जागति

---

१ इन राजनीति प्रेरित हत्याओ के जो व्यक्ति शिकार बने उनमे जोधपुर के श्री बालमुकुन्द बिस्सा, कोटा के श्री नयनूराम एव जसलमेर के श्री सागरमल गोपा के नाम उल्लखनीय है ।

२ १९३० ई० से १९५० ई० की अवधि मे राजस्थान की विभिन्न रियासतो मे जन आन्दोलनो को दबाने के लिए जिस क्रूर हिंसा का सहारा लिया गया उसके फलस्वरूप सकडो निरीह व्यक्तियो को अपनी जान से हाथ धोना पडा । इनमे कतिपय अति प्रसिद्ध काण्डो का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(क) चेहूँवला (लोहारू रियासत) मे कर टक्स के विरोध मे इकट्ठी हुई नि शस्त्र जनता पर जिस निममता से प्रहार हुआ उसका अन्दाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि इस काण्ड मे कुल २२ व्यक्तियो की गोली लगने से मृत्यु हुई एव अनेको घायल हुए ।

(ख) नीमुचाणा (अलवर रियासत) मे लगान वद्धि के विरोध मे १९३१ ई० मे किसानो और छोटे जागीरदारो ने जिस सभा का आयोजन किया उसे फौज ने चारो ओर से घेर कर पौन घण्टे तक अधाधुध गोली वर्षा की फलस्वरूप सकडो स्त्री पुरुष और बच्चे तथा पशु हताहत हुए ।

गौरवमय अतीत, राजस्थान स्वतत्रता के पहले और बाद मे प्रमुख सपादक श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय पृ० स० ७०

(ग) २८ माच १९४२ को नगावर मे उत्तरदायी शासन दिवस मनाने के उद्देश्य से एकत्रित कायकर्ताओ पर निममतापूवक प्रहार हुआ जिनमे अनेक कायकत्ता घायल हुए ।

वही, पृ० स० ८६

(घ) १३ माच १९४७ को डाबडा मे किसान सभा के विशाल सम्मेलन पर तलवारो एव बन्दूको से जो आक्रमण हुआ उसमे कम-से कम ५ ६ व्यक्ति मृत्यु के शिकार बने ।

—वही पृ० स० ८६

का महती काय किया । य लाग गाव गांव म पहुँच कर अपन ओजस्वी गीता और कविताओं क सहारे सघष का माहौल बनात बुझे हुए मना म चेतना की रागिनी फूकत । यहाँ इस सादभ म एक बात विशप रूप स उल्लखनीय है कि उस समय म लिख गय य अधिकाश उद्बोधनात्मक एव प्रेरणास्पद गीत अप्रकाशित ही रह फलस्वरूप उपलब्धि के अभाव म आज उनका सम्यक मूल्याकन सभव नही है । क्योंकि उस समय भी प्रेस नियन्त्रण की कठोरता म कोई कमी नही आई थी और इस पूरी अवधि म १९४६ ई० तक 'आगीवाण'[1] के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा का अन्य कोई पत्र नही निकला था । इसके अतिरिक्त य सभी साहित्यकार राजनतिक जागति क सदेशवाहक पहल थ साहित्यकार बाद म । अत इन्ही सब कारणा से यहाँ क राजनतिक जीवन का गति प्रदान करन वाल इन गीता एव कविताओं का आज कोई सकलन उपलब्ध नही है ।

इस अवधि (१९३१ १९५० ई०) म यहाँ क राजनतिक जीवन म जो गति दिखायी पडती है वह सामाजिक एव धार्मिक जीवन म उतनी तज नही रही । यद्यपि वद्ध विवाह अनमल विवाह, दहेज, मत्युभोज, अशिक्षा आदि सामाजिक समस्याओं का निराकरण नही हुआ था, फिर भी बदलते हुय समय के अनुसार उनकी विकटता म कमी अवश्य आई । इसक साथ ही स्वामी दयानन्द के राजस्थान प्रवास क साथ सामाजिक जीवन म सुधारो की जो एक तेज लहर आयी थी उसका भी प्रभाव कुछ कम हो गया । उधर प्रवासी राजस्थानी भी अब राजस्थान के मामल म उतन सक्रिय नही रहे, किन्तु इन सब के बावजूद भी समाज-सुधार का जो एक क्रम चला था वह एकदम रुका नहीं और समाज सुधार के कायक्रम चलते रहे । इन प्रयासा की झलक उस अवधि म लिख गय सुधारवादी गीतो[2], एकाकियो[3] आदि म देखन को मिलता है ।

यहाँ तक जिन परिस्थितियो और उनस प्रेरित साहित्य की चर्चा हुई है—वह अधिकाश म प्रचार-पक्ष की प्रबलता और उपयोगितावादी दृष्टि की प्रधानता क कारण साहित्यिक दृष्टि स कोई उपलब्धि नही बन पाया और विशेष रूप स कविता क क्षेत्र म ऐसा कोई प्रतिमान स्थापित नही कर पाया जो कालजयी कहा जा सके या कि जिसन अपन परवर्ती काव्य एव काव्यकारो को दूर एव देर तक बाँधे रखा हो । इस दृष्टि स आधुनिक साहित्य के सन्दभ म १९३१–५० ई० की अवधि विशेष रूप से उल्लेखनीय बन पडी है । जहा इस अवधि म एक ओर प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारो का योगदान घटता चला गया है वहा दूसरी ओर राजस्थान म यहा के कतिपय प्रबुद्ध साहित्यिका न अपनी मातृभाषा क प्रति जो उत्साह प्रदर्शित किया—उसन राजस्थानी क आधुनिक साहित्य को एक क्रान्तिकारी मोड प्रदान किया । इन विद्वानो न एक ओर राजस्थानी क प्राचीन साहित्य की खोज और प्रकाशन का महती काय अपन हाथो म लिया तो दूसरी ओर समसामयिक सजन धरातल स उस जोडन के लिए गद्य और पद्य म नूतन प्रयोगो को प्रोत्साहित किया तथा राजस्थानी साहित्य के सन्दभ म नवीन परम्पराओं

१ स० बालकृष्ण उपाध्याय प्र० का० ई० सन १९३७

२ (क) बूढे का ब्याह बनाम बाल विधवा श्री श्यामलाल कावरा ई० सन १९३६

(ख) कन्या विक्रय श्री श्यामलाल कावरा वि० स० १९९२

३ गाव सुधार या गामा जाट श्रीनाथ मोदी प्र० का० १९३१ ई०

का श्रीगणेश किया । इस दृष्टि से स्व० सूर्यकरण पारीक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । वस्तुत उनकी ही प्रेरणा और मार्ग दर्शन में राजस्थान के ठाकुर रामसिंह श्री नरोत्तमदास स्वामी श्री अगरचन्द नाहटा श्री कन्हैयालाल सहल प्रभृति विद्वानों और इन विद्वानों के सपर्क और प्रोत्साहन के फलस्वरूप सर्व श्री मुरलीधर व्यास चन्द्रसिंह कन्हैयालाल सेठिया मेघराज मुकुल प्रभृति सृजन धर्मी साहित्यकारों ने प्राचीन साहित्य के शोध और खोज तथा नवीन साहित्य के सृजन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किये ।

इस दृष्टि से जो प्रथम साहित्यिक कृति चर्चित रही वह थी स्व० सूर्यकरण पारीक की बोळावण या प्रतिना पूर्ति [1] नामक एकांकी रचना जिसने राजस्थानेतर हिन्दी विद्वानों का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया ।

इस दृष्टि से दूसरी उल्लेखनीय रचना है श्री चन्द्रसिंह कृत बादली [2] । पारम्परिक छन्द में लिखे होने के बावजूद भी इस कृति ने राजस्थानी पद्य साहित्य के विकास की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है । आज तक राजस्थानी काव्य क्षेत्र में या तो पारम्परिक शैली और पुरातन विषयों पर काव्य रचना करने वाले कवियों का ही प्राधान्य था या फिर जनसाधारण की बोली में जो सहज सम्प्रेष्य काव्य रचा जा रहा था वह उपयोगी अधिक था कला एवं कवित्वपूर्ण कम । वस भरतिया जी के समय से ही बोलचाल की राजस्थानी भाषा में काव्य रचना होने लगी थी किन्तु उन्हें काव्य की अपेक्षा तुक बन्दियाँ कहें तो ज्यादा अच्छा होगा । क्योंकि उनमें न भावों की रमणीयता के ही दर्शन होते हैं न कल्पना का चामत्कारिक और रंगीन रूप ही दीख पड़ता है और न ही कलागत सौष्ठव एवं सजाव ही दृष्टिगत होता है । वस्तुत उन अधिकांश पद्यात्मक रचनाओं में या तो समाज-सुधार के विविध पहलुओं पर सीधे सादे रूप में प्रकाश डाला गया है या फिर जन जागृति के लिए सहज उद्बोधनात्मक गीत ही लिखे गये हैं और छुटे बिछुटे प्रभु भक्ति के गीत गुन गुनाये गये हैं । किन्तु इन सभी प्रकार की रचनाओं में अधिकांशत हृदयगत अनुभूतियों की तीव्रता का अहसास कम होता है एवं उपदेशवृत्ति का प्राधान्य अधिक लगता है ।

इन सबके मध्य बादली ही उस काव्य रचना के रूप में सामने आया जिसमें नूतन विषय चयन के साथ ही साथ बोलचाल की भाषा का सांगोपांग और सुन्दर प्रयोग हुआ है । इसमें कवि का न तो वयण सगाई के प्रति ही कोई आग्रह रहा है और न ही वह भाषा की प्राचीनता का लबादा ओढ़ाने के मोह में ग्रस्त है । राजस्थान की यह प्रथम कृति है जिसमें प्रकृति का इतने विस्तार से आलम्बन रूप में अंकन हुआ है । चित्रात्मकता एवं प्रकृति का लोक जीवन सापेक्ष अंकन इसे जहाँ एक ओर अपने पूर्ववर्ती काव्यों से सर्वथा एक नवीन परम्परा में हटी हुई कृति बना देता है वहाँ कवि की लोक हृदय की अनुभूतियों की गहरी पहिचान और स्थानीयता या आंचलिकता के परिवेश में कथ्य को प्रस्तुत करने का सऊर इसे हिन्दी या अन्य भाषाओं की प्रकृति चित्रण सम्बन्धी प्रसिद्ध रचनाओं के प्रभाव से मुक्त रखता है। फलत अपनी मिट्टी की गन्ध से सुगन्धित यह काव्य कृति केवल राजस्थानी जगत में ही नहीं अपितु

---

१ प्रकाशन काल—सन १६

२ प्रकाशन काल—वि० स० १६६८

हिन्दी जगत म भी समुचित रूप म चर्चित एव समादृत हुए ह ।[1] बादली' ही आधुनिक राजस्थानी काव्य की वह प्रथम कृति है जिम जनसामान्य और विशिष्ट साहित्यिक रुचि-सम्पन्न जना न समान रूप स पसन्द किया और सराहा । इस प्रकार बादली की इस लोक प्रियता न अन्य सम-सामयिक कविया को भी अपनी ओर आकर्षित किया । फलस्वरूप एक ओर राजस्थानी के कवि उसस प्रेरित होकर अन्य अन्य प्रकृति काव्यो की रचना का प्रवृत हुए ता दूसरी ओर हिन्दी म रचना करन वाल राजस्थान क कई एक समर्थ कविया न इसम उजागर मातृभाषा के माधुर्य और सामर्थ्य स उत्साहित हाकर हिन्दी क साथ-साथ राजस्थानी मे लिखना प्रारभ किया ।

'बादली के पश्चात इस क्षेत्र म जिस रचना का नाम उल्लखनीय है—वह है श्री मेघराज मुकुल' कृत सनाणी[2] नामक पद्यकथा । राजस्थानी इतिहास के एक भास्वर पृष्ठ पर आधारित इस ओजपूर्ण कविता ने कवि मुकुल' के मीठे और प्रभावी गल के बल पर सहस्र-सहस्र जना का आह्लादित एव उद्वेलित किया । अपनी मातृभाषा को विस्मृत किय हुए लक्ष लक्ष जना को पहली बार अपनी मातृभाषा म मा क दूध का सा मिठास अनुभव हुआ । इस कविता न जहा कवि 'मुकुल का विपुल ख्याति दिलवायी, वहा राजस्थानी भाषा की ओर एक बहुत बडे वग का ध्यान आकर्षित किया, जो आज भी राजस्थानी कवि सम्मेलना म भारी सख्या म उपस्थित दखा जा सकता है । इस प्रकार इस कविता ने एक ओर श्रोताओ के एक बहुत बडे वर्ग म राजस्थानी-काव्य के प्रति रुचि जागृत की तो दूसरी ओर कवि एव कविता की अकल्पनीय ख्याति न अनेक नये पुरान कवियो को पद्य कथा लखन की ओर आकृष्ट किया । बदलते हुए समय के साथ पद्य कथाओ की सचीय लाक प्रियता का स्थान क्रमश शृगार-गीत या कि लोकधुना की तर्ज पर लिखे गय अन्य गीतो और हास्य-कविताओ न ल लिया किन्तु राजस्थानी का यह मच मय अपन कवियो और श्रोताओं के आज भी विद्यमान ह । सनाणी का उल्लेख एक अन्य दृष्टि स भी अनिवार्य है । बादली न कथ्य की नवीनता एव ताजगी के बावजूद छन्द की दृष्टि से प्राचीनता का दामन नही छोडा था, किन्तु सनाणी' न यहाँ भी परम्परा को नकारत हुए एक नयी दिशा म कदम बढाया ।

इस अवधि म राजस्थानी के विद्वानो और सजका का ध्यान अपनी मातृभाषा की ओर निरन्तर बढता जा रहा था इसकी ओर पहले भी इगित किया जा चुका है । यह इसी प्रवृति का परिणाम है कि इस अवधि म राजस्थानी[3], राजस्थान भारती[4] मारवाडी'[5] एव जागती जोत'[6] जस

---

१ श्री चन्द्रसिंह की प्रस्तुत कृति का नागरी प्रचारिणी सभा काशी को ओर से 'रत्नाकर पुरस्कार' तथा बलदव दास पदक स सम्मानित किया गया । आज तक इस कृति क पाच सस्करण निकल चुके हैं ।

✓ २ रचना काल ई० सन १९४४

३ स० नरोत्तमदास स्वामी प्र० का० १९४६ ई०

४ स० डा० दशरथ शर्मा अगरचन्द नाहटा एव नरोत्तमदास स्वामी प्र० का० १९४६ ई० (समय समय पर इस पत्र क सम्पादक बदलते रहे हैं)

५ स० श्रीमन्तकुमार व्यास प्र० का० १९४७ ई०

६ स० श्री युगल प्र० का० वि० स० २००४

हिन्दी, राजस्थानी के पत्रों ने राजस्थानी गद्य पद्य के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन तो १६४६ में ही सभव हुआ किन्तु नवीन साहित्य के प्रति जो ललक जगी थी उसकी अभिव्यक्ति इन पत्रों के प्रकाशन से पूर्व होने वाली विभिन्न साहित्यिक गोष्ठियों के रूप में हो रही थी।[1] यह भी इन्हीं प्रयासों का परिणाम समझा जाना चाहिए कि आगे १९५० ई० के पश्चात साहित्य सजन के क्षेत्र में जो उत्साह दिखलायी पड़ा उसके लिए प्रेरक वातावरण का निर्माण यहीं हो रहा था।

३ वस्तुतः १९५० ई० के पश्चात ही राजस्थानी साहित्य में नवीन सजन की दृष्टि से परवर्ती काल की अपेक्षा काफी तेजी से काय हुआ। इस समय के पश्चात् ही साहित्य सजन की गति तेज हुई और साथ-ही साथ गद्य और पद्य उभय क्षेत्रों में विविध रूपों का काय सम्पादित हुआ। इसके अतिरिक्त जीवन से और अधिक नकट्य स्थापित करने की ललक तथा हल्के फुल्के प्रचारात्मक साहित्य के स्थान पर ठोस एव गभीर साहित्य सजन की रुचि भी इसी अवधि में बढी। साहित्य में आ रहे इन परिवतनों का कारण सामयिक परिस्थितियों में ही निहित है, अत आगे उन्हीं पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात देश के राजनतिक आर्थिक और फलस्वरूप सामाजिक ढाचे में बड़ी तेजी से परिवतन आया। परिवतन की इस तेज गति के कारण बहुत सी घटनाओं का सापेक्ष महत्त्व इतना अधिक नहीं रहा कि उनका तात्कालिक प्रभाव जन जीवन पर प्रत्यक्ष दृष्टिगत हो। इसके विपरीत इस अवधि के राजनतिक और आर्थिक क्षेत्र के भारी परिवतन एक दूसरे को प्रभावित करते व्यक्ति के चिन्तन फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्थाओं को तेजी से प्रभावित करने लगे। जिसकी स्पष्ट प्रतिध्वनि आधुनिक साहित्य में निरन्तर गूज रही है। वस्तुत गत बीस वर्षों के साहित्य की मूल प्रेरक शक्ति राजनतिक आर्थिक और सामाजिक जीवन के वे निरन्तर परिवतनशील क्षण रहे हैं—जो सरकार की विकासगामी नीतियों राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जगत की प्रमुख हलचलों और तज्जन्य व्यापक सामाजिक परिवतनों के परिणाम हैं। यहां हम विशेष रूप से इन परिस्थितियों के राजस्थानी जन जीवन पर पड़े प्रभाव और उस प्रभाव की राजस्थानी साहित्य में हुई अभिव्यक्ति तक ही स्वयं को सीमित रखेंगे।

१५ अगस्त १९४७ई० को विदेशी दासता से मुक्ति और स्वतन्त्रता प्राप्ति (राजस्थान के सन्दर्भ में अप्रल १६४६ इ० में राजस्थान सघ की स्थापना) तथा ब्रिटिश शासकों या कि राजाओं और सामन्तों के हाथों से जन प्रतिनिधियों के हाथों राज्य सत्ता का हस्तान्तरण—ये दो ऐसे महत्त्वपूर्ण परिवतन इस

---

१ इस दृष्टि से बीकानेर क्षेत्र का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वहां जहां, वि० स० १९९१ में ही श्री नरोत्तमदास स्वामी एव श्री विद्याधर शास्त्री के सम्पादकत्व एव सहयोग से राजस्थानी नामक हस्त लिखित पत्रिका निकलने लगी थी वहां उसके कुछ समय पश्चात स्थानीय साहित्यकारों ने गोष्ठियों में अपनी राजस्थानी रचनाओं का पाठ एव उन पर अन्य साहित्य ममज्ञों के मध्य चर्चाओं का आयोजन प्रारभ कर दिया था। इनमें सवश्री मुरलीधर व्यास श्रीचन्दराय माथुर भवरलाल नाहटा प्रभृति सजक साहित्यकार काफी उत्साह से भाग लिया करते थे।

सनी के मन घने जिहान यहा की शताब्दियो की परम्पराग्रा और चिन्तन प्रक्रिया को एकदम बदल दिया। अब राज्य किसी की बपौती या शारीरिक शक्ति से अर्जित वयक्तिक सम्पत्ति भर नही रह गया और न ही राज्य का उद्देश्य कर वसूली और जन रक्षा के दायित्व तक ही सीमित रह गया। प्रजातान्त्रिक-व्यवस्था ने जनता और शासन सचालन करने वाले उभय वग के चिन्तन म आमूल परिवतन ला दिया। राज्य का लक्ष्य जन साधारण का सवतोमुखी विकास होने के नाते आर्थिक क्षेत्र म अनेक नयी योजनाओ का आरम्भ हुआ और प्रजातान्त्रिक आदर्शों के अनुरूप शासन के ढाचे म मूलभूत परिवतन किया गया। फलस्वरूप एव और वयस्क मताधिकार प्रणाली के आधार पर १९५२ ई० म देश भर म प्रथम आम चुनाव सम्पन्न हुआ। इसके पश्चात प्रत्येक पाच वर्षों के बाद आम चुनावो के माध्यम से सरकार के कार्यों का मूल्याकन और उनके आधार पर अगले पाच वर्षों के लिए पुन शासन-सम्पादन का उत्तर-दायित्व चुने हुए नेताओ के हाथ सौपकर शासन पर जनता का नियन्त्रण स्थापित हुआ है। उधर आर्थिक दृष्टि से देश की प्रगति और समाज के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से १९५१ ई० म पचवर्षीय योजनाओ का श्री गणेश हुआ। फलस्वरूप इन तीस वर्षो की अवधि म चार पचवर्षीय योजनाओ के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक जीवन म अनेक समस्याओ को पाने का प्रयास किया गया। इसके अतिरिक्त जनता के हाथो म वास्तविक अधिकार सौंपने के भाव से प्रेरित होकर सत्ता के विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर देश म पचायती राज की व्यवस्था की गयी। इस दृष्टि से राजस्थान को सौभाग्यशाली समझा जाना चाहिए कि देश म सवप्रथम इस प्रणाली को यहीं लागू किया गया।[1]

इन सब नीतियो और कार्यों का अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि राजस्थान शिक्षा चिकित्सा, कृषि सिचाई यातायात सहकारिता उद्योग धन्धे आदि क्षेत्रो म बहुत आगे बढ़ा।[2] विभिन्न क्षेत्रो की उसकी उन्नति ने यहा के सामाजिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया जिसस यहा का साहित्य भी अछूता नही रहा।

---

१ २ अक्टूबर १९५९ ई० म प० जवाहरलाल नेहरू ने नागौर (राजस्थान) म पचायती राज व्यवस्था का श्री गणेश किया।

२ (क) १९५० ५१ई० म राजस्थान म शिक्षण सस्थाओ की सख्या ६०२६ थी जो कि १९६५ ६६ई० म बढ़कर ३२ ८२६ तक पहुच गयी। इसी प्रकार राजस्थान म १९५० ५१ म छात्रो की सख्या साढे छ लाख थी वह १९६२ ६३ ई० म बढ़कर १९ लाख तक पहुच गयी। स्त्री शिक्षा की दृष्टि से अच्छी प्रगति हुई। जहा १९५० ५१ई० म छात्राओ की कुल सख्या ६७,००० थी वहाँ १९६३ ६४ ई० म यह ४ लाख ३० हजार तक पहुच गयी।

(ख) १९५० ५१ई० म राजस्थान म चिकित्सालयो एव डिस्पेन्सरियो की सख्या ३९६ थी जो कि १९६५ ६६ई०म बढ़कर ५३५ तक पहुच गयी। इसके अतिरिक्त परिवार नियोजन की दृष्टि से ५५ परिवार नियोजन केन्द्र नगरो म एव २२२ ग्रामीण क्षेत्रो म १९६५ ई० तक कार्यरत थे। इसी प्रकार राजस्थान निर्माण के समय रोगी शय्याओ की सख्या जो ४७८८ थी वह १९६५ ई० तक बढ़कर ११ ६६५ तक पहुच गयी।

(ग) राजस्थान निर्माण के समय यहाँ सड़को की कुल लम्बाई ८ ६१८ मील थी जो कि १९६६ ई० तक १८,६५४ मील तक पहुच गयी।

इस प्रकार शिक्षा के बढ़ते जा रहे दायरे यातायात व विस्तृत होते जा रहे साधनो, प्रचार साधनो के फलते हुए क्षेत्र प्रेस की स्वतंत्रता, पत्र पत्रिकाओ के बढ़ते हुए प्रभाव और इन सबके फलस्वरूप से स्वतंत्र चिंतन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति ने लोगो के सोचने के ढंग को काफी कुछ बदल दिया। आम आदमी की तरह यहा के साहित्यकार को भी अन्य भारतीय प्रान्तो की तुलना में अपने पिछड़ेपन का अहसास तेजी से हुआ और परिवर्तित अनुकूल परिस्थितियो मे उसने यह भी महसूसा कि अभी सुधार का कार्य सुगमता और तीव्रता के साथ किया जा सकता है। फलत वह सुधारवादी साहित्य की ओर प्रवृत्त हुआ। भिन्न भिन्न साहित्यकारो ने अपने अपने ढंग से इस पहलू को उठाया। जहा कतिपय साहित्यकार किसी एक सामाजिक विकृति को अपने सशक्ततम रूप मे चित्रित कर एकदम परे हट जाते है वहा दूसरे साहित्यकार अपनी ओर से आदर्श व्यवस्था की ओर इंगित करते चले गये है। पद्य साहित्य की अपेक्षा कहानी एव एकाकी के क्षेत्र मे इस प्रकार के सुधारवादी दृष्टिकोण का प्राधान्य रहा है।[1]

इस प्रकार एक ओर साहित्यकारो ने समाज-सुधार की आवश्यकता महसूस की तो दूसरी ओर यह भी तेजी महसूसा जाने लगा कि सर्वतोमुखी उन्नति के लिए जन जागृति और विकास तथा निर्माण सम्बन्धी कार्यों मे तेजी लाना आवश्यक है। फलत एक ओर एक नये ढंग से गीतो की रचना हुई जिसमे युगो से कुचले आम आदमी के आत्म विश्वास को पुन जागृत करने का प्रयास किया गया।

(घ) राजस्थान के एकीकरण के समय राजस्थान को बाहर से ५० हजार से १ लाख टन तक अनाज मगाना पडता था किन्तु आज स्थिति यह है कि राजस्थान अनाज का अतिरिक्त उत्पादन करने लगा है।

(ङ) सिंचाई के क्षेत्र म जहाँ १९५० ५१ ई० में २९ लाख एकड सिंचित भूमि थी वह १९६२ ६३ ई० म बढ़कर ४६ ६४ लाख एकड तक पहुच चुकी थी।

(च) १९५० ५१ ई० म राजस्थान म ३२ बिजलीघर एव ४२ विद्युतीकृत बस्तियां थी, अब १९६५ ६६ ई० तक उनकी सख्या क्रमश ४८ एव १२७४ तक पहुँच गयी। इसी प्रकार उत्पादन क्षमता ७०० ८० लाख किलोवाट से बढ़कर ४२३० २६ लाख किलोवाट तक पहुच गयी।

(छ) १९५२ ई० म राजस्थान म पजीकृत कारखानो की सख्या २४० थी जो कि १९५४ ई० म बढ़कर १४६४ हो गयी। इस प्रकार औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से विभिन्न क्षेत्रों म *राजस्थान ने अच्छी उन्नति की है।*

उपर्युक्त सभी आकडो के मुख्य स्रोत है —

(क) भारत म आर्थिक नियोजन मिश्र शर्मा, मेहता प्र० का० १९७० ई०

(ख) राजस्थान स्वतन्त्रता के पहले और बाद स० श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय एव अन्य प्र० का० १९६६ ई०

१ श्री गोविन्द लाल माथुर कृत 'सतरगिनी' श्री नागराज शर्मा कृत 'रचो चना' श्री निरजननाथ आचार्य कृत 'नहरो भगडो' आदि एकाकी सग्रह एव श्री नानूराम सस्कर्ता कृत 'दसदोख' श्री मुरलीधर व्यास कृत 'बरसगाठ' आदि कहानी सग्रह एव अन्य अनेक स्फुट कहानिया इस दृष्टि से उल्लेखनीय बन पडी है।

उसम आत्म गौरव के भाव जगाने की दृष्टि से उस गौरवपूर्ण अतीत की ओर अभिमुख किया गया ताकि वह शताब्दियों की दासता जन्य हीनता के भावों को त्याग कर पूरे विश्वास के साथ अपने सुनहले भविष्य के निर्माण म लग सके।[1]

दूसरी ओर क्रांतिकारी विचारों के समर्थक साहित्यकारों ने इतिहास के उजले पन्नों म खोये रहकर सुनहरे भविष्य निर्माण की बात को गलत समझा और उन्होंने आम आदमी को स्वयं ही भाग्य विधाता बतलाते हुए उसम यह अपेक्षा की कि वह जीर्ण शीर्ण परम्पराओं एवं व्यवस्थाओं को एकदम ध्वस्त कर सबके नये समाज के निर्माण को कटिबद्ध हो। इस विचारधारा से प्रेरित कवियों ने उसम युगों से चले आ रहे सामन्ती शोषण एवं अन्याय के विरुद्ध प्रतिशोध के भाव जगाने म भी किसी प्रकार की हिचकिचाहट का अनुभव नहीं किया।[2]

वैसे देखा जाये तो दोनों प्रकार के चिन्तक, दो भिन्न आदर्शों से प्रेरित थे। प्रथम प्रकार के साहित्यकारों को गांधी के रामराज्य-स्वप्न के साकार होने म विश्वास था और उन्हें यह भी विश्वास था कि मौजूदा प्रजातान्त्रिक व्यवस्था म कार्यभार संभाने शासकों के साथ हम पूरा सहयोग कर उस स्वप्न को साकार कर सकते हैं, किन्तु दूसरी ओर साम्यवादी विचारधारा प्रेरित साहित्यकारों का हृदय सोचना था कि रामराज्य की प्राप्ति का यह चिन्तन ही सर्वथा गलत है। उनकी दृष्टि में यह सब समझौतावादी मनोवृत्ति की ही उपज है, जिसम कहीं कुछ नहीं बनता।

समय के परिवर्तन के साथ दोनों ही प्रकार के चिन्तन सही नहीं उतरे। नेताओं और शासकों की नेकनीयती म विश्वास रखने वाले और उनके हाथों रामराज्य का स्वप्न साकार होते देखने वालों को उस समय बड़ा आघात पहुंचा, जबकि उन्होंने देखा कि ये तथाकथित नेता ही 'जनसेवक' से 'जनशोषक' बन गये हैं और वैयक्तिक हित साधन ही उनका प्रमुख लक्ष्य बन गया है। उधर साम्यवादी विचारधारा प्रेरित साहित्यकारों को भी इस बात से निराशा ही हुई कि उनके भरपूर आह्वान के पश्चात भी क्रांति का संवाहक सर्वहारा वर्ग सामने नहीं आ रहा है, अपितु प्रायः सभी लोग धीरे धीरे अपने स्वार्थों म लिप्त होते जा रहे हैं। अतः उसने जिस साधारण जनता की ओर इतनी आशा भरी नजरों से निहारा था, उसकी स्वार्थपरता और कायरता को देखकर धीरे धीरे उसम निराश होकर अपने तक ही सिमट गया या कि उसकी वाणी एकदम चुप हो गई। ऐसी व्यवस्था म आदमी का विश्वास ऊंचे आदर्शों और मधुर स्वप्नों की साकारता म समाप्त हो गया। मौजूदा व्यवस्था म वैयक्तिक स्तर पर अपनी स्थिति दृढ़ करने और सामूहिक स्तर पर इस सारी व्यवस्था की कटु आलोचना करने म उसे विशेष परेशानी नहीं होती। इस प्रकार की सिद्धान्तहीन स्वार्थमयी जीवनचर्या ने व्यंग्य प्रधान साहित्य को तो प्रोत्साहित

---

१ सनाणी (श्री मघराज मुकुल) पातल अर पीथळ (श्री कन्हैयालाल सेठिया) आदि प्रसिद्ध पद्य कथाएँ जहां गौरवपूर्ण विगत का स्मरण कराने के उद्देश्य से लिखी गयी वहां धरती री धुन (गजानन वर्मा), 'सोना निपजै रेत म (गजानन वर्मा), नूवी रागिणी (श्री सुमनेश जोशी) जैसे कविता संग्रहों की अधिकांश कविताएं राष्ट्र निर्माण हेतु जनसाधारण को प्रेरित करने के उद्देश्य से लिखी गयी।

२ अमलगाजा (म० श्री श्रीमन्तकुमार व्यास) एवं चेत मानखा (श्री रेवतदान चारण कल्पित) काव्य संग्रहों की अधिकांश कविताओं के स्वर क्रान्ति के उद्घोषक रहे हैं।

किया ही किन्तु साथ साथ ही मादर्शों के प्रति ग्रास्था व क्षीण हो जा रहे स्वरूप । गति परिवार को अधिकाधिक यथार्थो मुखी बनाया है ।

इन सारे परिवर्तनों का सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा । ग्रामों एवं शहरों में समान रूप से नवीन परिवर्तनों एवं नवीन व्यवस्थाओं के फलस्वरूप सामाजिक मान्यताओं एवं व्यवस्थाओं पर जबरदस्त चोट पड़ रही । गांवों में आपसी मेलजोल और ममत्व के स्थान पर अविश्वास और कुत्सित राजनीति अर्थात् स्वार्थान्ध गुटबाजी अपना रंग दिखाने लगी । साथ ही साथ शहरी सभ्यता से तेजी से बढ़ते हुए सम्पर्क ने उनके जीवन को भौतिक युग की मृगतृष्णा की आशा कुण्ठाओं का ही शिकार बनाया । फलतः सहकारिता, भ्रातृत्व, पारस्परिक प्रेम और विश्वास पर टिके शताब्दियों के ग्रामीण परिवार एवं समाज डगमगाने लगा है । युगों पुरानी मान्यताओं एवं आस्थाओं के प्रति प्रश्नचिह्न उपस्थित होने लगे हैं और आपसी सम्बन्धों में स्वार्थ प्रेरित आचरण के कारण भारी दरार पड़ने लगा है । यद्यपि ये सब परिवर्तन ऐसी निःशब्द स्थितियों में घटित हो रहे हैं—जहां उन्हें महसूस सभी रहे हैं किन्तु समझ एवं अभिव्यक्त बहुत कम कर पा रहे हैं । राजस्थानी कथा-साहित्य एवं नयी कविता दोनों में ग्रामीण अंचल के इस बदलते स्वरूप को भारी देखा जा सकता है ।[1]

गांवों की तरह शहरी जीवन में भी औद्योगीकरण से बढ़ते नगरों, शिक्षितों में फैली बेकारी, भौतिक सभ्यता के विस्तार के साथ ही साथ उसकी आवश्यक बुराइयों व सामाजिक जीवन में बढ़ते प्रभाव ने स्थिति को बहुत कुछ बदल दिया है । यांत्रिक सभ्यता के बढ़ते प्रभाव के साथ व्यक्ति में बौनेपन, एकाकीपन और अजनबीपन का भाव बढ़ता जा रहा है । ऐसी स्थिति में स्थापित मूल्य, युगों पुरानी परम्पराएं एवं व्यवस्थाएँ अर्थहीन होती जा रही हैं और शाश्वत मानव मूल्यों के प्रति भी सन्देह के भाव उभरते जा रहे हैं । फलस्वरूप आपसी सम्बन्धों में जो दरार पड़ गई है सामाजिक व्यवस्थाएँ जिस प्रकार लड़खड़ाकर गिर रही हैं और इन सबके कारण गुडमुड की जो स्थिति बनी जा रही है उन सबकी अभिव्यक्ति सम सामयिक साहित्य में मिलती है । राजस्थान में चूंकि इन सब परिवर्तनों की गति अपेक्षया धीमी और प्रभाव क्षीण है अतः यहां के साहित्य में भी इस परिवर्तन का शोर शराबा कम सुनाया पड़ता है । फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि राजस्थानी साहित्य इस सबसे अछूता है । गत पांच चार वर्षों में नई पीढ़ी द्वारा सर्जित साहित्य में परिवर्तन की इस वाणी का स्वर काफी मुखर रहा है जिसे पारम्परिक स्वरों में भिन्न अलग से पहिचाना जा सकता है ।

देश के और विशेषरूप से राजस्थान के इन गत सत्तर वर्षों के राजनैतिक सामाजिक आर्थिक और धार्मिक आन्दोलनों और परिवर्तनों ने यहां के सामान्य जन के जीवन को किस कदर प्रभावित किया तथा वह प्रभाव साहित्य में किस रूप में व्यक्त हुआ इसकी चर्चा ऊपर कर चुके है । अब आगे कतिपय उन बिन्दुओं पर भी विचार करते चलते है जो आधुनिक राजस्थानी साहित्य को किसी न किसी रूप में प्रेरित करते रहे है और जिनका न्यूनाधिक प्रभाव परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से आधुनिक साहित्य पर स्पष्ट दृष्टिगत होता है ।

---

१ श्री नानूराम संस्कर्ता की 'मिरचारी कुन्ढी' श्री नृसिंह राजपुरोहित की 'भारत भाग विधाता' नामक कहानियां एवं श्री तेजसिंह जोधा की 'कठई की व्हेगो है' श्री गोरधनसिंह शेखावत की 'गाव आदि कविताएँ इस दृष्टि से द्रष्टव्य हैं।

इस दृष्टि से हम सवप्रथम राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति पर विचार करते है। यहा की प्रकृति ने अपने कठोर और रूखे रूप के बावजूद भी यहा के सामान्य व्यक्ति को अपने आकषण पाश मे बड़ी मजबूती से बाध रखा है। सचार के सीमित साधनो और प्राकृतिक बीहड़ताओ के कारण अधिकाश म यहा का सामान्य व्यक्ति एक क्षेत्र विशेष की परिधि म अपना सारा जीवन काट देता है और पीढ़ियो का उसका प्रकृति के रूप विशेष का साहचय उसके मन म प्रकृति के उसी रूप के प्रति विशष ममत्व के भाव उत्पन्न करता है। फलस्वरूप वह सूने बालू के टीबा, तप्त लूओ तथा भीषण आधियो म भी एक आनन्द की अनुभूति करने लगता है। पयजल जसी जीवन की नसर्गिक आवश्यकताओ की पूर्ति हतु किये जाने वाले श्रम न और अनावृष्टि के कारण आये वष बिना बुलाये मेहमान की तरह आ टपकने वाले अकाल के विरुद्ध चल रहे अनवरत सघष मे भी वह प्रकृति के प्रति खीभ या आक्रोश से नही भरता अपितु इन विपदाओ को सहन करने की अपनी क्षमता पर उसे एक प्रकार का अह सदव सतुष्ट किये रखता है। उसके लिए प्रकृति का यही रूप सामान्य बन चुका है और वह बडे सहज भाव से इन सबको झेलता है, परिणाम स्वरूप 'लू' की विभिन्न कष्टदायी स्थितियो के चित्राकन म भी यहा के साहित्यकार ने उसी उत्साह का परिचय दिया है, जिस उत्साह से उसने 'जीवनदाता बादली' का गुणगान किया है।

यहा के ग्राम व्यक्ति का जीवन प्रकृति के साथ इतना घुला मिला है कि प्रकृति उसके लिए खाली क्षणो म बठकर उपभोग की या अपनी सौन्दय लिप्सा शात करने की वस्तु नही है, अपितु वह तो उसके जीवन का पर्याय या अनिवायता बनी हुई है। प्रकृति और मानव का यह नकटय और सीधे प्रकृति पर ही उसके जीवन के आश्रित होने के कारण हम यहा के ग्राम आदमी के प्रकृति से दूर और पृथक जीवन की कल्पना ही नही कर सकते। इस सबका ही परिणाम यह हुआ है कि यहा के साहित्यकार ने प्रकृति को लेकर बहुत कुछ लिखा है। 'लू', 'कळायण', 'दस देव', 'बादली', 'मेघमाळ' जैसी कृतियो और प्रकृति चित्रण सम्बन्धी अनेको स्फुट कविताओ म यहा के सामान्य जन का प्रकृति के प्रति जो उल्लास, उत्साह कृतज्ञता एव तादात्म्य का भाव रहा है—उसकी सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। आधुनिक काल के प्रकृति चित्रण सम्बन्धी काव्य की दो अन्य उल्लेखनीय बातें भी रही हैं—प्रथम तो यहाँ अधिकाश म प्रकृति का जीवन-सापेक्ष अकन हुआ है और द्वितीय, प्रकृति को लेकर जिन नाना भावो की अभिव्यक्ति हुई है वह समूह-मन की भावनाओ का ही प्रतिरूप है। समष्टि चेतना ही वहाँ प्रभावी रही है।

प्रकृति चित्रण की भाति ही समूह मन की भावनाओ का, समष्टि चेतना का जबरदस्त प्रभाव लोक जीवन एव लोक साहित्य से प्रेरित रचनाओ म देखा जा सकता है। स्वतत्रता से पूव के राजनतिक कवियो ने तो केवल लोक धुनो को ही उनकी मधुरता सरसता और लोकप्रियता के कारण स्वीकार किया था, किन्तु स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात तो राजस्थानी गीतकारो ने भाव, भाषा, शिल्प सभी कुछ लोक जीवन और लोक साहित्य से ही उसकी अनगढ़ता और अति सरलीकरण की प्रवृत्ति से बिना परहेज किये ही ज्यो-का त्यो अपना लिया। इसका यह लाभ तो अवश्य हुआ कि साहित्य को ग्राम आदमी से तादात्म्य स्थापित करने म कोई परेशानी नही हुई, किन्तु युग की आवश्यकताओ से विरत और भविष्य की राह निर्दिष्ट करने की शक्ति से वचित, लोक प्रेरित इस काव्य का प्रभाव जन-जीवन पर उलटा ही पडा। उसने सामान्य जन को अपने वतमान मे सघष की प्रेरणा और भविष्य के रूप निर्धारण की सचेष्ट क्रियाशीलता म विमुख कर एक प्रकार की अतीतोपजीवी मूढ़ता की स्थिति म पहुँचा दिया। यही नहीं

जन साधारण के साथ साथ उसने स्वयं अपना भी अहित किया। क्योंकि लोक साहित्य का अति की सीमा तक किया गया अनुकरण स्वयं शिष्ट साहित्य के स्वरूप को धुंधलाने लगा।

जो भी हो, यह तो निश्चित है कि एक समय राजस्थानी साहित्य जगत के एक बहुत बड़े वर्ग का प्रेरणा स्रोत यहां का लोक काव्य रहा और कतिपय जागरूक और समर्थ कवियों ने उसकी भाषा और अभिव्यक्ति सामर्थ्य से लाभ उठाते हुए राजस्थानी साहित्य की अभिव्यक्तिगत एवं भाषागत क्षमता में निश्चित रूप से वृद्धि की। यह राजस्थानी साहित्य का दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि इस समझ-बूझ का परिचय जिन दो एक कवियों ने दिया, उनके अन्य सम सामयिक और परवर्ती कवियों ने उनके अनुभव से लाभ नहीं उठाया।

प्रकृति और लोक सहित्य के पश्चात आधुनिककाल का राजस्थानी साहित्यकार यहां की एतिहासिक उपलब्धियों से काफी प्रभावित हुआ है। पूर्व उल्लिखित श्री 'मुकुल' की बहुचर्चित 'सेनाणी' का आधार राजस्थानी इतिहास का ही एक जाना माना यशस्वी पृष्ठ रहा और उसके पश्चात् श्री कन्हैयालाल सेठिया की लोकप्रिय 'पातल अर पीथळ' तथा अन्य पद्यकथाकारों की अनेकों पद्यकथाओं का मुख्य आधार राजस्थान का गौरवपूर्ण इतिहास ही रहा। इन पद्यकथाओं के अतिरिक्त भी कई प्रबन्धकाव्यों,[1] प्रशस्ति प्रधान लम्बी कविताओं[2] ऐसा एकांकियों[3] और बीसों कहानियों[4] में भी मुख्य रूप से राजस्थानी इतिहास के उन्हीं प्रसंगों को आधार बनाया गया है, जिनकी एक झलक कर्नल टाड लिखित राजपूताना के इतिहास में मिलती है। राजस्थान के इतिहास पर आधारित इन रचनाओं के सम्बन्ध में दो एक बातें उल्लेखनीय हैं। प्रथम इन रचनाओं में प्रस्तुत पात्र या चरित्र के सम्बन्ध में प्रचलित लोक प्रवादों को अपनाने में इन साहित्यकारों को कोई विशेष हिचकिचाहट महसूस नहीं हुई है और द्वितीय, इतिहास के विस्तृत अध्ययन के अभाव में अधिकांशतः कतिपय बहु प्रसिद्ध एतिहासिक प्रसंगों के इर्द गिर्द ही ये रचनाकार घूमते दृष्टिगत होते हैं। इसके अतिरिक्त भी इन इतिहास प्रसंगों के चयन के पीछे किसी विशेष दृष्टिकोण के सक्रिय न होने के कारण, युगानुकूल उसकी नवीन व्याख्या या कि बदली हुई परिस्थितियों के संदर्भ में उन्हें नवीन अर्थ देने का प्रयास नहीं हुआ है। यहाँ के जन जीवन के साथ निकट से जुड़े होने के कारण या कि उस वातावरण में पले हुए होने के कारण इन एतिहासिक रचनाओं

---

१ क देवयां को दिवलो श्री बाबारीलाल मिश्र सुमन
  ख महमध्रम श्री वाहू महर्षि

२ क दुर्गादास श्री नारायणसिंह भाटी
  ख हाडी राणी श्री रामेश्वरदयाल श्रीमाली

३ पन्नाधाय (डा० मनोहर चन्द भण्डारी) बीरमती (शक्तिदान कविया) ममतामयी माजी (लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत) उमादे (डा० मनोहर शर्मा) राजदण्ड (डा० मनोहर शर्मा) आदि एकांकी इस दृष्टि से उल्लेखनीय बन पड़े हैं।

४ अमर चूनड़ी (नृसिंह राजपुरोहित)' मा रो ओरणो (नृसिंह राजपुरोहित) रजपूताणी (लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत) माटू रो मग (श्री सौभाग्य सिंह शेखावत) आदि कहानियां इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

म राजस्थान की सांस्कृतिक झांकियाँ विकृत तो नहीं हुई है, किन्तु अपनी पैनी दृष्टि, कल्पनाजन्य गहरी सूझ-बूझ और गम्भीर अध्ययन के परिणाम स्वरूप प्रस्तुत युग के सम्पूर्ण परिवेश को ही मुखरित कर देने की क्षमता का परिचय इन ऐतिहासिक रचनाओं म नहीं मिलता।

यहाँ तक राजस्थानी साहित्य की उन विशिष्ट परिस्थितियों (राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक और प्राकृतिक) के सन्दर्भ म उस पर विचार हुआ है जो उसकी वर्तमान दशा और दिशा की उत्तरदायी रही है। आगे कतिपय ऐसी परिस्थितियों पर भी विचार करते चलते हैं—जिनको लेखन का मूल प्रेरणा स्रोत तो नहीं माना जा सकता किन्तु जो अपनी भौतिक शक्तियों और आर्थिक आकर्षण के कारण साहित्य को एक सीमा तक प्रभावित अवश्य करती हैं और तदनुरूप जनरुचि के निर्माण म भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इस दृष्टि से तीन बातें मुख्य हैं—१ रेडियो प्रसारण, २ प्रकाशन व्यवसाय और ३ पत्रकारिता।

१ जहाँ तक राजस्थानी साहित्य का सम्बन्ध है यह स्वीकारने म किसी प्रकार का संकोच नहीं होना चाहिए कि आधुनिक राजस्थानी साहित्य के सन्दर्भ म रेडियो ने उसके स्तर और क्षेत्र (विषय प्रतिपाद्य) को काफी दूर तक प्रभावित किया है। रेडियो से प्रसारण का आकर्षण तो लेखकों को अपनी ओर आकर्षित करता ही है किन्तु उससे भी अधिक उसका तत्काल आर्थिक प्रतिफल भी लेखकों के लिए कम आकर्षक नहीं रहा है फलत बहुत बड़े परिमाण म रेडियो की रीति-नीति के अनुकूल साहित्य की सर्जना राजस्थानी म हुई है। चूंकि रेडियो की अपनी कुछ नीतियाँ एवं सीमाएं होती हैं अतः उसके निर्देशन पर लिखे गये साहित्य का स्वरूप भी उसी के अनुरूप होगा। इस सम्बन्ध म श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव के हिन्दी-साहित्य के सन्दर्भ म व्यक्त हुए विचार लगभग ज्यों के त्यों आधुनिक राजस्थानी साहित्य पर भी लागू होते हैं। उन्होंने भारतीय रेडियो की चर्चा करते हुए लिखा है—"रेडियो एक साधन सम्पन्न सरकारी माध्यम है और इस अर्थ म सशक्त भी है कि वह लेखक को उसकी रचनाओं के लिए नकद अदायगी करता है। उसने प्रसारणीय रचनाओं के बारे म अपनी नीति भले ही बाकायदा घोषित न की हो फिर भी उसमें सर्वत्र एक हल्के फुल्केपन के प्रति आग्रह पाया जाता है। प्रसारण अधिकारी श्रेष्ठ रचनाओं को रेडियो के अनुकूल कर लेने की अपेक्षा लेखक को ही अनुकूलित कर लेना सुगम पाते हैं। इस दिशा म उन्हें लेखक की ओर से आतुर तत्परता ही मिलती है। परिणाम यह है कि बहुत बड़ी मात्रा म एक विशेष प्रकार के शिल्पिक ढांचे म ढली हुई घटिया और बनावटी लिखित सामग्री का निर्माण हो गया है और होता जा रहा है।"[1] राजस्थानी साहित्य के सकटो विकास और निर्माण तथा सरकारी रीति नीति के समर्थक गीत वार्ताएँ रेडियो रूपक देशभक्ति पूर्ण स्तुतियाँ और वयक्तिक तथा विधागत परिचयात्मक समीक्षाएँ इसी आकाशवाणी अनुकम्पा का ही परिणाम कहा जाना चाहिए।

२ रेडियो के पश्चात प्रकाशन-व्यवसाय आज के युग म उस शक्ति के रूप म उभर रहा है जो कि पाठकों की रुचि के अनुरूप लेखकों को लिखने के लिए प्रोत्साहित करता रहता है। प्रकाशन व्यवसाय का सीधा सम्बन्ध चूंकि व्यावसायिकता म है अतः वहाँ आर्थिक हिताहित प्रमुख है और स्वस्थ जनरुचि का निर्माण गौण। राजस्थानी साहित्य के सन्दर्भ म तो स्थिति यह है कि पाठकों के अभाव और

---

१ हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष श्री ओंकारनाथ श्रीवास्तव पृ० सं० ४६

पाठ्यक्रम म राजस्थानी का स्थान नही मिल पाने के कारण अभी तक राजस्थानी पुस्तको का व्यावसायिक स्तर पर प्रकाशन सम्भव नही हुआ है । फलत अधिकाश म जो भी साहित्य प्रकाश म आ रहा है वह स्वय लखको और उनके सहयोगियो के त्याग और सहयोग तथा कतिपय सस्थाओ के उद्योग म ही सभव हुआ है। जो कि व्यक्तिगत प्रयासो से प्रकाशित होने वाले साहित्य म मुख्य साहित्यकार का उद्देश्य अपनी सर्जना को जनसाधारण के समक्ष रखना होता है और वह अपनी रुचि सामर्थ्य और रुच्यानुरूप साहित्य की सर्जना करता है अत उसके स्तर म गिरावट या कि सम्पादन स प्रस्त होने का अभियोग उसके विरुद्ध नही लगाया जा सकता ।

सस्थाओ के सहयोग स साहित्य प्रकाशन की दृष्टि स विचार करते हैं तो पाते हैं कि राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र म जो सस्थाएँ सक्रिय है उनम अधिकाश का ध्यान विशेष रूप स प्राचीन साहित्य के प्रकाशन की ओर ही लगा हुआ है या फिर व लोक-साहित्य के प्रकाशन म ही विशेष क्रियाशील है अत उनके माध्यम स स्वतन्त्रित मौलिक साहित्य का प्रकाशन बहुत सीमित रूप म हुआ है । इस दृष्टि स सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर राजस्थान भाषा प्रचार सभा जयपुर और राजस्थान साहित्य अकादमी (सगम) उदयपुर का नाम विशेष रूप म उल्लेखनीय है । किन्तु इन सब सस्थाओ ने अपने साधनो के अनुरूप कोई अनुकरणीय उदाहरण इस दिशा म अभी तक प्रस्तुत नही किया है ।

पत्रकारिता और सामयिक साहित्य का सीधा और घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । राजस्थानी पत्रकारिता का इतिहास क्रम तो काफी पुराना है किन्तु बहुत स कारणो स उसम गति नही आ पायी है । समाचार पत्रो के प्रकाशन की दृष्टि स तो कोई उल्लेखनीय कार्य अभी तक हुआ ही नही है,[1] हॉ अलबत्ता साहित्यिक पत्रो का इतिहास अवश्य ही वयक्तिक उत्साह और प्रयासो का इतिहास रहा है । राजस्थानी भाषा का प्रथम पत्र मारवाडी भास्कर[2] वि० स० १९६४ म प्रकाशित हुआ और पश्चात वि० स० १९६८ म ही मारवाडी[3] नामक पत्र निकला । इन पत्रो के प्रकाशन के काफी समय पश्चात मारवाडी हित

---

१ आगीवाण (स० बालकृष्ण उपाध्याय) राजस्थानी भाषा का यह प्रथम पत्र था जिसे आशिक रूप स समाचार पत्र भी कहा जा सकता है । इसम राजस्थान की राजनतिक गतिविधियो से सम्बन्धित मुख्य मुख्य समाचार प्रकाशित होत रहे है । इस पत्र के पश्चात जयपुर से जागती जोत नामक दनिक समाचार पत्र कुछ समय तक निकला । इस पत्र के वर्षो बाद विशाल मरुधर न पुन इस दिशा म प्रयास किया किन्तु उसका भी हश्र वही हुआ जो कि पहले वाले पत्रो का हुआ । इन पत्रो की असफलताओ न राजस्थानी पत्रकार को दनिक की अपेक्षा पाक्षिक समाचार पत्र प्रकाशित करने को प्रोत्साहित किया फलस्वरूप लाडसर (कलकत्ता), हेलो (रतनगढ) एव 'म्हारो देश (कलकत्ता) का प्रकाशन हुआ किन्तु ये पत्र भी अधिक समय तक नही टिक सके । सम्प्रति 'ओळमा (साहित्यिक मासिक) पाक्षिक समाचार पत्र के रूप म गत दो वर्षो स निकल रहा है यद्यपि नियमित वह भी नही हो पाया है ।

२ स० रामलाल बद्रीदास, प्रकाशन स्थान-सोलापुर

स० श्री किशनलाल बलदवा प्रकाशन स्थान-अहमदनगर
(यह पत्र फाल्गुन १९८८ (वि० स०) तक प्रकाशित होता रहा है ।)

वारक'[१] नामक पत्र वि० स० १९७६ म निकलन लगा। ये सभी पत्र प्रवासी राजस्थानिया द्वारा निकाले गये थे और इनका मुख्य उद्देश्य मारवाडी समाज म व्याप्त कुरीतिया का निवारण उनकी सर्वतोमुखी विकास एव राजस्थानी भाषा साहित्य का उत्थान था। इन पत्रा की पूरी फाइल और इनके सम्बन्ध म विशेष जानकारी उपलब्ध नही हो पान की स्थिति म यह निश्चित रूप से नहा कहा जा सकता कि इन पत्रो की उपलब्धि क्या रही ?

इन पत्रा के प्रकाशन के काफी समय पश्चात् राजस्थान से ही आगीवाण नामक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ किन्तु यह पत्र दीर्घजीवी नहा बन सका। 'आगीवाण' की तरह ही स्वतन्त्रता प्राप्ति के आसपास प्रकाशित होन वाले 'मारवाणी'[२] एव 'जागती जोत'[३] भी अल्पायु ही सिद्ध हुए। इस प्रकार य तीनो ही अल्पजीवी पत्र इसी कारण साहित्य क्षत्र म अपने किसी साहित्यिक ग्रुप के निमाण म तो असफल रह ही किन्तु साथ ही साथ किसी विधा विशेष को गति प्रदान करन म भी इनका कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं रहा। इन पत्रा की अपेक्षा १९५३ ई० स ही व्यवधाना के साथ प्रकाशित हो रहे मरुवाणी[४] एव ओळमा[५] नामक साहित्यिक पत्रा ने आधुनिक साहित्य के विकास की दृष्टि स काफी महत्त्वपूर्ण काय किया है। एक ओर इन पत्रा के प्रयासा स जहा राजस्थानी साहित्य सजको का एक पूरा वग उभर कर सामन आया है, वहा दूसरी ओर इनम गद्य और पद्य उभय क्षत्रा की सभी विधाओ म कुछ न कुछ बराबर लिखा जाता रहा है। वस इन पत्रा का कथा साहित्य की दृष्टि स जो योगदान रहा है वह अन्य क्षेत्रा म सम्पादकीय सहानुभूति एव प्रयासा के अभाव म उसकी तुलना म न्यून ही कहा जायगा। 'मरुवाणी' और ओळमा की इस परम्परा का बाद म प्रकाशित होन वाले कुरजा[६] 'जलम भोम'[७] एव 'जाणकारी'[८] जसे पत्रा न युगानुकूल आग बढाया है।

---

१ स० राधाकृष्ण बिसावा प्रकाशन स्थान धामण गाव
यह पत्र वि० स० १९७८ तक तो निश्चित रूप से प्रकाशित होता रहा, बाद की कोई सूचना अभी तक प्राप्त नही है।

२ स०—श्रीमन्तकुमार व्यास प्रकाशन स्थान—जोधपुर, प्रकाशन काल १९४७ ई०

३ स०—श्री युगल, प्रकाशन स्थान—पहले कलकत्ता एव बाद म जयपुर प्रकाशन काल—वि० स० २००४

४ स०—रावत सारस्वत प्रकाशन स्थान-जयपुर, प्रकाशन काल—वि० स०—२०१०। यह अब भी श्री रावत सारस्वत के सम्पादकत्व म जयपुर स मासिक पत्र क रूप म प्रकाशित हो रहा है।

५ स०—किशोर कल्पना कान्त, प्रकाशन काल—१९५४ ई० प्रकाशन स्थान—रतनगढ

६ स०—अदभुत शास्त्री प्रकाशन-काल-१९६० ई० प्रकाशन स्थान रतनगढ। यह पत्र दो वष निकलने के पश्चात बन्द हो गया।

७ स०—मूलचद प्राणेश' प्रकाशन काल-वि०स० २०२४ प्रकाशन स्थान—बीकानेर यह पत्र भी एक वष नियमित रहन क बाद अब काफी अनियमित हो गया है।

८ स०—पारस अरोडा एव हरमन चौहन प्रकाशन स्थान-जोधपुर, प्रकाशन काल-१९६७ ई०। यह पत्र भी पाच अका तक ही निकल कर बन्द हो गया।

राजस्थानी पत्रों के इस विकासक्रम म दो अन्य पत्रों का नाम भी उल्लेखनीय बन पड़ा है। सम प्रथम है बम्बई म प्रकाशित होने वाला 'हरावळ'[1] एव द्वितीय राजस्थानी ग्रन्थ[2] इनम प्रथम पत्र ड्राइग रूम मगजीन रूप म लोकप्रिय होने के लिए प्रयत्नरत है और अपने इस प्रयास म वह राजस्थानी भाषा साहित्य को जन साधारण के मध्य अधिक से अधिक प्रचारित कर लोकप्रिय बनाना चाहता । दूसरा पत्र राजस्थानी ग्रन्थ एक विशुद्ध साहित्यिक प्रयास है और यह राजस्थानी का पहला पत्र जिसने साहित्य की एक विधा–विशेष (नयी कविता) तक ही अपना दायरा सीमित रखा है ताकि वह अपने क्षेत्र म जो कुछ भी दे वह आधिकारिक एव अति महत्वपूर्ण बन सके।

इन सब पत्रों के अतिरिक्त राजस्थानी पत्रकारिता के क्षेत्र म लाडेसर टेला 'विशाल राजस्थर 'म्हारो देस एव मूमल आदि अन्य कुछ पत्र भी भिन्न भिन्न उद्देश्यों को लेकर सामने आये किन्तु कुछ करने या देने से पूर्व ही बन्द हो गये।

यहा तक आधुनिक राजस्थानी साहित्य पर पडने वाले उन विभिन्न प्रभावों की चर्चा हुई है जो युगीन परिस्थितियों की उपज रही है या कि उन स्थितियों पर विचार हुआ है जिन्होंने लेखकों को भिन्न भिन्न दिशाओं म लिखने को प्रेरित किया। आगे एक सर्वेक्षण[1] के दौरान साहित्यकारो द्वारा अपने लेखन के मूल प्रेरणा स्रोत के सम्बन्ध म व्यक्त किये गए विचारो के आधार पर जो निष्कर्ष सामने आये हैं उनकी सक्षेप म चर्चा की जा रही है—

(१) अधिकाश साहित्यकारों ने सम सामयिक सामाजिक जीवन को अपने लेखन का मूल प्रेरणा स्रोत बतलाया है। उनके अनुसार—

(क) सामाजिक जीवन का वैषम्य

(ख) आम आदमी का दर्द एव उसकी दुर्दशा तथा

(ग) समाज सुधार की भावना।

उनके लेखन के मूल प्रेरणा स्रोत रहे हैं।

२ अन्तर्मन की उमग एव पीडा से प्रेरित होकर या फिर स्वान्त सुखाय लिखने वाले साहित्यकारों की सख्या सीमित ही है।

३ कतिपय साहित्यकार लोक जीवन एव लोक साहित्य के समृद्ध भण्डार से प्रेरित होकर लिखते रहे है या लिख रहे है।

४ कुछ साहित्यकारों ने पारिवारिक एव परिवेशगत साहित्यिक वातावरण म प्रेरित होकर लिखना शुरू किया।

---

१ स०— सत्यप्रकाश जोशी प्रकाशन स्थान–बम्बई प्रकाशन काल–१९६९ ई०। यह पत्र अब भी बम्बई से प्रकाशित हो रहा है।

२ स०—श्री तेजसिंह जोधा प्रकाशन स्थान–जयपुर प्रकाशन काल–१९७१ ई०। इस पत्र का दूसरा अक अभी तक सामने नही आया है।

इस शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतकर्ता ने अपने इस शोध कार्य के सम्बन्ध म एक सामान्य प्रश्नावली बनाकर लगभग सौ साहित्यकारो म भरवाकर मगवाई थी। उपर्युक्त बातें उसी सर्वेक्षण के आधार पर लिखी गई हैं।

५ इसके अतिरिक्त राजस्थानी साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने की भावना से प्रेरित होकर, व्यक्ति विशेष के प्रोत्साहन से प्रेरित होकर एवं समृद्ध ऐतिहासिक परम्परा से उत्साहित होकर कतिपय साहित्यकार लेखन की ओर प्रवृत्त हुए हैं।

उपर्युक्त मुख्य कारणों के अतिरिक्त दो-एक साहित्यकारों ने वैयक्तिक कारणों से प्रेरित होकर लिखते रहने की बात कही है। इस प्रकार इस सर्वेक्षण में भी मुख्यतः सामयिक परिस्थितियां एवं युगीन परिवेश को ही लेखन का मूल प्रेरक माना गया है।

निष्कर्षतः १६वीं सदी में पाश्चात्य जगत से सम्पर्क के कारण भारतीय जीवन में नव जागरण की जो एक तीव्र लहर संचारित हुई उसके फलस्वरूप हमारे चिंतन, रहन सहन तथा विचारों में जो भारी परिवर्तन आया, उससे यहां का साहित्य भी अछूता नहीं रहा। यही नहीं यदि यह कहें कि उन परिवर्तनों को लाने में साहित्य की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण रही है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। राजस्थानी भाषा का साहित्य, जो विभिन्न कारणों से सम-सामयिक भारतीय भाषाओं के साहित्य के साथ आगे नहीं बढ़ पाया था २०वीं शती के प्रारम्भ में ही प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों के प्रयासों के फलस्वरूप स्वयं को उस रूप में ढालने लगा, जिससे कि वह अपने समाज की आशा आकांक्षाओं का प्रतिरूप बन सके तथा भविष्य की दृष्टि से उसके लिए सही राह निर्दिष्ट कर सके। इस प्रक्रिया में उसने आजादी से पूर्व परतन्त्रता के विरुद्ध जन चेतना को उद्वेलित करने के अपने महत्त उत्तरदायित्व का एक सीमा तक निर्वाह किया तो स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात निर्माण एवं विकास के अनुकूल वातावरण तैयार करने की अपनी भूमिका को बखूबी निभाया और सम्प्रति तेजी से बदलती हुई सामाजिक व्यवस्थाओं, आस्थाओं एवं मान्यताओं को वाणी देने में सचेष्ट है।

तृतीय खण्ड

गद्य साहित्य की प्रवृत्तियाँ

राजस्थानी गद्य साहित्य का सामान्य परिचय

उपन्यास

कहानी

नाटक

एकांकी

निबन्ध

रेखाचित्र और संस्मरण

गद्य काव्य

निष्कर्ष

3 गद्य साहित्य की प्रवृत्तियाँ

चौदहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध में ही राजस्थानी गद्य साहित्य की अविच्छिन्न परम्परा रही है। मौलिक साहित्य सृजन के समान ही व्याकरण, इतिहास, ज्योतिष, वैद्यक आदि उपयोगी साहित्य में भी गद्य का बराबर उपयोग होता रहा। साहित्य सृजन के अतिरिक्त शासन संचालन, धर्म प्रचार एवं सामान्य व्यक्ति के दैनंदिन जीवन में भी गद्य समान रूप से व्यवहृत होता रहा। साहित्येतर गद्य—पत्र, ताम्रपत्र, शिलालेख, वंशावली, पट्टावली, गुर्वावली आदि नाना रूपों में उपलब्ध है एवं साहित्यिक गद्य की भी वचनिका, बात, ख्यात आदि नाना विधाओं वाली अति समृद्ध परम्परा रही है।[1]

वचनिका शब्द सामान्यतः गद्य-पद्य मिश्रित रचना के लिए प्रयुक्त हुआ है, किन्तु आदर्श वचनिका उसे ही कहेंगे जिसमें गद्य भाग लगभग आधे के बराबर हो और उसे पढ़ने से यह लगे कि यहाँ प्रधानता गद्य की ही है, पद्य प्रयोग तो केवल कृति की सरसता वृद्धि की दृष्टि से ही हुआ है। अनिवार्यतः तुकान्त गद्य का प्रयोग वचनिका की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता कही जा सकती है।[2] वैसे तो राजस्थानी में वचनिका नामक काफी रचनाएं उपलब्ध हैं किन्तु अपने साहित्यिक सौष्ठव के कारण अचलदास खीची री वचनिका गाडण सिवदास री कही[3] और वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी री महेसदासौत री खड़िया जगा री कही[4] ही सर्वाधिक प्रसिद्ध है।

बात प्राचीन राजस्थानी गद्य साहित्य की सर्वाधिक समृद्ध विधा रही है। राजस्थानी में नाना प्रकार की बातें प्रभूत मात्रा में लिखी गई हैं जिनमें लौकिक जीवन के साथ ही-साथ ऐतिहासिक, धार्मिक एवं पौराणिक प्रसंगों से समान रूप में कथानक का चयन हुआ है। इन बातों में जीवन के विविध पक्षों पर सांगोपांग प्रकाश डाला गया है। इनका विस्तार कुछ ही पृष्ठों में लेकर सैंकड़ों पृष्ठों में हुआ है। गद्य के साथ साथ इनमें पद्य का प्रयोग भी होता रहा है। रोचकता और वर्णन की प्रधानता इनकी

---

१ राजस्थानी गद्य साहित्य पर स्वतन्त्र रूप में अध्ययन हो चुका है। इस दृष्टि से उल्लेखनीय कृतियां है।

(क) राजस्थानी गद्य साहित्य उद्भव और विकास डा० शिवस्वरूप शर्मा अचल

(ख) राजस्थानी गद्य शैली का विकास डा० रामकुमार वर्मा राज० वि० वि० पुस्तकालय जयपुर (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

२ वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी री महेसदासौत री खड़िया जगा री कही स काशीनाथ एवं रघुवीरसिंह (भूमिका पृ० सं० २८)

३ रचना काल–वि० सं० १५०० के आस पास

४ रचना काल वि० सं० १७१५

उल्लेखनीय विशेषताएँ कही जा सकती हैं। ख्यात रचना पठन हेतु नहीं अपितु सुनने हेतु होती थी। प्राचीन राजस्थानी साहित्य में विविध विषयों को लेकर इतना अधिक वात लिखी गई कि इनमें प्रतिनिधि रचना के रूप में किन्हीं दो चार वातों का उदाहरण दे पाना बड़ा कठिन है।

ख्यात ख्याति से व्युत्पन्न है। राजस्थानी में वातों की तरह ख्यातों की संख्या भी पर्याप्त रही है। ख्यातों में ऐतिहासिक दृष्टि की प्रधानता रही है किन्तु इतिहास तत्व की प्रधानता के कारण इनका साहित्यिक महत्त्व कम नहीं हुआ है। राजस्थानी ख्यातों में तात्कालिक सामाजिक जीवन एवं सांस्कृतिक चित्रण का बड़ा प्रभावी एवं प्रामाणिक अंकन हुआ है। इन ख्यातों में मुहणोत नैणसी री ख्यात[1] सर्वाधिक प्रसिद्ध रही है। यह ऐतिहासिक साहित्यिक भाषा-शास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से समान महत्त्वपूर्ण बन पड़ी है। इस ख्यात के अतिरिक्त अन्य दो उल्लेखनीय ख्यातें हैं—दयालदास री ख्यात[2] और बांकीदास री ख्यात[3]।

वचनिका वात और ख्यात के अतिरिक्त प्राचीन राजस्थानी गद्य की दवावैत सिलोका, वर्णक ग्रन्थ आदि अन्य रचनाएँ भी कलात्मक गद्य की दृष्टि से उल्लेखनीय बन पड़ी हैं।

समग्र रूप से प्राचीन राजस्थानी गद्य साहित्य की निम्नलिखित उल्लेखनीय विशेषताएँ रही हैं-

१ प्राचीन राजस्थानी गद्य में इतिहास तत्व की प्रधानता रही है। मध्यकालीन इतिहास की दृष्टि से राजस्थानी की इन गद्य रचनाओं का महत्त्व बहुत अधिक है।

२ राजस्थान के सांस्कृतिक जीवन की भव्य झांकी भी इन गद्य रचनाओं में देखने को मिलती है।

३ तात्कालिक सामाजिक जीवन लोक-विश्वासों रीति रिवाजों और परम्पराओं की सशक्त अभिव्यक्ति इन गद्य रचनाओं में हुई है।

संक्षेप में प्राचीन राजस्थानी गद्य साहित्य अपने प्रौढ़ परिष्कृत एवं कलात्मक रूप के कारण ही नहीं अपितु अपने विपुल भंडार के कारण भी प्राचीन उत्तर भारतीय भाषाओं में मराठी के अतिरिक्त साहित्य के गद्य क्षेत्र का अकेला भास्वर नक्षत्र है।

इस प्रकार की समृद्ध गद्य परम्परा वाली राजस्थानी भाषा का आधुनिक गद्य साहित्य यदि अपनी पूर्व परम्परा से भिन्न एक सर्वथा नये रूप में ही प्रकाश में आये तो यह कुछ आश्चर्यजनक अवश्य प्रतीत होगा किन्तु यह सही है। चूंकि आधुनिक राजस्थानी साहित्य में ही नहीं अपितु समस्त भारतीय साहित्य के गद्य क्षेत्र में उपन्यास कहानी नाटक, एकांकी निबन्ध रेखाचित्र संस्मरण आदि विधाओं का आज जो रूप स्वीकृत है वह सब पाश्चात्य साहित्य से गृहीत है अतः राजस्थानी गद्य क्षेत्र में भी इन विधाओं का अपनी पूर्व परम्पराओं से सर्वथा अलग नवीन रूप में प्रकट होना कोई अनहोनी बात नहीं है।

---

1 संकलन काल—सं० १७०७-१७२२
2 संकलन काल—सं० १८१८-१६४८
3 संकलन काल—सं० १८३८-१८६०

आगे इस खण्ड के अध्यायों में आधुनिक राजस्थानी गद्य साहित्य की निम्नलिखित विधाओं का प्रवृत्यात्मक अध्ययन विस्तार के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है—

१ उपन्यास
२ कहानी
३ नाटक
४ एकांकी
५ निबंध
६ रेखाचित्र और संस्मरण
७ गद्य काव्य

'नवल कथा शब्द को अपनाया है। श्री भरनिया द्वारा व्यवहृत यह शब्द आगे नही चल पाया और उनके परवर्ती उपयास लेखको ने उपन्यास शब्द को ही स्वीकार किया। कालक्रम की दृष्टि से 'कनक सुन्दर' के पश्चात चम्पा[1] का स्थान आता है और उसके प्रकाशन के दशाब्दियो बाद तक राजस्थानी मे उपन्यास नही लिखे गये। इस प्रकार राजस्थानी मे उपन्यास के क्षेत्र मे मिलने वाले वर्षो के इस अन्तराल का प्रभाव सम्पूर्ण राजस्थानी उपन्यास साहित्य पर पडा और कालावधि की दृष्टि से सात दशाब्दियां पार करने के पश्चात भी राजस्थानी उपन्यासो की संख्या १० से अधिक नही बढ पायी। उपन्यास के क्षेत्र मे आये इस व्यवधान को समाप्त कर पुन नये युग का सूत्रपात करने का श्रेय श्री श्रीलाल नथमल जोशी के 'आभै पटकी'[2] उपन्यास को है। इसके पश्चात एक ओर मकती काया मुळकती धरती[3], हूं गोरी किण पीव री[4], 'धोरा रो धोरी'[5] जसे सामाजिक जीवन पर आधारित उपन्यास प्रकाश मे आये तो दूसरी ओर लोकवार्ताओ पर आधारित तीडो राव[6] मा रा बल्लो[7] एव 'आठ राजकुवर[8] जसे लोक उपन्यास भी सामने आये। उपन्यासो के इस विकास क्रम मे उन उपन्यासो का उल्लेख भी असगत नही होगा जो नियमित रूप मे किसी मासिक या पाक्षिक पत्र मे प्रकाशित होने लगे थे किन्तु उनमे अधिकांश विभिन्न कारणो से कुछ ही अशो तक प्रकाशित होकर बन्द हो गये। ऐसे उपन्यासो मे उल्लेखनीय हैं—श्री किशोर कल्पनाकान्त कृत धाडवी'[9], श्री रामदत्त सांकृत्य कृत आभळनै[10] श्री पारस अरोडा कृत जाण्या अणजाण्या'[11] श्री दीनदयाल कुन्दन कृत गुवार पाठो[12] एव श्री लक्ष्मीनिवास बिरला कृत 'पन्नगी रो सराप।[13]

ऊपर राजस्थानी उपन्यास साहित्य की विकास यात्रा का जो एक संक्षिप्त परिचय दिया गया है उससे यह बात स्वत ही स्पष्ट हो जाती है कि सीमित संख्या मे प्रकाशित होने वाले राजस्थानी उपन्यासो की प्रवृत्तियां भी सीमित ही रही हैं। सामाजिक ऐतिहासिक आंचलिक रोमांटिक आदि

१ श्री नारायण अग्रवाल प्र० का० वि० स० १९८२ मारवाडी भाषा प्रचारक मण्डल, धामणगाव।
२ प्र० का० १९५६ ई० प्र० सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीटयूट, बीकानेर
३ अन्नाराम सुदामा प्र० का० १९६६ ई० प्र०—धरती प्रकाशन उदयरामसर
४ श्री यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, प्र० का० १९७० ई० प्र० राजस्थान भाषा प्रचार सभा जयपुर।
५ श्रीलाल नथमल जोशी प्र० का० ई० सन १९६८ प्र०—राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर
६ श्री विजयदान देथा प्र० का० वि० स० २०२२ रूपायन सस्थान बोरूदा
७ श्री विजयदान देथा प्र० का०—१९६६ ई० (द्वितीय सस्करण) प्र० रूपायन सस्थान, बोरूदा।
८ बाता री फुलवारी भाग—३ पृ० स० ७३, श्री विजयदान देथा, प्र० का० वि० स० २०२१ (द्वितीय सस्करण) प्र० रूपायन सस्थान बोरूदा।
९ ओळमो वर्ष १ अक—१ माघ २०११ विक्रम
१० हला (पाक्षिक)। इस उपन्यास का हिन्दी सस्करण प्रकाशित हो चुका है।
११ लाडेसर (कलकत्ता)
१२ हरावळ (बम्बई)। प्रस्तुत उपन्यास अब पूरा हो चुका है।
१३ प्रस्तुत उपन्यास सम्प्रति ओळमो (पाक्षिक) मे धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हो रहा है।

उपन्यासों के नाना भेदों (विषय-वस्तु के आधार पर किये गये) में जहाँ राजस्थानी उपन्यासों का क्षेत्र केवल सामाजिक उपन्यासों तक ही सीमित रहा है वहाँ उनमें प्रतिपादित विचारधारा एवं तत्त्वकीय दृष्टिकोण के आधार पर भी उन्हें अधिक वर्गों में विभाजित नहीं किया जा सकता। उनकी प्रमुख प्रवृत्ति तो आदर्शवाद की स्थापना ही रही है किन्तु साथ ही उनमें वर्तमान जीवन का यथातथ्य अंकन होने के कारण उनमें यथार्थवादी तत्त्वों की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। स्वतन्त्र रूप से भी दो एक उपन्यासों में आदर्श की अपेक्षा यथार्थ को अधिक महत्त्व दिया गया है अतः उनकी प्रमुख प्रवृत्ति यथार्थवाद और गौण प्रवृत्ति आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद की ओर रही है।

राजस्थानी में सामयिक सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ में लिखे गये आदर्शवादी उपन्यासों का प्राधान्य रहा है। राजस्थानी का प्रथम उपन्यास 'कनक सुन्दर' पूर्णतः एक आदर्शवादी उपन्यास है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने जहाँ एक ओर तात्कालिक समाज की अनेक समस्याओं एवं बुराइयों पर स्थान-स्थान पर स्वतन्त्र रूप से प्रकाश डाला है वहाँ दूसरी ओर उसने दो भिन्न आचार विचार वाले परिवारों की कहानी के माध्यम से अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। इसमें एक ओर बड़े भाई हजारीमल के परिवार की कहानी है—जो कि उन बहुत सारे मारवाड़ी परिवारों में से एक है—जहाँ अशिक्षा, फिजूलखर्ची एवं व्यर्थ के सामाजिक आडम्बर पारिवारिक सुख में घुन की तरह लगे हैं—तो दूसरी ओर उसके छोटे भाई मुरलीधर के परिवार की कहानी है—जो इन सामाजिक कुरीतियों को छोड़ चुका है एवं युगानुकूल बदलाव को तत्पर है। फलस्वरूप सुख एवं शांति में रहता उसका परिवार सबके लिए एक अनुकरणीय आदर्श बन जाता है और उपन्यासकार का अभीष्ट भी यही है। यह उसकी हार्दिक चाह है कि हजारीमल जैसा पारिवारिक जीवन बिताने वाले मारवाड़ी अपने दकियानूसी दृष्टिकोण को त्यागकर मुरलीधर के अनुरूप अपने पारिवारिक जीवन को ढालें।[1] 'चम्पा' में उपन्यासकार श्रीनारायण अग्रवाल ने विभिन्न सामाजिक समस्याओं को न उठाकर केवल वृद्ध विवाह की समस्या को उठाया है यद्यपि उसका अभीष्ट भी समाज-सुधार ही है। इस प्रकार 'कनक सुन्दर' एवं 'चम्पा' दोनों ही उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य तत्कालीन मारवाड़ी समाज की कुरीतियों से जन-साधारण को विरत करने का रहा है किन्तु दोनों में एक उद्देश्य होते हुए भी एक अन्तर स्पष्ट है। 'कनक सुन्दर' में जहाँ लेखक तत्कालीन सामाजिक जीवन की विकृतियों का पर्दाफाश करता है वहाँ वह एक आदर्श एवं अनुकरणीय चरित्र एवं परिवार की सृष्टि भी करता है किन्तु 'चम्पा' में केवल विकृतियों को उभारा गया है।

'कनक सुन्दर' और 'चम्पा' का यह आदर्शवादी दृष्टिकोण 'आभैपटकी' में भी लगभग उसी रूप में चित्रित हुआ है। इस उपन्यास के लेखक ने भी इसमें वर्तमान समाज की एक प्रमुख समस्या—विधवा विवाह को मुख्य रूप से उठाया है और प्रासंगिक रूप से अंधविश्वास (भूत प्रेत आदि में विश्वास) एवं कुरीतियों (बाल विवाह, पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, नारी अशिक्षा) आदि

1 ... दोनों ... उनमें मूँ बोधकर कुटुम्ब-कुटुम्ब बोध प्राप्त कर लेगा और ... मुरलीधर जी को अनुसरण करवा का विचार कर लेगा तो प्रयत्न मारो श्रम सफल समझूंगा।

भूमिका—'कनक सुन्दर'

अन्य अन्य समस्याओं का अंकन भी किया है। यहा भी 'कनक सुदर' की तरह एक ओर कुरीतिया के दुष्परिणामो का अंकन हुआ है और दूसरी ओर एक आदर्श परिवार (मोवन एव किसना के रूप म) की सृष्टि की गयी है। यह उपन्यास कनक सुदर से यदि किसी रूप म भिन्न पडता है तो केवल उन्ही अर्थो मे कि लेखक प्रस्तुत कृति म जहाँ-तहा स्वय आकर उपस्थित नही होता और न ही कनक सुदर की तरह सामयिक समस्याओ पर विस्तार से अपने विचार व्यक्त कर[1] मुख्य कथा मे व्यवधान उपस्थित करता है।

कनक सुदर' म चला आदर्शवाद का यह प्रवाह मरवती काया मुळकती धरती म आकर भी कम नही हुआ है हा उसका स्वरूप अवश्य ही थोडा परिवर्तित हो गया है। जहा प्रथम तीनो कृतियो म यह आदर्शवाद बडे स्थूल रूप म उभर कर सामने आया है वहा मरवती काया मुळकती धरती का लेखक बडी कुशलता स इस स्थूलता को बचा गया है। वस तो भारत चीन और भारत पाक सघष के परिप्रेक्ष्य म देखे तो प्रस्तुत कृति के रोम राम से फूटता धरती प्यार और जातीय एकता का सदेश देश की तात्कालिक आवश्यकता की ही उपज कहा जायगा किन्तु यह सदेश अपन सावजनीन रूप म कुछ ऐसा ह कि उसे देशकाल की सीमाओ म नही बाधा जा सकता।

'आभ पटकी के लेखक श्री श्रीलाल नथमल जोशी का ही एक अन्य उपन्यास धारा रो धोगे' यद्यपि पूणत एक व्यक्ति की जीवनी पर आधारित है तथापि उसम भी मुख्य पात्र के चरित्र को आदश रूप म सजोन म लगा सम्पूण लेखकीय कौशल उसे आदशवादी विचारधारा से अनुप्राणित रचना ही सिद्ध करता है। राजस्थानी उपन्यासकारो का आदश के प्रति यह मोह उस स्थिति म और अधिक स्पष्ट हो जाता है जबकि ऊपरी तौर पर पूणत यथाथवादी प्रतीत होने वाला श्री यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र कृत हू गोरी किण पीव री नामक उपन्यास भी प्रच्छन्न रूप म ईश्वर के अस्तित्व एव उसकी सवशक्तिमता की वकालत करता हुआ दृष्टिगत होता है।[2]

---

१ (क) 'विद्या बिना आप दुखी कुल दुखी गाव दुखी और देस दुखी। विद्या बिना आदमी सीग पू छ बिना को पशु जाणणो। घास चर नही जो पशु को मोटो भाग छ नही तो पशु बापडा भूखा मर जाता।

कनक सुदर पृ० स० ५

(ख) कागला ज्यू मरया ढोर ने तक बोकरे ज्यू का त्यू ब्राह्मण ब्याह औसर मौसर री खबर लता फिरे। पण आ बात समझ नही क दुनिया माहे मनुष्य देही घणी दुलभ छ। तिका माह ब्राह्मण री देही तो घणी घणी दुलभ छ।

'कनक सुन्दर पृ०स० ७८

(इसी भाति स्त्रियो की पराधीनता मारवाडी समाज की दुदशा शिक्षा का महत्ता औरतो की आभूषण प्रियता आदि नाना प्रसगो पर कनक सुदर का लेखक स्वतत्र रूप स अपने विचार व्यक्त करता चला गया है)

२ इण अनास्था र जुग मे जद नास्तिकता रो जोर है मिनख एक कूडी खुशी र लार गलो हो रयो है। तिरलोकी र नाथ न सुता गाळ या का है। उणारो मरयोडे ताई रो हाको कर दियो। इस वगत माय म्हारा अनुभव है इण सूनवाड र तप रो निचोड़ है—क एक अजाणी अदीठी हस्ती है जिकी आपा लोगा रा हस्ती री खिलाफत म है जिकी आपा र लीवा माय चालते

राजस्थानी उपन्यासकारो की आदर्श के प्रति रुझान उनके उपन्यासो के उद्देश्य मे निहित भावनाओ से तो स्पष्ट हो जाती है किन्तु उससे भी अधिक पात्रो के चरित्र निर्माण मे की गयी उनकी रुचि आदर्श के प्रति उनके आग्रह को और अधिक स्पष्ट करती है। कनक सुन्दर मे तो लेखक ने कनक और सुन्दर को पूर्ण आदर्श रूप मे प्रस्तुत कर दन की घोषणा अपनी भूमिका मे ही स्पष्ट कर दी है अत उसका हर घटना के पीछे अपने आदर्श चरित्र को सवारने का प्रयास स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। चम्पा मे यद्यपि लेखक ने ऐसे किन्ही घोषित आदर्श पात्रो की सर्जना नही की है तथापि पात्रो का सत एव असत की श्रेणियो मे विभाजन एव असत पात्रो की बडी ही कारुणिक एव दयनीय परिस्थितियो मे की गयी समाप्ति [1] लेखक की मन के प्रति गहरी आस्था का प्रकट करती है। इन दो उपन्यासो के अतिरिक्त आभपटकी मे भी पात्रो का सत और असत रूप मे ही चित्रण हुआ है। एक ओर मोवन एव रसना जसे पात्र हैं जिनके चरित्र मे लेखक ने हर अच्छाई को भरने का प्रयास किया है तो दूसरी ओर फूला एव तीजा जसे पात्र है जिनके चरित्र मे अच्छाई का एकान्तिक अभाव रहा है। सत और असत् श्रेणी के इन दो रूपो के अतिरिक्त उन पात्रो को भी जो अपना सहज मानवीय कमजोरियो के साथ उपस्थित हुए है अन्त मे हृदय-परिवर्तन' वाला नीति का सहारा लेकर नवनीयत वाले आदर्शपात्रो के रूप मे ढाल दिया गया है। पचायत के प्रधान रामनाथजी और रसिना के भाई शीवल्लभ इसी श्रेणी के पात्र है। कहने का तात्पर्य यही है कि इसमे पात्रो के चरित्र का विकास स्वाभाविक रूप मे न होकर नैतिकीय आदर्श के अनुरूप ही हुआ है।

पात्रो को अपने आदर्श के अनुरूप (नतिकतावादी के रूप मे) प्रस्तुत करने की यह परम्परा मरती काया मुळकती धरती' एव धोरा रो धोरी मे भी लगभग उसी रूप मे चली आई है। मरती काया मुळकती धरती मे जितने भी असत प्रवृत्ति वाले पात्र आय हैं उन सबको सड सड कर मौत का शिकार हुआ चित्रित कर लखक ऐसे कर्मों से जनसाधारण को विरत करने मे विशेष प्रयत्नरत दिखाई देता है। असत प्रवृत्ति वाले पात्रो मे दुराचारी ठाकुर और उसके सहायक तथा भ्रष्ट वाममार्गी साधक और उनकी सहयोगिनी को तो लखक ने तत्काल एक आदर्श पात्र बापू के हाथो यमलोक का रास्ता दिखला दिया है। इसके अतिरिक्त भी जीवन भर विषय विकारो मे फसे रहने वाले पा वाले बाबा और विधवा दारोगण जसे पात्रो को अपने अन्त समय मे सड सड कर मरते हुए चित्रित कर यह सकेत करने का प्रयास किया गया है कि असत काय करने वालो का अन्त सदैव बुरी स्थिति मे ही होता है। धोरा रो धोरी मे यद्यपि सत और असत की श्रेणी मे पात्रो का वर्गीकरण नही किया जा सकता किन्तु फिर भी सभी प्रमुख पात्रो पर लेखक ने अपने आदर्श वादी दृष्टिकोण को थोपा है। उपन्यास का

जीवण माय कुचमादया कर है आडी पसरे है। बा सगनी कुएसी है ? बहात दिना री धोटाई मथाई पछ म्ह समभायो हू—वो है ईश्वर कुदरत अर आतम सगती। पण म्ह उगन ईश्वर इज कबू ना। हू गोरी किण पीवरी पृ० स० २ एव ३

१ चम्पा मे सभी असत पात्रो का अन्त बडी ही दयनीय स्थिति मे हुआ है। वृद्धावस्था मे विवाह करने वाले सेठ भादुलाल को न केवल अपनी युवा पत्नी एव ५० हजार रुपयो से हो हाथ धोना पडता है, अपितु बडे भारी अपयश का भागी भी बनना पडता है। इसी भाति उपन्यास के पाखण्डी साधु स्वामी लफगानन्द एव उनके शिष्य वाचालदास जल मे पडे सडते हैं और जूनालाल चम्पालाल और नाथूलाल जसे धूत भी बुरी मौत मरते हैं।

नायक टम्साटोरी केवल नतिग्ना की दुहाई देकर रात्रि के नीरव एकान्त में मनपसन्द के लिए आगे उसकी अपनी प्रेयसी को रोक देता है और अन्तिम समय में कवल एक शान्ति न नर देने की भी उसकी याचना का ठुकरा देता है तो यूरोपीय संस्कृति में पली उसकी प्रेयसी डारोथी इस सबके बावजूद भी अपनी करुणा की सम्पत्ति उसी के चरणों में (सच्चे प्यार की दुहाई देकर) समर्पित करना चाहती है और यश नहीं वह अन्त में उसके वियोग में तिल तिल कर अपने प्राण होम देती है। इस प्रकार 'कनक सुन्दर' से लेकर 'घोरा रो घोरी' तक सभी उपन्यासों में पात्रों के चरित्रांकन में नागरजी का आदर्शवादी दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता है।

नागरजी के इस आदर्शवादी दृष्टिकोण ने केवल चरित्रांकन को ही प्रभावित किया है अपितु घटना संयोजन भी उससे प्रभावित हुआ है। 'कनक सुन्दर' में जहाँ हजारीमल की नाभी वृत्ति एवं मुरलीधर के ईमानदार स्वभाव को प्रकट करने के लिए, अंग्रेजी साहब से कपड़े के पास जानबूझ कर अधिक लगाने और मुरलीधर द्वारा अपने भाई की उस गलती को सुधार करते हुए क्षमायाचना करने की घटना गढ़ी गयी है, वहाँ 'आभपटकी' में मावन और विमला के चरित्र को उज्जवल भाव से प्रस्तुत करने के ही उद्देश्य से रेल के डिब्बे में कंचन ना आत्मियों के ही रूपे के मिलन और इसीलिए दोनों के घर लौट आने की घटना का संयोजन हुआ है। 'घोरा रो घोरी' में टम्सीटोरी के उच्चादर्शों को व्यंजित करने के लिए डारोथी के प्रणय प्रसंग की सर्जना की गयी है और 'मरूनी काया मुळकती धरती' में तो राष्ट्र प्रेम एवं साम्प्रदायिक एकता का आदर्श प्रस्तुत करने की दृष्टि से ही सीमा कोरी के लगभग ४० पृष्ठों के प्रसंग का अनावश्यक विस्तार हुआ है। कहने का तात्पर्य यही है कि इन उपन्यासों में क्या घटना-संयोजन और क्या चरित्रांकन सभी नागरजी के आदर्शवादी दृष्टिकोण से अनुप्राणित हैं।

ऊपर के विवेचन में राजस्थानी उपन्यासों में वर्णित आदर्शवाद का जो व्यापक प्रभाव दिखलाया गया है उसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन कृतियों में यथार्थ की उपेक्षा की गयी है। वस्तुतः इनके लेखकों ने अपनी बात को अधिक विश्वसनीय एवं स्वाभाविक बनाने की दृष्टि से यथाशक्य यथार्थ का सहारा लिया है। यह सही है कि वे किसी एक आदर्श स्थिति की ओर अपने पाठकों को प्रेरित करना चाहते हैं किन्तु उसकी व्यावहारिकता प्रमाणित करने के लिए उन्होंने यथार्थ प्रसंगों एवं स्वाभाविक घटनाओं का ही सहारा लिया है। 'कनक सुन्दर' से लेकर 'घोरा रो घोरी' तक में जिन सामाजिक स्थितियों का अंकन हुआ है उनकी यथार्थता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। 'कनक सुन्दर' में तो जहाँ तक सामयिक सामाजिक स्थितियों का प्रश्न है लेखक ने बड़ी निर्ममता से कटु से कटु सत्य (यथार्थ) को भी अपने प्रकृत रूप में प्रस्तुत करने में किंचित भी संकोच नहीं किया है।[1] 'चम्पा' में भी असत् प्रवृत्तियों के दयनीय अन्त के अतिरिक्त यथार्थ की उपेक्षा नहीं की गयी है। सेठ घालकचन्द जैसे यश लिप्सु व्यक्तियों का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है उससे लेखक की यथार्थवादी दृष्टि का परिचय मिलता

---

१ 'तिका ब्राह्मण-स्नान, संध्या गायत्री वहहीन होकर आचार विचार सब दूर करने कागला के ज्यू मरया मुरदा ने धूडता फिरै। हर हर!! म्हा दुख की बात छ दशा श्रेष्ठ वर्ण का लोग घेला घला के ताई भलती-मलती जगा भलता सलता के बारणे भलतो-सलता अन्न ग्रहण करबा लाग्या और धक्का खाबान जाव।' 'कनक सुन्दर' पृ० सं० ७८

है। आभ पटका में चित्रित समाज अपनी शुद्ध यथार्थवादी स्थितियों के आधारित कभी अविश्वसनीय रहा है ? मैना रावत मुठानी धरती में तो कथा का विकास ही इस ढंग से हुआ है कि यादों के प्रसंग से पूर्व तो पाठक वहाँ में ही इस कदर खोया रहता है कि उसे कहीं भी यह प्रतीत नहीं होता कि कोई कल्पित रचना उसे कहा जा रहा है। घटनाएँ स्वाभाविक रूप से एक के बाद एक घटित होती चलती हैं और उनके माध्यम से राजस्थानी समाज का जो एक चित्र उभरता है वह अपनी प्रामाणिकता के लिए किसी प्रकार के प्रमाण की अपेक्षा नहीं रखता। धोरा रा धारी में पन्ना और उसके परिवार की कहानी कही गयी और उससे सम्बन्धित पात्रों का चारित्रिक विकास जिन स्वाभाविक स्थितियों में हुआ है— उसमें उभरे यथार्थ तत्त्व के कारण ही यह गौण कथा पाठकों को मुख्य कथा की अपेक्षा अधिक प्रभावित करती है। हूँ गारी बिग पीवरा उपन्यास तो अपने यथार्थवादी स्वरूप के कारण ही राजस्थानी के शेष अन्य उपन्यासों से अलग अस्तित्व बनाये हुए है। उसमें न तो पात्रों का मन और असत् रूप में विभाजन किया गया है और न उसके घटना संयोजन के प्रति यह कहा जा सकता है कि उनको मजबूरन किन्हीं विशेष प्रवृत्तियों को उजागर करने की दृष्टि से जुटाया गया है। उपन्यास के सभी पात्र अपनी समस्त अच्छाइयों बुराइयों को लिए हुए अत्यन्त विश्वसनीय रूप में चित्रित हुए हैं। फलत वे अपनी समस्त मानवीय कमजोरियों के बावजूद भी एकदम पाठकों की घृणा या वितृष्णा के पात्र नहीं बन गये हैं। माधो जैसे पात्र के चारित्रिक पतन का प्रश्न जिन परिस्थितियों के मध्य दिखाया गया है उसके कारण वह अपने पतित रूप में भी पाठकों की घृणा या आक्रोश का भाजन नहीं बनता है सहानुभूति का भाजन वह भले ही बने।

राजस्थानी के सामाजिक उपन्यासों में जहाँ क्रमशः आदर्शवादी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी, एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण का प्राधान्य रहा है वहाँ राजस्थानी के लोक उपन्यासों में एक भिन्न ही प्रवृत्ति प्रस्फुटित हुई और वह है—व्यंग्य की। तीडोराव और मा रो बन्ळा इस दृष्टि से विशेष उल्लेख्य हैं। प्रतीकवादी शैली में लिखा गया तीडोराव उपन्यास वस्तुतः तीडोराव से सम्बन्धित विभिन्न नाटकीय घटनाओं का ही समुच्चय नहीं है अपितु वह ऐसे लोगों का प्रतीक है जो बिना किसी प्रकार की योग्यता के केवल तिकड़म एवं संयोग की सीढ़ियों के सहारे की प्रतिष्ठा के सर्वोच्च शिखर पर जा पहुँचते हैं। प्रस्तुत कृति के माध्यम से लेखक ने ऐसे तत्त्वों को प्रोत्साहित करने वाली आज की सम्पूर्ण व्यवस्था पर ना... तीव्र व्यंग्य प्रहार किया है। साथ ही साथ लेखक ने धार्मिक आडम्बरों अलौकिक तत्त्वों की स्थिति एवं अफवाहों के बाजार पर भी कड़ी चोट की है। मा रो बन्लो के सृजन का तो मुख्य उद्देश्य ही सामन्ती समाज की दुर्व्यवस्था के एक एक पहलू को निर्ममता से प्रकट करना रहा है[1] अत लेखक

---

१ मा रो बन्ळो नामक लोक कथा भी ऐसी ही (एकतन्त्रीय शासन व्यवस्था पर तीव्र प्रहार करने वाली) कथाओं की परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। लेखक ने कथा को मौखिक रूप में सुनते ही यह निर्णय लिया कि वह इस कथा को राजस्थान के सामंती समाज की दुर्व्यवस्था का एक उपन्यास बनाना चाहता है। लोक कथा के सम्पूर्ण तत्त्वों को ज्यों का त्यों सजीव और सशक्त बनाये रखते हुए भी वह कथा को लिखित रूप में कुछ ऐसे सत्यों की ओर भी संकेत करना चाहता जो सामन्ती समाज की विकृतियों और राजस्थान में हाल ही समाप्त हुए राज्य सत्ता की परिस्थितियों पर प्रकाश डाल सकें।
मा रो बन्ळो—एक विवेचन कोमल कोठारी
मा रो बन्ळो भाग—२ पृ० सं० ६

उस व्यवस्था के किसी भी कमजोर बिन्दु पर तीखा व्यंग्य प्रहार करने में नहीं चूका है। श्री कोमल कोठारी के अनुसार तो प्रस्तुत कृति 'सामन्ती-व्यवस्था का एक व्यंग्यपूर्ण महाकाव्य है।'[1] यह बात सही है कि प्रस्तुत उपन्यास में लेखक को जहां कहीं भी अवसर मिला है उसने भरपूर चुटकियां ली हैं किन्तु सम्पूर्ण कृति को पढ़ने के पश्चात यह भी स्वीकारने में किसी को आपत्ति नहीं होगी कि उपन्यास की सर्जना एक विशेष राजनैतिक विचारधारा (मार्क्सवाद) से प्रेरित प्रोत्साहित होकर की गयी है। फलतः कई स्थल पर वर्णन अतिवादी रूप एवं लेखक के विशेष राजनैतिक विचारों के आग्रह के कारण अस्वाभाविक बन गये हैं। विशेष रूप से राजाओं की मूर्खता और चापलूसों की चाटुकारिता का जो वर्णन हुआ है वह काफी अतिरंजनापूर्ण लगता है।

राजस्थानी उपन्यासों में जो एक अन्य प्रवृत्ति उभरी है वह है—आंचलिकता की। वैसे तो सोद्देश्य आंचलिकता के अंकन में कोई भी लेखक प्रवृत्त नहीं हुआ है किन्तु अधिकांश उपन्यासों के कथानक का सीधा सम्बन्ध राजस्थान के किसी विशेष अंचल से होने के कारण उनमें स्वतः आंचलिक प्रभाव उभर आया है। मरती काया मुळकती धरती में राही रा भोमिया से अहर्निश जंगलों में घूमने वाले के जीवन पृष्ठों को अंकित करने में स्वतः ही मरुभू और मरु प्रकृति का अच्छा-खासा चित्रण हो गया है। इसके अतिरिक्त घटनाओं के प्रवाह में जिन लोक मान्यताओं एवं लोक विश्वासों का अंकन सहज ही हुआ है—उनमें भावन स्थानीयता के तत्वों को अनदेखा नहीं जा सकता। ऐसे प्रसंग हूं गोरी किण पीव री' एवं 'धोरा रा धोरी' में भी आये हैं जहां स्थानीय रीति रिवाजों एवं परम्पराओं का अंकन किंचित विस्तार से हुआ। 'हूं गोरी किण पीवरी' में तो लेखक फिर भी गीत को दो चार कड़ियां[2] ही गुनगुना कर मूल कथा में खो गया है, किन्तु 'धोरा रो धोरी' में तो पन्ना के विवाह के प्रकरण[3] में विवाहोत्सव पर सम्पन्न की जाने वाली स्थानीय परम्पराओं का विस्तार से वर्णन हुआ है।

आंचलिकता की दृष्टि से 'आभळ'[4] की चर्चा किंचित विस्तार से करना असंगत न होगा। यद्यपि यह राजस्थान के दसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया एक ऐतिहासिक उपन्यास है किन्तु इसमें लेखक ने एक अंचल विशेष की प्राकृतिक स्थिति एवं वहां के लोक जीवन के अंकन में जो विशेष रुचि ली है, वह इसे आंचलिक उपन्यासों से धरातल पर ला खड़ा करता है। उपन्यास की मूल कथा से पूर्व जहां लेखक ने आंचलिकता एवं ऐतिह्यम शीर्षक के अन्तर्गत वहां की भौगोलिक स्थिति का विस्तार से परिचय दिया है वहां उपन्यास में होने जैसे उत्सवों को भी आंचलिक रंग में रंगकर प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें अन्यत्र भी प्रसंगानुकूल लोकगीतों आदि का समावेश किया गया है।

---

१ मा रा बदळा पृ० सं० १५

२ बाकानेर राज। गरीब जात रा बीनणी गुनाया दरदील सुर में ओळूं गावे है —

सावणी ही चावळ राळ

बाई सूरज। वयू गयी ओ।

नगर बारोटा—रा लाड

बाई सूरज—क्यूं गयी ओ (हूं गोरी किण पीवरी पृ० सं० ३)

३ धोरा रो धोरी, पृ० सं० ८०

नारे उपन्यासों की आंचलिकता से सहज ही गहरा लगाव होता है। क्षेत्र विशेष के लोक विश्वासों एवं मान्यताओं के साथ-ही-साथ उस अंचल की परम्पराओं का भी विशेष प्रभाव उनमें स्पष्ट लक्षित किया जाता है। इस दृष्टि से मा रो बदळो विशेष उल्लेख्य बन पड़ा है। राजस्थान के सामन्ती समाज विशेष रूप से राजदरबारों एवं सामन्तों से सम्बद्ध जीवन का बड़ा प्रभावी चित्र प्रस्तुत उपन्यास में उभरा है। लेखक ने उस व्यवस्था के सूक्ष्म से सूक्ष्म तन्तु को अपनी अंतर्भेदिनी दृष्टि के सहारे बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। राजा के दैनंदिन जीवन के आचरण, प्रजा और उसके सम्बन्धों एवं राज्य-संचालन विधि में स्थानीयता का रंग विशेष रूप से उभर कर सामने आया है।

औपन्यासिक तत्वों की दृष्टि से विचार करने पर लगता है कि राजस्थानी में चरित्र चित्रण प्रधान उपन्यासों का ही प्राधान्य रहा है। कहीं कहीं तो यह तत्व इतना अधिक उभर कर प्रकट हुआ है कि घटना और उसके बीच सन्तुलन ही बिगड़ गया है और कई घटनाएं अस्वाभाविक एवं अतिरंजनापूर्ण लगने लगती हैं। धोरां री धोरी में टस्सीटोरी की अध्ययन प्रियता और कुशाग्र बुद्धि की ओर इंगित करने के लिए लेखक ने समुद्रीय तूफान की जिस घटना का संयोजन किया है—वह अपनी अस्वाभाविकता के कारण पूरे उपन्यास का मजा किरकिरा कर देती है। ऐसे भयंकर तूफान में—जबकि जहाज के डूबने की नौबत आ गयी थी—टस्सी का स्थिर होकर अध्ययन में लगा रहना कैसे सम्भव था? इसी प्रकार यात्रियों का जहाज को छोड़कर डोंगियों के सहारे उस तूफान से बचने का प्रयास करने को उद्यत होना और पश्चात टस्सी द्वारा समझाये जाने पर अपने इस प्रयास की व्यर्थता का भान उन्हें होना बिल्कुल अस्वाभाविक बात है। जहाज के कप्तान और अन्य यात्रियों को इतना स्थूल बुद्धि का कैसे माना जा सकता है कि वे उस भयंकर तूफान में (जबकि इतना बड़ा जहाज भी डूबने की स्थिति में पहुँच गया हो) जहाज को छोड़ मामूली डोंगियों के सहारे समुद्र पार करने का विचार करें। आभै पटकी में आये एसे प्रसंग भी जिनकी योजना अर्जित पात्र के किसी विशेष गुण या अवगुण का अंकन करने की दृष्टि से हुई है—काफी खटकने वाले हैं।

पात्रों के चरित्रांकन में मुख्यतः दो शैलियों का उपयोग इन सभी उपन्यासों में हुआ है। एक ओर लेखक स्वयं अपनी ओर से पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं[1] और दूसरी ओर घटनाओं के स्वाभाविक विकास क्रम में उनके चरित्र के प्रमुख बिन्दुओं को उजागर किया गया है। यहां भी दो स्थितियां रही हैं—एक ओर कनक सुन्दर, चम्पा, आभै पटकी एवं धोरां री धोरी जैसे उपन्यासों में पात्रों के चरित्र की मोटी मोटी रेखाओं को ही अंकित किया गया है तो दूसरी ओर मरवणी व मा रो बदळो एवं हूं गोरी किण पीव री में घटना प्रवाह के साथ उनके गिरते पात्रों की विभिन्न मनःस्थितियों के चित्रण और उनके अन्तर्द्वन्द्व को प्रमुखता देने में विशेष ध्यान दिया गया है।

राजस्थानी में अधिकांश उपन्यासों में पात्रों को वर्ग प्रतिनिधि (टाइप) रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति प्रमुख रही है। आभै पटकी की सिमला आदि अभी गहरा सारनाथ विधवाओं के जीवन

1 मनर घर जा को माना को स्वभाव घणो नाव मीर हुनरी थो। घर मांय रात दिन फिर फिर [illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]

की दर्दभरी दास्तान कहती है तो उसी उपन्यास की एक अन्य पात्र 'फूला'[1] भी किस समाज में कब और कहाँ नहीं मिल जायगी ? 'मवती काया मुळकती धरती' के लेखक ने तो स्पष्टतः ही स्वीकार किया है कि उसके उपन्यास में आये पात्र गाँव गाँव में देखने को मिल जायेंगे। ये नाम तो केवल प्रतीक भर हैं।[2] इसी प्रकार 'भा रो बल्लो' के राजा उनके दरबारी एवं अन्य सामान्यजन सामन्ती शासन-व्यवस्था में किस काल और किस देश में नहीं मिलेंगे ? तीडोराव का नायक 'तीडा' भी व्यष्टि रूप में नहीं अपितु अपने प्रतीक रूप में ही महत्त्वपूर्ण बनता है। वह ऐसे पाखण्डियों का प्रतीक है, जो केवल सयाणपे के बल पर ही अपने क्षेत्र के सर्वोच्च आसन पर जा बैठते हैं। व्यष्टि की प्रधानता देने में 'हूँ गोरी किण पीव री' के लेखक ने ही विशेष उत्साह दिखाया है या फिर जीवनी प्रधान उपन्यास 'धारा रो धारी' में नायक का व्यक्तिगत चरित्र उभरकर पाठकों के सामने आया है।

शैली की दृष्टि से अधिकांश उपन्यासों में वर्णनात्मक शैली का ही सहारा लिया गया है। लेखक स्वयं सारी कथा को कहते चले गये हैं। 'मवती काया मुळकती धरती' ही एक ऐसा उपन्यास है जिसमें आत्मकथात्मक शैली को अपनाया गया है। उपन्यास की नायिका सुगनी (नानी) अपनी सारी रामकहानी स्वयं सुनाती है। उपन्यास में आई गौण कथाओं के पात्र—बापू मा (पोताली माजी) और भीमा बाबा भी लगभग अपना सारा जीवन वृत्तान्त स्वयं ही सुनाते हैं। लेखक स्वयं सारी कथा में एक श्रोता के रूप में उपस्थित रहा है और बीच-बीच में प्रसंगानुकूल अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कर, कहीं एकरसता को भंग करता है तो कहीं कथा को कोई वांछित मोड़ देने में सहायक बनता है और कहीं कथा की गति प्रदान करने का निमित्त। प्रतीक शैली का उपयोग 'तीडाराव' में विशेष रूप से हुआ है। 'तीडाराव' जो कि आज तक एक सामान्य लोककथा का नायक था लेखकीय कौशल के कारण 'मिथ्या-प्रतिष्ठा' का प्रतीक बन गया है। उसके सम्बन्ध में एक आलोचक ने तो यहाँ तक आशा प्रकट की है कि विजयदान का यह 'तीडाराव' शीघ्र ही विश्व-साहित्य के विशिष्ट प्रतीकों में अपना स्थान बना लेगा।[3]

---

१ फूला (मालण) राजस्थानी वातों का बहुपरिचित बदनाम चरित्र रहा है। इसका व्यवसाय दौयकम और शाह (हाजी) दो सुखी परिवारों या व्यक्तियों में वैमनस्य पैदा करना रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में भी यह लगभग अपने उसी रूप में ही चित्रित हुई है।

२ 'नानी तूँ एक गाव म नी अर न एक घर म ही। तू तो पूरा आखे जिया धरती पर है। थारी आ बात एक थारे मन री को है नी गूगी। थारी नणद थारा ठाकर थारो पाग्राळा वाळो अर थारी बान्सा ड धरनी म्यूँ कदेइ को मरनी। .. छागी स्यूँ छोटी बस्ती म ही आ मायला कोई न कोई नावसी ही अर नाचता ही रसी।

मवती काया मुळकती धरती—पृ० स० १४४

३ 'प्राणधाता असीम स्वर्ण लिप्सा का प्रतीक 'राजा मिदास' हवाई महत्त्वाकांक्षा का प्रतीक 'नेक चिल्ली' आमरे नाम की ओट में बहुत अमानता का प्रतीक 'बुभागर' नगर सूदखोरी व बहुत लालच का प्रतीक 'शाइलाक' सामन्ती मूर्खताओं व खयाली वीरता का प्रतीक 'डान क्विग जॉट', करुणा दया और परोपकार का प्रतीक 'हातिमताई' ये सभी इस क्षण भंगुर संसार के अमर नायक हैं। मनुष्य की आन्तरिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले ये नायक चाँद-सूरज की भाँति हमेशा जगमगाते रहेंगे। इन नायकों के परिवार में नूतन 'तीडाराव' के रूप में एक नई वृद्धि की है।'

सम्मति'—'तीडाराव' कोमल कोठारी)

कहानी

राजस्थानी का प्राचीन कथा साहित्य पर्याप्त समृद्ध रहा है। सत्तरहवीं शताब्दी से ही राजस्थानी में विभिन्न विषयों को लेकर वातां लिखी जाने लगी जिन्हें वात संज्ञा से अभिहित किया गया है। ये वातें गद्य पद्य तथा मिश्रित रूप में, लिखित एवं मौखिक दोनों ही रूपों में प्रभूत मात्रा में उपलब्ध हैं। इनकी अपनी कुछ शिल्पगत विशेषताएँ हैं जो इन्हें शेष भारतीय कथा साहित्य से अलगाती हैं किन्तु जिसे हम आज कहानी नाम से जानते हैं उसका इन वातों से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि कहानी का जो एक विशिष्ट स्वरूप हमने स्वीकारा है वह पाश्चात्य साहित्य की देन है। अतः आज कहानी के नाम से जो कुछ लिखा जा रहा है शिल्प विधि की दृष्टि से उसका सीधा सम्बन्ध अंग्रेजी 'शार्ट स्टोरी' से है, पुरानी राजस्थानी वात से नहीं।

राजस्थानी में कहानी लेखन का सूत्रपात सीधे पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा प्राप्त कर नहीं हुआ अपितु बंगला मराठी एवं हिन्दी साहित्य से प्रेरित होकर राजस्थानी साहित्यकार ने इस विधा को स्वीकारा। हिन्दी कहानी जहां मूलतः बंगला साहित्य से प्रेरित रही है वहां राजस्थानी कहानी के लिए बंगला के साथ साथ मराठी साहित्य भी समान रूप से प्रेरणा स्रोत रहा है। आधुनिक राजस्थानी साहित्य के प्रारम्भिक चरण के प्रायः सभी गद्य लेखक प्रवासी राजस्थानी थे जिनका सम्बन्ध बंगाल की अपेक्षा महाराष्ट्र से अधिक रहा।

राजस्थानी में उपन्यास और नाटक की भांति पाश्चात्य शैली की कहानी लिखने का प्रथम प्रयास भी राजस्थानी के भारतेन्दु श्रीयुत शिवचन्द्र जी भरतिया ने ही किया। कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले हिन्दी मासिक 'वैश्योपकारक' में आपकी प्रथम कहानी 'विश्रान्त प्रवासी'[1] नाम से वि० सं० १९६१ में प्रकाशित हुई। भावपूर्ण सरस गद्य तथा संस्कृतनिष्ठ प्रवाहमयी शैली इस कहानी की उल्लेखनीय विशेषता है।[2] इसके पश्चात् श्री गुलाबचन्द नागौरी श्री शिवनारायण

---

१ वैश्योपकारक वर्ष १ अंक ३ पृ० सं० ४७

२ 'वा भावमयी मूर्ति पावन् जमीन ऊपर भाव लिखती हुई अश्रुधारा सूं लेखन करती, हृदय ने कंपाती हुई दृष्टि ने तिरोहित करती हुई सुख ने आच्छादित करती हुई कटाक्ष बाणांसूं रस्ता रोकती हुई मनन हरण करती हुई मधुर, आनन्दहीन, चपल उदास गलित-वदना प्रत्यक्ष करुणरस की नदी म्हारा निःसहाय हृदय ने बहा रही है डुबा रही है और प्राण व्याकुल कर रही है। प्रेम भरी-नहीं नहीं विचित्र विषभरी दृष्टि म्हारा शरीर मांह सर्वत्र व्याप्त कर मन उन्मत्त कर दूर हो गई और अन्तर्गत कर जाने से शून्य कर गई।

वैश्योपकारक वर्ष १ अंक-३ पृ० सं० ४७-४८

तोशनीवाल, पंडित छोटेराम शुक्ल प्रभृति लेखकों ने सामाजिक जीवन को आधार बनाकर लिखी गयी कहानियां मिलती हैं जिनमें सुधार एवं उपदेश का स्वर सर्वोपरि रहा है। इस दृष्टि से श्री शिवनारायण तोशनीवाल की विद्यापरदवतम[1] स्त्री शिक्षण को श्रोनामा[2] श्री गुलाबचन्द नागोरी की बगी राज[3] एवं बेटा की बिकरी तथा बहू की खरीदी[4] आदि कहानियां उल्लेखनीय बन पड़ी हैं। इन कहानियों में विशेष रूप से तात्कालिक मारवाड़ी समाज की किसी एक समस्या को आधार बनाया गया है। प्रारंभ में यथार्थवादी वातावरण की सृष्टि करते हुए अन्त में इन लेखकों ने आदर्श का अनुसरण किया गया है। चूँकि इन लेखकों का उद्देश्य केवल मनोरंजन की दृष्टि से कहानी लिखना नहीं रहा अतः उपदेश एवं सुधारवादी प्रवृत्ति को भी वे इन कहानियों में समान रूप से महत्त्व देते रहे हैं। तभी तो शिवनारायण तोशनीवाल जैसे कहानी लेखकों ने अपनी कहानियों के शीर्षक के नीचे एक मनोरंजक एवं बोध प्रद बात या एक उपदेशप्रद और मनोरंजक बात लिखकर अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दिया है।

उपदेश एवं सुधारवादी दृष्टिकोण के प्रमुख होते हुए भी ये कहानियाँ प्राचीन कहानियों से सर्वथा भिन्न पड़ती हैं क्योंकि इनमें न तो कोई अतिमानवीय पात्र ही आया है और न ही किसी अलौकिक घटना प्रसंग का समावेश इनमें हुआ है। इसके विपरीत इनका नयापन इनमें उभरा सजीव वातावरण इनके पात्रों का स्वाभाविक चरित्रांकन अलंकरणहीन बोलचाल की भाषा का प्रयोग आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो कि इन्हें आधुनिक कहानी के ही अधिक निकट की सिद्ध करती हैं। यही नहीं अपने शिल्प में भी ये कहानियाँ आधुनिक कहानी के शिल्प से ही मिलती हैं। इस दृष्टि से श्रीयुत गुलाब चन्द नागोरी का बेटी की बिक्री और बहू की खरीदी का प्रारम्भिक अंश द्रष्टव्य है जिसमें एक ओर घरेलू जीवन का एक बहुत ही स्वाभाविक एवं सशक्त चित्र अंकित हुआ है तो दूसरी ओर एक था राजा वाली शैली को भी बहुत पीछे छोड़ दिया गया है—

दिन भर बेपार में ही मगन रहशो के की घर की भी फिकर राखशो ? टाबरां की सगाया करणी है क नहीं ? क ध्यान कंवारा ही राखणा है ? दस पाँच बार बात चलाई पण मुणी अणमुणी कर गया आ काइं बात !'' लिछमी की माँ लिछमी का काकाजी अमरचन्दजी न बोली।

फिकर जिकर तो सब है पण सगाया कोई गैला म पड़ी है ? आज चार छः मीनाशू या ही वा फिकर लाग रही है पण कुछ सगत लागे नहीं।' अमरचन्दजी जवाब दीनो।

सगत नहीं लागवाने काइं हुयो मन मोटो करयोर लागी सगत। हजार पाच सौ बता सुन्दर वाइं वाल्या।[5]

---

१ पचराज वर्ष २ अंक २ (वि० सं० १६७३) पृ० सं० ५४
२ वही वर्ष २ अंक ४-५ पृ० सं० ११६
३ माहेश्वरी वर्ष २ अंक ३-४ (वि० सं० १६६६), पृ० सं० ७७
४ पचराज वर्ष २ अंक ३ पृ० सं० ६०
५ बेटी की बिक्री और बहू की खरीदी श्री गुलाबचन्द नागौरी
पचराज वर्ष २ अंक ३ पृ०सं० ६०

इस प्रकार आधुनिक राजस्थानी कहानी के प्रारम्भिक चरण में सामाजिक धरातल पर लिखी गयी सुधारवादी कहानियों का बोलबाला रहा। राजस्थानी कहानी के इस प्रथम चरण के विषय में एक बात और भी उल्लेखनीय है। कतिपय आलोचकों ने श्री भगवतीप्रसाद दारूका की हिन्दी कहानियों—[एक मारवाड़ी की घटना (वि०सं० १९७२) और एक मारवाड़ी की बात (वि०सं० १९८५)] जिनमें राजस्थानी पात्रों का वार्तालाप भर राजस्थानी में हुआ है—को राजस्थानी कथा साहित्य में एक नया मोड़ प्रदान करने वाली रचनाएं बतलाया है।[1] किन्तु इन कहानियों के संवाद भर राजस्थानी में होने से ही ये कथा रचनाएं राजस्थानी कहानी साहित्य को एक नया मोड़ प्रदान करने वाली रचनाएं कैसे बन गयी? जब कि राजस्थानी में स्वतन्त्र रूप से आधुनिक शैली की कहानियां उनसे १०—११ वर्ष पूर्व ही लिखी जाने लगी थीं और जहां तक हिन्दी कहानी में पात्रों के वार्तालाप में राजस्थानी भाषा के प्रयोग का प्रश्न है तो श्री दारूका की उक्त कहानियों से काफी पहले प्रकाशित पंडित माधवप्रसाद मिश्र की लच्छी की बहादुरी[2] में इस प्रयोग को अपनाया जा चुका था।

इस प्रकार प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों ने कहानी के क्षेत्र में जिस युग का सूत्रपात किया सामाजिक जीवन के आधार पर जिस धारा को प्रवाहित किया वह अविकल रूप से प्रवाहित नहीं हो पाई है अपितु बीच में ही अवरुद्ध हो गई। विभिन्न कारणों से प्रवासी राजस्थानी साहित्यकार उस धारा को गतिमान बनाये रखने में समर्थ नहीं हुए और राजस्थान में रहने वाले साहित्यकारों से इस दिशा में किसी प्रकार का सहयोग न मिल पाने के कारण आधुनिक राजस्थानी कहानी का वह जीवन्त एवं पुष्ट प्रवाह असमय ही कुंठित होकर समाप्त हो गया।[3] लगभग बीस वर्ष के अन्तराल के बाद ही श्री मुरलीधर व्यास और श्रीचन्द्रराय प्रभृति लेखकों के प्रयास से आधुनिक राजस्थानी में पुनः कहानी-लेखन प्रारम्भ हुआ। किन्तु हम इन्हें पूर्व परम्परा से किसी प्रकार सम्पृक्त नहीं कर पाते। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती राजस्थानी लेखकों से प्रेरणा न लेकर हिन्दी और बंगला कहानियों से प्रेरित होकर एवं श्री सूर्यकरण पारीक नरोत्तमदास स्वामी प्रभृति विद्वानों से उद्बोधित होकर इस क्षेत्र में पदार्पण किया। बस तो

१ सं० १९७२ वि० में जद श्री भगवती प्रसाद दारूका हिन्दी में एक मारवाड़ी की घटना (कहानी का पत्र) अर सं० १९८५ वि० में एक मारवाड़ी की बात प्रकाशित करवाई (जिकारा सगळा संवाद राजस्थानी भाषा रा है) तद सूं राजस्थानी भाषा रै आधुनिक कथा साहित्य में नूंवो मोड़ लियो।

जलमभोम (राजस्थानी रा प्रतिनिधि कथाकार) वर्ष २ अंक १ पृ०सं० ५

२ वैश्योपकारक वर्ष २ के विभिन्न अंकों में यह कहानी क्रमशः प्रकाशित हुई है।

३ श्री दीनदयाल ओझा राजस्थानी कथा-यात्रा में आये इस अवरोध की बात स्वीकार नहीं करते हैं। इस सम्बन्ध में उनका कथन है कि— कहानी साहित्य का सृजन श्री नाहटा के सिवाय २० वर्षों में अवरुद्ध नहीं रहा पूर्ववेग से गतिमान रहा। (जलकार वर्ष २२ अंक २२) अपने इस कथन के समर्थन में श्री ओझा ने जो तर्क दिये हैं वे किसी भी दृष्टि से स्वीकार्य नहीं हैं। प्रथम तो आधुनिक युग के साहित्य की विवेचना में अप्रकाशित सामग्री को आधार नहीं बनाया जा सकता। द्वितीय यदि एक क्षण को श्री ओझा के आग्रह को मान भी लिया जाय तो भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बीकानेर जिले के इन उत्साही साहित्यकार बन्धुओं ने प्रवासी

समाज की किसी एक कुरीति या समस्या का आदर्श समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है या फिर उनमें समाज के लिए अहितकर परम्पराओं का ऐसा कारुणिक अंत चित्रित किया गया कि पाठक उससे प्रेरित होकर उस स्थिति के निवारण को उत्साहित हो। दूसरी ओर ऐसे किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखने की अपेक्षा कहानीकार का दृष्टिकोण सामाजिक या पारिवारिक जीवन के किसी एक पहलू को यथा तथ्य रूप में अंकित करने या फिर बदलते सामाजिक जीवन और परिवर्तित होते मूल्यों का दर्शन करा रहा है। प्रथम प्रकार की कहानियों को आदर्शवादी एवं आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी एवं द्वितीय प्रकार की कहानियों को यथार्थवादी कहानियों की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

प्रथम प्रकार की कहानियों में मुरलीधर व्यास का 'कलम री मोत'[1] 'नरमेध या समाज रा नीरो'[2] श्री नानूराम संस्कर्ता की 'दूवगिळोंगे'[3] 'दायजो'[4] 'डाकण स्यारी'[5], 'चेडो'[6] श्री नृसिंह राजपुरोहित की 'घणा रूठा राण हाण'[7] श्री अन्नाराम सुदामा की 'ढळ डूंगर फळ चट्टान'[8] 'रोग रा निदान', श्री बजनाथ पवार की 'भूरी'[10] आदि पचासों कहानियों के नाम सहज ही गिनाये जा सकते हैं। इन कहानियों में दृष्टिकोण की लगभग समानता होते हुए भी प्रस्तुतीकरण के ढंग एवं उनमें चर्चित विचारों को लेकर पर्याप्त भिन्नता रही है। व्यासजी में कुरीति का दुष्परिणाम अंकित करने की भावना प्रबल रही है और एक इसी बिन्दु पर कहानीकार का सारा ध्यान केन्द्रित हो जाने के कारण उनकी कहानियों में चरित्र चित्रण वातावरण आदि बातें गौण हो गई है। श्री संस्कर्ता में वर्णनात्मकता का प्राधान्य और बात का रोचक बखान का आग्रह प्रमुख रहा है। श्री पवार ने चरित्र चित्रण वातावरण सयोजन आदि बातों पर पर्याप्त ध्यान देने के बावजूद भी आदर्श के प्रति लगनीय दुर्बलता के कारण अपनी अधिकांश यथार्थवादी कहानियों को अंत में आकस्मिक एवं अप्रत्याशित सुखद मोड़ प्रदान कर अस्वाभाविक बना दिया है। इन सभी कहानीकारों की अपेक्षा श्री नृसिंह राजपुरोहित ने अपेक्षित कुशलता एवं सतर्कता का परिचय दिया है। उन्होंने सामाजिक विकृतियों के प्रति अपना आक्रोश कहीं सीधे व्यक्त नहीं किया, अपितु धीरे से मीठी चुटकी भर ली है। इस दृष्टि से उनकी 'रूपाळी बीनणी'[11] एवं 'बाल म्हारी माछला'[12] नामक कहानियाँ द्रष्टव्य हैं। श्री अन्नाराम सुदामा की

---

१ बरसगाठ मुरलीधर व्यास, पृ० स० ५० प्रका० वि० स० २०१३
२ वही पृ० स० ७०
३ राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) स० दीनदयाल ओझा पृ० स० १६ प्र० का०- १९६१ ई०
४ दसदोख नानूराम सस्कर्ता पृ० स० १५, प्र० का० वि० स० २०२३
५ वही, पृ० स० ६०
६ वही, पृ० स० ६१
७ हरावळ स० सत्य प्रकाश जोशी पृ० स० १४ दिसम्बर १९६६
८ आंध न आंख्यां श्री अन्नाराम सुदामा पृ० स० १ प्रका० १९७१ ई०
९ आंध न आख्यां श्री अन्नाराम 'सुदामा पृ० स० ५६
१० लाडेसर बजनाथ पवार पृ० स० २८, १९७० ई०
११ अमरचूनडी नृसिंह राजपुरोहित पृ० स० ७७
१२ वही, पृ० स० ८३

स्थिति इन सब कहानीकारों से थोड़ी भिन्न रही है। उनकी कहानियों में चिंतन की प्रधानता रही है और उनमें सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति उनका एक विशेष दृष्टिकोण रहा है। फलतः उसी विचारधारा के समर्थन में उनकी कहानियों में घटना, पात्र आदि सभी की संरचना हुई हैं। जहाँ श्री व्यास एवं सक्सेना ने समष्टि जीवन के चित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया है वहाँ श्री सुदामा ने व्यष्टि को आधार बनाकर समष्टि जीवन से सम्बंधित प्रश्नों और समस्याओं को उठाने में विशेष रुचि प्रदर्शित की है।

इसके अतिरिक्त चिंतन के स्तर पर भी श्री सुदामा की कहानियाँ अन्य कहानीकारों से भिन्न पड़ती हैं। अन्य कहानीकार विशेष रूप से श्री व्यास एवं सक्सेना में जहाँ सांकेतिकता एवं वैचारिक ऊहापोह के स्थान पर प्रत्यक्ष चित्रों एवं वर्णनों का प्राधान्य रहा है वहाँ श्री सुदामा विचारों के ऊहापोह में अधिक रमे हैं और उनकी कहानियों में समस्याओं का ऊपरी लेखा जोखा भर प्रस्तुत नहीं हुआ है अपितु उसके पीछे कार्यरत जीवन दर्शन एवं विचारधारा को टटोलने का प्रयास हुआ है। उदाहरण के लिए श्री मुरलीधर व्यास की मिनखापणो बन ढाढापणो [1] एवं सुरेश [2] तथा श्री सुदामा की स्कूटर फक चट्टान एवं रोगरो निदान नामक कहानियों को लिया जा सकता है। यद्यपि दोनों ही कहानीकारों ने आज की फैशनपरस्ती एवं फिजूल खर्ची की विकृति को इन कहानियों में उठाया है किन्तु दोनों ही कहानीकारों के चिंतन स्तर की भिन्नता ने कहानियों में बहुत अधिक फासला ला दिया है। जहाँ श्री व्यास ने समस्या को ऊपरी स्तर पर उठाया है वहाँ सुदामा ने इस स्थिति के पीछे कार्यरत वर्तमान मानव के भूठे स्टैण्डर्ड के मोह' एवं आत्म प्रदर्शन के मूल बिंदु को पकड़कर अपनी बात को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।। हाँ यह बात दूसरी है कि अपने चिंतन के प्रति कहानीकार की गहरी आसक्ति एवं उत्प्रेक्षा तथा उपमा के प्रति कहानीकार के अनावश्यक आकर्षण ने कहानियों को कई स्थलों पर विचार बोझिल एवं एक सीमा तक नीरस बना दिया है।

दूसरी ओर वे सामाजिक कहानियाँ आती हैं जिनमें कहानीकार समाधान प्रस्तुत करने या किसी कुरीति से विरक्त होने का सन्देश देने के मोह से मुक्त होकर बदलते सामाजिक जीवन के चित्र अंकित करने और समाज तथा व्यक्ति के चिंतन में आ रहे परिवर्तन को अंकित करने में विशेष रूप से रमे हैं। ऐसी कहानियों में श्री राजपुरोहित की उतर भीखा म्हारी बारी [3] कुन्न भाग पडी' भारत भाग विधाता [4] श्री बजनाथ पवार की कानिया म्हातम [5], पासो [6] श्री नानूराम संस्कर्ता की मिरचारी बुड्ढी 'माटी री गाडी [8] श्री श्रीलाल नथमल जोशी की काल ले जाए [9] आदि कहानियाँ उल्लेखनीय बन पड़ी हैं। इन

---

१ वरसगांठ पृ०सं० ६८
२ वही पृ०सं० १११
 रातवासो नसिंह राजपुरोहित पृ०सं० ५६ प्र०का० १९६१ ई०
४ अमरचूनड़ी नसिंह राजपुरोहित पृ०सं० ६४ प्र०का० १९६६ ई०
५ चानणा बजनाथ पवार पृ०सं० १४
६ जलमभोम, पृ०सं० ८८ वर्ष ७ अंक १
७ ग्योया श्री नानूराम संस्कर्ता पृ०सं० ६२
८ वही पृ०सं० १४२
९ मरुवाणी पृ०सं० ६ वर्ष ६ अंक ७-८

सभी कहानियों में मुख्यतः समष्टि जीवन एवं चिन्तन में आ रहे परिवर्तन को अंकित किया गया है। श्री सम्वर्ता की कहानियों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात ग्राम्यजीवन में राजनीति के प्रवेश के कारण हो रही भारी उथल-पुथल को अंकित किया गया है तो श्री राजपुरोहित की कहानी 'भारत भाग विधाता' में शहरी सभ्यता के सम्पर्क के कारण शहर में इकट्ठा होने वाले ग्राम्यजीवन के मरासर में तनाव, मनमुटाव एवं संघर्ष की उठती लहरों को अंकित किया गया है। श्रीलाल नथमल जोशी की 'कान न जाए' में सामाजिक व्यवस्था एवं जातीय सम्बन्धों में आ रहे परिवर्तन को संकेतित किया गया है तो 'उतर भीग्य म्हारी वारी' एवं 'पागी' जैसी कहानियाँ शासन और निठल्ला जीवन जीने की सामन्ती परम्पराओं की मिटती लकीरों एवं उनके स्थान पर उभरती समता तथा श्रम की नवीन रेखाओं को अंकित करती है। 'कुम भाग पनो और पेट में आयोड़ो'[1] जैसी कहानियाँ हमारे सामाजिक जीवन में विष की तरह घुलते जा रहे भ्रष्टाचार और अनैतिक आचरण के उग्र रूपों की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं।

ऊपर जिन कहानियों का उल्लेख हुआ है उनमें मुख्यतः समष्टि जीवन में आ रहे परिवर्तन को अंकित किया गया है किन्तु परिवर्तन के इस चक्र ने केवल समष्टि को ही प्रभावित किया हो ऐसी बात नहीं है अपितु समष्टि से भी अधिक हमारा पारिवारिक एवं वैयक्तिक जीवन एवं चिन्तन इससे कहीं अधिक प्रभावित हुआ है। व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन में हमारे सोचने का ढंग कितना बदल चुका है और उसके कारण हमारे आपसी सम्बन्धों में कितना अन्तर आ गया है इसकी झलक 'सुहागण भागण'[2] एवं 'बाप अर बेटा'[3] जैसी कहानियों में तथा हमारा वैयक्तिक जीवन किस कदर जड़ता एवं टकराव का शिकार बनता जा रहा है इसका चित्र 'लम्प पोस्ट',[4] 'आतम बोध'[5] एवं 'सळवटां'[6] जैसी कहानियों में सहज ही देखने को मिल जाता है। 'सुहागण भागण' में जहाँ माँ खुद ही अपनी बेटी को पातिव्रत धर्म पालन के स्थान पर पति और प्रेमी दोनों के साथ निभाव करने का संकेत करती हुई एक ही मटकी पर माँड और बळद दोनों को पानी पिलाने की बात करती है तो 'बाप और बेटा' का युवा पुत्र और पिता के प्रेम-व्यापार में बाप का प्रतिद्वन्द्वी बनकर स्वयं जाकर जमता ही नहीं अपितु अपने बाप की तथाकथित प्रेमिका के सामने ही बाप को गालियाँ देकर दूर हटाता है। उधर 'आतम बोध' आज के भौतिक प्रगति के युग में मशीन के साथ मशीन बने मानवीय जीवन की विडम्बना पर प्रकाश डालती है तो 'लम्प पोस्ट' भी लगभग दूसरे शब्दों में यंत्र बने मानव की ही कहानी कहता है।

आधुनिक राजस्थानी सामाजिक कहानियों के मुख्य उपजीव्य रहे हैं—पूंजीपति एवं सामन्ती वर्ग के शोषण के शिकार बने दीन हीन कृषक मजदूर वर्ग के प्राणी, सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ परम्पराओं के चक्र में पिसते हुए निम्नमध्यमवर्गीय—लोग और आए वर्ष अनचाहे मेहमान की तरह आ

---

१ आथ न आंथ्या पृ०सं० ७६

२ रामनिवास शर्मा जलमभोम पृ० सं० ६६ वर्ष ७ अंक १

३ यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र मूमल सं० रामनिवास शर्मा पृ० सं० ८ नवम्बर १९७१ ई०

४ रामनिवास शर्मा मूमल पृ० सं० १५ नवम्बर १९७१ ई०

५ रामनिवास शर्मा हरावळ पृ० सं० ३१ वर्ष १, अंक—६

६ रामेश्वरदयाल श्रीमाली मधुमती पृ० सं० ६४ जुलाई १९७१

टपकने वाले अकाल से सन्त्रस्त प्रभावों से जूझने हुए मानवी करुणों के गमूह । इनमें भी मानिना तत्र रूढ़ि पीड़ितों का जहाँ तक प्रश्न है—हिंदी और अन्य भाषाओं के साहित्य में भी इनकी समस्याओं को लेकर बहुत कुछ लिखा गया है और इन समस्याओं पर आधारित राजस्थानी कहानियाँ भी विषय प्रतिपादन की दृष्टि में उनसे कोई विशेष भिन्न नहीं पड़ती है। बरसगांठ[1] रातवासी मार[2] गीड़या गे सीर[3], गमली[4], उनर भीना म्हारी वारी आदि कहानियों में जाक की तरह गरीबों का खून चूसने वाले सूदखोरों और 'दारू मास' में मस्त अधिकारों के उन्माद में उन्मत वर्ग सामन्तों की निमर्मता एवं निष्ठुरता का अंकन हुआ है। यहाँ प्रसगवश इन विषयों की राजस्थानी कहानियों के सम्बन्ध में एक संकेत अवश्य करना चाहूँगा वह यह कि विषय का द्वितीय पक्ष यहाँ के कहानीकारों की नजर से ओझल नहीं रहा है। जहाँ पूँजीपति वर्ग के शोषण की बात कही गयी है वहाँ डाक्टर मनोहर शर्मा की अनेक कहानियों में इसके विपरीत उनकी सहृदयता एवं सत्यता का भी अच्छा अंकन हुआ है और उधर सामन्ती क्रूरताओं के समानान्तर ही उस वर्ग की शरणागतवत्सलता प्रण-पालनता और शूरवीरता का प्रभावा चित्रांकन भी कई कहानियों में बड़ी तन्मयता से हुआ है। इस दृष्टि से उल्लेखनीय कहानियाँ बन पड़ी हैं—डा० शर्मा की चिलको[5] 'कन्यादान'[6] श्री नृसिंह राजपुरोहित की भीमजी ठाकर[7] पेट री दाझ,[8] श्री मुनालाल राजपुरोहित की ऊँट रा भाटा[9] आदि।

अकाल की भीषणताओं को अंकित करने वाली कहानियाँ हिन्दी और अन्यत्र भी मिल जायगी किन्तु राजस्थानी की अकाल विषयक कहानियाँ प्रामाणिकता एवं वातावरण के सजीव अंकन की दृष्टि से इन सबसे अलग थलग दृष्टिगत होती है। यहाँ अकाल का जो वर्णन हुआ है वह अखबारी खबरों के आधार पर बनायी गयी अकाल सम्बन्धी एवं विशेष भावुकतापूर्ण दृष्टि का अंकन नहीं है, अपितु यहां के सामान्य जन की भांति ही यहाँ के कहानीकारों के रग रग में समाये अकाल की पीड़ा का अंकन है। इस दृष्टि से कतिपय उल्लेखनीय कहानियाँ हैं—श्री मुरलीधर व्यास की मेह मामा,[10] पेट री पाप[11] श्री नृसिंह राजपुरोहित की 'गावरी हवाई[12] श्री बजनाथ पवार की आपी भूवा[13] एवं

---

१ बरसगांठ, पृ० सं० १
२ रातवासो पृ० सं० १३
३ वरणीदान बारहठ हरावळ पृ० सं० २५ मार्च १६७१
४ रामन्त साकरय विमल राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) पृ० सं० ८८
५ कन्यादान, डा० मनोहर शर्मा पृ० सं० २० प्र० का० १६७१
६ वही, पृ० सं० १
७ रातवासो पृ० सं० ३१
८ अमरचूनडी, पृ० सं० ४१
९ राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) पृ० सं० ११६
१० बरसगांठ पृ० सं० ६
११ वही, पृ० सं० ३१
१२ मरुवाणी पृ० सं० ३३ वर्ष ६ अंक १२
१३ वही पृ० सं० ३६ वर्ष ६ अंक १२

श्रीपुरुषोत्तम छंगाणी की 'पूरब पिच्छम'[1]। इनमें व्यास जी की कहानियों में एक ओर अकाल की मार से पीड़ित प्राणियों के दयनीय एवं कारुणिक चित्र अंकित हुए हैं तो दूसरी ओर इन दीन हीनों के प्रति महाजन लोगों के कलुषित चिन्तन एवं आचरण को अपने नग्न रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'धापी भूवा', गाव री हथाई' और 'पूरब पिच्छम' जैसी कहानियों में अकाल की भीषणता के कारण से दारुण चित्र अंकित होते हुए भी उनमें साथ ही-साथ यहां के सामाजिक जन की उस अदम्य जिजीविषा एवं गहरी आस्था का भी अंकन हुआ है जिसके सहारे वह ऐसी विकट विपदा को भी हँसते हँसते सहता है। 'गाव री हथाई' का बूढ़ा भूधर दादा—जो कि अपने जीवन में अनेक दुर्भिक्षों को झेल चुका है—अकाल की भीषणता के कारण एवं क्षण को विकल होकर कल क्या होगा की चिंता में डूब जाता है किन्तु दूसरे ही क्षण सच्चे विश्वास से भर उठता है और आगामी वर्ष की भरपूर फसल की कल्पना में खुशी से भरकर नये बैलों की जोड़ी खरीदने की चर्चा में डूब जाता है। उधर, धापी भूवा अकाल, भूख और महामारी पीड़ित गांव में भी जिस उत्साह के साथ सेवा कार्य में रत रहती है वह उसके भावी मंगल में दृढ़ विश्वास का परिणाम कहा जा सकता है। 'पूरब पिच्छम' का हरखू देश के अन्य भागों में सूखा पीड़ितों को सहायता में बहुत कुछ पहुँचने की बातें सुनता है और साथ ही अपने क्षेत्र की भीषण उपेक्षा भी देखता है किन्तु वह फिर भी हताश नहीं होता अपितु लोगों को उलटा यही समझाता है कि अपने लोगों के लिए तो यह प्रतिवर्ष का खेल है और उस क्षेत्र में चूंकि यह प्रथम अवसर है अतः अपनी उपेक्षा परेशानी का विषय नहीं होना चाहिए। इस प्रकार भीषण विपदाओं में भी मुस्कराते इन चेहरों की यह सहज आस्था उन चित्रों से कितनी भिन्न है जिनमें एक हाथ से औरत रोटी ले रही है और दूसरे हाथ से घर रोटी के बदले बच्चा अपनी अस्मत बेच रहा है।

सामाजिक कहानियों के पश्चात ऐतिहासिक विषयों को लेकर कहानी लेखन में राजस्थानी कहानीकारों ने अपनी विशेष रुचि प्रदर्शित की है। उन्होंने अपनी ऐतिहासिक एवं अर्द्ध ऐतिहासिक कहानियों में राजस्थान के गौरवपूर्ण इतिहास और यहां की गरिमामयी सांस्कृतिक परम्पराओं को अपने सम्पूर्ण परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इतिहास प्रसिद्ध लोकप्रिय और ख्यात बात आदि में बहुचर्चित प्रसंगों को ही राजस्थानी ऐतिहासिक कहानीकारों ने मुख्यतः अपनी कहानियों का आधार बनाया है। फलतः अधिकांश में उनकी कहानियों के विषय राजस्थान एवं राजपूती इतिहास से ही सम्बद्ध रहे हैं। इस दृष्टि से लिखी गयी कतिपय उल्लेखनीय कहानियां हैं लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत की 'राजपूताणी'[2] 'विडमची'[3] 'हुकार की कनी'[4] 'हाडीरानी'[5] श्री सौभाग्यसिंह शेखावत की 'लाडियाणी

---

१ मरुवाणी, पृ० सं० ५ वर्ष ६ अंक ४

२ पाबूजी री बात रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, पृ० सं० २४ प्र० का० वि० सं० २०१८ (द्वितीय संस्करण)

३ वही पृ० सं० ३३

४ वही पृ० सं० ४४

५ वही पृ० सं० ५१

की कवर[1] 'खाटू री सटो'[2] श्री सवाईसिंह धमोरा की नकली मामेर मगनी वन्दगाह'[3] आदि। लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत की कहानियों में कहानी को सजीव बनाने और प्रभावी वातावरण की सर्जना की दृष्टि से प्रसंगानुकूल अनेक दोहे, गीत आदि रखकर एक तरह से यहाँ की प्राचीन बात परम्परा का निर्वाह हुआ है। इसी कारण रानी साहिबा की कहानियों को नयी बोतल में पुरानी शराब भी कहा गया है। उधर श्री सौभाग्यसिंह शेखावत की ऐतिहासिक कहानियों में भी रोचकता एवं वर्णनात्मकता उनकी मुख्य विशेषताएं रही हैं किन्तु इसके साथ ही साथ प्राचीन कथा शैली का उपयोग उनकी कहानियों की एक ऐसी विशेषता है जिसका निर्वाह अन्य किसी सम सामयिक कहानीकार में देखने को नहीं मिलता। प्रायः इन कहानीकारों के साथ एक स्थिति समान रही है कि इन्होंने घटनाओं को सामयिक सन्दर्भों से जोड़ने एवं कहानी को कलात्मक बनाने की दृष्टि से उसे कल्पना की रंगीन तूलिका से सजाने सँवारने का प्रयत्न न के बराबर किया है। इसकी अपेक्षा श्री नृसिंह राजपुरोहित की अमर चूनडी[4] श्री मोहन लाल गुप्त की प्यासो प्रेम[5] और श्री बद्रीदान गाडण की आजरी डाळ सरवर री पाळ[6] आदि कहानियों में अपेक्षया प्राचीनता की ओर झुकाव कम रहा है और कहानीकारों ने कल्पना की रंगीन तूलिका से मोहक रंग संयोजन कर कहानी को पर्याप्त आकर्षक बनाने का भरपूर प्रयास किया है।

सामाजिक एवं ऐतिहासिक कहानियों की अपेक्षा धार्मिक एवं पौराणिक प्रसंगों को लेकर लिखी गयी कहानियों की संख्या बहुत कम रही है। श्री सत्यनारायण गंगादास व्यास की देवी सुभद्रा[7] एवं कच देवयानी[8] तथा श्री नृसिंह राजपुरोहित की 'जोजन गंधा'[9] आदि गिनी चुनी कहानियाँ ही पौराणिक एवं धार्मिक आख्यानों के आधार पर लिखी गयी हैं। इसमें भी जोजन गंधा में घटनाओं का प्राधान्य रहा है और कहानी को लगभग साधारण घटना के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। इसके विपरीत श्री सत्यनारायण गंगादास व्यास ने अवश्य ही अपनी इन कहानियों में कल्पना शक्ति का अच्छा परिचय देते हुए उन्हें बदले हुए संदर्भ में प्रस्तुत किया है। विशेष रूप से इनमें पात्रों के चरित्र की मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में नूतन व्याख्या हुई है। कच देवयानी में देवयानी का चरित्र एक ऐसी तिरस्कृता एवं अतृप्ता प्रेमिका के रूप में अंकित हुआ है जिसे उसका प्रिय कच अपनी कायरता एवं रूढ़ संस्कारिता के कारण प्रेयसी तक मानने को तैयार नहीं है। देवी सुभद्रा में सुभद्रा का चरित्रांकन परंपरा से हटकर हुआ है। वह अपने बाह्याचरण में हरण के समय से अर्जुन के हर कदम को वक्र तिरस्कृत दृष्टि से देखती है। चेतन रूप में वह निरंतर अर्जुन के प्यार को ठुकराती है और उसका विरोध

---

१ राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) पृ० सं० २३
२ मरुवाणी पृ० सं० ५३ वर्ष १ अंक ५-६
३ जलमभोम पृ० सं० ९३ वर्ष २ अंक-१
४ अमरचूनडी पृ० सं० ६०
५ मरुवाणी पृ० सं० ४९, वर्ष १ अंक ५-६
६ वही पृ० सं० ३६, वर्ष १ अंक ५-६
७ हरावळ पृ० सं० २, सितम्बर १९७०
८ वही पृ० सं० ९ नवम्बर १९७१
९ वही पृ० सं० १९, जनवरी १९७२

करती है किन्तु अवचेतन में—जहां कि वह अर्जुन से घनिष्ट प्रेम करती है—की प्रेरणा से बाह्य रूप में अपनी घृणा व्यक्त करते हुए भी निरन्तर ऐसे कदम उठाती है जो अनजाने में अर्जुन के प्रति उसके प्रबल आकर्षण को व्यक्त करते हैं।

अंचल विशेष की स्थानीय विशेषताओं को अपने सम्पूर्ण परिवेश में प्रस्तुत करने की ललक इधर में कथाकारों में, विशेषकर में उपन्यासकारों में बनी है। हिन्दी में तो रेणु के प्रसिद्ध उपन्यास 'मैला अंचल' के प्रकाशन के पश्चात एक समय तो यह प्रवृत्ति काफी लोकप्रिय रही किन्तु कहानी में उसके सीमित कलेवर एवं उसकी विशिष्ट संघटना के कारण इसके फैलाव के अधिक अवसर नहीं हैं। फिर भी कहानियाँ इसके प्रभाव से सर्वथा अछूती नहीं बची हैं। राजस्थानी में विशेषरूप से श्री सम्नदा की कहानियों में स्थानीयता का रंग काफी गाढा रहा है। बीकानेर अंचल के एक क्षेत्र विशेष को आधार बनाकर लिखी गयी उनकी 'काछबो'[1] दूध गिळोटा[2] रोही रो रीछ[3] एवं बारो नवा रूंख[4] आदि कहानियों एवं डा० मनोहर शर्मा की 'काजी'[5] नामक कहानी में आंचलिकता का स्वर काफी मुखर रहा है।

पौराणिक एवं आंचलिक कहानियों की तरह राजस्थानी में हास्य-व्यंग्य प्रधान कहानियों की संख्या भी सीमित ही रही है। उसमें भी हास्य प्रधान कहानियों की संख्या तो और भी कम है। श्री नरसला की 'काछबो' जैसी गिनी चुनी हास्य प्रधान कहानियाँ ही इस क्षेत्र में मिलती हैं और यह कहानी भी शिष्ट हास्य की अपेक्षा ग्राम्य हास्य प्रधान ही कही जा सकती है। इसकी अपेक्षा व्यंग्य प्रधान कहानियों की ओर कहानीकारों का ध्यान फिर भी गया है। श्री नृसिंह राजपुरोहित की कुम्भ भाग पनी, श्रीलाल नथमल जोशी की 'अमर मिनख'[6] श्री रामचन्द्र आचार्य की लिछमी रा लाडला[7] आदि प्रमुख व्यंग्य प्रधान कहानियाँ हैं। कुम्भ भाग पनी में आज की भ्रष्ट सामाजिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य प्रहार हुआ है तो अमर मिनख में तथाकथित साहित्यकारों का अच्छा मजाक बनाया गया है और लिछमी रो लाडलो में धनवानों के कुकर्मों पर बडी मीठी चुटकी ली गयी है। उधर श्री नारायणदत्त श्रीमाली की सबर[8] एवं श्री भगवानदत्त गोस्वामी की अवार अन्नदाता न अरज करू[9] जैसी कहानियों में हास्य व्यंग्य के समवेत स्वर सुने जा सकते हैं। अवार अन्नदाता न अरज करू में एक सामन्तकालीन अवशेष साहजी के वर्तमान युग में मिसफिट आचरण का बडा रोचक वर्णन हुआ है। वैसे श्री रामनुरोहित एवं श्री किशोर कल्पनाकान्त की कहानियों में भी प्रसंगानुकूल मीठी तीखी चुटकियाँ बराबर ली जाती रही हैं।

---

१ रोही, पृ० सं० १,
२ वही पृ० सं० ७८
३ वही पृ० सं० १८
४ रस दोख नानूराम संस्कर्ता पृ० सं० १३
५ कन्यादान, पृ० सं० १३
६ मरुवाणी, पृ० सं० ६, वर्ष ६ अंक-४
७ राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) पृ० सं० ९३
८ वही पृ० सं० ६०
९ वही, पृ० सं० ४७

मस्थान का मनजर बना दिया था और जिसके लिए अपने प्रत्यक्ष कार्यों म यह दर्शाती रही कि वह उसे चाहती है कि तु उसी युवक स शादी का प्रस्ताव सुन वह उसे दुत्कार देती है। इसी प्रकार जिस डाक्टर का कुछ क्षण पूव वह एक बनिया नौकरी दिलवाने की पशसा करती है उसी डाक्टर को अपने अनुकूल न पाकर दूसरे ही क्षण मदिरा स पीटकर जन साधारण की निगाह स गिराने म भी नही हिचकती। कहन का तात्पय यहा है कि प्रस्तुत नारी के एक एम जटिल चरित्र की अभिव्यक्ति है—जिस सहज म समझ पाना कठिन है। राजस्थानी म सम्प्रति एसी उलझी हुई मनस्थितियो पर आधारित कहानी लखन की पृष्ठभूमि का निर्माण हो रहा है यही मानना ज्यादा समीचीन रहगा।

मनोवैज्ञानिक कहानियो की तरह ही राजस्थानी म प्रतीकवादी कहानियो की सख्या भी बहुत सीमित है। इसका कारण भी स्पष्ट है किसी भाषा के साहित्य म श्रेष्ठ प्रतीकवादी कहानियो की सजना एक स्तर तक पहुँचने के बाद ही सभव होती है। ऐसी कहानियाँ पाठक एव कहानीकार दोनो मे उस समझ की अपेक्षा रखती है—जहा बात के मुख्य मुद्दे को सवेदना के स्तर पर ही ग्रहण कर लिया जाय। अधिकाश म भावो की जटिलता या सश्लिष्टता विशेष मानसिक स्थितियो के अकन बात को सीध न कह पाने की विवशता और तीव्रता के साथ किसी विचार बिंदु पर पाठक को सोचने के लिए उत्तेजित करन की दृष्टि म कहानीकार प्राय प्रतीकात्मक कहानिया की सजना करते है। जसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि राजस्थानी की प्रतीकात्मक कहानियो का पक्ष, सख्या एव स्तर दोनो दृष्टियो म काफी कमजोर है। जहा तक सख्या का प्रश्न है बारहठ न भम्भ रौ कजियो[1] दोय कूकरिया[2] सेठजी अर बोट्टी[3] और आव न आंरया[4] जसी गिनी चुनी कहानिया मिलती है और स्तर की दृष्टि स आव न आरया हा एकमेव एसी कहानी है जिसे लेकर पाठक कुछ सोचने को विवश हो। प्रस्तुत कहानी म कथाकार न धोरे को विस्तारवादी मनोवृत्ति वाले पू जीपति के रूप म प्रस्तुत किया है और सीप को सवहारावग का नतृत्व करने वाली एक ऐसी शक्ति के रूप म चित्रित किया है जो प्रतिपक्षी की अपेक्षा भौतिक शक्ति की दृष्टि स काफी कमजोर होते हुए भी मानसिक दृढता के बलबूते पर अपने सम दलितो का सगठन बनाकर धोरे के विस्तार पर न केवल रोक ही लगाती है अपितु उसके अस्तित्व को ही समाप्त कर वहा एक मनोहारी वन के निर्माण म भी सफल होती है। कहानीकार न मूलत इस कहानी म आज के वग सघर्ष की विश्व व्यापी समस्या को उठाया है और उसका अपने ढग स अहिंसक समन्वयवादी समाधान प्रस्तुत किया है।

यहा तक कथ्य के आधार पर राजस्थानी कहानी की मुख्य प्रवृत्तियो का विवेचन हुआ है। आगे कथा तत्वो के आधार पर उसकी प्रवृत्तियो को विवेचित किया गया है। कथा तत्वो की दृष्टि से कहानी के घटना प्रधान चरित्र प्रधान भाव प्रधान एव वातावरण प्रधान मुख्य भेद किये गये है। जहा मनोरजन ही कथाकार का मुख्य ध्येय होता है वहा प्राय घटनाओ का प्राधान्य रहता है। हिंदी कहानी की तरह राजस्थानी कहानी की प्रारम्भिक अवस्था म भी घटना प्रधान कहानियो का ही प्राधान्य रहा।

---

१ बद्रीप्रसाद साकरिया राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) पृ० स० ११०

२ मूलचन्द प्राणेश जलमभोम पृ० स० ४८ वष २ अक-१

३ श्रीलाल नथमलजोशी मरवाणी पृ० स० ३६ वष ६ अक १०-११

४ आव न आरया पृ० स० १००

इस समय कहानी लेखकों का उद्देश्य मनोरंजन के अतिरिक्त उपदेशप्रद एवं सुधारवादी विचारों के प्रचार प्रसार का भी रहा अतः उन्होंने बाह्य जगत में घटित होने वाली स्थूल घटनाओं पर ही मुख्यतः अपना ध्यान केन्द्रित रखा। श्री मुरलीधर व्यास श्री नानूराम संस्कर्ता की अधिकांश कहानियों में एवं श्री व्रजनाथ पवार तथा श्री नसिंह राजपुरोहित की कुछ एक कहानियों में कहानीकारों का ध्यान घटना संयोजन में ही विशेष रूप से लगा रहा है। व्यासजी की कहानियों में प्राय छह छह सात-सात और कभी-कभी तो उससे भी अधिक घटनाओं को एक ही कथासूत्र में पिरो दिया गया है। इन घटनाओं के पीछे उनकी फोटोग्राफिक प्रवृत्ति विशेष सक्रिय रही है। वे किसी समस्या के सम्बन्ध में विभिन्न जनों के दृष्टिकोण को अंकित करने या किसी समस्या विशेष पर कई पहलुओं से प्रकाश डालने की दृष्टि से भिन्न भिन्न घटनाओं को एक ही कथासूत्र में पिरोते गये हैं। उनकी मुख्य घटना प्रधान कहानियाँ हैं— 'पलम रो मोल' 'नरमध भाठा'[1] आदि। व्यासजी की तरह ही श्री सस्कर्ता में भी बाह्य-जगत की स्थूल घटनाओं के अंकन की प्रवृत्ति विशेष रही है। सस्कर्ता व्यास की तरह फोटोग्राफिक शैली को न अपना कर वर्णनात्मक शैली का सहारा लेते हैं। प्राचीन वातकारों की तरह वे भी अपनी कहानियों में घटनाओं को रोचकता के साथ सरस लहजे में प्रस्तुत करने में अधिक दत्त चित्त रहते हैं। उनकी फददपच[2] वर[3] धार दखना'[4]आदि अधिकांश कहानियाँ इसी श्रेणी की हैं। इन दोनों से थोड़ा भिन्न श्री पवार की कहानियों में घटनाओं का सप्रयोजन उपयोग हुआ है। वहाँ घटनाएँ स्वतः प्रवाह में घटित होती हुई चित्रित नहीं हुई हैं, अपितु लेखकीय आदेश के अनुरूप उन्हें आकस्मिक एवं अप्रत्याशित मोड़ दिये गये हैं। इस दृष्टि से उनकी लाडेसर[5] एवं भूरी[6] नामक कहानियाँ द्रष्टव्य हैं। डा० मनोहर शर्मा की अधिकांश कहानियों का ताना बाना भी घटनाओं की रेल-पेल के बीच ही बुना गया है। उनकी कहानियों में भी कहानीकार का ध्यान चरित्र चित्रण वातावरण अंकन की अपेक्षा स्थूल घटनाओं को प्रस्तुत करने में ही विशेष रहा है वहाँ भी उन घटनाओं के पीछे सक्रिय रूप से कार्यरत मानसिक संसार को देखने परखने की फुरसत उन्हें कम ही रही है।

घटना प्रधान कहानियों की अपेक्षा चरित्र प्रधान कहानियाँ अधिक श्रेष्ठ होती हैं क्योंकि उनमें कहानीकार का ध्यान मानव चरित्र को विश्लेषित करके सही रूप में प्रस्तुत करने का होता है। चूंकि ऐसी कहानियों में मानव चरित्र ही केन्द्र बिन्दु होता है अतः ऐसी कहानियाँ स्वतः ही मनोविज्ञान के अधिक निकट पहुँच जाती हैं। चरित्र चित्रण प्रधान कहानियों में कहानीकार कई रूपों में प्रस्तुत पात्र का चरित्रांकन कर सकता है। साधारण चरित्र चित्रण प्रधान कहानियों में कहानीकार या तो स्वयं ही बहुत कुछ प्रस्तुत चरित्र के बारे में कह देता है या स्थूल घटनाओं के माध्यम से पात्र की किसी एक मुख्य चारित्रिक विशेषता या कुछ एक स्वभावगत विशेषताओं पर प्रकाश डालता चलता है। ऐसी कहानियाँ कई बार रेखा चित्र के काफी निकट पहुँच जाती हैं श्री सस्कर्ता अपनी अधिकांश कहानियों में पात्रों के

१ वरसगाठ पृ०सं० ८७
२ मरुवाणी पृ०सं० २८ वर्ष ? अंक ६–७
३ दसदोख पृ०सं० २७
४ घर की गाय नानूराम सस्कर्ता पृ०सं० ६ प्र०वा० १९७० ई०
५ लाडेसर पृ०सं० १
६ लाडेसर, पृ०सं० २८

स्वभाव का परिचय वर्णनात्मक शैली में पाठकों को स्वयं ही देते चलते हैं और साथ साथ घटनाओं के माध्यम से उनकी पुष्टि करते चलते हैं। उनकी 'चंगो,' 'बर, वृन्दावल'[1] आदि इसी कहानियों को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। इस चित्राव की अपेक्षा जहाँ कहानीकारों ने प्रस्तुत पात्र की किसी एक ही चारित्रिक विशेषता के उदघाटन को दृष्टिपथ में रखकर कहानी का ताना बाना बुना है- वे कहानियाँ प्रथम प्रकार की कहानियों की अपेक्षा अधिक प्रभावी सिद्ध हुई हैं। श्री श्रीलाल नथमल जोशी की 'भाग्ती'[2] एवं श्री मुरलीधर व्यास की 'बेजारो'[3] इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। भाग्ती में कुण्ठित मनःस्थितिवाली एक शंकालु वृद्धा का अच्छा चरित्रांकन हुआ है और 'बेजारो' में एक लालची एवं संकीर्ण मनोवृत्ति वाली बुढ़िया का अच्छा स्केच खींचा गया है। श्रीलाल नथमल जोशी की ही 'मनाणो'[4] भी रेखाचित्र की सीमा का स्पर्श करने वाली एक ऐसी ही कहानी है।

उपर्युक्त कहानियों में अधिकांशतः पात्रों की मोटी मोटी चारित्रिक विशेषताओं का सीधा सादा चित्रांकन हुआ है। किन्तु मानव चरित्र उतना सहज नहीं जितना कि प्रायः हम सोचते हैं। कहानीकार की सफलता विरोधी व्यक्तित्वों के बीच अनेक घात प्रतिघातों के मध्य उभरते मानवीय चरित्र की कोई एक झांकी प्रस्तुत करने में अधिक मानी जायगी। इस दृष्टि से 'चितराम'[5] 'नागडो बाबो'[6] 'पटरी दाम'[7] एवं 'बदलो'[8] जैसी कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। 'चितराम' पुरुष की पराजय एवं टूटी तथा नारी के कुचले स्वाभिमान के प्रतिरोध की कहानी है। जहाँ गौरी पति द्वारा बुरी तरह प्रताड़ित होने के पश्चात् भी पति के पास जाती है किन्तु सुलह या समझौते के लिए नहीं अपितु उसकी विवशता का उपहास बनाने के लिए। 'नागडो बाबो' व्यक्ति-वैचित्र्य की कहानी है—जहाँ कथानायक के जीवन के अनेक उतार चढ़ावों के मध्य गुजरते उसके चरित्र की असम्बद्धता की एक झांकी प्रस्तुत की गयी है। 'पटरी दाम' एवं 'बदलो' में नाटकीय कौशल से प्रस्तुत पात्रों के चरित्र में अप्रत्याशित मोड़ दिया गया है।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानतावाली कहानियाँ भी चरित्र चित्रण प्रधान कहानियों के अन्तर्गत आती हैं। यद्यपि राजस्थानी में प्रसाद के 'आकाशदीप' जैसी सफल अन्तर्द्वन्द्व प्रधान कहानियाँ तो नहीं लिखी गयी हैं फिर भी श्री अन्नाराम सुदामा की 'फळ डूंगर फळ चट्टान' एवं 'रोग रो निदान' जैसी कहानियों में सत और असत प्रवृत्तियों एवं लालसाओं तथा विवेक के मध्य चल रहे द्वन्द्व को प्रधानता दी गयी है। वैसे किशोर कल्पनाकान्त की 'अन्तिम कागद'[9] श्री जगदीशसिंह सिसोदिया की 'रात र अंधियारे में' श्री नृसिंह राजपुरोहित का 'रूपाळो राजा' एवं श्री रामेश्वरदयाल श्रीमाली की 'जसोदा' आदि

---

१ दसभेख पृ०सं० ४८
२ राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) पृ० सं० ७२
३ वरसगाठ, पृ०सं० २८
४ मरुवाणी पृ०सं० ५ वर्ष ७ अंक—६
५ दामोदरप्रसाद राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) पृ०सं० ८१
६ रामप्रसाद चाकलान आळमो पृ०सं० ७, दिसम्बर १९६७
७ अमरचूनडी पृ०सं० ४१
८ वही पृ०सं० ३३
९ राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी), पृ०सं० २८

कहानियों में पात्रों की मानसिक ऊहापोह एवं उनके हृदयस्थ भावों की रेल-पेल का एक सीमा तक अच्छा अंकन हुआ है।

इधर ज्यों ज्यों कहानी स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ती जा रही है और उसके शिल्प में ज्यों-ज्यों मजाव-कसाव आता जा रहा है त्यों-त्यों कहानी में घटनाएँ गौण होती जा रही हैं पात्रों के चरित्र का ऊपरी लेखा जोखा प्रस्तुत करने की कहानीकारों की आदत समाप्त होती जा रही है और उस सबके स्थान पर एक क्षण विशेष की मनस्थिति के अंकन की प्रवृत्ति प्रमुख होती जा रही है। यद्यपि राजस्थानी कहानी के क्षेत्र में यह सब नया-नया है फिर भी आतम बोध[1] आल्या पाठ नार ,[2] बुद्ध रो वस्ट[3] उळझयोड़ा तार[4] एवं 'उळझयोड़ा तार'[5] आदि कहानियों में इस सबकी शुरुआत हो चुकी है।

इतिवृत्त प्रधान एवं चरित्र चित्रण प्रधान कहानियों की अपेक्षा किसी भी भाषा के साहित्य में स्तरीय वातावरण प्रधान कहानियों की संख्या बहुत कम होती है ऐसी स्थिति में राजस्थानी में यदि इनकी संख्या और भी कम हो तो आश्चर्य ही क्या ? वातावरण प्रधान कहानियों में पात्र घटनाएं आदि सब कुछ यथा-स्थान होते हुए भी समग्र रूप में एक प्रभावी वातावरण ही आद्यन्त पूरी कहानी में छाया रहता है। पाठक कहानी की अन्य किसी स्थिति से प्रभावित न होकर उसी से अभिभूत रहता है। ऐसी कहानियों में हिंदी की रोज कहानी अविस्मरणीय बन पडी है—जहां पूरे वातावरण में उदासी ऊबसी एवं घुटन सी छाई हुई है। राजस्थानी में उस जैसी श्रेष्ठ कहानी की सर्जना तो अभी तक नहीं हो पाई है फिर भी नृसिंह राजपुरोहित की 'उडीक' भगवानदत्त गोस्वामी की मानख रा मोल और श्री सूर्यशंकर पारीक की सभा मगा होयाणी सी हायगी आदि कहानियां इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'उडीक' में गृहिणी की मृत्यु के कारण पूरे परिवार में व्याप्त हुई रिक्तता एवं उदासी का बड़ा मार्मिक अंकन हुआ है। जहां गृह स्वामिनी की मौत से परिवार का हर प्राणी पीडित है और सबको ऐसा लग रहा है कि वह अपने साथ ही इस घर की हँसी खुशी उत्साह उल्लास सब कुछ साथ ले गयी। इन सबके स्थान पर वहां छोड गयी है एक सूनापन और उस रिक्तता में जिन्दगी को खींचे जाने की अनिवार्य विवशता। मानख रा मोल में एक ऐसे परिवार की उन चन्द घडियों के वातावरण का अंकन हुआ है जहां कुछ घंटों में आने वाली मौत की विकरालता से प्रतीक्षा की जा रही है। इन चन्द घडियों की आशा निराशा के मध्य झूलता परिवारजनों की मन स्थिति और तत्प्रेरित उनके कार्य-कलापों को अभिव्यक्ति देने में कहानीकार एक सीमा तक सफल रहा है। कहानी को धीरे और लम्बा खींचते हुए आगे कहानीकार ने गृहिणी की मृत्यु के पश्चात असफलता जन्य निष्क्रियता के भाव को पूरे परिवेश में छा जाने का हल्का सा आभास दिया है। वातावरण प्रधान कहानी की सर्जना की दृष्टि से एक बहुत ही सही थीम को लेकर चली इस कहानी की सबसे बडी सीमा कहानीकार की सपाट बयानी है। जिन स्थितियों को घटनाओं पात्रों के परस्पर वार्तालाप एवं आचरण या अन्य माध्यमों से व्यंजित करना था, उन्हें

---

१ रामनिवास शर्मा हरावळ पृ० सं० ३१, वर्ष १ अंक ६

२ रतनसा, राजस्थान भारती, भाग–११ अंक–२ पृ०सं० १ (राजस्थानी विभाग)

३ रामस्वरूप परेश जलमभोम पृ०सं० ८० वर्ष २, अंक–१

४ श्री कृष्णगोपाल शर्मा ओळमा, पृ०सं० ८३ (दीपावली १९६३)

५ नगरीर शर्मा ओळमा पृ०सं० १२ जनवरी १९६४

कहानीकार ने स्थूल वर्णनो के सहारे प्रस्तुत किया है फलत प्रभविष्णुता की दृष्टि से कहानी उतनी वजनदार नही बन पायी है जितनी कि इस प्रत्यक्ष कथन प्रणाली क त्याग से बन सकती थी। सभा सगा न्यायोडी सी होयगी म एक ऐस सतसग स्थल के वातावरण का सजीव अकन हुआ है—जहाँ एक ही मच पर एकत्रित कई एक गायक दला के परस्पर की प्रतिस्पर्धा श्रोताओ क लिए अच्छा मनोरजन का माहौल बना देती है।

उपयुक्त कहानियो के अतिरिक्त वे कहानियाँ भी वातावरण प्रधान कहानिया की श्रेणी म रखी जा सकती हैं जिनकी सफलता परिवेश के सजीव अकन म निहित है। एतिहासिक कहानिया म यह परिवेशगत सजीवता पाठक को मानसिक रूप से उसी युग विशेष म ला खडी करती है—जिस युग से ऐतिहासिक कहानी का कथानक चयनित हुआ है। इस दृष्टि से श्री सौभाग्यसिंह शेखावत की लोहियाणा रो कु वर और रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत की पाबूजी कहानिया द्रष्टव्य है। लोहियाणा रो कु वर मे कहानीकार उस वातावरण की सजना म सफल हुआ है—जहाँ बात क पीछे सिर कटा देना एक हसी खेल था और उत्साह के अतिरेक म जहा कबध का रोमाचकारी युद्ध भी सभव था। पाबूजा' म उन स्थितियो का बडा प्रभावी अकन हुआ है जिनके कारण विवाह मण्डप म ही हथळेव को बीच म ही छोडकर रणो माद से भरपूर पाबूजी युद्ध के लिए प्रस्थान कर गये। राजस्थानी की अन्य एतिहासिक कहानियो म भी कहानीकारो का ध्यान उस युग को अपने सजीव रूप म प्रस्तुत करने का विशेष रहा है।

यहा तक राजस्थानी कहानी की विषयगत प्रवत्तियो और प्रमुख कथा तत्वा क आधार पर उसकी सामान्य विशेषताओ पर विचार हुआ है। आगे उनकी शली एव शिल्पगत प्रवत्तिया और विशिष्टताओ को मूल्याकित करेंगे। आलोचको न शली की दृष्टि से कहानी के मुख्यत चार भेद किय हैं—क इतिहास शली या कथात्मक शली ख आत्मकथात्मक शली ग पत्र एव डायरी शली तथा घ सवाद शली या नाटकीय शली। इन चारा शलियो म इतिहास शली का प्रचलन सबसे अधिक रहा है। पाठक के लिए सहज बोधगम्य होने के साथ ही साथ कथाकार को भी इसमे हाथ पाव फलाने के पर्याप्त अवसर रहते हैं अत राजस्थानी म भी कहानीकारो ने अधिकाशत इसी शली को अपनाया है। इस शली म कहानीकार इतिहास वर्णन की तरह तृतीय पुरुष के सम्बन्ध म वर्णन करता चलता है, अत वर्णनात्मक शली को इस शली का एक प्रमुख भेद माना गया है। राजस्थानी म बरसगाठ म्होयी रातवासो अमरचूनडी रसदोख लाडेसर कन्यादान आदि अधिकाश कहानी सग्रहा म सकलित कहानिया म बहुत सी कहानियाँ इसी शली म लिखी गयी हैं।

यहाँ जबकि वर्णनात्मक शली की चर्चा चल पडी है तो उसी सन्दर्भ म राजस्थानी बात शली पर चर्चा करना असगत नहीं होगा। वर्णन' का प्राधान्य छोटे छोटे एव तुकान्त वाक्य गद्य के साथ-साथ पद्य का प्रयोग एव काव्यात्मक भाषा राजस्थानी बाता की सामान्य विशेषताएँ रही हैं। यद्यपि आधुनिक राजस्थानी कहानी इस बात परम्परा का विकसित रूप नहीं है फिर भी राजस्थानी का कथाकार अपनी इस समृद्ध बात परम्परा से प्रभावित हुए बिना नही रहा है। हाँ समयानुसार उसम थोडा-बहुत परिवतन अवश्य हो गया है। इस दृष्टि से श्री सौभाग्यसिंह शेखावत की कहानिया की ओर ध्यान सहज

ही चला जाता है। उनकी कहानिया शिल्प की दृष्टि से प्राचीन राजस्थानी वातो के सर्वाधिक निकट हैं। उनका शब्द चयन वाक्य विन्यास एव प्रस्तुतीकरण का ढग सभी कुछ उन्ही से प्रभावित प्रेरित हैं।[1]

गद्य के साथ-साथ प्रसगानुकूल पद्य के प्रयोग की राजस्थानी वाता की विशेषता को, राजस्थानी के आधुनिक कहानीकारा ने भी स्वीकारा है। विशेषरूप से ऐतिहासिक प्रसगा एव प्रवादा पर आधारित कहानिया मे तो इसका काफी प्रयोग हुआ है। रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत और श्री सौभाग्यसिंह शेखावत दोना ही कहानीकारा की ऐतिहासिक कहानिया म प्रसगानुकूल पद्य का प्रयोग हुआ है। ऐसा विशेषरूप से वातावरण को सजीव बनाने की दृष्टि से और जन-स्मृति म गहरे पठे उन प्रसगा की याद को ताजा करने की दृष्टि से नात हुआ है। ऐतिहासिक प्रसगा से इतर, विशेषरूप से श्री नसिंह राजपुरोहित की 'रूपाळी राजा 'उडीक रूपाळा बीनणी, जसी सामयिक जीवन से सम्बधित कहानिया म भी भावपूर्ण स्थला पर कथापात्र स्वत ही लोकगीत की कोई कडी गुनगुना उठते हैं।

राजस्थानी वाता की शलीगत विशेषताओं मे उनके तुकात गद्य प्रयोग की प्रवृत्ति से भी राजस्थानी का कहानीकार सवथा अछूता नही रहा है। श्री नानूराम सस्कर्ता का झुकाव विशेषरूप से भाषा के ऐसे प्रयोग की ओर रहा है। उनकी अनेक कहानिया म ऐसे दसा स्थल सहज ही खोजे जा सकते हैं—जहा यह स्पष्ट लगने लगता है कि कहानीकार ने तुक मिलान की दृष्टि से ही सतर्कतापूर्वक शब्द चयन किया है।[2]

इतिहास शली के पश्चात आत्म-कथात्मक शली को ही विशेषरूप से अपनाया गया है। इस शली की अपनी सीमाओ एव जटिलताओं के बावजूद भी यह अधिक कलात्मक है इसे नकारा नहीं जा सकता। इसमे मुख्यत एक पात्र ही अपने मुख से सारी कहानी कहता चलता है वसे कभी-कभी या भी होता है कि कहानी के सभी पात्र अपनी अपनी राम-कहानी अपने मुख से सुनाते चले जाते हैं। राजस्थानी मे आत्मकथात्मक शली मे लिखी गयी कहानियो का सख्या अधिक नही रही है। उडीक लिछमीरा लाडलो [3] म्हे गुनगार हू आदि कुछ एक कहानिया ही ऐसी बन पडी हैं, जहाँ इस शली का अच्छा उपयोग हुआ है। लिछमी रो लाडलो जसी कहानियो म तो इसी आत्मकथात्मक शली के कारण ही विशेष वक्रता आ पाई है।

---

१ 'रामसिंघ जी मीठडी रो पाटवी कवर। अठारा वरस रा जवान। उणियारा रौ फूटरो। चोडो लिलाड। मोटी बाचरा सी आँख्या। दाडू रा दाणा सा दात। सूवारी चूच सी नाक। मोवणा वान जिण र माय सोना बाळा। टोम पीडी। चौडी छाती। सारो डील भौर मोवणा। कवर घोडा रौ सोखीन। नितरा घाडला न दौडाव। हरिया डूगर रा भाखरा र माय जाव। कटारिया सू सिकार रम। सूर मार। नाहर मार। हिरण मार पण सब कटारा सू।'
कवर रामसिंघ मीठडी री सौभाग्य सिंह शेखावत मरवाणी पृ० स० ४३, वष १ अक-५

२ सोनजा सुनार गाव रा सुनार। गोन रा कडोल ताल म सतोल। कुवश री कायली रन्दा प्रर डडोल। कणा मणा कवे वर घर—सू रवे।—सोना चान्दी कूट जण जण सू जूर।
ल गा नानूराम सस्कर्ता दसमोल, पृ०स० २८

३ रामदेव आचाय, राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) पृ० स० ६३

माहौल से चलना शुरू कर वह यथार्थ और नग्न यथार्थ के द्वार तक पहुँच चुकी है। यहाँ भी बाहर के स्थूल यथार्थ से अंतर के सूक्ष्म यथार्थ की ओर अभिमुख हो चुकी है। फलतः, उसकी शैली एवं शिल्प में निरंतर मजाव-कसाव आता जा रहा है। अब धीरे धीरे एक ओर घटना प्रधान कहानियों का स्थान चरित्र प्रधान और मन स्थिति प्रधान कहानियाँ ले रही हैं, तो दूसरी उसका प्रयास समसामयिक आदमी को पारिभाषित करने और निरर्थक होने ना रहे सम्बन्धों को अपने सही रूप में प्रस्तुत करने का चल रहा है। इस सारी यात्रा के मध्य वह सामाजिक ऐतिहासिक, धार्मिक एवं पौराणिक क्षेत्रों में घूमफिर आई है, यद्यपि उसकी मुख्य सचरणभूमि सामाजिक जीवन ही रहा है। उसके विकास की वर्तमान दशा और दिशा को देखते हुए यह तो साफ लगने लगा है कि वह तेजी से उस खाई को पाटने की कोशिश में है, जो उसके एवं अन्य भारतीय भाषाओं के समसामयिक कथा साहित्य के मध्य है।

❀

नाटक

संस्कृत साहित्य ने नाटक की जिस सुदृढ परम्परा की नीव रखी उसका निर्वाह मध्यकालीन साहित्य म न ी हो पाया । नाटको का विकास एकदम अवरुद्ध सा हो गया । किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं ै कि नाटक समाप्त ही हो गया हो । वस्तुत राज्याश्रय स वचित होकर जनाश्रय के बल पर नाटक की समृद्ध परम्परा का प्रवाह लोकधर्मी-नाटय परम्परा के रूप म प्रवाहित होने लगा । ख्याल, स्वाग भगत, नौटकी रामलीला एव रासलीला आदि अनक रूपो म इसका विकास हुआ । राजस्थान म इस लोकधर्मी नाट्य परम्परा को समुचित सरक्षण मिला किन्तु १६ वी शता ी के मध्य तक आते आते यह परम्परा काफी विकृत हो चुकी थी । इन्हे अभिनीत करने वाली नाटय मडलियो म व्यावसायिकता का दृष्टिकोण प्रमुख हो चला था । फलत कथा चरित्र एव उपदेश क स्थान पर चामत्कारिकता एव अश्लीलतापूर्ण प्रदर्शन प्रमुख हो उठे थ । प्राय पारसी थियेटर की सभी विशषताओ को न्यूनाधिक रूप म इन लोकधर्मी नाट्यरूपो का प्रदर्शन करने वाली नाटक मडलियो न अपना लिया था ।[1] इसी पृष्ठभूमि म राजस्थानी क आधुनिक नाटको का ज म होता है ।

अपन युग की सामाजिक एव धार्मिक परिस्थितियो स भी राजस्थानी का नाटककार पर्याप्त रूप स प्रभावित हुआ । उस समय सम्पूर्ण दश म आय समाज की सुधारवादी लहर उठी हु थी । पाश्चात्य जगत क सपक स लोगो म नव चेतना का प्रस्फुटन हो रहा था । राजस्थानी समाज को भी नव जागति की य लहर स्पश करन लगी । फलत समाज सुधार का प्रबल आदोलन मारवाडी समाज म फट पडा । सवत्र कुरीतियो के निवारणाथ सभाओ का आयोजन होन लगा । नियम पारित किये जाने लग एव अखिल भारतीय जातीय सम्मेलनो के माध्यम स जागति एव सुधार का मत्र फू का जाने लगा । लखको न भी इस हतु कमर कस ली और एक के बाद एक सुधारवादी नाटको की झडी लगादी । ऐसा लगन लगा कि सपूर्ण मारवाडी समाज सुधार सरोवर म आपाद मस्तक डूब चुका है ।

आय समाज के सुधारवादी आन्दोलन क अतिरिक्त मारवाडी समाज की स्वय की कुछ विशिष्ट परिस्थितियाँ थीं जिन्होने तात्कालिक राजस्थानी लेखको को सुधारवादी नाटक लिखने को प्रोत्साहित किया । य थी इतर भारतीय समाजो की तुलना म मारवाडी समाज का पिछडा जाना एव

---

१ द्रष्टव्य-डा० लक्ष्मीनारायणलाल का धमयुग १५ फरवरी १६७० के अक म प्रकाशित लेख वह पारसी थियटर वास्तव म क्या था ?

उनमें मारवाडी समाज के प्रति व्याप्त घृणा की तीव्र भावना । आधुनिक राजस्थानी के प्रारम्भिक चरण के प्राय सभी नाटककार प्रवासी राजस्थानी थे । बगाल महाराष्ट्र और गुजरात मे रहने वाले इन प्रवासी मारवाडियो ने पग पग पर महसूसा कि उनका समाज इन समाजो की तुलना म कितना पिछडा हुआ है । अपने समाज का यह पिछडापन उन्हें पल-पल कचोटता था । इससे भी अधिक दुख उन्ह तब होता जब व देखते कि केवल मारवाडी होने के नाते ही उन्ह पग पग पर अपमानित होना पडता है । अपने समाज की इस विषम स्थिति पर तात्कालिक लेखको ने खुलकर विचार किया है ।[1]

उपर्युक्त साहित्यिक एव सामाजिक पृष्ठभूमि मे राजस्थानी साहित्य ने आधुनिक काल म प्रवेश किया । उसने अपनी बात कहने के लिए साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा नाटक को ही विशेष रूप से अपनाया । इसके भी कई कारण थे । प्रथम, तात्कालिक राजस्थानी लेखको की यह धारणा थी कि नाटक के माध्यम से सामाजिक दोषो की ओर लोगो का ध्यान सहज ही आकर्षित किया जा सकता है । समाज सुधार का यह एक प्रबल माध्यम बन सकता है ।[2] द्वितीय, उनके आसपास के वातावरण ने भी उन्हें नाटक लेखन के लिए विशेष रूप मे प्रेरित किया । इस काल के प्राय सभी प्रमुख नाटककार प्रवासी राजस्थानी थे और उनका सम्बन्ध महाराष्ट्र से विशेष रूप मे था । सभवत मराठी की समृद्ध रगमचीय परम्परा ने भी इन लेखको को इस ओर प्रवृत्त किया । इसके अतिरिक्त पारसी थियेटर की विशेष लोकप्रियता ने भी इन्हें नाट्य जगत की ओर खीचा इन्ही सब कारणों से राजस्थानी म आधुनिक काल के प्रारम्भिक २५ ३० वर्षो म नाटको का पूर्ण बोलवाला रहा ।

आधुनिक युग के प्रारम्भिक चरण म जो रचनाएँ प्रकाश मे आई उनम अधिकाश नाटक या नाटक जैसी ही अन्य रचनाएँ प्रमुख थी । अद्यावधि प्राप्त जानकारी के अनुसार आधुनिक राजस्थानी साहित्य की प्रथम रचना एक नाटक ही है । यह नाटक है श्री शिवचन्द्र भरतिया का केसर विलास जो कि सवत १९५७ (सन १९००) मे प्रकाशित हुआ था ।[3] इसका दूसरा सस्करण सवत १९६४

---

१ ममोई और बीका आजूबाजू का प्रान्त माहे 'मारवाडी य चार अक्षर इतना सूगला और घृणित हो रह्या छ के 'श्यालक वहूनी का नाव का अक्षर भी इणाके आगे कुछ भी नहीं । ममोई माहे साधारण गाडा को कोचमान भी 'ए मारवाडी वाजू सरक करन पुकारसी । उठीने हलका आदमी की उपमा हा पक्का मारवाडी आहे अर्थात जो पक्का मारवाडी छे इसी हो रही छे । उठीने गाव खेडा माहे म्हे देख्यो छ क आछा सा लखपति मारवाडी ने एक साधारण चपरासी आसी तो हलका शब्द बोलकर कचेरी मे ल जासी । भूमिका 'कनक सुन्दर शिवचन्द्र भरतिया

२ 'नाटक भी एक उपदेश देबा को सरल मार्ग छे । ई का प्रभाव सू वियोडी घटना आख के सामने प्रत्यक्ष नाचण लाग जाव छ । झूटी समाज सुधारणा री उपदेश प्रद घटना माची कर कर बताई जा सक । अक्ल बडी की भस—श्री नारायण अग्रवाल

३ (क) श्री भूपतिराम साकरिया ने अपनी पुस्तक आधुनिक राजस्थानी साहित्य म इसे भरतिया जी की तीसरी कृति बताया है एव इसका प्रकाशन काल सवत १९६४ माना है, जो ठीक नहा है । लेखक की मारवाडी भाषा की यह प्रथम कृति है । स्वय लेखक ने अपने 'फाटका जजाल एव 'बुढापा की सगाई नाटको की भूमिका में इसे अपनी प्रथम रचना बताया है ।

(सन १६०७) मे प्रकाशित हुआ। यह सुधारवादी भावना से प्रेरित होकर लिखा गया एक यथार्थवादी सामाजिक नाटक है। जिसमे मारवाडी समाज के तात्कालिक जीवन का यथार्थ सामाजिक चित्र खीचा गया है। लेखक स्वय इसकी इस विशेषता की ओर इगित करता है। इस दृष्टि से इसे यथार्थवादी नाटक कहा जा सकता है। घटनाओ का यथार्थ रूप मे प्रकाशन करने के कारण ही लेखक को अपने युग के सुधारवादी लेखको की आलोचना का पात्र बनना पडा। 'पचराज' नामक पत्र मे 'केसर विलास' मे समाज की यथार्थ स्थिति के चित्रण के कारण लेखक को दोषी बताते हुए लिखा गया है—"लेखक ने मारवाडी समाज की कुरीतियो का दिग्दर्शन बडी खूबी से किया है। हा लेखक को इस बात का ध्यान ही नही रहा कि इस पुस्तक को भाई भाई के सामने और लडका बाप के सामने कम पढ सकेगा।"[1]

राजस्थानी नाटको का मुख्य आधार तो सामाजिक जीवन ही रहा है किन्तु साथ ही साथ ऐतिहासिक अर्द्ध ऐतिहासिक एव पौराणिक प्रसगो को भी आधार बनाकर नाटक लिखे गये है। सामाजिक नाटको की मूल प्रेरणा समाज सुधार की भावना रही है। प्राय सभी सामाजिक नाटक मारवाडी समाज की कुरीतियो से सबधित हैं। इन नाटको मे एक या अनेक बुराईयो का चित्रण हुआ है। इनमे प्राय हर बुराई को एक समस्या के रूप मे उठाया गया है और उसके दुष्परिणामो का विस्तार से चित्रण हुआ है। इनके अत मे लेखक ने समाधान के रूप मे किसी शान्त व्यवस्था को भी प्रस्तुत कर दिया है। इन नाटको मे बार बार उठायी जाने वाली प्रमुख समस्याए—वृद्ध विवाह बाल विवाह अनमेल विवाह कन्या विक्रय अशिक्षा फाटका फिजूल खर्ची पर्दाप्रथा, मृत्यु भोज अश्लील गीत गालिया एव वेश्याओ के नृत्यादि से सबधित हैं। फाटका जजाल जैसे नाटक मे उपयुक्त समस्याओ के अतिरिक्त अन्य अनेक पहलुओ पर विचार किया गया है। लेखक प्रस्तुत नाटक की भूमिका मे एक स्थान पर लिखते हैं—"इण माहे धर्म का दस लक्षण पुनधर्म बन्धुभाव दलाला को जाल सट्टा फाटका सू नाश कुसग को फल, स्वार्थी लोगा की दगाबाजी रडीबाजी को बुरो परिणाम मारवाडी समाज की कुरीता उणाका सुधार को उपाय फूट सू खराबी एकता सू फायदा लुगाया को स्वभाव, स्वदेश भक्ति, स्वदेश वस्तु प्रचार पातिव्रत्य स्त्रीधर्म रडी और दगाबाज मित्रा की करतूत साची बन्धुप्रीति सकट माहे स्त्री तथा मित्र की परीक्षा धधा कला कुशलता सू लाभ मिल को उद्योग हुइ तथा स्वदेश को इतिहास विद्या स्त्री शिक्षण ससार सुधार नीतिधर्म और सन्मार्ग को उपदेश जगा जगा शास्त्र को विचार कीनो छ और स्थान-स्थान धर्म नीति वाणिज्य को उपदेश कीनो छ।"[2]

इन नाटको का नामकरण भी इन्हीं सामाजिक समस्याओ के आधार पर हुआ है। यथा भरतिया जी के बुढापा की सगाई 'फाटका जजाल' भगवतीप्रसाद दारुका के बाल विवाह नाटक

(क) राजस्थानी एकाकी की भूमिका मे श्री गणपतिचन्द्र भडारी ने इसी नाटक के विषय मे लिखा है कि "यू तो आपरो पैलो नाटक 'केसरविलास' हो वो घणो लोकप्रिय नी हुवो।" किन्तु भडारीजी का यह कथन ठीक नही। लेखक ने अपने नाटक फाटका जजाल एव बुढापा की सगाई आदि अन्य रचनाओ की भूमिकाओ मे 'केसर विलास' की आशातीत सफलता का उल्लेख बडे गर्व से किया।

१ पचराज वर्ष ४ अक ४–५, आषाढ श्रावण स० १६७५ पृ० १२४

२ फाटका जजाल' शिवचन्द्र भरतिया (प्रस्तावना पृ० स०—५) प्र० का०-स० १६६४

वद्ध विवाह नाटक', 'सोठणा सुधार नाटक', गुलाबचन्द नागोरी का 'मारवाडी मौसर और सगाई जजाल', बालकृष्ण लाहोटी का कन्या बिक्री एव नारायणदास जी सारडा नागर का बाल ब्याव की फास आदि।

सभी सामाजिक नाटको मे प्राय उपदेश की प्रवत्ति प्रधान रही है। लेखको न किसी न किसी पात्र के मुख स अपना बात कहने का अवसर खोज ही निकाला है। प्राय हर नाटको म उपयुक्त समस्याओ म म किन्ही एक पर दो चार पृष्ठ का उपदेश भाड दिया गया ह। फाटका जजाल' म अकेला एक पात्र ११ पृष्ठो तक लगातार उपदेश देता चला गया है।

अरनिया कालीन सामाजिक नाटको म आलोचनात्मक एव उपदेश प्रधान सुधारवादी प्रवत्ति को प्रमुखता देने के कारण अन्य बातो की ओर लेखको का ध्यान बहुत कम गया है। फलत अभिनयता की दृष्टि म केसर विलास' को छोडकर किसी भी नाटक को उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। इस दृष्टि म सामाजिक नाटको म दूसरा उल्लेखनीय नाटक प० मदनमोहन सिद्ध का जयपुर की ज्योणार'[1] है। यद्यपि लखक न नाटक की भूमिका म प्रस्तुत नाटक लिखन का अपना अभिप्राय समाज सुधार की भावना लोगो म जागत करना बताया है कि तु वह पूरे नाटक म कहा भी किसी कुरीति की सीधी आलोचना नहीं करता है। उसम घटनाओ का सयोजन ही इस कुशलता स किया गया है कि उनस स्वत हो तात्कालिक सामाजिक कुरीतियो की व्यर्थता ध्वनित होती है। जहा अभिनयता की दृष्टि से नाटक अत्यन्त सफल रचना है वहा अपनी कुछ अन्य विशेषताओ के कारण भी यह एक स्मरणीय रचना ह। नाटक म कहीं भी समस्या का समाधान देने का प्रयास नहीं किया गया है और नाटक म तीनो अको का अन्त सामाजिक विद्रूतियो पर व्यग्य करती हुई दुखद घटनाओ म हुआ है।

इस दृष्टि से तीसरा उल्लखनीय नाटक जमनाप्रसाद पचोरिया का 'नई बीनणी'[2] ह। होन को तो इस नाटक का उद्देश्य भी समाज सुधार ही ह। इसम विशेष रूप स स्त्री जाति की अशिक्षा एव अनमल विवाह (शिक्षित पति अशिक्षित पत्नी) की समस्या को उभारा गया है। लेखक स्वय इन कुरीतियो के सम्बन्ध म कुछ नहीं कहता है जो कुछ कहती है, वे घटनाए ही कहती है। इसके सवाद अत्यन्त चुस्त एव हासपरिहासपूर्ण है। अभिनयता का इसम पूरा ध्यान रखा गया है।

---

१ प्रस्तुत नाटक तीन खण्डो म प्रकाशित हुआ है और प्रत्येक खण्ड के कई-कई सस्करण निकल चुके है।

(क) श्री भूपतिराम साकरिया अपनी आधुनिक राजस्थानी साहित्य नामक पुस्तक म पृ० स० १२९ पर लिखते है-' जेपर की ज्योणार प० मदन मोहन सिद्ध का यह नाटक दो भागो म प्रकाशित हुआ है। वस्तुत नाटक का नाम जपर की ज्योणार न होकर जयपुर की ज्योणार है और यह दो नहीं अपितु तीन भागो म प्रकाशित हुआ है।

(ख) श्री गणपतिचन्द्र भण्डारी न भी अपनी राजस्थानी एकाकी की भूमिका म प्रस्तुत नाटक के दो खण्डो म प्रकाशित होन का उल्लेख किया ह-जो कि मिथ्या है।

२ प्रकाशन काल अक्टूबर १९६० राजस्थान ड्रामेटिक सोसाइटी मरी दूसरी पन सहाटोलन बम्बई २

पौराणिक कथानक को आधार बनाकर महाभारत को श्री गणेश [1] नामक एक ही नाटक लिखा गया है। इसके लेखन का उद्देश्य शिक्षण शालाओं एव अन्य सस्थाओं में अभिनीत करने के लिए बिना स्त्री पात्र का नाटक प्रस्तुत करना था।[2] इसमें उन परिस्थितियों का वर्णन हुआ है जिनके कारण महाभारत का युद्ध हुआ था। अभिनेयता की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है। कृष्ण को भगवान मानते हुए भी उनके किसी अलौकिक कार्य का वर्णन इसमें नहीं हुआ है। अपने सम-सामयिक नाटकों में यही एक ऐसा नाटक है जिसमें उपदेश का सर्वथा अभाव है।

ऐतिहासिक नाटकों में प्रथम नाटक श्रीनारायण अग्रवाल का 'महाराणा प्रताप' है। इसके स्वतन्त्रता शिरोमणि राणा प्रताप के जीवन को आधार बनाकर गिरधारीलाल शास्त्री ने 'प्रणवीर प्रताप' नाम से मेवाडी भाषा में सवत २०१५ में एक नाटक प्रकाशित करवाया है। इसमें महाराणा के चरित्र को यथा शक्य उनके ऐतिहासिक एव प्रकृत रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक की सबसे बडी विशेषता इसकी पात्रानुकूल भाषा है। महाराणा प्रताप और उनके साथी मेवाडी का प्रयोग करते हैं तो पृथ्वीराज बीकानेरी (मारवाडी) का अकबर उर्दू का एव भील लोग भीली बोली का प्रयोग करते हैं। वैसे आवश्यक परिवर्तन के साथ इसे रगमच पर अभिनीत किया जा सकता है, किन्तु दृश्यों की भरमार इस दृष्टि से एक बडी बाधा है। किसी भी ऐतिहासिक घटना को तोडा नहीं गया है और न ही किसी ऐतिहासिक पात्र के चहरे को विकृत करने का ही प्रयास किया गया है।

आज्ञाचद भण्डारी कृत 'पन्ना धाय' एक अन्य उल्लेखनीय ऐतिहासिक नाटक है। इसका प्रकाशन काल सन् १९६३ ई० है। प्रस्तुत नाटक में भी ऐतिहासिक तथ्यों को यथा सभव उनके प्रकृत रूप में ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पन्ना धाय के चरित्र को बडी तन्मयता एव कुशलता से सवारा गया है। अभिनेयता की दृष्टि से नाटक में विशेष दोष दृष्टिगत नहीं होते, हा जहा लेखक अहिंसा के विश्लेषण एव औचित्य अनौचित्य के प्रश्न पर उलझ जाता है वहीं कथानक शिथिल हो जाता है एव नाटक के रसबोध में बाधा पहुचती है। उपर्युक्त ऐतिहासिक नाटकों का अभीष्ट राजस्थानी इतिहास के कुछ गौरवपूर्ण पृष्ठों को सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत करने का रहा है।

वैसे तो राजस्थानी नाटकों में बोलबाला सुधारवादी सामाजिक नाटकों का रहा है, किन्तु बीच में रगमच को आधार बनाकर नाटक लिखने की प्रवृत्ति विशेष रूप से उभरी। अभिनेयता को आधार बनाकर लिखे गये नाटकों में 'मारवाडी मोसर और सगाई जजाल नाटक' [3] तथा अक्कल बडा की

---

१ श्री नारायण अग्रवाल प्र०का० सवत १९८१ मारवाडी भाषा प्रचारक मडल, धामणगाव।

२ आजकल धार्मिक व दुजी सस्थावा का वार्षिक उत्सव पर नाटक खेलवा को रिवाज चल गयो छे पर तु बिना स्त्रीपात्र का और योग्य नाटक मिले नहीं जिकासू राजस्थानी या मारवाडी छात्रगह का उत्सव पर समय समय पर खेलवान मैं नाटक की रचना करी थी।'
भूमिका 'महाभारत को श्री गणेश'

३ गुलाबचन्द नागोरी, प्रकाशन काल वि०स० १९८० मा० भा० प्र० म० धामण गाव।
पुस्तक रूप में प्रकाशित होने से पूर्व यह नाटक पचराज में स० १९७३ में क्रमश प्रकाशित हुआ था।
श्री भूपतिराम साकरिया एव श्री गणपतिचन्द्र भडारी दोनो ही लेखकों ने 'मारवाडी मोसर और सगाई जजाल नाटक' को 'मारवाडी मोसर' एव 'सगाई जजाल' नाम से दो भिन्न नाटक माना है किन्तु वस्तुत यह एक ही नाटक है।

भस नाटक प्रारम्भिक नाटका म प्रमुख है। इनम स अक्ल बडा की भैंस नाटक, कई दृष्टिया स उल्लेखनीय है। इसके लेखक ने अपन अन्य सम सामयिक लेखका स सर्वथा भिन्न विषय वस्तु प्रस्तुत नाटक के लिए चुनी है यद्यपि उसका भी ध्यय समाज सुधार हा है। लखक की दृष्टि म सभी बुराइया की जड अशिक्षा है, अत उसन प्रस्तुत नाटक म विद्या की महत्ता प्रतिपादित की है। मारवाडी समाज क लेखका न अपने समाज म व्याप्त कुरीतिया की ओर तो बहुत ध्यान दिया है, किन्तु स्वय मारवाडी समाज द्वारा किय जान वाले शोषण की ओर स आखें बिल्कुल बन्द कर ली ह। प्रस्तुत नाटक म लखक न साहस के साथ अपने समाज के एक बडे भारी दोष पर प्रकाश डाला ह कि किस प्रकार य लाग भाले भाले लागा का शोषण करते थ।[1]

रगमच को दृष्टि म रखकर लिखे गय नाटका म विशेष सफलता, प्रसिद्ध गीतकार भरत यास के ढोलामरवण[2] एव रगीलो मारवाडी[3] (रामू चनणा) को मिली है। य नाटक विशुद्ध रगमचीय दृष्टि से लिखे गय है। नाटककार का सपूण ध्यान रगमच की दृष्टि से नाटक का सफल बनान की ओर लगा हुआ है। यह भी स्वीकार करना पडेगा कि इसके पीछे व्यावसायिकता की दृष्टि प्रमुख रही है। ये नाटक विशेषरूप स प्रवासी मारवाडी समाज की रुचि को ध्यान म रखकर लिखे गय हैं। इन नाटका के कथानक और गीत सभी कुछ जन साधारण म पहल स ही अत्यन्त लाकप्रिय रह ह। साधारण स्थिति म इन्ह अभिनीत करने म पर्याप्त कठिनाइया आती ह। ढाला मरवण म जहा अलौकिक घटना का समावश हुआ है वहा अनेक दृश्य एसे भी है जिन्ह आसानी से रगमच पर प्रस्तुत नही किया जा सकता। यही स्थिति 'रामू चनणा' के साथ भी न्यूनाधिक रूप से घटित हाती है। साहित्यिक दृष्टि स इनका मूल्य विशेष नही है। पग पग पर दोगाना का आयाजन किया गया ह। लगता है कि फिल्म जगत के प्रभाव से लेखक अपन आप का बचा नही पाया है।

रगमच को ही दृष्टिगत रखकर श्री पचोरियाजी का नई बीनणी नाटक भी लिखा गया ह किन्तु यह नाटक भरत व्यास के नाटका स सर्वथा भिन्न है। यह भी बम्बई और कलकत्ता जस शहरा म कई बार अभिनीत हो चुका है। किंचित आवश्यक परिवर्तना के पश्चात इसे कही भी अभिनीत किया जा सकता है। अति नाटकीयता के दोष स भी यह मुक्त ह। सपूर्ण नाटक व्यग्यात्मक सवादा एव हास परिहास पूर्ण प्रसगो स युक्त ह। पात्रो के चरित्र निर्माण म मनोविज्ञान का पूरा ध्यान रखा गया है। नाटक का कथानक मारवाडी समाज के दैनदिन जीवन स सम्बन्धित ह। बालका को ध्यान म रखकर बालोपयोगी शिक्षाप्रद नाटक लिखने का श्रेय श्री श्रीनारायण अग्रवाल को है। जहा एक ओर य नाटक बच्चा क

---

१ घमडी राम० (हिसाब कर है दख भाइ थारी तरफ १६०) रुपिया मुद्दल अर मास १६ को ब्याज ३२) रुपिया हुआ। दख (गिणाव है) कातीक मिगसर माघ, फाग, फागण हाली, चत, बसाख, दूजा बसाख, जठ, साढ सावण भादवो भादवा, आसोज कातीक यू सोला महीना हुया और र०८) की धोती १ गिनले पूरा २००) होगया। बाकी सवा. २५० हा गया।'
अक्ल बडी की भस पृ० स० ८

२ प्रकाशन काल-स० २००६ राजस्थान कलामदिर बहादुरहाउस घोड बदर रोड मलाड, बम्बई।

३ प्रकाशन काल-स० २००४, यास सदन ६१८ टिलवाडी, विठवालन, बम्बई।

बन समाज सुधार म लग जाते हैं। श्री अग्रवाल के ही एक अन्य नाटक 'भक्त बडी के भल नाटक' म भी लगभग इसी शली मे शिक्षा एव अशिक्षा के परिणामो का चित्रण हुआ है। श्री बालमित्र के 'सगीत कलीयुगी कृष्ण रुक्मण नाटक' म भी एक ओर कृष्ण और रुक्मणी का कहानी है जिसम कृष्ण नामधारी यह युवक 'रुक्मिणी' को एक वद्ध के चुगल म फसने से बचाकर उसका उद्धार करता है तो दूसरी ओर वद्ध जुरासिध और उसकी युवा पत्नी की कहानी है जिसम जुरासध की युवा पत्नी, पति स शारीरिक तृप्ति न पाकर गलत राह चल पडती है। इस प्रकार इन नाटको म शिव क पक्ष समथन म ही अशिव का आयोजन हुआ है।

आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी विचारधारा स अनुप्राणित नाटको म उन नाटको का स्थान आता है—जिनम एक ही कथानक म पतन एव उत्कप चित्रित हुआ होता है। इने नाटको म पात्रो को धीरे धीरे पतन की राह पर अग्रसर होते चित्रित किया जाता है एव कगार पर पहुचने स पूव ही किसी विशेष घटना के म यम स उनकी राह को एकदम परिवर्तित कर दिया जाता है और वे ही पात्र अशिव स शिव की ओर लौट आते है। श्री दारूका के 'कलकतिया बाबू नाटक'[1] श्री नागोरी के मारवाडी मौसर और सगाई जजाल नाटक' तथा श्री जमनाप्रसाद पचेरिया के नई बीनणी म इसी पद्धति को अपनाया गया है। कलकतिया बाबू नाटक के करोडपति बाबू फूलचद अपनी गलत आदतो क कारण कगालपति बनने की स्थिति तक पहुच जाते है और उसी समय अपने मुनीम की सलाह एव एक साधु की प्रेरणा स अपनी जीवन पद्धति म आमूल परिवतन कर पुन खोयी साख को प्राप्त करने म सफल होते हैं और उधर फूलचन्द के ही चरण चिह्नो पर चलनेवाला लखपति बाप का बेटा रामेश्वर भी पतन क कगार पर पहुच पत्नी के प्रयासो से सन्माग पर लौट आता है। इसी प्रकार मारवाडी मौसर और सगाई जजाल नाटक का पूनमचद जो कि सामाजिक प्रथाओ की विवशता के कारण अपनी युवा पुत्री को वद्ध बालकिसन को बचने का कदम उठाता है सुधारको की सहायता से पुन सही रास्ते पर लौट आता है और अपनी कन्या की शादी एक समवयस्क होनहार नवयुवक स कर लेता है। उधर प्रस्तुत नाटक की दूसरी कथा मे अल्पवयस्क सनीदान अपने साथियो एव सुधारको की सहायता से अपने से अधिक वय वाली लडकी के साथ शादी होने के अभिशाप से बच जाता है। नई बीनणी का सपादक भी अपनी पत्नी को अशिक्षित एव कलहकारिणी होने के कारण त्याग देता है किन्तु बाद म अपनी उसी पत्नी को अपने मित्र और मित्र वधू के प्रयासो के कारण स्वीकार कर लेता है। वे लोग राधा (सम्पादक की पत्नी) को न केवल सामान्य शिष्टाचार ही सिखलाते ह अपितु उसे साधारण रूप से शिक्षित कर शहरी जीवन के सभ्य समाज के अनुकूल आचरण करना भी सिखला देते है।

इस प्रकार इन नाटको म घटनाओ एव पात्रो के चरित्र का स्वाभाविक रूप मे विकास नही हो पाया है और नाटक के प्रारभिक चरणो म अपनी स्वाभाविक गति से चलने वाले कथानक एव पात्रो का अन्त म जाकर एकदम नेतकोद आदश के अनुरूप अस्वाभाविक परिवतनो स गुजरना पडा है।

ऊपर जिन आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी नाटको का उल्लेख हुआ है—उनम कही उन्ह बालोपयोगी शिक्षाप्रद नाटक बनाने की दृष्टि से आदश की स्थापना हुई है तो कही तात्कालिक रूढिग्रस्त समाज को

१ प्रारम्भिक युग की अधिकाश नाटय रचनाओ के शीर्षक के साथ उनके रचयिताओ ने नाटक, शब्द का प्रयोग किया है—यथा भाग्योदय नाटक कलकतिया बाबू नाटक आदि।

अपनी हीनावस्था का बोध करवाकर एक स्वस्थ स्थिति की ओर उसका ध्यान आकर्षित करने की दृष्टि से आदश का सहारा लिया गया है। नाटका एव उनम आय पात्रो के नामकरण से भी लेखको की 'शिव क प्रति रही रुचि सूचित होती है। तभी तो जहा एक ओर 'भाग्योदय नाटक', 'अकल बडी की भैंस नाटक विद्या उदय नाटक' जस नाटका के नाम रखे गये हैं, वहा दूसरी ओर शिव और अशिवकारी प्रवत्तियो का प्रतिनिधित्व करन वाल पात्रो के नाम भी मिलते हैं यथा-उद्यमसिंह भाग्यसिंह, निरासमल दुष्टपाल जुरासध, कुमतीप्रसाद आदि।

नाटकीय तत्त्वो की दृष्टि से विचार करन पर पता चलता है कि भारतीय एव पाश्चात्य दोनो ही नाट्य शलियो म प्रेरित होकर इन नाटका की रचनाएँ हुई हैं। एक ओर श्री श्रीनारायण अग्रवाल के भाग्योदय नाटक, 'विद्या उदय नाटक अकल बडी की भस नाटक 'महाभारत को श्री गणेश आदि नाटक है जिनम भारतीय नाट्य शली का अनुकरण हुआ है। सूत्रधार मगलाचरण भरतवाक्य आदि निर्देशो का इन नाटका म यथाशक्य पालन हुआ है और भारतीय नाट्य परम्परा के अनुकूल ही उह सुखा त रूप म प्रस्तुत किया गया है। दूसरी ओर पाश्चात्य नाट्य शली से प्रेरित नाटका की सख्या भी कम नही रही है। श्री भरतिया एव श्री दाम्का के अधिकाश नाटक श्री गुलाबचन्द नागोरी के 'मारवाडी मौसर और सगाइ जजाल नाटक श्री पचारिया के 'नई बीनणी एव श्री आनन्दचन्द भडारी के पना धाय आदि नाटका का झुकाव पाश्चात्य नाट्य शली की ओर विशेष रहा है। वसे इन नाटको मे कहीं-कहीं भारतीय नाट्य परम्पराओ को भी अपनाया गया है किन्तु इनका गठन एव पात्र विधान इह मुख्य रूप से पाश्चात्य नाट्य शली मे अनुप्राणित नाटक ही सिद्ध करता है।

यद्यपि नाटका की मुख्य मुख्य विशेषताओ के आधार पर आधुनिक राजस्थानी नाटको को—भारतीय नाट्य शली एव पाश्चात्य नाट्य शली से प्रभावित नाटको क रूप म विभाजित कर सकते हैं किन्तु उनम समग्र रूप से दोनो ही नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तो का कठोरता स निर्वाह नही हुआ है। जहा तक भारतीय नाट्य शली के अनुकरण पर लिखे जाने वाले आधुनिक राजस्थानी नाटका का प्रश्न है—उनम सूत्रधार, मगलाचरण भरत वाक्यम आदि का आयोजन होते हुए भी नायक के असाधारण व्यक्तित्व उसकी निश्चित विजय सगीत नत्य आदि की योजना विदूषक या उसके अभाव मे विशेष हास्य प्रसगो के आयोजन आदि अय बातो की ओर विशेष ध्यान नही दिया गया है। इसके अतिरिक्त अक सख्या आदि म सबधित नियमो का भी कठोरता से निर्वाह नहीं हुआ है। (अधिकाश नाटका की अक सख्या ३ स अधिक नहा रही है) *संस्कृत नाटको का भाव नाटित्य एव सौन्दय भी इन नाटका* म नहीं आ पाया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजस्थानी नाटका म संस्कृत नाट्य शली का आशिक रूप म ही अनुसरण हुआ है।

पाश्चात्य नाट्य परम्पराओ के प्रभाव का जहा तक प्रश्न है उसने आधुनिक राजस्थानी के अधिकाश नाटको को एक दृष्टि स प्रभावित किया है और वह है नाटक के कथानक का साधारण जना से सम्बद्ध होना और नायक की परिकल्पना का तोन्ना। चाहे नाटक सुखान्त हो या कि दुखान्त चाहे उनका प्रारभ बिना किसी मगलाचरण एव सूत्रधार की सहायता क हुआ हो या कि इन परम्पराओ का निवाह करत हुए हुआ हो—इन स्थिति म उसके कथानक का सीधा सम्बध तात्कालिक समाज व सामा यजनो की समस्याओ स रहा है। इस प्रकार य नाटक पाश्चात्य प्रभाव के कारण विशिष्ट जनो के

दायरे से निकल कर जनसाधारण तक आ पहुँचे हैं। बहुत से नाटकों में मंगलाचरण, सूत्रधार आदि की आवश्यकता भी नहीं समझी गयी है और नाटककार सीधे अपने मूल प्रतिपाद्य पर आ गये हैं। इसके अतिरिक्त नाटकों में संघर्ष की प्रमुखता एवं पात्रों के चरित्रांकन में मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को अपेक्षया अधिक महत्त्व देने की प्रवृत्ति भी पाश्चात्य नाट्य शैली का ही परिणाम कही जायगी। यह प्रवृत्ति भरतिया जी के नाटकों 'नई बीनणी' 'पन्ना धाय' आदि में विशेष प्रभावी रही है। इसी प्रकार इन नाटकों में अंक संख्या का दो या तीन तक सिमट आना एवं गीत नृत्यादि का भी अल्पमात्रा में आना पाश्चात्य नाट्य परम्परा का ही प्रभाव कहा जायगा। इतना सब कुछ होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि इन नाटकों में पाश्चात्य नाट्य शास्त्र की संपूर्ण विशेषताओं का अंगीकार कर लिया है। पात्रों की वेशभूषा, रंगमंच की स्थिति आदि के बारे में सूचना देने वाली रंग संकेत प्रणाली को अपनाने में राजस्थानी नाटककारों ने कोई उत्साह नहीं दिखलाया है। संकलन त्रय के निर्वाह एवं परिस्थितियों के द्वन्द्व तथा तज्जन्य संघर्ष की तीव्रता को प्रमुखता देने में इन नाटककारों ने कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई है।

यहाँ राजस्थानी नाट्य साहित्य की कुछ कमियों की ओर इंगित करना अप्रासंगिक नहीं होगा। राजस्थानी में पद्य प्रधान गीतिनाट्य, भाव नाट्य, एक पात्रीय नाटक, स्वप्न नाटक एवं कल्पना मूलक नाटकों का तो सर्वथा अभाव रहा ही है किन्तु इसके साथ-ही-साथ 'बाचबालायक' एवं 'खेल बालायक' दोनों प्रकार के नाटक लिखे जाकर भी साहित्यिक नाटकों की सर्जना नहीं हुई है। यही स्थिति समस्या नाटकों को लेकर रही है। व्यक्ति समस्या नाटक तो कोई प्रकाश में आया ही नहीं है और सामाजिक समस्या नाटकों में भी अनेक सामयिक समस्याओं को उठाते हुए भी समस्या को उभारने, पाठकों को उसकी जटिलता का आभास कराने एवं समस्याजन्य द्वन्द्व तथा संघर्ष को कहीं प्रमुखता नहीं दी गयी है। सीधे सादे ढंग से समस्या को प्रस्तुत कर प्रायः उसके दुष्परिणामों की ओर इंगित करते लेखक समाधान की ओर बढ़ जाते हैं। हिन्दी में लक्ष्मीनारायण मिश्र के समस्यामूलक नाटकों जैसा एक भी नाटक राजस्थानी में उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार पाश्चात्य नाट्य शैली से प्रभावित होते हुए भी पूर्ण दुःखान्त नाटक का सर्जन भी राजस्थानी में नहीं हुआ है। 'जयपुर की ज्योणार' का लेखक अवश्य ही आंशिक रूप से इस ओर प्रवृत्त हुआ है।

इन बातों के अतिरिक्त भी राजस्थानी नाटकों की कुछ अन्य उल्लेखनीय बातें हैं—जो चाहे सामान्य रूप से उनके किसी उद्देश्य का कारण बनने की अपेक्षा सीमा भले ही बन जाय किन्तु अधिकांश नाटकों में वे बातें सामान्य रूप से पायी जाती हैं, अतः यहाँ उनकी ओर संकेत करना असंगत नहीं होगा। दृश्यों की बहुतायत जहाँ राजस्थानी नाटकों की सामान्य विशेषता रही है, वहाँ पात्रों की संख्या भी उनमें कुछ अधिक ही बढ़ी चढ़ी मिलेगी। फलतः जहाँ एक ओर बार बार दृश्य परिवर्तन की परेशानी नाटक की अभिनेयता में बाधा उपस्थित करती है वहाँ दूसरी ओर एक एक और डेढ़ डेढ़ पृष्ठों के दृश्य भी कोई प्रभाव नहीं जमा पाते हैं। वस्तुतः कथा विकास के जिन सूत्रों की सूचना अपरोक्ष माध्यमों से ही देनी चाहिए वहाँ उनके लिए ये नाटककार झट से एक दृश्य ही खड़ा कर देते हैं। इन सबके अतिरिक्त पात्रों के चरित्रांकन में मनोवैज्ञानिक दृष्टि का अभाव, स्वगत कथनों की भरमार, कथा संगठन एवं संवादों में नाटकीयता की कमी, घटना संयोजन में त्वरा का अभाव आदि राजस्थानी नाटकों की सामान्य कमजोरियाँ हैं।

कहा जा सकता है कि पिछले बीस वर्षों म ज्यो ज्या राजस्थानी लेखका का ध्यान एकाकियो की ओर आकर्षित हुआ है, त्या-त्या नाटक की ओर से उनकी दृष्टि हटती गयी है। जहाँ पिछले बीस वर्षों म शताधिक एकाकी लिखे गय हैं वहा नाटका की सख्या मे भारी कमी आई है। बीस वष की लम्बी अवधि म कठिनाई से ५-७ सम्पूर्ण नाटक लिखे गये हैं। इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं। प्रथम चलचित्र की लोकप्रियता ने बडे-बडे नाटका क निमाण मे जबरदस्त बाधा पहुँचाई है। द्वितीय, जीवन के दिन प्रतिदिन सघषपूर्ण होत जाने के कारण लोगा का जीवन अत्यत व्यस्त हो उठा है और लम्बे नाटको को देखने का समय निकाल पाना जनसाधारण के लिए कठिन हो रहा है। अत स्वाभाविक रूप स नाटको का प्रचलन कम हो गया है। शिक्षण सस्थाओ आदि द्वारा एकाकिया को प्रोत्साहित किये जान के कारण भी नाटक साहित्य के सजन म बाधा उत्पन्न हुई है। इसके अतिरिक्त भी पत्र पत्रिकाआ ने भी नाटको की अपक्षा एकाकियो को प्रश्रय दिया है। राजस्थानी भाषा के पत्रा म जहा पिछले बीस वर्षों मे पचासो एकाकी प्रकाशित हुए हैं वहाँ 'तास रो घर'[1] नामक एकमेव नाटक अभी कुछ रोज पहले ही प्रकाशित हुआ है। इन्ही सब कारणो स राजस्थानी नाटक अपेक्षित प्रगति नहीं कर पाया है।

---

१ यादव द्र शर्मा 'चन्द्र' मरुवाणी, वष १२ अक ११-१२

एकाकी

नाटय साहित्य का आज का सर्वाधिक लोकप्रिय रूप एकाकी नाटक अपने जन्म के कुछ समय पश्चात ही अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। यूरोप की महायुद्धकालीन सामाजिक एव राजनतिक परिस्थितिया ने विशेषरूप से इस नाटय रूप के प्रकाश म आने के लिए प्रभावी वातावरण तयार किया। वसे एकाकी नामक इस विधा के प्रारम्भिक रूप के दशन ईसाई धर्माधिकारियो क जीवन की किसी महत्त्वपूण घटना या फिर किसी उपदशप्रद स्थिति की रगमचीय अभि यक्ति म होते हैं। पश्चात लम्ब नाटको के अभिनय से पूव खेले जाने वाले हास्य विनोदात्मक प्रहसनो एव सामूहिक भोज आयोजन के अवसर पर अभिनीत किये जाने वाले द्विपात्री हास्य-सवादा (कर्टेन रेजर) ने एकाकी को जन्म दिया। इ सन जे० बी० शा, फाकमेन मोलियर आदि प्रतिभाओ का सहारा पाकर यह अति अल्पकाल मे पर्याप्त लोकप्रिय हो गया। जीवन की बढती व्यस्तता और जटिलतर बनते जा रहे मानव सम्बधो ने भी इसके तेजी से प्रचार प्रसार म प्रभावी भूमिका अदा की।

भारतवप म एकाकी का प्रचलन पाश्चात्य जगत मे काफी कुछ लोकप्रियता प्राप्त कर लेने के पश्चात ही हुआ। वसे तो सस्कृत नाटय शास्त्र मे रूपक और उपरूपक के भेदो म एक अक वाल कतिपय रूपका का उल्लख भी मिलता है और उनका सजन भी हुआ है कि तु आज के एकाकी का उनसे कोई सीधा सम्बन्ध नही है। हिन्दी की तरह राजस्थानी ने भी पाश्चात्य साहित्य से प्ररित होकर ही इस विधा को अपनाया है।

अद्यावधि प्राप्त जानकारी के आधार पर राजस्थानी म सवप्रथम पडित माधवप्रसाद मिश्र न इस दिशा मे कदम बढाये। उनका बडा बाजार [1] नामक दो दृश्यो एव तीन पात्रो वाला वार्तालाप वि० स० १९६२ म प्रकाशित हुआ। यद्यपि हम इसे एकाकी नही कह सकते किन्तु फिर भी यह अपन शिल्प म एकाकी के काफी निकट पहुँचा हुआ है। पात्रो की सीमित सख्या आवश्यक रग सकेत दनदिन जीवन का

१ वश्योपकारक, वप २, अक १२ पृ० स० ३२८

एक यथाथ एव व्यग्य प्रधान चित्र, इसे सामान्य वार्तालाप नही रहने देते।[1] इसमें मारवाडियो की स्वार्थ परता, कायरता चालाकी एव चापलूसी का यथार्थ एव प्रभावी अकन हुआ है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग इसके यथार्थ तत्व को और अधिक बढा देता है।

पडित माधवप्रसाद मिश्र के 'बडा बाजार' से पूर्व भी 'वश्योपकारक' के कई अको मे कतिपय पात्रों के सम्वाद 'कनक-सुन्दर'[2] नाम से प्रकाशित हुए थे। यद्यपि इसके लिए दृश्य १, दृश्य २ आदि का प्रयोग किया गया है किंतु इनका एक दूसरे से कोई सीधा सम्बन्ध नही है। वस्तुत इनमे तात्कालिक मारवाडी समाज की किसी एक कुरीति या किसी एक चर्चित घटना को आधार बनाकर उसे रोचक एव

---

१ बडा बाजार

स्थान मि० ** का बगला

(साहब और दो मारवाडी)

साहब – वल बाबू टुम लोग बगाली से बाट करटा।

१ मारवाडी—नही हजूर सब झूठा बात है।

साहब—आ यू राम्कल। हमने सुना टुम जरूर करटा।

२ मारवाडी—दुहाई। हजूर कई बगाली बाबू म्हार कने आया था। हम बोना तुम मूनखोर हो। अग्रेज म्हार मा बाप हैं। उन्हीं के दिए दिन हैं।

साहब—आग वोनो क्या हुआ ?

२ मारवाडी—व बोल्या म्हान मदद द्यो।

साहब—(गुस्से होकर) टुमने मडट डिया ?

मारवाडी – (डरकर) नही सरकार। वै ही वक्त उन्होंने घर से निकास दिया।

साहब—ओ वरा बहादुरी का बाट किया। टुमारी हम बरे साहब स सिपारिस करेगा।

१ मारवाडी—सरकार माई बाप। इबके हजूर मारवाडिया ने खिताब मिलगा ?

साहब—खिताब। मिलने सकटा। राजा शिवबक्स बागला ने टीम हजार गोरू के हास्पिटल में डिया ठा। टुम डेगा ? डेन से सब होने सकटा।

२ मारवाडी—हजूर। इबके लुक्सान ज्यादा हूयो और पन्नावार कमती हुइ।

२ श्री शिवचन्द्र भरतिया के प्रसिद्ध उपन्यास 'कनक सुन्दर (नवलकथा)' से इसका नाम साम्य होने के कारण तात्कालिक पत्रो ने इसे उसी उपन्यास का एक अश समझ कर तत्सम्बन्धी समाचार प्रकाशित किये। फलत उस भ्रम को दूर करने के लिए वश्योपकारक को स्पष्टीकरण देना पडा— किन्तु कनक सुन्दर नाम के रूपक को किसी सहयोगी ने भ्रमवश उपन्यास कहा है किसी ने नाटक ठहराया है पर न वह नाटक है और न उपन्यास। वह एक रूपक है और इसलिए उसका आरम्भ किया है कि दो कल्पित स्त्री पुरुषो के वार्तालाप द्वारा उन बुराइयो का समय-समय पर प्रकाशन किया जाय जिनसे मारवाडियो की क्षति की सम्भावना हो। वश्योपकारक वर्ष १, अक २ पृ० स० ४३ वैशाख सवत १९६१

उपदेशप्रद शैली में वार्तालाप रूप में प्रस्तुत किया जाता था।[1] इस प्रकार 'कनक-सुन्दर' नाम से प्रकाशित इन संवादों और वेश्या बाजार को राजस्थानी एकांकी का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है।

कनक सुन्दर और वेश्या बाजार के रूप में प्रकाशित इन रोचक वार्तालापों के प्रकाशन के काफी बाद तक राजस्थानी लेखक एकांकी लेखन की दिशा में सक्रिय नहीं हुआ। यथावधि प्राप्त सूचनाओं के आधार पर श्री शोभाचन्द जम्मड के वृद्ध विवाह विदूषण को राजस्थानी का प्रथम उपलब्ध एकांकी माना जा सकता है।[2] इसके पश्चात् प्रकाश में आने वाले एकांकियों में गांव सुधार या गामाजान[3] एवं बोळावण या प्रतिनापूर्ति[4] उल्लेखनीय हैं।

---

१ कनक-सुन्दर

(प्रकरण तीजो)

(चौबारा में पिलंग पर उदास होकर कनक सूतो है इतने में हँसती हुई सुन्दर आवे है)

सुन्दर—आज के सोच फिकर में हारया हो ? (ठहरकर) क्यूं बोलो कोनी के ?

कनक—(ऊपर देखकर) क्यों जी घणी हासी मजा करणी आछी नीं वा दिन हासी हासी में थारली तस्वीर उतरावकर मन मेरे मित्रा में सरमाणो पड्यो।

सुन्दर—क्यूं भला। के हुयो ?

कनक—के कहूं ? सारा ही बोलवा लाग्या के तस्वीर तो वेश्या की उतरया करे है कोई भलो माणस आपकी लुगाई की तस्वीर कठे उतरावे है के ? लुगाई की तस्वीर उतार कर लोगां के सामने राखणे सूं आपणो अपमान नी होवे के ?

वैश्योपकारक वर्ष १ अंक ३ पृ० सं० ५६ ज्येष्ठ संवत १९६१

२ प्रो० गणपतिचन्द्र भंडारी ने सीठणा सुधार को कालक्रम की दृष्टि से राजस्थानी का प्रथम एकांकी माना है। उन्होंने इस सम्बन्ध में लिखा है—जठे तांई म्हारी जाणकारी है राजस्थानी रो पैलो एकांकी संवत १९८२ या ईस्वी सन् १९२५ में लिखिजियोडा 'सीठणा सुधार' है जिणमें एक अंक अर ६ दरसाव है। (भूमिका राजस्थानी एकांकी पृ० सं० १०)

वस्तुतः सीठणा सुधार एकांकी नहीं है अपितु यह तीन अंकों एवं ६ दृश्यों वाला पूर्ण नाटक है। अलग से पुस्तक रूप में छपे इस नाटक में इसका प्रकाशनकाल वि० सं०१९८० दिया गया है और मारवाड़ी पंच नाटक में संकलित इसी नाटक का रचनाकाल वि० सं० १९८२ दिया गया है।

वृद्ध विवाह विदूषण के बारे में श्री गणपतिचन्द्र भंडारी की सूचना को आधार मानते हुए उसे राजस्थानी का प्रथम एकांकी माना गया है। इणरे बाद सन १९३० में सरदारसहर रा शोभाचंदजी जम्मड रो एकांकी प्रहसण वृद्ध विवाह विदूषण सामने आयो। भूमिका राजस्थानी एकांकी पृ० सं० १०

३ श्रीनाथ मोदी प्र० का०–१९३१ ई०

४ सूर्यकरण पारीक प्र० का०–१९३३ ई०

उपयु क्त तीन चार एकांकियो के प्रकाशन के बाद लगभग २० वर्ष तक राजस्थानी मे एकाकी लेखन का काय अवरुद्ध सा रहा। इस अवधि म सुधार या प्रचार की दृष्टि स प्रेरित होकर लिख गय एकाकी चाह स्थानीय सस्थाओ द्वारा रगमच पर भले ही अभिनीत किय जा चुके हो किन्तु प्रकाशित रूप म व सामने नही आ पाये। इस लम्बे अन्तराल के पश्चात एकाकी लखन क काय को गति प्रदान करन म जहा एक ओर 'मरुवाणी' एव ओळमो जसी राजस्थानी भाषा की मासिक पत्रिकाओ न महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, वहाँ, प्रो० गोविन्दलाल माथुर की तरह स्वतन्त्र रूप म एकाकी सग्रह प्रकाशित करवान वाले एकाकीकारो का योगदान भी कम उल्लेखनीय नही है। गत बीस वर्षों की अवधि म राजस्थानी म दसो एकाकी सग्रह एव शताधिक एकाकी स्फुट रूप म प्रकाशित हुए ह। उनकी प्रमुख प्रवत्तियो क आधार पर यहा उनका मूल्याकन किया जा रहा है।

राजस्थानी एकाकीकारो का झुकाव ऐतिहासिक एव सामाजिक समस्यामूलक एकाकी लखन की ओर ही विशेष रूप स रहा है, जिनम आदर्शवाद, आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद एव यथार्थवाद—तीनो ही विचारधाराओ के स्वर कमोवेश रूप म उभरे हैं। ऐतिहासिक एव सामाजिक एकाकियो के अतिरिक्त हास्य-व्यग्य मूलक धार्मिक एव पौराणिक तथा राष्ट्रीय एकाकी भी लिखे गये है किन्तु प्राधान्य प्रथम दो का ही रहा है।

राजस्थान का इतिहास न कवल हिन्दी जगत् क लिए ही, अपितु समस्त भारतीय साहित्य जगत के लिए प्रेरणा का एक बहुत बडा स्रोत रहा है। एसी स्थिति म यहा का साहित्यकार यदि यहा क गौरवपूर्ण ऐतिहासिक पृष्ठो से अपन एकाकियो के लिए सामग्री स्वीकारे तो आश्चर्य ही क्या ? डा० मनोहर शर्मा, डा० आनन्दचन्द्र भडारी श्री रामदत्त साकृत्य, श्री दामोदरप्रसाद डा० गणपतिचन्द्र भडारी, रानी लक्ष्मीकुमारी चूडावत प्रभृति एकाकीकारो ने ऐतिहासिक घटनाओ को आधार बनाकर अनेक एकाकियो की सर्जना की है।

राजस्थानी के अधिकाश ऐतिहासिक एकाकियो म जिस राजस्थान के दर्शन होत ह—वह है, कर्नल टाड और राजस्थानी इतिहास के अन्य प्रशसक इतिहासकारो क इतिहास म वर्णित शूरवीर आन के धनी विलक्षण योद्धा शरणागत वत्सल स्वाभिमानी राजपूतो एव कर्तव्यनिष्ठ वीरलो की जीवत प्रेरणा, अदम्य साहसवाली तथा हसत हसत जौहर की लपटो म कूदनवाली राजपूत ललनाओ का राजस्थान। जिसक रोमाचक चित्र बगाली और हिन्दी साहित्य म प्रभूत मात्रा म दखन को मिल सकत ह। किन्तु राजस्थानी एकाकियो म अकित य चित्र अधिक जीवन्त एव विश्वसनीय बन पडे ह। क्योकि राजस्थान क ही मिट्टी म खेले पले यहा क रीति रस्मो एव परम्पराओ स सुपरिचित साहित्यकार वे भूलें बचा गय ह जो राजस्थान के प्रामाणिक चित्र को विकृत कर। इसके विपरीत यहाँ क सास्कृतिक धरातल पर अकित इन चित्रो म आचलिक परिवेश को उभारन वाले रगो का 'टच' प्रभावो वातावरण की सृष्टि म बहुत अधिक सहायक सिद्ध हुआ है।

रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत के सामपरमा माजी[1] म राजपूत ललनाओं के अपूर्व शौर्य स्वामी भक्ति कर्तव्य के प्रति सजगता एव कठिन परीक्षा की घड़ी म शुभ-बूझ के साथ सही निर्णय लेने की क्षमता आदि गुणों को बड़े शानदार ढग से उभारा गया है। वीरमती[2] म सतीत्व रक्षा म तत्पर राजपूत बाला के साहस भरे शौर्य का अकन किया गया है तो देश रे वास्ते[3] म देशद्रोही पुत्र को अपने हाथों से विषपान कराती वज्र हृदया मा का निरूपण हुआ है। इसी प्रकार इस भगत भामाशाह[4] एव इस रो हक[5] राणा प्रताप के स्वातन्त्र्य प्रेम और भामाशाह के अपूर्व त्याग को व्यजित करते हैं तो जलम भोम री मूरत[6] और जय जलमभोम[7], कुम्भा के स्वाभिमानी चरित्र एव मातृभूमि के प्रति उसके अगाध प्रेम भाव को अभिव्यक्त करता है। कहने का तात्पर्य यही है कि इन ऐतिहासिक एकांकियो म राजस्थानी इतिहास के किसी न किसी उज्ज्वल पृष्ठ को चित्रित किया गया है।

राजस्थानी के ऐतिहासिक एकांकियो का दूसरा पक्ष भी रहा है। डा० मनोहर शर्मा के एकांकियो म जिस राजस्थान का चित्र खींचा गया है वह अपने गौरवपूर्ण कृत्यों से जगमगाता राजस्थान नहीं है अपितु वह है इस चकाचौंध म लगभग विस्मृत सा यहाँ की तथाकथित गौरवपूर्ण परम्पराओं को बनाये रखने म बलपूर्वक होमा गया सिसकता राजस्थान। जिसके इन गौरवपूर्ण पृष्ठों के पीछे सामन्ती विलासिता क्रूरता तथा मानवीय दुर्बलताओं की अनेक कहानियाँ छिपी पड़ी हैं। वस्तुत डा० शर्मा ने यहा की ऐतिहासिक महानता से अभिभूत होकर अपनी लेखनी नहीं उठायी है अपितु इन महानताओं की आड़ म सिसकते यथार्थ की करुण पुकार से आर्द्र होकर उसको यथा तथ्य रूप म प्रस्तुत करने की भावना से प्रेरित होकर ही। कवि रो कलक[8] की उमादे सती रा सराप[9] की लाडकवर बन्ना[10] का अजमी और उसके साथी ७०० दूल्हे तथा उनकी अविवाहिता पत्नियाँ राजरण्ड[11] की वढाचण जी बना जमाई[12] का नाना सीमाळोत आदि सभी पात्र या तो राजस्थान की इन तथाकथित गौरवपूर्ण परम्पराओं को बनाये रखने के लिए बलिदान कर दिये गये या फिर राजनैतिक छल छद्म के शिकार होकर समाप्त हो गये।

इस प्रकार राजस्थानी के इन ऐतिहासिक एकांकियो मे दो दृष्टिकोण प्रमुख रहे हैं प्रथम, आदर्शवाद का एव द्वितीय यथार्थवाद का।

---

१ राजस्थानी एकांकी स० श्री गणपतिचन्द्र भंडारी, पृ० १६
२ श्री शक्तिदान कविया वही, पृ० ३५
देश रे वास्ते डा० ज्ञानाचन्द भंडारी पृ० २५
४ डा० ज्ञानाचद भंडारी राजस्थानी एकांकी, पृ० ४६
५ श्री रामदत्त साकृत्य ओळमो नवम्बर १९६६ पृ० ५
६ श्री रामदत्त साकृत्य ओळमो नवम्बर १९६६, पृ० ३१
७ श्री धनजय वर्मा, जलमभोम वर्ष १ अक १ पृ० ७
८ डा० मनोहर शर्मा मरुवाणी वर्ष ७ अक ३ प०स० ५
९ डा० मनोहर शर्मा राजस्थानी वीर दीपावली वि०स० २०१२
१० डा० मनोहर शर्मा राजस्थानी एकांकी प०स० १६७
११ डा० मनोहर शर्मा मरुवाणी वर्ष ७ अक १ पृ० स० ५
१२ डा० मनोहर शर्मा वरदा वर्ष १० अक २

राजस्थानी के सभी ऐतिहासिक एकांकियो मे एक बात सामान्य रूप से प्रमुख रही है वह है– इनके कथानक का अधिकांशत राजस्थान के ही इतिहास से ही चयनित होना। 'कामरान की श्रमिकन्या'[1] जमे गिनती के ऐतिहासिक एकाकी एम हैं, जिनमे राजपूत इतिहास के स्थान पर इतर एतिहासिक प्रसगा को आधार बनाया गया है।

एतिहासिक एकांकिया की तरह ही सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुग्रा को चित्रित करन श्रौर सामाजिक समस्याग्रा क प्रतिपादन की दृष्टि स लिखे गय सामाजिक एकांकियों की मख्या भी पर्याप्त रहा है। सामाजिक जीवन एव सामाजिक समस्याग्रा का लेकर लिखन वाले एकाकीकारा मे भी दो प्रवृत्तियां प्रमुख रही हैं। एक है, प्रारम्भ मे समस्या की विकटता को अपने यथा-तथ्य रूप म प्रकट करत हुए भी श्रत म लेखकीय समाधान के साथ सुखद आदर्शवादी मोड़ प्रदान करन की प्रवृत्ति एव द्वितीय है समस्या को केवल समस्या के रूप म उठाकर पाठका के सम्मुख उसे यथा-तथ्य रूप म प्रस्तुत कर दने की प्रवृत्ति। दूसर शब्दो म प्रथम प्रवृत्ति वाल एकाकी आदर्शवादी एव आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी विचारधारा मे अनुप्राणित एव द्वितीय प्रकार के एकाकी यथार्थवादी विचारधारा से प्रेरित, एकाकी कहे जा सकत हैं।

सामयिक समस्याग्रो का उठाकर उनका आदर्शवादी श्रत प्रस्तुत करन वाले एकांकिया म श्रीनाथ मोदी का 'गाव सुधार या गामा जाट' श्री दिनशखर का 'नू वो मारग'[2] श्री निरजननाथ आचार्य का 'नहरा भगडो' श्री नागराज शर्मा क 'दवतो चेतो'[3], सोवो मतना जागो'[4] आदि एकाकी उल्लेखनीय बन पड़े हैं। इनम प्राय ग्रामीण जीवन की किसी-न किसी समस्या को उठाया गया है। प्रारम्भ म समस्या का यथाशक्य अपने स्वाभाविक रूप म अकित कर श्र त म लेखकीय आदर्श के अनुरूप समाधान प्रस्तुत कर दिया गया है। इस प्रकार के प्राय सभी एकाकी सोद्देश्यीय एकाकी कह जा सकते हैं जिनमे प्राय लखका का उद्देश्य अशिक्षित या अल्पशिक्षित ग्रामीणा के मध्य सरल एव रोचक ढग से कोई-न कोई शिक्षाप्रद एव अनुकरणीय बात का प्रचार करना होता है। नूवो मारग' एव 'नहरी भगडो' सहकारी जीवन का महत्ता पर प्रकाश डालते हैं, तो 'दव ता चेतो' घर का टावर[5] 'सोवो मतना जागो' एव 'आदर्श विद्यार्थी'[6] शिक्षा, स्वास्थ्य बच्चो की उचित दख रख आदि की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए सामान्य ग्रामीण जनो का उन्हीं व्यवस्थाग्रा को अपनाने को प्रोत्साहित करत हैं। एम एकांकिया का गठन प्राय एक ही ढर्रे पर होता है। इनमे एक ओर होता है समस्त अज्ञानताग्रा एव अन्ध परम्पराग्रा को ढोता हुआ अशिक्षित भोला किन्तु रूढिवादी ग्रामीण, दूसरी ओर उनका शोपण करन वाला एव उनकी अल्पज्ञता का अनुचित लाभ उठान वाला कोई पू जीपति या उसी श्रेणी का पात्र और तीसरी ओर होता है एक ऐसा पात्र (जो प्राय डाक्टर या मास्टर के रूप म आता है) जो प्रतिगामी शक्तिया म

---

१ श्री दामोदरप्रसाद, राजस्थानी ग्रेकाकी पृ० स० ५६

२ अशोक प्रकाशन जयपुर, प्र० का०–१९६२ ई०

३ दवतो चेतो पृ० स० १, प्र० का०–१९६३ ई०

४ वहा पृ० स० ३१

५ वही पृ० १५

६ कन्हैयालाल दूगड प्र० का०–१९५८ ई०

जभता है, भाने भाले लोगा को पू जीपति या उसी 'टाइप' के लोगा की कुटिलताग्रा स प्रवगत करवाना है और ग्रत मे प्रगति विरोधी शक्तियो का परास्त कर एक नवीन एव दोषरहित समाज व्यवस्था की स्थापना करना है ।

मास्टरों एव डाक्टरा के हाथ सुधार एव व्यवस्था का सदश प्रसारित करने वाले उक्त एकाकिया की अपेक्षा व एकाकी अधिक सफल एव स्वाभाविक बन पडे हैं, जहाँ पात्र स्वय ही अपने विगत जीवन के कार्यों से प्ररणा लेकर अपने जीवन को एक सही राह म डालने के लिए स्वच्छया परिवतन को अगीकार कर लेते हैं। ऐसे एकाकिया म डा० नारायणदत्त श्रीमाली का 'माटी रा पीरेदार' श्री नागराज शर्मा का 'ओपरी पढाई', श्री अगरचन्द्र भडारी का 'बदळा री आग' प्रो० गोविन्दलाल माथुर का 'डाक्टर रो ब्याव' आदि एकाकी उल्लखनीय हैं। माटी रो पीरेदार एव आपरी पढाई म शिक्षित बेकारी की समस्या को उठाया गया है । दोनो म आधुनिक शिक्षा पाय युवक अपने सम्पन्न पतृक व्यवसाय को छोडकर नौकरी करना चाहते हैं । नौकरी के लिए दर दर भटक कर भी जब वे उसे पाने मे असमथ रहत हैं तो स्वच्छया पतृक व्यवसाय को स्वीकारते हैं। इस भांति डाक्टर रो ब्याव का डा० सुरेंदर पहले मा बाप री इच्छानुसार दहेज की माग का स्वीकृति द दता है किन्तु जब एन शादी के वक्त उसका मामा स्कूटर की माग के लिए हठ पकड लेता है तो सुरेंदर अपने परिवार वालो की बिना चिंता किये शादी कर लता है। बदळा री आग का डाक नरपत अपने साथी क विश्वासघात और जवान' के अदम्य साहस एव मृदु व्यवहार के कारण अपने जीवन भर की राह को बदल लन का निश्चय कर लेता है ।

सामाजिक समस्या मूलक एकाकिया क लेखन की ओर प्रो० गोविन्दलाल माथुर विशेष रूप से उन्मुख हुए हैं । उन्होने शहरी और ग्रामीण दोनो ही जीवन की कुछ एक ज्वलत समस्याग्रा को अपने एकाकियों के माध्यम से उठाया है । समस्या को अपने नग्न रूप म प्रस्तुत कर वे चुपचाप तिसक जाते हैं किन्तु पाठक उसम ऐसा उलभता है कि बडी दर तक उस पर सोचता रहता है । इनके एकाकियो म उठायी गयी समस्याए हमारे सामाजिक जीवन से ही सबधित हैं । इनम कही दहेज प्रथा का विकृत एव घिनौना चित्र अकित हुआ है ता कही कर्ज के भयकर परिणाम चित्रित हुए हैं । कही ग्रामीणा की अशिक्षा जय अज्ञानता व भीषण परिणामा का दिल दहलाने वाला चित्राकन हुआ है ता कही छूआछूत की विषभी नागिन की विकरालता का भयावह अकन और कही सामन्ती युग की क्रूरताओ का मार्मिक चित्रण । इन एकाकिया का नामकरण भी प्राय इन्ही समस्याग्रा क आधार पर हुआ है यथा—कर्ज का अभिशाप [1], 'हरिजन,[2] ठाकुरशाही की एक झलक[3], लालची मा बाप[4] सूदखोर'[5] आदि-आदि ।

---

१ प्रो० गोविन्दलाल माथुर

२ सतरगिणी प्रो० गोविन्दलाल माथुर, प्र० का०—१९५४ ई०

३ वही

४ वही

५ वही

प्रो० गोविन्दलाल माथुर की यथार्थ के प्रति इस रुझान ने न केवल उनके कथ्य को ही प्रभावित किया है अपितु उनके पात्र एवं एकांकियों में उभरा वातावरण आदि भी उससे अछूता नहीं बचा है। हमारे घरेलू जीवन के प्रति परिचित दृश्यों के माध्यम में 'लालची मा बाप'[1] 'डाक्टर री ब्याव'[2], 'बाल विधवा'[3] आदि एकांकियों में जिस प्रभावी वातावरण की सृष्टि हुई है वह यथार्थ को सही रूप में पकड़ पाने की लेखकीय दृष्टि का ही परिणाम है। यही स्थिति पात्रों को लेकर भी है। अपने पात्रों को स्वतंत्र रूप से परिस्थितियों के अनुरूप अपनी राह खोजने के लिए छोड़ देने के कारण भी उनके एकांकियों में यह यथार्थ तत्त्व विशेष रूप से उभर पाया है। पात्रों के चरित्रांकन के पीछे किसी आदर्श का व्यामोह न होने के कारण वे अपनी समस्त अच्छाइयों और बुराइयों को लिए पाठकों के सम्मुख उपस्थित होते हैं और अपने वास्तविक चेहरे के कारण ही पाठकों को एकदम विश्वसनीय प्रतीत होते हैं। 'ठाकुरशाही की एक झलक' का ठाकुर जालिमसिंह 'लालची मा बाप' का भवानी 'कर्जे का अभिशाप' का बाबू मुरली मनोहर प्रभृति पात्र सहज मानवीय कमजोरियों से युक्त होते हुए भी इसी कारण पाठकों को खलनायक प्रतीत नहीं होते।

सामयिक जीवन की समस्याओं के आधार पर लिखे गये यथार्थवादी एकांकियों में प्रो० माथुर के एकांकियों के अतिरिक्त अन्य उल्लेखनीय एकांकी बन पड़े हैं डा० नारायणदत्त श्रीमाली का 'छिया तावड़ो'[4] श्री दामोदरप्रसाद का 'तोप रा लायसन्स'[5] श्री मुरेन्द्र अचल का 'रगत एक मिनख—रो'[6] आदि। 'छिया तावड़ो' में जहां वन्ध्या स्त्री के दुःखी पारिवारिक जीवन का मार्मिक चित्र अंकित हुआ है वहां 'तोप रा लायसन्स' में आज की भ्रष्ट शासन-व्यवस्था का पर्दाफाश हुआ है और 'रगत एक मिनख-रा' में साम्प्रदायिक उन्माद के शिकार बने मानवता प्रेमी कलाकार की करुण कथा कही गयी है। इन एकांकियों में समस्या को अपने नग्न रूप में चित्रित करने का साहस एकांकीकारों ने दिखलाया है।

हास्य एवं व्यंग्य मूलक एकांकी भी राजस्थानी में लिखे गये हैं। एक ओर जहां विशुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से लिखे गये हास्य एकांकी हैं तो दूसरी ओर सुधारवादी भावनाओं से प्रेरित होकर लिखे गये वे एकांकी भी हास्य-व्यंग्य मूलक एकांकियों में लिये जा सकते हैं जिनमें आदर्शवादी अन्त के अतिरिक्त सब कुछ हँसी मजाक से परिपूर्ण है या फिर जिनमें प्राधान्य तो हंसी मजाक का ही रहा है, किन्तु बीच-बीच में उपदेश और शिक्षा की कड़वी घूंटें भी पाठकों को पिलाई गयी है। प्रथम प्रकार के एकांकियों में 'टांगर टाळी'[7] 'ठापल्या लागगी'[8] 'कुमलो फौज में'[9], 'मठारी पगड़ी'[10] आदि एकांकियों

---

१ प्रो० गोविन्दलाल माथुर राजस्थानी एकांकी सं० गणपतिचन्द्र भंडारी पृ० ८७

२ प्रो० गोविन्दलाल माथुर सतरंगिणी।

३ वही

४ मरुवाणी, वर्ष ५ अंक ४ पृ० सं० १७

५ मधुमती वर्ष ९–१० अंक १२–१ पृ० सं० २५

६ वही जुलाई १९७१ पृ० सं० २१

७ श्री शोभाचन्द्र जम्मड राजस्थानी एकांकी, पृ० सं० १५२

८ ठापल्या लागगी मालचन्द कीला, पृ० सं० ७

९ कुमलो फौज में श्री मालचन्द कीला पृ० सं० ५

१० मरवाणी, वर्ष १ अंक ६, पृ० सं० २३

को लिया जा सकता है एव द्वितीय प्रकार के एकाकिया म ग्रादश विद्यार्थी 'इवतो चनो' 'घर वा टावर', नुवा मारग ग्रादि का लिया जा सकता है। इन दाना ही प्रकार क हास्य एकाकिया का हास्य शिष्ट जनोचित नही कहा जा सकता। उनम जनसाधारण को गुदगुदाने की भावना प्रमुख रही है ग्रौर उनका झुकाव कुछ कुछ ग्राम्य हास्य की ग्रोर रहा है। कुमलो फौज म म कुमला नामक फौजी जवान की हिन्दी मिश्रित राजस्थानी ग्रग्रजी शब्दा का विकृत उच्चारण एव 'कुमलो पर घर म भी फौजा जीवन के नशे ग्रौर ग्रातक के छाय रहन की स्थिति ग्रादि बातें हास्य की सृष्टि करती हैं। इसी प्रकार 'ग्रादश विद्यार्थी म विशिष्ट देहाती शब्दो के प्रयोग ग्रछूती रोचक उपमाग्रा ग्रौर रवतसिह जस पात्र की हद दर्जे की ग्रक्खडता भरी बातो के माध्यम स हास्य की सृष्टि की गयी है। इस प्रकार क ग्रन्य सभी एकाकियो म भी प्राय ग्रामीणो की ग्रनानता एव ग्रल्पज्ञता उनकी भाषागत ग्रपूणता एव कहीं-कहा मूखता भरे कार्यों को हास्य का ग्रालम्बन बनाया गया है।

ऐसे साधारण हास्य एकाकिया की ग्रपेक्षा टाबर टोळी' एव सेठारी पगडी जसे एकाकिया मे लेखको की रुझान ग्रपेक्षया शिष्ट एव परिनिष्ठित हास्य की ग्रोर रही है। टाबर टोळी म एक निम्न मध्यमवर्गीय परिवार क बच्चा की फौज ग्रपने उत्पातो से जो बवडर घर म खडा करती है वह दशका के लिए पर्याप्त मनोरजन की सामग्री जुटा देता है। सेठारी पगडी म सेठ की हद दर्जे की कजूसी एव नाइ की वाक पटुता तथा प्रत्युत्पन्नमति के सहारे निमल हास्य की सृष्टि की गयी है। प्रा० गोविन्दलाल माथुर के एकाकियो मे भी यत्र तत्र दशको को गुदगुदान वाले मधुर सवादा की सयोजना हुई है।

राजस्थानी म हास्य की ग्रपेक्षा व्यग्य प्रधान एकाकियो की सख्या तो ग्रौर भी कम रही है। वस्तुत ग्रापणो खास ग्रादमी [1] सम्पादक की मौत [2], तोप री लायसेन्स एव रग म भग [3] ग्रादि इन-गिने एकाकी ही ऐसे हैं जिन्हे व्यग्य प्रधान एकाकी कहा जा सकता है। ग्रापणो खास ग्रादमी' म भारत के ग्राज के सिफारिशी जीवन ग्रौर स्वाथ प्ररित समाज व्यवस्था पर करारा व्यग्य प्रहार हुग्रा है, तो तोप री लायसन्स म ग्राज की भ्रष्ट शासन व्यवस्था पर व्यग्य की तीखी चोट की गयी है। सम्पादक री मौत म ग्राडम्बरपूण खोखले एव निपट स्वार्थी शहरी जीवन पर बहुत ग्रच्छी चुटकी ली गयी है। इसम सभ्यता का ग्रावरण ग्रोढे बाहर से चमचमाती समाज व्यवस्था के भीतरी खोखलेपन को कलात्मक ढग म व्यग्यपूण प्रसगो के माध्यम स प्रदर्शित किया गया है।

देश की सामयिक समस्याग्रो से प्ररित होकर कतिपय राष्ट्रीय एकाकियो की सजना भी ग्राधुनिक राजस्थानी साहित्य म हुई है। विशष रूप से भारत चान ग्रौर भारत पाक सघष ने एसे एकाकिया के सजन को प्ररित किया। इन एकाकिया का उद्देश्य जनसाधारण म देशभक्ति की भावना जाग्रत करना रहा है। इनम उन्ह देश की स्वतन्त्रता क लिए मर मिटने एव बडे स बडा त्याग करने को उदबोधित किया गया है। इस दृष्टि से कही प्राचीन ऐतिहासिक प्रसगो को युगानुरूप नूतन सन्देश का

---

१ श्री बजनाथ पवार राजस्थानी एकाकी पृ० स० ७१

२ श्री रावत सारस्वत, वही पृ० स० २११

३ श्री विनोद सोमानी हस मधुमती, जुलाई १६७१ ई० पृ० स० ५६

वाहक बनाया गया है [1] तो कहीं सामयिक प्रसगो को ही चुना गया है ।[2] इस दृष्टि से उल्लेखनीय एकाकी हैं—श्री नागराज शमा का हमला,[3] श्री रामदत्त साकृत्य कृत 'दसरो हलो' कु वारी सीवा जलमभोम री मूरत' सरग की पुकार आदि । श्री रामदत्त साकृत्य ने अपने प्रत्येक एकाकी के लेखन से पूर्व सक्षेप मे इनके लेखन का अपना उद्देश्य भी स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त किया है ।

धार्मिक एव पौराणिक प्रसगो को लेकर एकाकी लेखन की ओर राजस्थानी लेखक प्रवृत्त नही हुए हैं । हाँ श्री मुरलीधर व्यास ने दप दळण [4] नाम से एक पौराणिक एकाकी लिखने का प्रयास अवश्य किया है किन्तु यह शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त कमजोर एव शिथिल कथानक वाला एकाकी है । व्यक्ति समस्या-परक दार्शनिक, कल्पना मूलक और मनोविश्लेषण प्रधान एकाकियो का तो राजस्थानी मे सवथा अभाव ही कहा जा सकता है । इसी प्रकार एक पात्रीय-नाटक (मोनाड्रामा) सूचना मूलक-एकाकी (फीचर), प्रतीक रूपक-एकाकी आदि के लेखन की ओर भी राजस्थानी एकाकीकारो का ध्यान नही गया है ।

आकाशवाणी से विशेष प्रोत्साहन मिलने के कारण कुछ एक रेडियो रूपक एव सगीत रूपक भी राजस्थानी मे लिखे गये हैं । इन रेडियो रूपको मे अधिकाशत प्रचारात्मक दृष्टिकोण से लिखे या लिखवाये गये है । श्री नर्सिंह राजपुरोहित का घरती गाव रे [5] श्री यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का देवता [6] ऐसे ही प्रचारात्मक रेडियो रूपक कहे जा सकते है । जहा घरती गाव रे मे वैज्ञानिक पद्धति से खेती करने के महत्व को प्रतिपादित किया गया है, वहा देवता मे साम्प्रदायिक सद्भावना, सहकारी जीवन प्रेम एव अहिंसा की महत्ता प्रतिपादित की गयी है । सगीत-रूपको मे स्व० गणेशीलाल व्यास उस्ताद के 'वधाउडा [7] धरती उतरली' [8] 'जुग-जाफरखा [9] आदि उल्लेखनीय बन पडे हैं । प्रगतिशील विचारधारा से प्रेरित इन सगीत रूपको मे श्रम, सहकारी जीवन आदि की महत्ता प्रतिपादित की गयी है ।

यहाँ तक राजस्थानी एकाकी के ऐतिहासिक विकास क्रम पर प्रकाश डालने के साथ-साथ विषयगत प्रवृत्तियो के आधार पर उनका विवचन हुआ है । आगे शिल्प की दृष्टि से उन पर विचार किया गया है । जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि राजस्थानी के अधिकाश एकाकियो के सजन

---

१ (क) दसरो हलो, श्री रामदत्त साकृत्य ओळमो, नवम्बर १९६६, पृ० ५
  (ख) जलमभोमरी मूरत, वही, पृ० स० २१
  (ग) दश रे वास्ते डा० मनोहर भंडारी पृ० स० २५ प्र० का०–१९६७ ई०
२ (क) कु वारी सीवा श्री रामदत्त साकृत्य ओळमो नवम्बर १९६६ पृ० स० १८
  (ख) सुरगरी पुकार वही पृ० स० ४२
३ इब तो चेतो श्री नागराज शर्मा पृ० स० ४७
४ मरुवाणी वर्ष ७, अक १० पृ० स० १३
५ मरुवाणी, वर्ष ४ अक १०–११ पृ० स० १२
६ राजस्थानी एकाकी, पृ० स० २२७
७ मरुवाणी, वर्ष १० अक १० पृ० स० ६१
८ वही, पृ० स० ७१
९. वही, पृ० स० ८०

के पीछे उन्हें जनसाधारण के सम्मुख अभिनीत किये जाने का दृष्टिकोण प्रमुख रहा है अतः इनका अभिनय पक्ष स्वतः ही काफी सबल बन पड़ा है। राजस्थानी में अधिकांश एकांकी विशेष रूप से ग्रामों में अशिक्षित जनता के सम्मुख खेले जायें इस दृष्टि से लिखे गये हैं अतः ग्रामीण क्षेत्रों में रंगमंचीय साधनों के अभाव से भली भांति अवगत होने के कारण इन एकांकीकारों का ध्यान इन्हें सहज अभिनेय बनाने पर ही रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि राजस्थानी एकांकियों में शिल्पगत जटिलता एवं रंगमंचीय प्रयोगों की नवीनता का अभाव रहा है। रंगमंच की परिष्कृत प्रणाली के उपयोग और आधुनिक टैक्नीक के प्रयोग को ध्यान में रखकर तदनुकूल एकांकी रचना की ओर एकांकीकारों का ध्यान बहुत ही कम गया है। इस दृष्टि से डा० आज्ञाचन्द्र भंडारी कृत 'देस र वास्ते' जैसे इने गिने एकांकी ही प्रकाश में आ पाये हैं जहाँ एकांकी के आधुनिक रंगमंचीय शिल्प को दृष्टिपथ में रख कर एकांकी सर्जना की गयी हो।

संकलन त्रय का निर्वाह एकांकी के लिए कोई अनिवार्य शर्त नहीं है और न ही यह कहा जा सकता है कि संकलन त्रय के निर्वाह के बिना एकांकी में अपेक्षित कसाव एवं चुस्ती नहीं आ पाती। फिर भी राजस्थानी एकांकियों में इसका निर्वाह एक सीमा तक बड़ी सफलता के साथ हुआ है। श्री नागराज शर्मा एवं डा० आज्ञाचन्द्र भंडारी इस दृष्टि से विशेष सचेष्ट नजर आते हैं। श्री नागराज शर्मा के 'इवता चेतो' 'मावो मतना जागो' 'घर को टाबर' आदि डा० आज्ञाचन्द्र भंडारी के 'देस र वास्ते' 'कायर'[1] 'कत्रा री आग'[2] आदि एवं श्री दिनेश खरे के 'नुवो मारग' आदि एकांकियों में संकलन त्रय का निर्वाह पटुता के साथ हुआ है। डा० मनोहर शर्मा प्रो० गोविन्दलाल माथुर प्रभृति एकांकीकारों के एकांकियों में कहीं स्वतः संकलन त्रय का निर्वाह हो गया हो यह बात दूसरी है अन्यथा उन्हें हम इस नियम के प्रति सजग नहीं पाते हैं किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि ऐसा न होने से उनके एकांकियों की प्रभविष्णुता में कमी आ गया है।

कथानक पात्र वातावरण संघर्ष आदि अन्य तत्वों की दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि राजस्थानी एकांकीकार प्रायः इन सबके सम्यक संयोजन में सफल रहे हैं। जहाँ कहीं वातावरण प्रधान हो गया है तो वहाँ कथानक सारा वहीं संघर्ष की तीव्रता पर एकांकीकार का ध्यान अधिक रहा है तो कहीं संवादों को सजाने संवारने और उनमें ताजगी लाने में वह अधिक सचेष्ट है। इतना सब कुछ होते हुए भी कहीं ऐसा नहीं हुआ है कि केवल एक ही बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करने के कारण अन्यत्र सन्तुलन [illegible] गया हो।

यथार्थ की दृष्टि से प्रस्तुत जिन एकांकियों में कथानक का चयन और विकास नगरीय पात्रों के अनुरूप हुआ है वहाँ भी वह अस्वाभाविक नहीं बन पड़ा है। पर जहाँ जीवन के संघर्षपूर्ण एवं [illegible] समस्याओं से उसका चयन हुआ है वहाँ तो वह और अधिक प्रभावी बन गया है। इस दृष्टि से डा० मनोहर शर्मा डा० आज्ञाचन्द्र भंडारी और प्रो० गोविन्दलाल माथुर के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रो०

---

1 देस र वास्ते डा० आज्ञाचन्द्र भंडारी पृ० सं० [illegible]

2 वही पृ० सं० [illegible]

मायुर के एकांकिया म जीवन का कोई एक प्रमग या अल्पकालिक कोई घटना गनि से आग बढती हुई हमारे सामयिक जीवन की किसी एक महत्वपूण समस्या या मानव जीवन के किसी एक विशिष्ट पहलू पर तीव्र प्रकाश डाल जाती है । एसी स्थिति म अवान्तर कथाओ एव गौण प्रमगो के समावश का कोइ प्रश्न वम भी उपस्थित नही होता ।

डा० मनोहर शर्मा ने राजस्थान के इतिहास स अपन एकांकिया के कथानक चुन हैं किन्तु उनका उद्देश्य एम कथानको के माध्यम स न तो एतिहासिक घटनाओ को दुहराना रहा है और न ही अतीत का कोई भव्य चित्र ही अकित कर दशको को अभिभूत करना । उन्होने अपनी पनी दृष्टि स इतिहास के ऐस प्रमगो को खोज निकाला है जो अल्प प्रसिद्ध या अप्रसिद्ध रह हैं किन्तु अपन आप म छोटा सा नगन वाला या साधारण सा दिखने वाला वह प्रमग कइ बार एसी ममभेदी चोट कर जाता है कि उस युग की वभवशाली देदीप्यमान तस्वीरें बुरी तरह थर्रा उठती हैं । सती रो मक्ट' का कथानक एक एसे ही प्रमग पर आधारित है । राजस्थान के चारण कवियो न जिस सती प्रथा की महिमा प्रतिपादित करन एव उसका गुणगान करन म दुनियाभर के पृष्ठ रग डाले उसके पीछे जो कारुणिक एव हृदयद्रावक प्रमग छिपे पडे हैं उनम से एक की ओर डा० शर्मा ने अपन इस एकांकी म सकेत किया है । न जान एसी और कितनी ललनाओ की विवशता की कहानी यहा की सती प्रथा क तथाकथित गौरवशाली इतिहास क गभ म समाइ हुई पडी है ।

पात्रो के चरित्रांकन एव उनके हृदयस्थ भावो के सघष को उनकी मानसिक ऊहापोह को, उनके मस्तिष्क म चल रहे सत और असत विचारो के द्वन्द्व को अभि यक्त करन म कुछ ही एकांकीकारा न विशेष सजगता का परिचय दिया है । इनम डाक्टर मनोहर शर्मा प्रो० गाविन्दलाल माथुर एव डा० आनाचन्द भडारी का नाम उल्लेखनीय है । डा० आनाचन्द भडारी ने देस र वास्त म वद्धा मा की अतव्यथा का सशक्त रूप म प्रस्तुत किया है । डा० शर्मा के कतिपय पात्र अपन सजीव एव आकषक व्यक्तित्व के कारण पाठको के मन मस्तिष्क पर अपन चरित्र की एक स्थायी छाप छोड जान म सफल हुए हैं । कवि रो कलक की उमाद , सुपियार दे [1] की 'सुपियार द साँगी राणी [2] की मोनी राणी एव राजदड का बलोचण जी आदि एम ही पात्र ह । अय एतिहासिक एकांकियों क पात्र किसी एक विशिष्ट सदेश क सवाहक होते हुए भी वग प्रतिनिधि या टाइप पात्र के रूप म सामन नहीं आय हैं । अपन जातीय गुणो का प्रतिनिधित्व करन वाल इन पात्रा का स्वतन्त्र यक्तित्व ही पूर एकांकी म प्रभावी रहा है । हा अलबत्ता सुधारवादी एकांकिया के मास्टर डाक्टर एव शापक शापित श्रेणी क पात्र अवश्य ही वग प्रतिनिधि पात्र कह जा सकत हैं ।

पात्रो की सीमित सख्या एव मुख्यपात्र क यक्तित्व का या फिर उससे सम्बन्धित समस्या का पूरे एकांकी मे छाय रहना सफल एकांकी के लिए आवश्यक है । राजस्थानी के अधिकाश एकांकिया म पात्रो की सख्या ५ और ७ स अधिक नही रही है । गाव सुधार या गामा जाग एव आदश विद्यार्थी जसे एकांकिया की सख्या कम ही रही है जिनम पात्रो की सख्या १० स २० तक पहुँच गयी है ।

१ डा० मनोहर शर्मा मरुवाणी, माच १९६५

२ डा० मनोहर शर्मा, मरुवाणी अप्रेल १९६५

सामान्यत किसी एकाकी म कोई गौण चरित्र इतना अधिक नही उभर पाया है कि वह मुख्य पात्र एव मुख्य समस्या को ही ढाप ल । जहाँ कहा ऐसा हुआ है वहाँ एकाकी क प्रभाव म कमी ही आई है । श्री धनजय वमा का जय जलमभोम' एक एसा ही एकाकी है जिसम गौण पात्रा का व्यक्तित्व मुख्य पात्रा की अपेक्षा अधिक सबल रूप स चित्रित हुआ है । जय जलमभोम' का मत्री राणा की अपक्षा अधिक दबग एव प्रभावी लगता है यही नही उसकी सामा य नतकी भी जिस मान सम्मान एव स्वतन्त्रता को प्राप्त किय हुए है वह भी राणा और उनक राजदरबार के गौरव क अनुकूल नही कहा जा सकता । इन्ही कारणो स यह एकाकी अपन मूल सन्दश का व्यजित करन म असफल रहा है ।

पात्रा क वार्तालाप म वाग विदग्धता वक्रता एव चुटीलेपन का सफल निर्वाह प्रो० माथुर क एकाकिया म विशष रूप स दखन को मिलता है । वस श्री नागराज शर्मा और श्री कन्हैयालाल दूगड के एकाकिया म भी इन सब बातो का अच्छा निर्वाह हुआ है । ऊबा देन वाल नीरस उपदेशप्रद लम्बे सवादा का प्रयोग बहुत ही कम एकाकियो म हुआ है । श्रीनाथ मोदी के गाव सुधार या गामा जाट, श्री नागराज शमा क सावो मत ना जागो एव प्रा० गाविन्दलाल माथर क हरिजन' एव शिक्षा का सवाल' जस कुछ हा एकाका एस है जिनम अवश्य ही लम्ब एव उपदेशप्रद सवादा के कारण पाठक ऊब जाता ह । श्री सुबोधकुमार के 'लो घाघडा'[1] म पात्रो ने खुलकर ठेठ देहाती शब्दो म जिन गालिया का उन्मुक्त आदान प्रदान किया है वह राजस्थानी एकाकियों म अपन आप म एक ही उदाहरण है । नग्न यथाथ की सीमाओ का सस्पश करन वाले इस एकाकी को शायद कुछ आलोचक असस्कृत एव असगत ठहरा सकत हैं ।

कथ्य क अनुकूल वातावरण की सजना राजस्थानी एकाकी की एक अन्य उल्लेखनीय विशषता कहा जा सकती है । ऐतिहासिक एकाकियो मे यहाँ के रीति रस्मा एव परम्पराओ से सुपरिचित एकाकी कारा ने जिस जीवन्त वातावरण की सृष्टि की है वैसा हिन्दी के ऐतिहासिक एकाकिया म कम मिलता ह । यहा की सामन्ती सस्कृति क विशष मान मूल्यो बातचीत एव मान मनुहार की उनकी अपनी विशिष्ट शली का बारीकियो स सुपरिचित एकाकीकारो ने सजीव वातावरण की सजना म आशातीत सफलता प्राप्त की है । इस दृष्टि स रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत का सामधरमी माजी,' श्री सूयकरण पारीक का बाढावण या प्रतिनापूर्ति श्री गणपतिचन्द्र भडारी का सोहण जाया साव[2] आदि एकाकी दृष्ट य हैं । प्रो० माथुर न हमारे दनन्दिन घरेलू जीवन के सुपरिचित वातावरण को उभारन म अच्छी सफलता प्राप्त की है ।

---

१ मरुवाणी वर्ष १ अक ६ पृ० स० ४६

२ राजस्थानी एकाकी, पृ० स० १८१

सक्षेप म सुधार एव उपदेश की भावना स प्रेरित ग्राम्यजनोचित सरल एकाकी लेखन से चली राजस्थानी एकाकी की यात्रा सास्कृतिक मान मूल्यो पर ग्राधारित ऐतिहासिक एकाकिया मानव चरित्र की असगतिया एव उसके मिथ्या ग्रह को व्यजित करने वाले ख्यात एव वचनिकाग्रा के प्रसगो पर ग्राधारित एकाकियो एव सामयिक सामाजिक समस्याग्रा से सघपरत मानव के उज्जवल एव कलुषित उभय पक्षा पर प्रकाश डालने वाले एकाकिया के लेखन तक पहुँच चुकी है। यद्यपि राजस्थानी एकाकीकार ने जीवन के विविध पक्षा को समेटने का प्रयास किया है किन्तु उसका मुख्य झुकाव ऐतिहासिक एव सामयिक सामाजिक घटना प्रसग की ओर ही विशेष रहा है। अभिनय तत्त्व की ग्रोर से प्रारभ से ही सजग होते हुए भी रगमच की ग्राधुनिक विकसित प्रणाली को अपनाने म उसने कोई रुचि प्रदर्शित नही की है और न ही शिल्पगत जटिलताग्रा म ही वह उलझा है।

निबन्ध

हिन्दी और राजस्थानी में निबन्ध शब्द प्राय अंग्रेजी (ESSAY) के पर्याय के रूप में व्यवहृत होता है। संस्कृत में भी यह शब्द विकास की कई सरणियों से गुजरता हुआ अपने मूल रूप से काफी दूर हट गया। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण ही निबन्ध हिन्दी जगत में एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित हुआ है। अंग्रेजी साहित्य के समान ही यहाँ भी यह विस्तृत और संकुचित अर्थ में समान रूप से व्यवहृत होता रहा है। जहाँ एक ओर निबन्ध के अन्तर्गत समीक्षा समालोचना सम्पादकीय और सामान्य वर्णन लिये जाते हैं वहाँ दूसरी ओर निर्वैयक्तिक विचारों की अभिव्यक्ति तथा तीसरी ओर वैयक्तिकता एवं आत्मनिष्ठा से भरपूर किसी विषय पर लेखक के स्वतन्त्र विचारों की अभिव्यक्ति भी निबन्ध के अन्तर्गत आती है। निबन्ध की यह सीमा विस्तार यहाँ तक पहुँच गया कि गद्य की जो भी रचना अन्य किसी साहित्यिक विधा में फिट नहीं बैठती है उसे निबन्ध की संज्ञा से अभिहित कर धड़ल्ले से सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में चलाया जाता है। इसी अव्यवस्था के कारण निबन्ध को परिभाषित करना अत्यन्त कठिन हो गया और आलोचकों ने यही कह कर कि—'निबन्ध वह जो कि निबन्धकार की रचना है'—सन्तोष किया। किन्तु इस प्रकार दुराग्रह दृष्टिकोण अपनाकर कोई भी आलोचक वास्तविक निबन्धों के साथ न्याय नहीं कर सकता। फलत आज अधिकांश में उन सृजनात्मक गद्य रचनाओं को निबन्ध माना जाता है जिनमें लेखक का व्यक्तित्व स्पष्टत प्रतिबिम्बित होता हो। लेखक के व्यक्तित्व का समावेश और उसके प्रस्तुतीकरण की निजी शैली ही किसी सामान्य विचार या घटना प्रसंग या वर्णन को निबन्ध बनाता है। इसके विपरीत, जहाँ केवल वर्णन मात्र हुआ हो या स्थिति का तटस्थ प्रस्तुतीकरण भर हुआ हो या भावनाओं से परे हटकर केवल बौद्धिक धरातल पर किसी विषय का प्रतिपादन हुआ हो उन सबको लेख की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस प्रकार लेख और निबन्ध में भावात्मकता और वैयक्तिकता के आधार पर स्पष्ट अन्तर किया जा सकता है।

राजस्थानी में निबन्ध का प्रारम्भिक रूप श्री शिवचन्द्र भरतिया की राजस्थानी कृतियों की भूमिकाओं में देखने को मिलता है। इस दृष्टि से उनके 'कनक सुन्दर' और 'फाटका जंजाल नाटक' की भूमिकाएँ उल्लेखनीय हैं। इनमें लेखक ने विस्तार से अपने समय की समस्याओं पर विचार किया है। विशेष रूप से मारवाड़ी समाज की दयनीय स्थिति और देश की पराधीनता को लेकर लेखक ने काफी विस्तार के साथ तर्कपूर्ण शैली में अपने विचार व्यक्त किये हैं। इसी समय में प्रकाशित होने वाले मारवाड़ी भास्कर[1] और मारवाड़ी[2] जैसे पत्रों में प्रकाशित लेखों में भी राजस्थानी निबन्ध के प्रथम

---

१ सं० रामलाल बद्रीदास प्र० का०—वि० सं० १९६४ (शोलापुर)

२ सं० किशनलाल बलदवा प्र० का०—वि० सं० १९६४ (अहमदनगर)

चरण को देखा जा सकता है। दुर्भाग्य से ये पत्र आज देखने को नहीं मिल पाते हैं ऐसी स्थिति में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि राजस्थानी निबन्धों का प्रथम चरण किस स्थिति में था। पश्चात 'मारवाड़ी हितकारक'[1] (राज०) और 'पचराज'[2] आदि हिन्दी पत्रों में भी सब श्री कावेरी कान्त ब्रिजलाल बियाणी सत्यवक्ता, धनुर्धारी आदि लेखकों के सुन्दर निबन्ध प्रकाशित हुए। श्री कावेरी कान्त का मारवाड़ी हितकारक में प्रकाशित निबन्ध मान्गी सू फायदा[3] एक रोचक हास्य निबन्ध है। इस पत्र में प्रकाशित राजस्थानी रचनाओं को मारवाड़ी अग्रवाल आदि हिंदी पत्र साभार पुनः प्रकाशित किया करते थे। इससे पत्र के स्तर का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। पचराज में एक ओर जहां श्री ब्रिजलाल बियाणी के 'मोगरा कली'[4] गुलाब कली[5] बड़ी फजर का दीवा[6] एवं मारवाड़ी बानी[7] जैसे ललित निबन्ध प्रकाशित हुए तो 'धनुर्धारी' का बस म्हान स्वराज्य हाणो'[8] जैसे व्यंग्य-विनोदात्मक निबन्ध और सत्यवक्ता के धनवानां की लक्ष्मी'[9] जैसे विचारपूर्ण निबन्ध भी प्रकाशित होते रहे हैं।

उपर्युक्त वर्णित सभी पत्र-पत्रिकाएँ एवं पुस्तकें राजस्थान से बाहर इतर प्रान्तों में जहां-जहां प्रवासी राजस्थानी रहते थे प्रकाशित हुई। राजस्थान में ऐसे साहित्यिक पत्रों का प्रकाशन काफी बाद में प्रारम्भ हुआ। इस दृष्टि से 'आगीवाण' का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। किन्तु यह मूलतः राजनैतिक पत्र था साहित्यिक नहीं। अतः इसमें स्तर की साहित्यिक रचनाएँ कम और लोगों में राजनैतिक चेतना जागृत करने वाले समाचार अधिक प्रकाशित होते थे। फिर भी इसमें कुछ एक सम्पादकीयों के रूप में काफी भावपूर्ण लघु निबन्ध सामयिक समस्याओं के सन्दर्भ में प्रकाशित हुए हैं। इसमें प्रकाशित लिछमीजी म्हाकी भी तो सुणलो[10] एवं ऐसा ही भावपूर्ण लघु निबन्ध है। इसके अतिरिक्त यदा-कदा बात काईं चाहिजे[11] जैसे मनोरंजक निबन्ध भी इसमें प्रकाशित हुए हैं। पश्चात जागती जोत[12] मारवाड़ी'[13] राजस्थानी'[14] आदि पत्रों में भी कभी-कभी कुछ लेख आदि प्रकाशित होते रहे हैं किन्तु किसी पत्र के नियमित प्रकाशन के अभाव ने राजस्थानी लेखक को इस ओर बढ़ने का अवसर ही प्रदान नहीं किया।

---

१ स० राधाकृष्ण बिसावा प्र० का०—वि० स० १६७६ (धामण गाव)
२ स० बचरदास वलत्री प्रकाशन काल—वि० स० १६७२ (नासिक सिटी)
३ वर्ष ३ अंक २ पृ० स० ४३ (मई १६२१ ई०)
४ पचराज वर्ष २ अंक ४—५ पृ० १७४
५ पचराज वर्ष २ पृ० स० ३६ (वैशाख—वि० स० १६७३)
६ पचराज वर्ष ३ अंक ८ पृ० स० ३१७
७ वही वर्ष २ अंक ६ पृ० स० २८१
८ वही वर्ष २, अंक १२ पृ० स० ३७५
९ वही वर्ष ४ अंक ८ पृ० स० २८४
१० आगीवाण, वर्ष १ अंक १ (मुख पृष्ठ से)
११ वही जयनारायण व्यास, वर्ष १, अंक ३, पृ० स० ८
१२ स०-श्री युगल, प्रकाशन काल वि० स० २००४ (कलकत्ता जयपुर)
१३ स० श्रीमन्नकुमार व्यास, प्र० का० १६४७ ई० (जोधपुर)
१४ स०-श्री नरोत्तमदास स्वामी प्र० का० १६४६ ई० (कलकत्ता)

स्वतन्त्रता के पश्चात सन् १९५३ इ० म मरवाणी' 'ओळमा' और 'जलमभोम' नामक पत्रों के मासिक रूप मे काफी समय तक प्रकाशित होते रहने के कारण गद्य की अन्यान्य विधाओ के प्रकाशन के साथ साथ निबन्ध भी कुछ मात्रा म प्रकाशित हुए, किन्तु यहाँ इतना निर्विवाद रूप से स्वीकार करना पडेगा कि इन पत्रो के सम्पादको का ध्यान भी कविता और कहानियो के प्रकाशन की ओर ही अधिक रहा। फलत स्तर के निबन्ध इन पत्रा मे भी काफी कम आ पाये। इन पत्रा म अधिकाशत किसी उत्सव आदि के अवसर पर लिखे गये परिचयात्मक लेख ही निकले है या फिर साहित्यकार या साहित्यिक कृतिया स सम्बन्धित परिचयात्मक लेख। फिर भी, समय समय पर सुन्दर एव सशक्त निबन्ध भी ये पत्र प्रकाशित करते रहे हैं। इस ऐतिहासिक विकास क्रम की दृष्टि से राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर, द्वारा प्रकाशित 'राजस्थानी निबन्ध सग्रह'[१] का अपना अलग महत्त्व है। यह राजस्थानी भाषा के निबन्धो का तो प्रथम सग्रह है ही, किन्तु साथ ही साथ इसने कुछ नये निबन्धकारो स भी राजस्थानी का प्रथम परिचय करवाया है। उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजस्थानी का निबन्ध साहित्य काफी क्षीण एव अपुष्ट है। ऐसी स्थिति म इसमे विभिन्न प्रवृत्तिया का प्रस्फुटन और विकास हो पाना सभव नही हुआ। फिर भी ७० वर्षों की लम्बी अवधि म जो सामग्री निबन्धो के रूप म प्रकाशित हुइ है आगे उसका प्रवृत्तिगत मूल्याकन करने का प्रयास किया गया है।

राजस्थानी म सर्वाधिक रूप से लिखे गये हैं—वर्णनात्मक निबन्ध। इनका सपाट वर्णन अनेक बार पाठक के मन म यह दुविधा खडी कर देता है कि वह उसे निबन्ध माने भी या नही ? वस्तुत ऐसी रचनाएँ निबन्ध की अपेक्षा लेख के अधिक निकट होती है। राजस्थानी म अधिकाशत सास्कृतिक धरातल पर आधारित वर्णनात्मक निबन्ध ही अधिक लिखे है। ये निबन्ध राजस्थानी म प्रकाशित होने वाली पत्र पत्रिकाओ मे सामयिक होने के नाते लिखे एव प्रकाशित किये गये। इनकी भाषा सीधी एव सरल है। इनम मुख्यत इसी बात का परिचय दिया गया है कि राजस्थान म अमुक पर्व या त्यौहार किस रूप म मनाया जाता है। कभी कभी इन निबन्धो म सम्पूर्ण राजस्थान को नही अपितु राजस्थान के किसी एक क्षेत्र विशेष को आधार बनाया गया है। रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत का मेवाडी फागण[२], मेवाडी दिवाली[३] आदि ऐसे ही निबन्ध हैं। ऐसे निबन्धो के पीछे वस्तु सत्य को तथ्य रूप म प्रकट करने का दृष्टिकोण प्रमुख रहता है फलत कल्पना का रगीन स्पर्श और भावनाओ का कोमल सयोजन इनम अपेक्षाकृत कम देखने को मिलता है। स्थिति को यथातथ्य रूप म प्रकट करने की भावना के प्रबल होने के कारण ऐसे निबन्धो म वयक्तिकता और कलात्मकता के उभय पक्ष कमजोर होते हैं। इस श्रेणी के निबन्धो म श्री उदयवीर शर्मा का 'होळी रे हुडदग म बसन्तोत्सव रो रूप'[४] श्री नैनूराम का रगीलो पर्व होळी अर उणरी परम्परा[५] प्रभृति उत्सवो एव पर्वों पर आधारित निबन्ध श्री रामगोपाल विजय-

---

१ स०-श्री चन्द्रसिंह प्र० का० १९६६ ई०

२ मरवाणी वर्ष १ अक ? पृ० स० २७

३ वही वर्ष २ अक ५ पृ० स० ?

४ जलमभोम वर्ष १ अक ५ ६ पृ० स० ९

५ वही पृ० स० ५

वर्गीय के राजस्थानी चित्रकला के सम्बन्ध मे लिखे गये 'बून्दी री कलम'[1] एव 'कोटे री कलम'[2] आदि निबन्ध और श्री मोहनलाल गुप्त का 'अलवर रो सिलेखाना'[3] तथा महेन्द्र भानावत का 'राजस्थान री पड चित्तरामगारी'[4] आदि अन्य परिचयात्मक निबन्ध उल्लेखनीय हैं। डा० मनोहर शर्मा के 'लाखपसाव'[5] और 'धाडवी'[6] जैसे निबन्ध भी परिचयात्मक निबन्धो की ही श्रेणी मे आते हैं किन्तु डा० शर्मा का अध्ययन और इन लेखो की क्वचित गभीरता इन्हे अन्य वर्णनात्मक या परिचयात्मक निबन्धो मे कुछ अलग ला खडा करती है। डा० नरेन्द्र भानावत का 'पाबूजी'[7] भी इसी परम्परा का ऐतिहासिक-सास्कृतिक निबन्ध है।

वर्णनात्मक और परिचयात्मक निबन्धो का एक और क्षेत्र भी राजस्थानी लेखको का विशेष कृपाभाजन रहा है। यह क्षेत्र है—शोध और खोज का। विभिन्न कवियो, लेखको एव कृतियो पर दो तीन पन्नो के परिचयात्मक एव खोजपूर्ण लेख काफी सख्या मे प्रकाशित हुए हैं। एक शोधार्थी की सूक्ष्म अन्तर्भेदी दृष्टि का परिचय ऐसी रचनाओ मे कम मिलता है। वस्तुत ऐसी रचनाओ को प्रकाशित करवाने के पीछे लेखको की नवीन सूचना देने की वृत्ति ही प्रमुख रही है। तभी ऐसे लेखो का शीर्षक प्राय 'एक अज्ञात कवि, एक अज्ञात रचना या फिर एक और अज्ञात कवि' जैसा रखा गया है। इस प्रकार के लेख प्रकाशित करवाने मे श्री अगरचन्द नाहटा का नाम अग्रगण्य है। कभी-कभी इन लेखो का शीर्षक कवि या कृति विशेष के नाम पर भी रख दिया गया है यथा—'रामनाथ कविया,'[8] 'हिंगलाजदान कविया'[9] आदि। ऐसे शीर्षको के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाले लेखो मे प्राय सम्बन्धित कवि या कृति का मोटे तौर पर परिचय भर दिया गया है। इस प्रकार, साहित्यिक रचनाओ और साहित्यकारो पर लिखे गये परिचयात्मक लेखो मे प्रमुख हैं—श्री अगरचन्द नाहटा के 'भगत कवि पीरदान लालस'[10] 'कवि लछमण रा देवी विलास,'[11] मेहडू रिणमल री रचनावा,'[12] 'कवि दुरसाजी आढा री 'किरतार बावनी'[13] एव डा० नरेन्द्र भानावत का 'करमसी रुणाचा री क्रिसनजी री वेलि'[14] तथा डा० मनोहर शर्मा का 'धूगर का घेसळा'[15] आदि आदि।

---

१ मरुवाणी, वर्ष १ अक ३, पृ० स० १०
२ वही वर्ष १, अक ४, पृ० स० ५
३ वही पृ० स० ४५
४ हरावळ वर्ष १, अक ६, पृ० स० २६
५ जलमभोम वर्ष १, अक १ पृ० स० १२
६ वही वर्ष १ अक २, पृ० स० २०
७ आकाशवाणी जयपुर द्वारा प्रसारित।
८ मरुवाणी वर्ष १ अक ३ पृ० स ४
९ जागीदान कविया मरुवाणी, वर्ष १, अक १ पृ० स० ३१
१० मरुवाणी वर्ष १, अक ५ पृ० स० ४६
११ वही वर्ष १, अक ४, पृ० स० २४
१२ वही वर्ष ३, अक १, पृ० स० २०
१३ वही वर्ष ४, अक ७, पृ० स० ११
१४ वही वर्ष ४ अक १२ पृ० स० २
१५ वही वर्ष ८, अक १ पृ० स० ५

गया है कि बात स्पष्ट होने की अपेक्षा उलझ अधिक गई है। लेखक ने जिन शब्दो म साहित्य को परिभापित करन का प्रयास किया है वहा ऐसा लगता है कि वह साहित्य को परिभापित करने या उसके स्वरूप को स्पष्ट करन की अपेक्षा उसका यशोगान कर रहा है। आगे जहा लेखक ने साहित्य के भेदो पर विचार किया है वहाँ अवश्य ही लेखक न अपनी स्थापनाए तक सहित प्रस्तुत करन का प्रयास किया है।

उपयु क्त निब धो की अपेक्षा कु वर कृष्ण कल्ला का 'काय री परख' अधिक सशक्त बन पडा है। यद्यपि लेखक ने वैज्ञानिक ढग स विषय के एक एक पक्ष को लेकर क्रमश तकपूण विशद विवेचन नही किया है, किन्तु विषय क जिन पहलुओ को उसने छुआ है, उनमे वह पूरी तरह रम गया है। लेखक क प्रस्तुतीकरण का ढग तो सवथा आकषक है ही किन्तु साथ-ही साथ उसक विचार भी बडे सुलझे हुए है तथा भाषा पर उसका अच्छा अधिकार है। धाराप्रवाह शैली, अछूती, ओपती और अनूठी उपमाए चमत्कारी वक्र-उक्तिया इस निब ध की अपनी विशेषताए हैं। य गिने चुन निब ध स्वय घोपित कर रह है कि राजस्थानी म साहित्य के विविध पक्षो को लेकर गभीर चिन्तन प्रधान और विवचनात्मक निब ध काफी कम लिखे गय हैं और जो भी लिखे गये हैं उनम प्रथम श्रेणी के निब ध तो और भी कम हैं।

साहित्यिक विषया को लेकर लिखे गये निब धा के साथ उन भूमिकाओ (या सम्पादकीय) की चर्चा भी असगत न होगी जो विशेष सकलना के सम्पादकीय रूप मे लिखी गयी हैं। इस दृष्टि से 'राजस्थानी एकाकी'[1] 'ओळमो' का कविता अक[2] 'आजरा कवि'[3] 'जलमभाम के प्रतिनिधि कथाकार'[4] एव प्रतिनिधि कवि—अक'[5] तथा राजस्थानी एक[6] विशेष उल्लेखनीय बन पडे हैं। इनमे भी 'राजस्थानी अक' को छोडकर अय कृतियो की भूमिकाओ म सम्ब धित विधा का ऐतिहासिक विकास क्रम एव तत्सम्ब धी परिचय देने की प्रवत्ति ही प्रमुख रही है। राजस्थानी एक म अवश्य ही विस्तार के साथ आधुनिक राजस्थानी का य धारा पर एक आलोचक की दृष्टि मे विचार हुआ है एव साथ-ही साथ राजस्थानी नयी कविता के सम्ब ध मे कुछ स्थापनाए भी की गयी हैं। वसे यदि इन भूमिकाओ को स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया जाये तो ये समीक्षात्मक निब धो के अ तगत आयेंगी।

हास्य और व्यग्य मूलक निब धो की दृष्टि से राजस्थानी का क्षेत्र काफी सूना सूना सा नजर आता है। वसे श्री ब्रिजलाल बियाणी क निब धो म यत्र-तत्र यग्य की मीठी चुटकी और हास्य के निमल

---

१ स०—श्री गणपतिच द्र भण्डारी प्र० का—१९६६ ई०

२ स०—श्री किशोर कल्पनाकात प्र० का०—मई १९६७ ई०

३ स०—श्री रावत सारस्वत वेद यास (भूमिका लखक—श्री रावत सारस्वत) प्र० का०—१९६८ ई०

४ स०—श्री मूलचद प्राणेश प्र० का०—वि० स० २०२६

५ वही

६ स०—श्री तेजसिंह जोधा प्र० का०—१९७१ ई०

छोटे बिखरे हुए मिलेंगे, किन्तु पूर्णत हास्य या व्यंग्य प्रधान निबंध लिखने में उस युग के लेखक बहुत कम प्रवृत्त हुए हैं। इस दृष्टि से श्री कावेरीकांत का 'मादगी सूं फायदा' प्रथम उल्लेखनीय निबन्ध है। यह एक विनोदपूर्ण लेख है। सामान्य प्रचलित बात से विपरीत बात इसमें पाठक के लिए काफी रोचक सामग्री उपस्थित कर देती है। पश्चात व्यंग्यात्मक निबन्धों में उल्लेखनीय निबन्ध श्री 'धनुर्धारी' का 'कम म्हाने स्वराज्य होणो' है। इसमें लेखक ने बड़े सरस ढंग से अभिनय की सी भाव भंगिमाएँ बनाते हुए तात्कालिक मारवाड़ी समाज के कर्णधारों की कायरता का अच्छा खासा मजाक उड़ाया है। सुधार के नाम पर बड़ी बड़ी बात बघारने वाले रायबहादुर और अन्य मोटे उपाधिधारी वहीं तक सुधारक हैं, जहाँ तक उन्हें सरकारी कोप का भाजन न बनना पड़े। अपने स्वार्थों पर कुठाराघात की बात में ही वे कितने घबरा जाते हैं इसका वर्णन मनोरंजक चित्र प्रस्तुत निबन्ध में खींचा गया है। पश्चात काफी समय तक ऐसा सुन्दर परिहासपूर्ण निबंध राजस्थानी में देखने में नहीं आता है। इस दिशा में काफी अन्तराल के बाद डा० मनोहर शर्मा श्री कृष्णगोपाल शर्मा, श्री मिश्रीमल जैन तरंगित श्रीलाल नथमल जोशी प्रभृति लेखक प्रवृत्त हुए। डा० शर्मा ने अधिकांशतः कथात्मक व्यंग्य निबन्ध लिखे हैं। उनके व्यंग्यात्मक निबन्धों में 'रोहीड़ रा फूल'[1], 'नौकरां रो कारखानो'[2] आदि प्रमुख हैं। इनमें मुख्यतः आज की भ्रष्ट स्थिति पर तीखा व्यंग्य हुआ है। श्री कृष्णगोपाल शर्मा मन की मौज में लिखने वाले निबन्धकार हैं। बात को बड़े आत्मीय लहजे में प्रस्तुत करते हुए पाठक के साथ सहज ही आत्मीय सम्बन्ध स्थापित कर लेना इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। इनके 'अनेक'[3] 'चोळो'[4] 'आरजू पुराण'[5] आदि काफी सरस निबन्ध हैं। 'अनेक' में सामयिक परिस्थितियों पर की गई तीखी चोट और की गई मीठी चुटकियाँ बरबस पाठक के होठों पर मुस्कान बिखेर देती हैं। इस दृष्टि से कुछ अन्य उल्लेखनीय निबन्धों में प्रमुख हैं—श्री मिश्रीमल जैन 'तरंगित' का 'आपां काई खावां हां'[6] और श्री श्रीलाल नथमल जोशी का 'साव बोलयां किया पार पड़ै'[7]।

भावपूर्ण शैली में ललित निबन्ध लिखने का प्रथम उल्लेखनीय प्रयास श्री ब्रिजलाल बियाणी द्वारा हुआ। कल्पना प्रधान कवित्वमयी शैली एवं वैयक्तिक निबंधों की दृष्टि से राजस्थानी का आधुनिक साहित्य अपेक्षाकृत समृद्ध कहा जा सकता है। राजस्थानी के ललित निबन्धों में कल्पना के घोड़ा का स्वच्छन्द विचरण करते हुए तो सर्वत्र देखा जा सकता है किन्तु विचरण की दिशाएँ उन्हें दो श्रेणियों में विभाजित कर देती हैं। एक ओर ऐसे निबन्ध हैं, जहाँ विचारों का अश्व धरा को छोड़ कल्पना के सुनहरे गगन क्षेत्र में मुक्त विचरण करता है तो दूसरी ओर धरा के यथार्थ क्षेत्र में ही वह मन की मौज में स्वच्छन्द विचरता चलता है। प्रथम प्रकार के निबन्ध लेखकों में श्री ब्रिजलाल बियाणी और श्री गिरिराज 'भंवर' के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री ब्रिजलाल बियाणी का ध्यान ऐसे निबन्धों के ब्याज से अपने

---

१ मरुवाणी वर्ष ७ अंक ५, पृ० सं० १७
२ जलमभोम, वर्ष १ अंक ५–६ पृ० सं० १८
३ ओळमो फरवरी १९६४ पृ० सं० २२
४ वही अक्टूबर १९६४ पृ० सं० ३६
५ ओळमो जुलाई १९६८ पृ० सं० २२
६ राजस्थानी निबंध संग्रह पृ० सं० ४६
७ वही पृ० सं० ५

समय की किसी एक ज्वलन्त समस्या का ग्रोर पाठक का ध्यान आकर्षित करने म प्रमुख रूप स रहा है एव श्री गिरिराज भवर समस्याओ म गहरा पैठे हुए का सुन्दर रूप चित्र अकित करन म अधिक तत्पर रहे हैं। यह दोनो ही निबन्धकारो के निबन्धो म प्रकृति के मानवीकरण चित्र रूप म भी मिलते हैं। श्री बियाणी के मोहन रूपी, 'कभी पत्थर की दीवार' 'मारवाड़ी मोनी' आदि वर्णनात्मक निबन्ध आख्यानात्मक एव आत्मनिवेदनात्मक शैली में लिख गए हैं। इन निबन्धो म लेखक स्वयं पात्रो का स्थान ग्रहण करता है। इन निबन्धो की शैली बडी भावपूर्ण और कल्पना–प्रधान है। निबन्ध म काव्यात्मक रचना के वर्णन के समय भाषा सहज रूप म अलकृत हो गई है। अनूठी उपमाएँ और अनूठी कल्पनाएँ सहृदय के हृदय म गुदगुदी पैदा किये बिना नहीं रहती। पाठक लेखक की नवीन सूझ बूझ म सहज ही अभिभूत हो जाता है। मरुस्थलगामी सूर्य का मुख इसलिए लाल हो रहा है कि दिन भर की कड़ी मेहनत के पश्चात् भी उस अपनी मजदूरी (पगार) नहीं मिली है। ऐसी स्थिति म उसका क्रोधित होना स्वाभाविक ही है। इस प्रकार बियाणी जी के निबन्धो म यत्र–तत्र ऐसी नवीन एव सरस उद्भावनाएँ निबन्ध को अत्यन्त सरस बना देती हैं।

श्री गिरिराज 'भवर' के निबन्ध अपने आप म भावों के अच्छे चित्र हैं। चित्रों का एक क्षीण तन्तु इन विविध चित्रों को एक साथ पिरोए रखता है। प्रकृति के नाना रूपों का एव जिन्दगानी के पल पल बदलते चित्र को देखने का तो हम आप के सभी आदी हैं किन्तु एक साधारण व्यक्ति के देखने और एक कलाकार की सूक्ष्म अन्तर्भेदी दृष्टि के देखने म जो अन्तर होता है उसका स्पष्ट अहसास श्री गिरिराज 'भवर' के निबन्धो को पढ़ने के पश्चात् भलीभांति हो जाता है। उनका निबन्ध 'वसंत रो साथ'[1] पाठक को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'अशोक के फूल' का स्मरण करवा देता है। श्री गिरधरदान बारहठ का 'निरहुल बिरखा'[2] और श्री मांगीलाल शर्मा का 'गाडिया लुहार'[3] भी इस दृष्टि स पठनीय है।

वे निबन्ध, जहाँ निबन्धकार अधिकांश म कल्पनाओ के रंगीन जाल बुनने म निमग्न रहता है, से भिन्न किसी एक विचार बिन्दु को लेकर जहाँ निबन्धकार आगे बढ़ता है और कल्पना की रम्य घाटियों को छोड विचारो के बीहड़ जगल म किसी एक विचार पगडण्डी पर संचरण करते हुए भी प्रकृति की मोहक छटा स आकर्षित यत्र तत्र मन की मौज म भटक कर पुन उसी पगडण्डी पर आ चलने लगता है वैयक्तिक निबन्धो की श्रेणी म रख जा सकते हैं। राजस्थानी म वैयक्तिक निबन्धकार के रूप म श्री कृष्णगोपाल शर्मा का नाम अग्रतम है। वैसे तो अन्यान्य वैचारिक निबन्ध–लेखकों म भी हम उनके व्यक्तित्व की हल्की छाप को देख सकते हैं किन्तु उनके विचार मौलिक चिन्तन से प्रेरित होने की अपेक्षा अध्ययन और मनन से अधिक प्रभावित है। श्री कृष्णगोपाल शर्मा के निबन्ध विचार के लिए विचार या एक प्रबुद्ध नागरिक होने के नाते सामयिक समस्याओं पर अपना विचार प्रकट कर अपनी जागरूकता प्रकट करने की दृष्टि से नहीं लिखे गये हैं अपितु सामाजिक विसगतियो से क्षुब्ध मन की तीव्र प्रतिक्रिया को

---

१ राजस्थानी निबन्ध सग्रह पृ० स० ४५

२ ओळमा, अगस्त १९६७, पृ० स० ८

३ मरवाणी वष ६ अक १०–११ पृ० स० १६

व्यक्त करने की दृष्टि से लिखे गये हैं। उनका 'म्र उतरयोडा घडा'[1] एक एसा ही सशक्त निबन्ध है। इसम समाज के कुछ उपेक्षित वर्गों का दयनीय चित्र खीच कर सामान्य जन का ध्यान इस ग्रोर ग्राकर्षित करन का प्रयास हुग्रा है। इन उपक्षिता की कष्टपूर्ण स्थिति स ग्राहत कवि हृदय स जो करुणा के स्वर फूट हैं उन्ह उसने वक्र उक्तियो क सहार व्यक्त किया है। यहाँ लेखनी बुद्धि के ग्राग्रह पर नही ग्रपितु हृदय की ग्रपील पर ग्राग बढी है। फलत निबन्ध म व्यक्त विचार सीधे पाठक क हृदय पर चाट करत हैं।

समग्र रूप स विचार करते हैं तो पाते हैं कि राजस्थानी म वर्णन प्रधान परिचयात्मक निबन्धा का ही प्राधान्य रहा है। चाहे उनका विषय साहित्यिक रहा हो या कि सास्कृतिक या फिर सामाजिक उन सबम ग्रधिकाशत लखक का ध्यान परिचय पर ही ग्रधिक रहा है। फलत वे न तो पाठका की स्मृति-पटल पर ग्रपना कोइ स्थायी प्रभाव ही छोड पान म सफल हुए हैं ग्रौर न ही साहित्यिक जगत म ग्रपना कोइ स्थायी स्थान ही बना सके है। एस वर्णनात्मक निबन्धो का ग्रपक्षा सख्या म सीमित होत हुए भी विवेचनात्मक निबन्ध ग्रधिक प्रभावी बन पडे हैं किन्तु हिन्दी की तुलना म राजस्थानी के विवेचनात्मक निबन्ध कहीं नही ठहर पाते यह तो स्वीकार करना ही होगा। यही स्थिति भाव प्रधान ललित निबन्धा का रही है इस क्षत्र म भी दो चार निबन्धा के ग्रतिरिक्त ग्रन्य कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नही रही है। हास्य एव व्यग्य प्रधान निबन्धा की सख्या ता ग्रौर भी कम है। इस प्रकार विवेचनात्मक, समीक्षात्मक वचारिक, वयक्तिक, ललित एव हास्य व्यग्य प्रधान निबन्धा के क्षत्र म राजस्थानी निबन्धा की ग्रपुष्ट स्थिति को देखत हुए यह कहना पडता है कि ग्राधुनिक राजस्थानी गद्य साहित्य की सावधिक उपेक्षित विधा ही निबन्ध रहा है। इसका कारण राजस्थानी गद्य म प्रौढ़ता एव सक्षमता का ग्रभाव नही ग्रपितु लखका का निबन्ध लखन क प्रति उदासीनता का भाव ही रहा है।

१ ग्रोळमा, नवम्बर १९६४ ई० पृ० स० ३१

रेखाचित्र एवं संस्मरण

अंग्रेजी स्केच के लिए हिन्दी और राजस्थानी में रेखाचित्र शब्द का प्रयोग हुआ है। वैसे इसका समानार्थक शब्द शब्दचित्र भी यहाँ समानरूप से व्यवहृत होता रहा है। 'रेखाचित्र किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना या भाव का कम-से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है। रेखाचित्र पूर्ण चित्र नहीं है—वह व्यक्ति वस्तु घटना आदि का एक निश्चित दृष्टि से प्रस्तुत किया गया प्रतिबिम्ब है जिसमें विवरण की न्यूनता के साथ साथ तीव्र संवेदनशीलता वर्तमान रहती है।'[1]

राजस्थानी रेखाचित्र का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। ई० सन् १९४६-४७ के लगभग राजस्थानी में रेखाचित्र लिखे जाने लगे हैं। अद्यावधि प्राप्त जानकारी के अनुसार श्री भंवरलाल नाहटा का लाभू बावा[2] राजस्थानी का प्रथम संस्मरणात्मक रेखाचित्र है। इसी अवधि में राजस्थानी के क्षेत्र में दो अन्य रेखाचित्रकारों ने प्रवेश किया। ये हैं—श्री मुरलीधर व्यास और श्रीलाल नथमल जोशी। श्रीलाल नथमल जोशी का प्रथम रेखाचित्र परमिल ई० सन १९४६ में जोधपुर से प्रकाशित होने वाले मारवाड़ी पत्र में छपा था। तबसे विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में इनके अनेक रेखाचित्र प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें कतिपय सबड़का[3] नाम से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। इसी अवधि में श्री मुरलीधर व्यास के संस्मरणात्मक रेखाचित्र भी 'राजस्थान भारती, मरवाणी आदि पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाश में आने लगे। इनका और श्री मोहनलाल पुरोहित का संयुक्त रूप से लिखित जूना जीवता चितराम नामक संस्मरण एवं रेखाचित्र संग्रह भी १९६५ ई० में साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर से प्रकाशित हो चुका है। इस प्रकार ई० सन १९४६-४७ से ही राजस्थानी में इस नवीन विधा का सूत्रपात हो गया। वैसे तो विगत २३-२४ वर्षों में छुटपुट रूप में कई लेखकों के रेखाचित्र और संस्मरण राजस्थानी में प्रकाशित हुए हैं, किन्तु इनमें सर्वाधिक चर्चित रहे हैं—श्रीलाल नथमल जोशी श्री मुरलीधर व्यास श्री मोहनलाल पुरोहित श्री शिवराज छंगाणी एवं श्री भंवरलाल नाहटा। इनके अतिरिक्त श्री दाऊदयाल जोशी प्रो० नेमनारायण जोशी श्री सूर्यशंकर पारीक एवं श्री विश्वेश्वरप्रसाद के भी सरस एवं प्रभावी रेखाचित्र समय समय पर प्रकाशित होते रहे हैं।

राजस्थानी के ये रेखाचित्र मुख्यतः चरित्र प्रधान हैं। अपने घनिष्ठ सम्पर्क में आये हुए अथवा आसपास के वातावरण में विचरते हुए व्यक्तियों को ही, किसी विशिष्टता के कारण लेखकों ने अपने रेखाचित्रों व संस्मरणों का आधार बनाया है। वैसे मानव चरित्र अनेक खूबियों का आगार है और

---

१ हिन्दी साहित्यकोश (भाग १) सम्पादक—डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० सं० ७३१

२ राजस्थानी (१), सं० श्री नरोत्तमदास स्वामी पृ० सं० ८९

३ प्रकाशक—राजस्थानी साहित्य परिषद कलकत्ता १९६० ई०

उसके विभिन्न पहलुओं को प्रमुखता देते हुए उसका नाना रूपों में अंकन किया जा सकता है, किन्तु राजस्थानी रेखाचित्रकार जिन परिस्थितियों के कारण प्रभावित हुए हैं उनके आधार पर हम राजस्थानी के इन रेखाचित्रों को तीन भागों में विभक्त कर सकते है—

(१) श्रद्धा-स्नेह समन्वित रेखाचित्र
(२) संवेदनात्मक रेखाचित्र
(३) तथ्यात्मक रेखाचित्र।

श्रद्धा-स्नेह समन्वित रेखाचित्रों में वे रेखाचित्र आते है जिनमें लेखक किसी चरित्र के विशिष्ट गुणों से श्रद्धाभिभूत हो उनके जीवन का अंकन करते हैं। यहा वह पूज्य-बुद्धि से प्रेरित रहता है। एसे चित्रों मे लेखक प्रस्तुत पात्र के केवल उन्हीं गुणों का चित्रण करता है जिनसे वह प्रभावित हुआ है और जिनके कारण उस पात्र विशेष के प्रति उसके मन में श्रद्धा या स्नेह की भावना उमडी है। एसे रेखाचित्रों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि उनके पात्र समाज के विशिष्ट व्यक्ति ही रहे हो, क्योंकि बहुधा सामान्य व्यक्तियों के जीवन की किसी विशेषता के भी हम प्रशसक हो जाते है और मन ही मन कहीं एक आदर का हल्का सा भाव भी हम उनके प्रति रखते है। एसे श्रद्धा-स्नेह समन्वित भाव मे लिखे गये रेखाचित्रों में श्रीलाल नथमल जोशी के 'मामा,'[1] इन्द्रा,[2] श्री भवरलाल नाहटा के 'सरगवासी आभाजी[3] 'पिंडत केसरी प्रसाद जी[4] प्रेमसुखजी नाहर[5] आदि उल्लेखनीय हैं।

संवेदनात्मक रेखाचित्रों में वे रेखाचित्र आते हैं जहाँ लेखक प्रस्तुत पात्र के जीवन की विवशताओं से द्रवित होकर लेखनी उठाने को प्रेरित हुआ हो। संवेदनात्मक रेखाचित्रों की दृष्टि से श्री मुरलीधर व्यास एव श्री मोहनलाल पुरोहित का स्थान सर्वोपरि है। जूना जीवता चित्राम में संगृहीत इनके अधिकांश रेखाचित्र इसी प्रकार के हैं। लेखक द्वय अपने जीवन की लम्बी यात्रा में अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आये जिनमें कुछ पात्रों की सरलता विवशता एव दयनीयता ने इनकी हृत्तन्त्री को झंकृत किया। इन रेखाचित्रों में जहाँ एक ओर प्रस्तुत पात्रों का कठोर श्रमयुक्त सरल एव सात्विक जीवन लेखकीय स्नेह का पात्र बना, वहाँ समाज द्वारा उनकी उपेक्षित एव दयनीय स्थिति लेखकीय सहानुभूति एव करुणा का आधार बना। इस कोटि के रेखाचित्रों में रामला भंगी[6] 'नन्दो ओड[7] मनजी मचकावाळो[8] भीखो भटियारो,[9] सुगना बहा भाट'[10] आदि मुख्य हैं। श्री शिवराज छंगाणी के

---

१ सबडका, पृ०स० १४१
२ वही पृ स० १३२
३ बानगी पृ० स० १
४ वही पृ०स० ४
५ वही पृ०स० १५
६ जूना जींवता चित्राम श्री मुरलीधर व्यास श्री मोहनलाल पुरोहित पृ०स० २६
७ वही पृ०स० ६१
८ वही पृ०स० ६८
९ वही, पृ०स० १७
१० वही पृ०स० १४

'उणियारा'[1] में संगृहीत 'पूरणियो भगी' (पृ० २०) 'कालियो गमी' (पृ० २८) 'गणेश्यारजी' (पृ० ३७) 'ढोलीमालो' (पृ० ५६) आदि रेखाचित्र भी इसी श्रेणी के हैं।

'जूना जीवता चित्राम' में संगृहीत अधिकांश रेखाचित्रों में श्री मुरलीधर व्यास एवं श्री मोहनलाल पुरोहित ने सामान्यतः समाज के उपेक्षित पात्रों की जीवनचर्या का एक चित्र सा 'खींच कर उनके प्रति पाठकों की सहानुभूति बटोरने का प्रयास सा किया है, पर वे स्वयं अपने उच्च आसन से नीचे उतरकर उनसे गले मिलने को उत्सुक नजर नहीं आते। फलतः यहाँ उपेक्षितों के प्रति करुणा का भाव प्रमुख हो उठा है। महादेवी वर्मा के समान अपने पात्रों के साथ एकत्व ज्ञान का भाव यहाँ परिलक्षित नहीं होता। इसलिए ये रेखाचित्र इतने भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी नहीं बन सके हैं जितने कि महादेवी के रेखाचित्र हैं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि राजस्थानी रेखाचित्रकार महादेवी की तरह कवि नहीं है। इस दृष्टि से श्रीलाल नथमल जोशी का 'पटो मावसी'[2] पाठकों की हृत्तन्त्री के कोमल तारों को झंकृत करने में अधिक सफल हुआ है। अपनी भावपूर्ण शैली के कारण इसे भावात्मक रेखाचित्र की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

तथ्यात्मक रेखाचित्रों में स्थिति के यथातथ्य चित्रण की ओर लेखक की दृष्टि प्रमुख रूप से लगी रहती है। यथासंभव वह तटस्थ रूप से प्रस्तुत पात्र के जीवन पर प्रकाश डालता चलता है। इस प्रकार के रेखाचित्रों में लेखक अपनी भावनाओं पर पर्याप्त नियन्त्रण रखने का प्रयास करता है। श्री मुरलीधर व्यास के काबली नसीरुद्दीन[3] बीजो गाली[4] सिणगारी सैंसण[5] श्री गोपाल ओझा[6] 'सिरदार रंगारो'[7] आदि रेखाचित्र इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं। इनमें लेखक ने यथासंभव तटस्थ रहकर पात्र विशेष के गुणावगुणों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इस प्रकार के तथ्यात्मक रेखाचित्रों में श्री भंवरलाल नाहटा अधिक सफल हुए हैं। उनके मास्टराम सरकार[8], नन्दू सेठ[9] आदि रेखाचित्रों में सर्वथा तटस्थ होकर स्थिति के यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति प्रमुख रूप से लक्षित होती है।

चरित्र चित्रण के समान ही राजस्थानी रेखाचित्रों में हास्य एवं व्यंग्य की प्रवृत्ति भी समान रूप से मुखर रही है। श्रीलाल नथमल जोशी श्री दाऊदयाल जोशी श्री सूर्यशंकर पारीक, श्री विश्वेश्वर प्रसाद लिवाड़ी प्रभृति लेखकों के अधिकांश रेखाचित्र हास्य व्यंग्य प्रधान रहे हैं। इन हास्य-व्यंग्य प्रधान रेखाचित्रों के पीछे मूलतः इनमें वर्णित पात्रों का असम्बद्ध आचरण ही इनके लेखन का प्रेरणा-स्रोत रहा है। स्वयं लेखकों की ऐसे पात्रों या परिस्थितियों में विशेष रस लेने की आदत भी इनके सृजन का एक

---

१ प्र०—कल्पना प्रकाशन बीकानेर (१९७० ई०)
२ सबडका पृ० सं० २०३
३ जूना जीवता चित्राम पृ० सं० २०
४ वही पृ० सं० ७६
५ वही पृ० सं० ७८
६ वही पृ० सं० ३६
७ वही पृ० सं० ३९
८ बानगी पृ० सं० ३४
९ वही, पृ० सं० १३

प्रमुख कारण कही जा सकती है। साथ ही साथ कुछ विचित्र कुछ विलक्षण या सामान्य से विपरीत एव भिन्न स्थितियो का चित्रण कर पाठको के मन म गुदगुदी पैदा करने का लेखकीय दृष्टिकोण भी इसके पीछे प्रेरक कारण रहा है। श्रीलाल नथमल जोशी के हरियो[1] रमतियो,[2] श्री सूर्यशकर पारीक के 'फगडळ[3] एव श्री दाऊदयाल जोशी क लोग कद कमावे कोनी कण कमावा वीरा[4] आदि को उदाहरण स्वरूप पेश किया जा सकता है।

श्रीलाल नथमल जोशी के हास्य प्रधान रेखाचित्रो का आलम्बन कोइ ऐतिहासिक या पौराणिक पात्र अथवा कोई असामान्य घटना नही रही है, अपितु वतमान जीवन म सचरण करने वाले कुछ व्यक्तिनुमा प्राणी ही वहा हास्य के प्रमुख आलम्बन बने है। यहा भी उनकी शारीरिक बेडोलता या कुरूपता का भौडा चित्र खीचकर हँसाने का प्रयास नही हुआ है वरन उनके कायकलापो का वर्णन ही कुछ इस विशिष्टता से हुआ ह कि पाठक हँसे बिना रह नही सकता। विशेष रूप से ऐसे पात्रो की मूर्खतापूर्ण बातें या कथनी से सवथा विपरीत उनका आचरण हँसी के लिये कच्चामाल उपलब्ध करते हैं, फिर लेखक अपनी सरस शैली की रासायनिक प्रक्रिया द्वारा इस कच्चे माल को 'ए ग्राड शिष्ट हास्य मे परिणत कर पाठको के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है। श्रीलाल नथमल जोशी की तरह ही श्री सूर्यशकर पारीक भी कुछ उदबुद प्राणियो क विचित्र कार्यो और असम्बद्ध बातो का ऐसा चित्र खीचते हैं कि सहज रूप स हास्य की सृष्टि हो जाती है। श्रीलाल नथमल जोशी म हास्य के साथ कही-कही व्यग्य व तीव्र स्वर भी उभरते हुए स्पष्टत देखे जा सकते है। उन्होने कही कही एक आध पक्ति म ही ऐसी तीखी चोट की है जिसमे प्रस्तुत पात्र के चरित्र का एक ऐसा पहलू उभर कर सामने आ गया जिसके लिए सामान्यत कई पक्तिया या एक छोटी मोटी घटना की आवश्यकता होती। गुलछर्रामल के स्वभाव का वर्णन करते समय लिखी गयी प्रस्तुत पक्ति– खाध ऊपर गमछो जिको जूता अर मूढो दोनू पूछण न आडो आव'[5] इसका अच्छा उदाहरण है।

श्री दाऊदयाल जोशी के रेखाचित्र हास्य की अपेक्षा व्यग्य प्रधान हैं। इनका आग्रह किसी व्यक्ति विशेष के उपबुद्धेपन के अकन की ओर न होकर किसी एक स्थिति या प्रसग को व्यग्यात्मक लहजे म प्रस्तुत करने की ओर प्रमुख रूप स रहा है। इनका लोग कद कमावे कोनी कण कमावा वीरा' एव भला हाय न मिनख री बोली बोले[6] आदि एम ही व्यग्य प्रधान रेखाचित्र ह। हास्य-व्यग्य प्रधान रेखाचित्रो की दृष्टि से श्री विश्वेश्वर प्रसाद तिवाडी का आ मोटा प महल चिणसी'[7] नामक रेखाचित्र

---

१ सवडका पृ० स० १६०

२ वही, पृ० स० ३०

३ ओळमो फरवरी १९६४ पृ० स० २६

४ मरवाणी वप १ अक ६ पृ० स० १४

५ सवडका पृ० स० ३७

६ ओळमो माच, १९६४, पृ०स० २५

७ मरुवाणी वप २ अक १, पृ० स० ५

भी उल्लेखनीय बन पड़ा है। इसमें आज के विद्यार्थी जीवन पर तीखा व्यंग्य किया गया है। राजस्थानी के अन्य उल्लेखनीय व्यंग्य प्रधान रेखाचित्र हैं— मुरलीधर व्यास के 'कूटम्र'[1] 'भागवत',[2] 'पावणा भाभी',[3] 'लगी'[4] 'लाघू'[5] 'पीड़ा पाट'[6] आदि।

शैली की दृष्टि से राजस्थानी रेखाचित्र कथात्मक, वर्णनात्मक, संवादात्मक एवं सम्बोधनात्मक शैली में ही विशेष रूप से लिखे गये हैं। इनमें भी प्रथम दो शैलियों की ही प्रधानता रही है।

कथा की तरह अपनी बात को सरस और रोचक बनाकर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति तथा किसी पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को उभारकर प्रकट करने की वृत्ति के कारण रेखाचित्रकार कथात्मक शैली को ही विशेष रूप में अपनाता है। वैसे भी कहानी और रेखाचित्र का काफी निकट का सम्बन्ध रहा है। पाठक में कहानी जैसा ही आनन्द प्रदान करने वाले कुछ बड़े सरस रेखाचित्र राजस्थानी में लिखे गये हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं—श्री नेमनारायण जोशी कृत 'कुदरण रावो'[7] श्रीलाल नथमल जोशी कृत 'गुनछरामल', 'फरामल'[8] आदि। इन रेखाचित्रों में कुछ घटनाओं का प्रस्तुतीकरण इस कथात्मक ढंग से हुआ है कि उसमें पात्र के किसी अभीष्ट पहलू पर तो प्रकाश पड़ता ही है पर साथ-साथ पाठक के लिये मनोरंजन की अच्छी सामग्री भी प्रस्तुत हो जाती है। बीच-बीच में दी गई [illegible]गनीय प्रतिक्रियाएँ एकरसता को भंग करने के साथ साथ पात्र विशेष की किसी-न किसी चरित्रगत विशेषता को भी उद्घाटित करती चलती है।

कथात्मक शैली के ही एक अन्य भेद के रूप में हम आत्मकथात्मक शैली को मान सकते हैं। इसके अंतर्गत पात्र स्वयं ही आत्मकथा के रूप में अपने जीवन की किसी घटना विशेष को या अपनी जीवनचर्या का इस रोचकता के साथ वर्णन करता है कि पाठक की आंखों के आगे पूरी की पूरी घटना एक चित्र के रूप में अंकित हो जाती है। इस शैली में लिखे गये रेखाचित्रों में श्री दाऊदयाल जोशी का 'जोग कव कमाव कोनी कण कमावा बीरा' एवं श्री विश्वेश्वरप्रसाद तिवाड़ी का 'आ भाटा प मल चिणसी' उल्लेखनीय हैं।

कथात्मक एवं आत्मकथात्मक शैली के अतिरिक्त राजस्थानी रेखाचित्रकारों ने वर्णनात्मक शैली को ही विशेष रूप से अपनाया है। इसके अंतर्गत लेखक अपेक्षित पात्र या घटना का स्वयं ही वर्णन करता चलता है। श्री मुरलीधर व्यास और श्री मोहनलाल पुरोहित ने विशेष रूप से इसी शैली को अपनाया है। इनके अधिकांश रेखाचित्रों में प्रस्तुत पात्र की जीवनचर्या का वर्णन होता है। जहाँ तहाँ

---

१ बानगी पृ०सं० २५
२ सबड़का पृ०सं० १८१
३ वही पृ०सं० १७८
४ वही पृ०सं० १६८
५ वही पृ०सं० १५०
६ उणियारा पृ०सं० १५
७ ओळमो दीपावली १९६३ पृ०सं० ३१
८ सबड़का, पृ०सं० २३

बीच-बीच म हर तीन चार पक्तिया के पश्चात लेखक उन पक्तियो से ध्वनित होने वाले पात्र के गुण का उल्लेख करते चलते ह । इनके 'भोळा पद्या नागणियो',[1] हुसैनो गूजर,[2] 'सुखो बारीगर'[3] 'रमजान न्यारियो,[4] रामला भगी[5] भीलियो मवास[6] आदि अधिकाश रेखाचित्रो म इसी शैली को अपनाया गया है ।

श्रीलाल नथमल जोशी ने भी यत्र तत्र वर्णनात्मक शैली को अपनाया है किन्तु इनके प्रस्तुतीकरण का ढग व्यास जी से सर्वथा भिन्न है । कहीं कहीं तो ये अपनी बात इस प्रकार रखते ह मानो पाठक उनके सामने खड़ा है और ये सीधे पाठक से सम्पर्क स्थापित कर लेते हैं । 'फन्ड पच' म उनका यह कथन— दर्णरी जे आपने ठा पड जावे तो हूँ हाड करण ने त्यार हूँ[7] और रडवा की यह पक्ति—'ज कदास कोई चोखो टाबर आपरे ध्यान म आवे तो भटपट चिट्ठी पत्तरी लिख दिया हजार पाच सौ आपने भी मिल जासी'[8] इस कथन की पुष्टि करते ह । श्री व्यास और श्रीलाल नथमल जोशी की तरह भवरलाल नाहटा ने भी अधिकाश रेखाचित्र वर्णनात्मक शैली म ही लिखे हैं यथा— रावलिया नाद[9] लाभू बाबा,' गाफूराम सरकार आदि ।

पात्रो के परस्पर के वार्तालाप के माध्यम से भी कोई अच्छा-सा शब्द चित्र खडा किया जा सकता है । इस प्रकार के शब्द चित्र शैली की दृष्टि से सवादात्मक रेखाचित्रो की श्रेणी म आते हैं । श्री व्यास और श्री श्रीलाल नथमल जोशी दोनो ने अपने रेखाचित्रो म इस शैली का प्रयोग यत्र-तत्र किया है । इस दृष्टि से श्री व्यास के 'सीतकी मालण'[10] मघो फेरीवाळो[11] एव श्रीलाल नथमल जोशी के फरामन हरियो रमतियो आदि रेखाचित्र उल्लेखनीय हैं ।

श्री जोशी के उपयुक्त रेखाचित्रो म तो अधिकाशत सवाद शैली का ही सहारा लिया गया है । उनमे प्रारम्भ या बीच म बहुत कम स्थलो पर वर्णनो का सहारा लिया गया है । सवाद शैली म लिखे गये रेखाचित्रो म रेखाचित्रकार का उद्देश्य वार्तालाप के माध्यम से ही अपने पात्र की विशेषताओ और उसके स्वभाव का अकन करना होता है । ये सवाद ही अपने पात्र की चारित्रिक रेखाओ को अकित करते चलते हैं । आद्यान्त सवाद शैली म लिखा गया रेखाचित्र तो राजस्थानी म नही मिलता परन्तु प्रारम्भ स

---

१ जूना जीवता चित्राम पृ० १
२ वही पृ०स० ४
३ वही पृ०स० ८
४ वही पृ० स० ११
५ वही पृ०स० २६
६ वही, पृ०स० ८६
७ सबडका, पृ०स० ८६
८ वही पृ०स० ६७
९ बानगी पृ०स० १०
१० जूना जीवता चित्राम पृ० स० ५८
११ वही पृ०स० ८६

लेकर अंत से कुछ पूर्व तक, संवादों के माध्यम से ही अपने पात्र के स्वरूप को उजागर करते हुए उसके चरित्र को उभारने का प्रयास श्रीलाल नथमल जोशी के 'जवरोजा'[1] में हुआ है।

सम्बोधनात्मक शैली में लिखा गया राजस्थानी का उल्लेखनीय रेखाचित्र है—श्रीलाल नथमल जोशी का 'पट्टी माथली'[2]। यह एक भावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी रेखाचित्र है। लेखक ने दिल्ली के किसी फुटपाथ पर एक लजील नयना वाली कृशकाय श्यामवर्णा भिखारिन को देखा था। उसके व्यक्तित्व में एक ऐसा आकर्षण था कि लेखक उसके जीवन के अज्ञात रहस्यों को जानने के लिए ही पुनः दिल्ली जाता है, किन्तु वहाँ उसे न पाकर वह उसे सम्बोधित करता हुआ उसके कल्पित मधुर जीवन एवं व्यथाओं से दारुण बने वर्तमान जीवन का बड़ा मर्मस्पर्शी एवं सजीव चित्र खींचता है। लेखक ने प्रस्तुत रेखाचित्र का प्रारम्भ ही उस अज्ञात रहस्यमयी भिखारिन को सम्बोधित करते हुए इन मार्मिक शब्दों में किया है—'कुण जाणै तैं आंख्या फाडत बावल री गोद माय र हगी भरी करी ? कुण जाणै तूं मायड़ री दूधां भरी छाती सूं घड़ी पलक साल अळगी नई हुई ? कुण जाणै जे तूं साल बारा री सानल बाई होती।

कुण जाणै हरख कोड सूं गाजे बाजे सूं थारो ब्याव हुयो तो ? कुण जाणै 'इतरो सगळा रो लाड छोड र थाई सिध चाली ए। लेग्यो टोळी माय सूं टाळ कोयलड़ी हद बोली ए' गांवत गावन मां रो गळो भरीज्यो हुवै अर वो गीत न अध बीच में छोड दियो हुव तो ?[3]।

उपर्युक्त विवेचन से राजस्थानी रेखाचित्रों के सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातें उभर कर सामने आती है। प्रथम तो यह कि राजस्थानी रेखाचित्रों में केवल वर्तमान समय के व्यक्तियों को ही आधार बनाया गया है किसी ऐतिहासिक पात्र या घटनाक्रम किसी प्राकृतिक दृश्य या मनोवृत्ति विशेष को प्रधानता देकर उस ओर प्रवृत्त होने में राजस्थानी रेखाचित्रकारों ने सामान्यतः कोई उत्साह नहीं दिखाया है। द्वितीय सूक्ति शैली डायरी शैली एवं तरंग शैली का उपयोग भी किसी रेखाचित्रकार ने अद्यावधि नहीं किया है। अब तक वर्णनात्मक शैली या कथात्मक शैली में लिखे गये चरित्र चित्रण एवं हास्य-व्यंग्य प्रधान रेखाचित्रों की ही प्रधानता बनी हुई है। तृतीय हिन्दी की तुलना में या कालावधि की दीर्घता को देखते हुए रेखाचित्र एवं संस्मरण लेखन के विकास की गति काफी धीमी प्रतीत होती है पर जब हम आधुनिक राजस्थानी साहित्य की अन्यान्य गद्य विधाओं की ओर दृष्टिपात करते हैं तो लगता है कि कहानी के पश्चात राजस्थानी गद्य लेखकों का ध्यान सर्वाधिक रूप से जिस विधा की ओर गया है वह विधा रेखाचित्र एवं संस्मरण ही है।

●

---

१ सबड़का पृ०सं० १४५

२ वही पृ०सं० २०३

३ वही पृ०सं० २०३

गद्य–काव्य

संस्कृत से भिन्न अर्थों में हिन्दी और राजस्थानी में 'गद्य काव्य' शब्द का प्रयोग होता है। संस्कृत में जिस विधा को गद्य-काव्य संज्ञा से अभिहित किया जाता रहा है उसमें अलंकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से मुखर होती है किन्तु हिन्दी और राजस्थानी में इसके विपरीत गद्य-काव्य में भाव तत्त्व की प्रधानता रहती है। अन्विति के साथ गद्य की भाषा में भावों का वह प्रकाशन जिसमें रमणीयता, आह्लाद प्रभावोत्पादकता चारुत्व आध्यात्मिकता अलौकिक आनन्द तथा पर्याप्त सरसता होती है, गद्य-काव्य की संज्ञा प्राप्त करता है। इस प्रकार की रचना में छन्द तो नहीं होते पर भावों की प्रबलता विश्व-संगीत की लय वक्रोक्ति ध्वनि, सांकेतिकता आदि विशेषताएँ रहती हैं।[1]

राजस्थानी गद्य काव्य का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। राजस्थानी रेखाचित्र के साथ-ही-साथ इसका सृजन भी प्रारंभ हुआ। सर्वप्रथम १९४६ ई० में राजस्थानी[2] में श्री चन्द्रसिंह के कुछ एक गद्य काव्य 'साप' नाम से प्रकाशित हुए। उसी समय से राजस्थान भारती में भी श्री कन्हैयालाल सेठिया श्री चन्द्रसिंह श्री मुरलीधर व्यास प्रभृति लेखकों के गद्यकाव्य प्रकाशित होने लगे। १९५३ ई० में, 'मरवाणी' एवं 'ओळमा' के प्रकाशन ने इस क्षेत्र में कुछ नये हस्ताक्षरों से हमारा परिचय करवाया। इनमें उल्लेखनीय हैं—श्री ब्रजनाथ पवार एवं रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत। इसी अवधि में 'वरदा' त्रैमासिक ने एक नये गद्य-काव्यकार को साहित्य रसिकों के सम्मुख प्रस्तुत किया ये गद्य-काव्यकार हैं—डा० मनोहर शर्मा। इसी पत्रिका में उनके ४८ गद्य-काव्य 'फूला मालण' सामाजी 'रोहीड रा फूल' और मोनल भाग शीर्षकों के अन्तर्गत प्रकाशित हुए हैं। इन गद्य-काव्यकारों के अतिरिक्त भी श्री शान्तिदेव शर्मा श्री माणिक तिवारी 'बन्धु' आदि कुछ अन्य सर्जकों को भी आगे बढने का प्रोत्साहन इन्हीं पत्र पत्रिकाओं से मिला है। अद्यावधि श्री कन्हैयालाल सेठिया के अतिरिक्त किसी भी लेखक का गद्य-काव्यों का संकलन पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हुआ है।

स्वतन्त्र रूप से लिखे गये गद्य काव्यों से पूर्व राजस्थानी की कुछ कृतियों में गद्य-काव्य जैसे ही प्रवाहपूर्ण आत्मपरक भाव-संश्लिष्ट एवं ऋजु गद्य के सुन्दर उदाहरण देखने को मिलते हैं। इस दृष्टि से श्री ब्रिजलाल बियाणी के भावात्मक निबन्ध विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके मोगराकली गुलाबकली बनी फजर की दीवा[3] आदि ललित निबन्धों के कुछ स्थल यदि उन्हें स्वतन्त्र रूप से

---

१ हिन्दी गद्यकाव्य उद्भव और विकास पृ० स० २८

२ राजस्थानी (भाग २) स०—नरोत्तमदास स्वामी प्र०—राजस्थानी साहित्य परिषद कलकत्ता।

३ श्री बियाणी जी के ये सभी भावात्मक एवं ललित निबन्ध मासिक में प्रकाशित होने वाले पचराज (हिन्दी) मासिक में प्रकाशित हुये हैं। विशेष विवरण— निबन्ध में देखिये।

प्रस्तुत किया जाय तो श्रेष्ठ गद्य काव्य की श्रेणी म रग जा सकते हैं। इनम जहाँ प्रकृति का मनोहारी एव नवीन उपमाओ से युक्त चित्रण हुआ है वे स्थल पाठक के हृदय को अपने सौन्दर्य और नवीनता के कारण सहज ही मुग्ध कर लेते हैं। इस दृष्टि से ठाकुर रामसिंह का प्रमाशम एव आगीवाण के प्रथम वर्ष के प्रथम अक के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित 'लिछमी जी म्हाकी भी सुगलो उल्लेखनीय हैं। इसमे की गई विवश हृदय की यह करुण पुकार किसे द्रवित नही करेगी ?

मा आज दीवाली है। आज म्हा लोग थाकी पूजा कर रया हा पिण मा था कठ हो। अमावस की काली रात के माफक ही म्हाकी आखियाँ के सामन तो अधारो ही अधारो दीसे है। मा कठे हो थे, बोलो।

कठ ही तो विजली की रोशनी है कठ ही बिजली और तेल का दिवाटिया जल रया है, कठ ही मण बतियाँ है। हाँ चादणो तो है पिण मा ई चादण म तो थे म्हान दीखो नही। ई चान्णो म तो देश की गरीबी देश की दरिद्रता ही ज दीख है। माजी रूपक्यू गया भाग क्यू गया?'' [1]

२४ २५ वर्षों की कालावधि को देखते हुए राजस्थानी म लिखे गये गद्य काव्यो की सख्या बहुत ही सीमित है। इस क्षेत्र म प्रवृत्तिगत वविध्य भी नही लक्षित होता। यहाँ चिन्तन प्रधान गद्य-काव्य ही प्रमुख रूप से लिखे जाते रहे है। हाँ प्रकृति एव ईश्वर को आलम्बन बनाकर सरस एव भावपूर्ण गद्य-काव्य लिखने की चेष्टा भी यदा कदा अवश्य होती रही है।

चिन्तन प्रधान गद्य काव्य लेखको म श्री कन्हैयालाल सेठिया अप्रतिम हैं। उनके गद्य काव्य म उनके विचारक रूप के साथ साथ उनका कवि रूप भी प्राय कदम से कदम मिलाकर बढता हुआ देखा जा सकता है। विचारक एव कवि रूप के इस मणि-काचन सयोग से जिन विचार मुक्ताओ की सृष्टि हुई है—वे राजस्थानी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। जहाँ उनका विचारक रूप कवि को भूलकर अकेला ही विचरण करने लगा है वहाँ रमणीयता के अभाव म विचार शुष्क सूक्तियो के अधिक निकट पहुँच गये है। गळगचिया म सगहीत गद्य काव्यो म एसी सूक्तियो को सहज ही अलग से पहिचाना जा सकता है यथा—

(क) हाथी सौ अधेरो कीडी सी क दिवल री लौ न कोनी चीथ सके। [2]

(ख) गलो पगा पडसी जद मजला मत ही मु डाग आज्यासी। [3]

एसी बात नही है कि श्री सेठिया अपने विचारक के इस रूप स परिचित न हो। उन्होने स्वय ने इस स्थिति की ओर इगित करते हुए गळगचिया की भूमिका म स्पष्ट लिखा है— मन रो अचपळो बाळकियो विचार रा गगा म सू गळगचिया छाट छाट'र चुग्या है। आ म किस्यो गळगचियो शिव ह अर किस्या गळगचिया लोन्ो ई री रिछाण तो पारखी ही कर सकला। [4]

---

१ आगीवाण, वर्ष १ अक–१ नवम्बर १९३७ स०—बालकृष्ण उपाध्याय

२ गळगचिया पृ० स० ६६

वही पृ० स० ३०

४ वही पृ०स० ११ (परवो)

यह सही है कि अयाक्ति के सहार, मानवेतर प्रकृति के कार्य-कलापों के माध्यम से कल्पना के स्वप्निल जाल मे गूथी हुई विचार मणियाँ ही गळगचिया में अधिक हैं नीति एवं सूक्ति कथन कम। जहा विचार बाभिलता से सवथा पर हट कर किसी मनोरम कल्पना का चित्राकन हुआ है वहाँ से पाठक का ध्यान हटाना सहज नही है यथा—

दिन र छोर र हाथ स्यू सूरज रा दडो छट र नीचे जा पड यो बापड छार गे मू डो कळ ठीजग्यो'र आंख्या म आसू आग्या,

अणसमझा र भाव तो अधेरो पटग्यो'र तारा चिमकण लाग्या।'[1]

वसे तो श्री सेठिया के अधिकाश गद्य-काव्य मानवीय चरित्र के किसी-न किसी पहलू को प्रकाशित करते है[2] किन्तु जहाँ कहीं व्यग्य प्रमुख रूप से उभरा ह उस स्थल की वक्रता दखत ही बनती है—

(क) बदूक उठा र दाग नी बापनी पसरू तटफता र नीचे आ पट यो लोग कया रिग्यो क हू स्यार ठार्‌दार है।

दूसर दिन घडी री चाल बन्द हू र ठार्‌दार मरग्यो लोग कया मौन किसी न निरन्द है ?

(ख) मिनख कयो-उळझयोडी जवडी, मैं तन सुलझा र थारो कत्तो उपगार करू हूँ।

जेवडी बोली तूँ किस्योक उपगारी ह जका म्हार स्यू छानू कानी। काई आर न उळझाणो खातर मन सुळझाती हुसी। [3]

विचार एव चितन प्रधान गद्य-काव्य की दृष्टि से भी कन्हैयालाल सेठिया के पश्चात डा० मनोहर शमा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। डा० शमा ने अपने अधिकाश विचार प्रधान गद्य-काव्यो म आत्मकथात्मक एव सवाद शैली को अपनाया है। प्रथम पुरुष (म) शैली म लिख गये ये गद्य काव्य लेखक के जीवन की घटनाओं स सीधे सम्बन्धित हैं।[4] इन घटनाओं के माध्यम से लेखक का उद्देश्य अपनी जीवन गाथा अकित करना नहीं वरन किसी-न किसी शाश्वत सत्य का उद्घाटित करना रहा है। मानव मन की गहराइयो को छूने तथा मानव स्वभाव की सामान्य रूप स व्याख्या करने की दृष्टि म ही इन घटनाओ को गद्य-काव्य के रूप म प्रस्तुत किया गया है। ऐसे स्थल बहुत ही प्रभावशाली बन पडे हैं[5], कि तु जहाँ किसी सामान्य उक्ति, नीति कथन या सामान्य अनुभव को प्रमुखता देकर उसके लिए किसी घटना का सयोजन किया गया है—व गद्य का य किसी सूक्ति या लोकोक्ति से अधिक प्रभावित नहा करते।[6]

---

१ गळगचिया पृ०सं० ७०

२ गळगचिया म सकलित मिनख कयो (पृ०सं० ४५), आमाज रो महीनू (पृ०सं० ४८) नानकी रा मा कयो (पृ०सं० ५२) जाभ न कावू म (पृ०सं० ७३) आदि गद्य काव्य इस दृष्टि स द्रष्टव्य हैं।

३ गळगचिया पृ० सं० ४८

४ 'मन म उमग उठी एक वर म एक फूटी बाजार म भीड (मानल भोग)। म घणी घणी एक वर म बाजार नाव मार दिन (मामागी) आदि। वरदा १०/१ एव ८/३

५ मामागी (८), वरदा वष ८ अक ३, पृ० ५

६ मानल भोग वरदा वष १० अक १ पृ० ५२

श्री चन्द्रसिंह एवं श्री मुरलीधर व्यास के अधिकांश गद्य-काव्य भी विचार प्रधान हैं। जहाँ व्यासजी ने वर्तमान सामाजिक समस्याओं पर लघु कथात्मक गद्य काव्य लिखने की ओर विशेष रुचि प्रदर्शित की है[1] वहां श्री चन्द्रसिंह ने अपने गद्य काव्यों में एक ओर सामयिक समस्याओं की ओर इंगित किया है[2] तो दूसरी ओर कुछ शाश्वत प्रश्नों को भी उठाया है।[3]

श्री बजनाथ पवार और रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत के गद्य गीत राजस्थानी गद्य काव्य को नयी दिशा प्रदान करते हैं। आत्मा और परमात्मा के प्रणय संबंध को लेकर अनेक दार्शनिक एवं भक्त कवियों ने अपने हृदयोद्गारों को बड़ी मधुरता और तीव्रता के साथ व्यक्त किया है। विशेष रूप से आत्मा को परमात्मा की पत्नी मानते हुए उसके विरह में दग्ध आत्मा की करुणार्द्र पुकार को अंकित करने में ये कवि बड़े मार्मिक और भावुक बन गये हैं। गद्य काव्यकारों के लिए भी आत्मा-परमात्मा के प्रणय मिलन और वियोग का विषय, मुख्य आकर्षण का केन्द्र रहा है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने तो बंगला भाषा में ऐसे अनेक सरस एवं करुण गद्य गीतों की रचना की है हिन्दी गद्य-काव्यकार भी उससे अछूते नहीं रहे हैं। उसी भावधारा से प्रेरित होकर श्री बजनाथ पवार एवं रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने राजस्थानी में ऐसे कई सरस गद्य-काव्यों की रचना की है। श्री पवार कहीं अपने एकाकी जीवन की उत्र एवं प्रिय मिलन की छटपटाहट व्यक्त करते हैं तो कहीं पल पल परिवर्तित होती हुई प्रकृति की ओर

८८

१ बालाजी रै मन्दिर में तीन दिनारी भूखी तिसी एक अबला आयी सूं आगू नाचती एक नमस्कार ने आगळी सूं बतारै कयो इयै चंडाळ मन दीन दुनिया सूं गमाईर म्हारो मान मत्तो गळक करयो। यात रो रुंड इयै पापी नै मिलणो जोइजे म्हं गरीबड़ी नै नहीं।

पच—थारो हीया वयू फ्टयो जको थूं इयेरी फाकी में आर घर सूं नाठी ? मिनख तो बाड में मूतता ई आया। आज सूं थारी दगणा बध अर तू ध्यान धार।

राजस्थान भारती वर्ष ३ अंक २ पृ० ७२

२ दोनूं बाळपणे रा साथी
जवानी में अक दात रोटी टूटी
बिरधापणे साथ बितायो
मरया पाछै अक गंगा में दूजो कबर में
अंत में अळगा करण रो ओ साग किसो ?

सीप' राजस्थानी (भाग-२) पृ० स० १०३

३ अंधार सूं उजाळ में आवतो ही बाळक रोयो
इण सूं जावण रो अंथ लगाय नै लोग हँसिया।
धीरे धीरे देखा-देखी सागी बालक उजाळ रो बणियो
अेक दिन अचानक अंधारो आवतो देख सागी—
बाळक रोवण लाग्यो।
'सीप राजस्थानी (भाग-२) पृ० स० १०३

इ गित करते हुए प्रिय के न ग्रान पर उसे तीखे उपालम्भ देत हैं ।[1] उह कही प्रिय के ग्राकर चले जान ग्रौर स्वय की नासमझी के कारण उससे न मिल पान का भारी दु ख है[2] तो कही दीघकालीन वियाग के पश्चात मिलन की मधुर घडिया का हर्षोल्लास ।[3] कहने का तात्पय यही है कि श्री पवार के अधिकाश गद्य गीत प्रणय पथ की सयोग वियोग की वीथिया पर सचरण करत हुए नानाविध तरल भावों की हृदय-स्पर्शी अभिव्यक्ति लिए हुए हैं। श्री पवार क गद्य गीतो म प्रिय वियोग की जिस तडपन ग्रौर प्रिय मिलन की जिस उत्कण्ठा के दशन होत हैं उन्हीं भावा को उसी तीव्रता के साथ लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत के गद्य गीता मे भी दखा जा सकता है।

प्रकृति ने ग्रपने कोमल एव भयकर दाना ही रूपो म मानव मन को आर्कषित किया ह। राजस्थानी गद्य-काव्यकार भी उसके ग्राकपण पाश म ब धे बिना नही रह सके है। प्रकृति के सौदय को स्वतत्र रूप से स्थापित करन की अपक्षा प्राकृतिक कायकलापा के माध्यम से किसी विशेष बात या स्थिति की ग्रोर पाठक का ध्यान ग्राकर्षित करन या किसी दाशनिक चिन्तना की बोझिलता स बचाने क लिए ही राजस्थानी गद्य-काव्यकारा ने अधिकाशत प्रकृति का सहारा लिया है। श्री सेठिया म तो यह

---

१ 'पण तू कठ ?
कद ग्रावला ? ग्रास री उमग ग्रळसायगी
मनड रो माद मोळा पडग्या
तरी उडीक म—
सरदी सिरकगी—पाळो ढळग्यो
डाफर बीतगी—रुत बदळगी
बोरा पान भडग्या—नू वी कू पळ फिरगी
गिरमी रा भभूळिया उन्या
लूवा रा लपका चाल्या
सुपना री सेज मे गरद चढगी
मन रो मिरगलो घणो भटक्यो
पण तू कठ ?
ग्राभो गरणाव बादळ भाला देवे
बीजळ परळाटा सू सन कर
बिरखा री भडी लागगी
ग्रब नई ग्रावसी तो भळे कद ?
होळी पाछलो धावळो
ग्रागे काई कवू ?'
मधुमती ग्रगस्त-सितम्बर १९७०

२ वो ग्रायो ग्रर चल्यो गया श्री बजनाथ पवार, ग्रोळमो

३ बादळ'र बीजळी श्री बजनाथ पवार ग्राळमो ग्रगस्त १९५९

प्रवत्ति विशेष रूप से मुखरित हुइ है । उनके कई गद्य गीता को सहज ही उदाहरणाथ प्रस्तुत किया जा सकता है ।[1] श्री सेठिया की तरह ही डा० मनाहर शर्मा भी उपयुक्त स्थितिया के लिए प्रकृति का सहारा बराबर लत रह ह पर उनके कतिपय गद्य का या को पढ़न पर एसा लगता है कि प्रतिक्षण घटित होन वाले प्राकृतिक घटना चक्र के पीछे जो रहस्य छिपा रहता है उसम परम सत्ता के किसी गूढ या अज्ञात सकेत को पकडन क लिए जिस सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और अ तर्भेदिनी दृष्टि की आवश्यकता होती है उसका उनम अभाव सा है । उनकी यह विवशता सभवत अनुभूति की अपेक्षा अभिव्यक्ति स्तर पर विशेष रही है । *श्री सेठिया और डा० शर्मा की तरह ही श्री चन्द्रसिंह मानिक तिवारी 'बन्धु' प्रभृति गद्य* काव्यकारो न भी अपनी अभिव्यजना म प्रकृति का सहारा लिया है । श्री शातिदेव शर्मा का 'विचारो दिनकर'[2] प्रकृति पर मानवीय भावनाओ का आरोपण (नारी की ईर्ष्यालु प्रकृति) होते हुए भी कल्पना *की रगीनिया के कारण एक प्रभावी गद्य काव्य बन पड़ा है* । फिर भी यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि प्रकृति का आलम्बन रूप म स्वीकार कर मनोहारी कल्पनाओ क सहारे सौदय का भव्य वितान तानने म राजस्थानी गद्य काव्यकार न बहुत कम रुचि प्रदर्शित की ह ।

शिल्प और शैली दोनो ही दृष्टिया स राजस्थानी गद्य काव्य की अपनी कुछ एसी विशेषताएँ ह जिनके कारण उन्ह सहज ही हिन्दी स अलगाया जा सकता है । कलेवर की लघुता राजस्थानी गद्य काव्य की सबस बडी विशेषता है । राजस्थानी क प्राय सभी गद्य काव्यकारो म यही प्रवत्ति प्रमुख रही है । अनेक गद्य का या म तो दो तीन वाक्यो या एक प्रश्न और एक उत्तर म ही बात समाप्त कर दी गयी है । इस दृष्टि स श्री क हैयालाल सेठिया अपनी सानी नही रखते । बडी से बडी बात को कुछेक पक्तिया की सीमा म बाधन का कौशल उनके गद्य काव्या म देखा जा सकता है । एक ही भाव को लेकर श्री सेठिया एव हिंदी क श्री तेजनारायण काक न गद्य काव्य लिख ह । जहा श्री सेठिया ने दो ही पक्तिया म अपनी बात कह दी ह वहाँ श्री तेजनारायण काक आध पृष्ठ का विस्तार देकर भी उसम वह तीव्रता एव प्रभविष्णुता नहीं ला सके ह जो कि श्री सेठिया के 'दूबडी क्यो' म आ पायी है ।[3]

---

१ (क) चौमास म डूगर उपराऊ उतरतो एक उछाछळो नाळो बोल्यो—म एक छलाग म समन्दर पूग जास्यू ।
डूगर र पगाण पडी धूळरी तिसाई आँख्यां नाळ कानी देखे ही क कद नीच उतर र कद चोसू ।
गळगचिया पृ० स० ४२

(ख) तिरिया मिरिया भरी तळाई र दूबडी आ र गळबाथ घालली । लरा चिड र बोली—तन कुण नूती ही ? बीच म ही मीडको टरटर कर र बोल्यो—गली अपणायत हुव जका नूत न की अडीकनी ।
गळगचिया पृ० स० २५

२ विचारो दिनकर शातिदेव शर्मा मरुवाणी वष २ अक १ पृ० स० २

(क) बेला और घास

एक मोटा ताजा बल एक हरे भरे मदान म घास चर रहा था । जब वह अपने मुह क सामन का घास खा रहा था तो उसक परो के नीचे दबी हुई घास करुण स्वर म कहन लगी— तुम भा कस निर्दयी हो कि मुँह के आग आन वाल मरे बन्धु-बान्धवा को *तो तुम खा ही जात हो किन्तु मुझे व्यय ही अपन परा तल कुचल रहे हो ।*

शली की दृष्टि से सवादात्मक, कथात्मक एव सम्बोधनात्मक शली को ही राजस्थानी गद्य काव्यकारो न विशेषरूप से अपनाया है। इनम भी सवाद शली एव कथा शली का अधिक प्रयोग हुआ है। श्री सेठिया के तो अधिकाश गद्य-काव्य सवाद शली म ही लिखे गय हैं। मानव एव मानवतर पात्रो के परस्पर वार्तालाप के माध्यम स ही उन्होंने अपना कथ्य प्रस्तुत किया है। इस शली को अपनान का सबसे बडा लाभ यह हुआ है कि जो बात अन्य किसी शली म रख जान पर शायद पृष्ठो म फलकर भी उस प्रभावान्विति का अहसास नही करवा पाती वह यहा कुछक पक्तिया ही करवा जाती है।[1]

कथात्मक शली म लिखे गय गद्य काव्यो म डा० मनोहर शमा के अधिकाश गद्य-काव्य श्री मुरलीधर व्यास के सामाजिक समस्याओ पर लिखे गय गद्य काव्य, श्री शातिदेव शमा का विचारो दिनकर एव श्री सेठिया के कुछ एक गद्य का य आन हैं। इन गद्य काव्यो म किसी रोचक या आकषक घटना का चित्रण होन हुए भी लेखक का अभीष्ट उस घटना को चित्रित करना नही होना है वह तो उसक व्याज से अपनी बात का तीव्रता एव रोचकता क साथ प्रस्तुत करना चाहता है। इनम सामान्यत अन्योक्ति की प्रधानता रहती है।

सम्बोधनात्मक शली यहा क गद्य-काव्यकारो का विशेष प्रिय रहा है। कभी उपालम्भ रूप म तो कभी निवेदन के रूप म अपनी बात कहन म य गद्य काव्यकार विशप प्रयत्नशील रह हैं। श्री बजनाथ पवार के बसन्त आया[2] एव स्याम[3] रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत का मातभोम[4] श्री प्रकाशकुमार जन का मरवाणी[5] आदि गद्य काव्य इस दृष्टि से उल्लखनीय रचनाए हैं। भावावग क कारण जब

बैल न धीरे धीरे अपनी गदन उठाई और उसकी पुकार बिल्कुल अनसुनी करत हुए सगव उत्तर दिया—

आखिर मुझे खडा होने को भी कही स्थान चाहिए। तुझे अपन परो क नीचे रौंदे बिना म पट कस भर सकता हूँ।

निभर और पाषाण श्री तेजनारायण काक पृ० स० ३६

(ख) दूजडी कयो– गाय चरतो भलाई पण चीथ मती।

गाय बोली काइ करू ? रामजी म्हारी भूखन पागळी को बणाई नी।

गळगचिया श्री कन्हैयालाल सठिया पृ० स० २४

१ (क) दही पूछ्या– झरणा रोजीना मथ मथ र म्हारा माजनू बिगाड की थार ही पल्ले पड है क नी ?' झरणा बोल्यो— कीड या ता काळजो रातू चूट ही है औरस की दरूयानी।

गळगचिया श्री सेठिया पृ० स० ५६

(ख) दूबडी पूछ्यो– झरणा तू चनेक ही सिचल्या कोनी रव तूं पून को जायाडो है के ? झरणा बोल्या– भली पिछाणी करी ? म तो डूगरा र जायोडा हू जका पगवाडा ही को फेरनी।'

गळगचिया, श्री सठिया पृ० स० २०

२ बसन्त आया श्री बजनाथ पवार मरुवाणी वष २, अक ३ ४ पृ० स० ६

३ स्याम श्री बजनाथ पवार मरुवाणी वष ६ अक ३–४ पृ० १८

४ मातभोम रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत मरुवाणी वष २ अक ३ ४ पृ० स० ७

५ श्री प्रकाशकुमार जन मरुवाणी वष १ अक ६ पृ० २

हृदय उमड पडता है तब कल्पना चक्षुओ के समक्ष अभीष्ट को खडा कर, भावुक हृदय वाणी के रूप म वह निकलता है ।

उपयु क्त विवेचन म राजस्थानी गद्य काव्य के विषय म दो तीन बातें विशेषरूप से उभर कर सामने आयी हैं । प्रथम तो राजस्थानी गद्य काव्य म लघु कलेवर वाले कथात्मक गद्य काव्यो का ही विशेष रूप से सजना हुई ह । द्वितीय चि तन प्रधान गद्य काव्या की तुलना म दार्शनिक गुत्थियो म रमने वाल प्राकृतिक सौदय को रूपायित करने वाले किसी व्यक्ति विशेष की स्मृति को गद्गद अश्रुअजलि अर्पित करने वाल या फिर किसी ऐतिहासिक घटना को अपने भावपूर्ण उदगारो स जीवन्त रूप प्रदान करने वाल गद्य काव्य बहुत कम लिखे गये ह । यही नही आत्मा परमात्मा के प्रणय प्रसग (जो कि गद्य-काव्यकारो का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है) पर आधारित गद्य काव्य भी विचार प्रधान गद्य-काव्या की तुलना म अल्पमात्रा म ही लिखे गये ह । शली की दृष्टि से सवाद शली एव कथात्मक शली का ही विशेष प्रयोग हुआ है । वस यत्र तत्र सम्बोधन शली को भी अपनाया गया है । विषय की सीमितता एव शलीगत वविध्य की न्यूनता के बावजूद भी कलेवर की लघुता एव सवाद शली का सागोपाग प्रयोग राजस्थानी गद्य-काव्य क्षत्र की स्पृहणीय उपलब्धिया मानी जा सकती ह ।

❁

निष्कर्ष

उपयुक्त विवेचन म हमने आधुनिक राजस्थानी गद्य साहित्य की विभिन्न विधाओ का जो प्रवृत्तिमूलक अध्ययन प्रस्तुत किया है उसके आधार पर आधुनिक राजस्थानी गद्य साहित्य की सामान्य विशेषताओ का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

१ उपन्यास के क्षेत्र म लोक उपन्यासा की सजना और उन्ह सामयिक सन्दर्भों म नूतन व्याख्या के साथ प्रस्तुत करने की प्रवत्ति राजस्थानी उपन्यासा की उल्लेखनीय विशेषता रही है।

२ कहानी के क्षेत्र म सामाजिक कहानिया का प्राधान्य रहा है। आधुनिक राजस्थानी की एतिहासिक कहानिया तात्कालिक युग को सम्पूर्णता और सजीवता म प्रस्तुत करने की दृष्टि से बडी सफल रही हैं।

३ नाटका म सामाजिक जीवन की समस्याओ पर आधारित सुधारवादी नाटको का प्राधान्य रहा है। आधुनिक राजस्थानी म बाचवा लायक एव खेलवा लायक दोनो प्रकार के नाटक लिखे गय है।

४ राजस्थानी नाटका की भाति राजस्थानी एकाकियो म भी सुधारवादी मनोवत्ति का प्राधान्य रहा है। एतिहासिक एकाकिया म तात्कालिक समाज के उज्जवल एव कलुष उभय पक्षा को प्रतिपाद्य बनाया गया है।

५ निब धा की सख्या अन्य विधाओ की अपेक्षा सीमित रही है। अधिकाश म वणन प्रधान एव परिचयात्मक लेख लिखे गये है किन्तु इस अवधि म थोडे से विचार प्रधान स्तरीय निबन्ध सामने आये है व राजस्थानी गद्य साहित्य की अभिव्यक्ति क्षमता को भलीभाति उजागर करते हैं।

६ राजस्थानी रेखाचित्र एव सस्मरण क्षेत्रीय लोक जीवन को सही रूप म परिभाषित करने म सफल हुए है। इनम अधिकाशत समाज के निम्न मध्यमवर्गीय एव मध्यमवर्गीय पात्रो को आधार बनाया गया है।

७ कलेवर की लघुता चिन्तन मनन प्रधान अनुभूतियो का प्राधान्य एव सवाद शली का सागोपाग निर्वाह राजस्थानी गद्य काव्यो की उल्लेखनीय विशेषता रही है।

समग्र रूप से आधुनिक राजस्थानी गद्य साहित्य की प्रमुख विशेषताओ का उल्लेख निम्न प्रकार म किया जा सकता है—

१ आधुनिक राजस्थानी साहित्य के प्रथम चरण (१६००–१६३० ई०) मे प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारो का प्राधान्य रहा। वसे तो उन साहित्यकारा ने उपन्यास कहानी निबन्ध आदि गद्य विधाओ को भी अपनाया किन्तु उनका झुकाव मुख्यत नाटक की ओर रहा।

२ ममग्र रूप से आधुनिक राजस्थानी गद्य क्षेत्र मे सुधारवादी एव आदशवादी मनोवत्ति का प्राधान्य रहा है।

३ पिछले दशक से गजस्थानी गद्यकार का भुकाव आदशवाद से यथाथवाद की ओर हो चला है।

४ आधुनिक युगीन गद्य आलकारिकता एव काव्यत्व की ओर भुकाव की (प्राचीन गद्य की) प्रवत्ति को त्याग चुका है।

पिछले कुछ ही वर्षों मे राजस्थानी साहित्य जगत म गद्य साहित्य की ओर विशप रूप से ध्यान दिया जाने लगा है। गद्य साहित्य के प्रति बढती हुइ रभान को दखते हुए यह आशा की जा सक्ती है कि आगामी कुछ ही वर्षो म साहित्य क्षेत्र म गद्य का वचस्व स्थापित हो जायगा।

चतुर्थ खण्ड

पद्य साहित्य की प्रवृत्तियाँ

राजस्थानी पद्य साहित्य का सामान्य परिचय

प्रबन्ध काव्य

प्रकृति काव्य

नीति काव्य

प्रगतिशील काव्य

वीर एवं प्रशस्ति काव्य

हास्य एवं व्यंग्य

पद्य कथाएँ

भक्ति काव्य

नीति काव्य

नयी कविता

4

पद्य साहित्य की प्रवृत्तियाँ

राजस्थानी साहित्य का प्राचीन काल कितना समृद्ध रहा है, इसका अनुमान तो इसी बात से लग जाता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के जिस आदिकाल की स्थापना की, उसका मुख्य आधार राजस्थानी साहित्य ही रहा। इसी भांति भारतीय साहित्य में जब वीर काव्य की चर्चा चलती है तो अपने विपुल और उत्कृष्ट वीरकाव्य के कारण राजस्थानी काव्य का नाम इस दृष्टि से सर्वप्रथम लिया जाता है। यही कारण है कि आज भी सामान्यतः राजस्थानी काव्य वीर काव्य का पर्याय बना हुआ है किन्तु राजस्थानी साहित्य को केवल इसी कारण वीर काव्य तक ही सीमित कर देना सर्वथा अनुचित है। वीर काव्य की भांति ही राजस्थानी का भक्ति एवं प्रेम काव्य भी उतना ही महत्त्वपूर्ण बना हुआ है। १३ वीं से १५ वीं शताब्दी के मध्य का राजस्थानी-गुजराती साहित्य तो दोनों ही भाषाओं की समान थाती है किन्तु उसके पश्चात का विपुल परिमाण में उपलब्ध राजस्थानी का काव्य धर्माधिकारियों, राज्याश्रय प्राप्त कवियों और सामान्य जनों द्वारा समान उत्साह के साथ लिखा जाकर-स्पष्ट ही यह प्रतिपादित करता है कि राजस्थानी साहित्य का क्षेत्र किसी वर्ग विशेष या रस विशेष तक ही सीमित नहीं था।

राजस्थानी के विपुल प्राचीन साहित्य को देखने से यह स्पष्ट होता है कि उस समय के राजस्थानी साहित्यकार की वीरता, प्रेम और भक्ति के क्षेत्र में समान गति रही। उसने जिस उत्साह से योद्धाओं के रोमांचक शौर्य का अंकन किया है, उसी उत्साह से अमर प्रेमियों की प्रणय गाथाओं का चित्रण भी। वीरता और प्रेम की तरह भक्ति के क्षेत्र में भी उसने बड़ी तन्मयता से प्रभु भक्ति के गीत गुनगुनाये हैं।

योद्धाओं के रोमांचकारी शौर्य का जैसा प्रभावी अंकन राजस्थानी काव्य में हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। राजस्थानी साहित्यकार ने केवल योद्धाओं के बाह्य कार्य-कलापों का ही व्यापक वर्णन नहीं किया अपितु उनके आन्तरिक उत्साह की भी बड़ी मार्मिक व्यंजना की है। प्रबन्ध काव्यकारों और मुक्तक काव्यकारों के मध्य वीर रस समान रूप से प्रिय रहा है। वैसे तो बीसों प्रबन्ध काव्यों और सैकड़ों गीतादि मुक्तकों में वीर रस की सुन्दर व्यंजना हुई है किन्तु इन सबमें काव्य सौष्ठव और लोकप्रियता की दृष्टि से 'हाला झाला रा कुण्डलिया'[1] और 'वीर सतसई'[2] विशेष

१ बारहठ ईसरदास

२ सूर्यमल्ल मिश्रण

उल्लेखनीय बन पड़े हैं। राजस्थानी वीर काव्य की एक और उल्लेखनीय बात यह रही है कि इसमें वीर पुरुष की तरह, वीर नारी के मनोभावों का भी बड़ा ही प्रभावी अंकन हुआ है।

राजस्थानी वीर काव्यों की भांति ही राजस्थानी प्रेम काव्यों की भी समृद्ध परम्परा रही है। इनमें शृंगार के उभय पक्षों का बड़ा ही अनूठा किन्तु संयत वर्णन हुआ है। राजस्थानी प्रेम काव्यों की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इनमें काम को बड़े ही सहज रूप में लिया गया है। यही कारण है कि इनमें सेक्स (काम वासना) की कुण्ठारहित अभिव्यक्ति हुई है। फलस्वरूप कुटिल वासना के स्वर इनमें कहीं भी हावी नहीं हुए हैं। प्रबन्धात्मक प्रेम काव्यों में 'ढोला मारू रा दूहा'[1] और माधवानल-कामकन्दला[2] तथा मुक्तक प्रेम काव्यों में 'जेठवा ऊजळी' तथा बीझा सोरठ के दोहे बहुत प्रसिद्ध रहे हैं।

वीरता और प्रेम के क्षेत्र में समान उत्साह प्रकट करने वाले राजस्थानी के प्राचीन कवि भक्ति के क्षेत्र में भी पीछे नहीं रहे। मीरां जैसी प्रसिद्ध कवयित्री राजस्थानी साहित्य की ही देन है। हिन्दी के संत कवियों की परम्परा की तरह राजस्थानी के संत कवियों की परम्परा भी पर्याप्त समृद्ध रही है। जाम्भोजी, जसनाथजी एवं दादूदयालजी जैसे पंथ प्रवर्तक संत कवियों के काव्य ग्रंथों की भाषा मूलतः राजस्थानी ही रही है। इसके अतिरिक्त भी अन्य अनेक कवियों ने उत्कृष्ट भक्ति ग्रंथों की रचना की है जिनमें 'वेलि क्रिसन रुकमणि री'[3] एवं हरिरस[4] विशेष उल्लेखनीय हैं।

समग्र रूप से प्राचीन राजस्थानी पद्य साहित्य की निम्नलिखित उल्लेखनीय विशेषताएं कही जा सकती हैं—

१ प्राचीन राजस्थानी काव्य में वीर एवं शृंगार रस-प्रधान रचनाओं का प्राधान्य रहा है और ये दोनों अधिकांश में एक दूसरे के पूरक या सहायक के रूप में चित्रित हुए हैं।

२ अतिशयोक्ति पूर्ण एवं अतिरंजना पूर्ण वर्णनों के बावजूद भी बहुत सी पद्य रचनाएं ऐतिहासिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं। विशेष रूप से 'मारवाड़ री कविता' जैसी रचनाएँ तो इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

३ गीत नामक विशेष छंद का प्रयोग प्राचीन राजस्थानी साहित्य की अपनी ही विशेषता है। ९० के आस पास भेदों वाला यह छंद एक विशेष लय में पढ़ा जाता है।

४ वयण सगाई अलंकार राजस्थानी का अपना अलंकार है और प्राचीन कवियों में बड़ा ही इसका प्रयोग हुआ है।

ऊपर प्राचीन राजस्थानी पद्य साहित्य की जिन सामान्य विशेषताओं का उल्लेख किया गया है वे आधुनिक युग में परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ में नूतन रूप धारण कर चुकी हैं। फलतः आधुनिक पद्य साहित्य की प्रवृत्तियाँ भी काफी बदल चुकी हैं। आगे इस खण्ड के अध्यायों में आधुनिक

---

१ कवि कल्लोल

२ कवि गणपति

३ पृथ्वीराज राठौड़

४ बारहठ ईसरदास

राजस्थानी पद्य साहित्य के प्रबन्ध और मुक्तक क्षेत्र की निम्नलिखित प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन विस्तार के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है—

१ प्रबन्ध काव्य
२ प्रकृति काव्य
३ गीति काव्य
४ प्रगतिशील काव्य
५ वीर एव प्रशस्ति काव्य
६ हास्य एव व्यग्य
७ पद्य कथाएँ
८ भक्ति काव्य
९ नीति काव्य
१० नयी कविता

प्रबन्ध काव्य

राजस्थानी म प्रबन्धात्मक काव्य लेखन का प्रारम्भ तो उसके प्रादिकाल स ही हो चुका था और तब से लेकर आजतक अनेक कवियो ने विविध विषया पर नाना प्रबन्धात्मक काव्यो की रचना की है। उनम मानव जीवन के अनेक पहलुओ को छूने और उसे विविध दृष्टि बिन्दुओ से आकने का प्रयास हुआ है। इन प्रबन्ध काव्या की एक मुख्य प्रवृत्ति वीर भावना की रही है। वीरत्व तो जसे राजस्थान की माटी के कण-कण मे समाया हुआ है। यहा एक से एक विकट योद्धाओ ने भी जन्म लिया और उनके अद्वितीय शौय को अकित कर उनकी यशकीर्ति को अमर कर देन वाले कवियों ने भी। वीर चरित्रो को आधार बनाकर लिखे जाने वाल प्रबन्ध काव्यो म पृथ्वीराज रासा का विशेष महत्त्व है। इन प्रबन्ध काव्या के नायक चूकि ऐतिहासिक पुरुष हात ह और उनम चरित्र नायक के गुणो का गुणगान ही विशेष रूप से होता है अत इनम वीर काव्य चरित काव्य और ऐतिहासिक काव्य का मिला जुला रूप ही अधिक दखने को मिलता है।

वीर धारा के अतिरिक्त भक्त कविया की भक्ति गगा भी राजस्थान म बराबर प्रवाहित होती रही है। भक्त कविया ने अधिकाशत धार्मिक और पौराणिक कथानको को आधार बनाकर प्रबन्ध काव्या की रचना की। इन दो धाराओ के अतिरिक्त एक अन्य धारा भी आदिकाल स ही प्रवाहित हाती रही है वह है—लोक-काव्यधारा। इसम लोक कथानका क आधार पर जहाँ एक ओर विशुद्ध प्रणय-गाथाओ को प्रबन्ध काव्यो क रूप म आबद्ध किया गया है वहाँ दूसरी ओर लोकवीरा और लोक दवताओ क अलौकिक जीवन को भी आधार बनाया गया है। इस प्रकार आधुनिक काल म पूव क राजस्थानी प्रबन्ध काव्या की तीन मुख्य धाराए समान रूप स प्रवाहित होती रही ह य ह—वीरत्व धम और लोक काव्य।

आधुनिक काल म भी राजस्थानी प्रबन्ध काव्यकार उपयुक्त धरातल को नहीं छोड पाय हैं। समयानुरूप किचित परिवतन क अतिरिक्त अब भी उनक काव्या क प्ररणा स्रोत मुख्य रूप स व ही वीर चरित्र एव पौराणिक कथानक रह ह। युगीन समस्याओ क समाधान और युगानुरूप पुरातन की नवीन व्याख्या क लिए अधिकाश म आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यकार न इन्ही धार्मिक पौराणिक एव ऐतिहासिक गाथाओ का सहारा लिया है। आधुनिक राजस्थानी साहित्य म अद्यावधि जितन भी प्रबन्ध काव्य लिख गए ह उनम स एक-दो को छोडकर शष सभी काव्यो का कथानक इतिहास अथवा पौराणिक या धार्मिक कथा और लोक गाथा स ही लिया गया है।

राजस्थानी साहित्य मे आधुनिक विचारधारा का सन्निवेश तो इस शताब्दी के प्रारम्भ से ही हो गया था, किन्तु प्रबन्ध काव्य के क्षेत्र मे उसका विधिवत प्रवेश बहुत बाद, लगभग स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ-साथ ही हुआ। हाँ स्फुट प्रयास इससे पूर्व भी होते रहे। इस दृष्टि से श्री अमृतलाल माथुर की 'गीत रामायण'[1] और श्री ऊमरदान लालस की 'छपना रो छन्द'[2] कृतियां का विशेष महत्त्व है। प्रथम कृति अपने समय की उन रचनाओं[3] का प्रतिनिधित्व करती है जिनकी रचना लगभग उन्ही दो तीन दशाब्दियो म हुई और जिनकी भाषा शुद्ध राजस्थानी न होकर खडी बोली या व्रज भाषा से पर्याप्त प्रभावित रही है। दूसरी कृति छपना रो छन्द का प्रसिद्ध कथा नायक को लेकर लिखा गया प्रबन्ध काव्य नही है अपितु एक घटना को आधार बनाकर लिखी गयी लम्बी प्रबन्धात्मक कविता है। इसम कवि ने राजस्थान म वि० सवन १६५६ म पडे भीषण अकाल और तदजन्य मरुवासियो की दुर्दशा का अत्यन्त कारुणिक एव प्रभावी चित्र अकित किया है। यद्यपि इसम उस समय की स्थिति का विस्तृत एव प्रामाणिक वर्णन हुआ है फिर भी निश्चित कथा या पात्रो के अभाव के कारण इस प्रबन्ध काव्य के आज के स्वीकृत अर्थ मे नही रखा जा सकता। उपयु क्त दो कृतिया के पश्चात प्रबन्ध काव्यो के अन्तगत उन लम्बी कथात्मक कविताओ[4] (पद्यकथाओ) का स्थान आता है जिनका आरभ ई० सन १६४४ म रचित श्री मघराज 'मुकुल की सेनाणी'[5] के साथ हुआ माना जा सकता है।

आधुनिक राजस्थानी म स्वतन्त्र रूप से प्रबन्ध काव्यो का प्रणयन स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी साहित्य की प्रमुख घटना है। इस अवधि म जो प्रबन्ध काव्य प्रकाश म आये हैं उनम डा० मनोहर शर्मा

---

१ प्र०–गारासणी ठाकुर श्री भीमसिह वि० स० १६६८

२ ऊमर काव्य पृ० स० ३२१ प्र० मसम अचलप्रताप न्यायी एड को० बुकसेलस व जनरल मर्चेन्टस जाधपुर (तृ० स०) सन १६३० ई०।

३ श्री भूपतिराम साकरिया ने 'आधुनिक राजस्थानी साहित्य' नामक कृति म इस काल की एसी अनेक कृतियो का परिचय दिया है जिनकी भाषा अधिकाश म साधुक्कडी (व्रजभाषा मिश्रित राजस्थानी या खडी बोली मिश्रित राजस्थानी) रही है। उनके द्वारा उल्लिखित कतिपय प्रमुख कृतियाँ हैं—श्री केशवलाल राजगुरु कृत 'श्री रामदेव रामायण' श्री बजरग रामायण श्री मर्यादा पुरुषोत्तम रामलीला श्री रघुनाथदास कृत रघुनाथ सागर,' श्री जानकीदास निरजनी कृत जीवनचरित्र आदि।

४ पृष्ठो लम्बी य पद्यकथाए प्रबन्ध काव्यों की श्रेणी म तो निश्चित रूप से आती हैं किन्तु एक तो राजस्थानी म एसी शताधिक पद्यकथाओ के लिखे जाने के कारण और द्वितीय इनम इतिवृत्त-प्रधान कथा-तत्त्व की ही प्रधानता होने के कारण यहाँ उनपर विचार न कर पद्यकथा शीर्षक के अन्तगत आग अलग से विचार किया गया है। यहा तो इतना जान लेना पर्याप्त होगा कि इन पद्यकथाओ ने राजस्थानी के आधुनिक प्रबन्ध काव्यो के लिए अच्छी भूमिका तयार की है।

५ सेनाणी रा जागी जोत श्री मेघराज 'मुकुल' पृ० स० १ प्र०–अनुपम प्रकाशन जयपुर।

कृत कुंजा'[1] भ्रमर फळ'[2] 'मरवण'[3] 'गोपीगीत'[4] 'पछी'[5] अंतरजामी[6] श्री श्रीमंतकुमार व्यास कृत रामदूत,[7] श्री सत्यप्रकाश जोशी कृत राधा',[8] श्री सत्यनारायण 'अमन' प्रभाकर कृत सीसदान'[9] श्री कान्ह महर्षि कृत 'मरमयक,'[10] श्री बनवारीलाल मिश्र 'सुमन कृत देळया को दिवला'[11] श्री गिरधारीसिंह पडिहार कृत मानखो,'[12] श्री विश्वनाथ विमलेश कृत 'रामकथा'[13] एव श्री करणीदान बारहठ कृत शकुन्तला[14] उल्लेखनीय हैं।

विषय की दृष्टि से हम आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों को इस रूप में विभाजित कर सकते हैं—

आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों में सर्वाधिक सख्या पौराणिक कथानकों को आधार बनाकर लिखे गये प्रबन्ध काव्यों की है। रामकथा के आधार पर जहाँ 'गीत रामायण' 'रामकथा'

---

१ वरदा वर्ष १ अक १
२ वही वर्ष १ अक २
३ वही वर्ष १ अक ३
४ वही वर्ष १ अक ४
५ वही वर्ष २ अक ४
६ वही वर्ष ५ अक ३
७ प्र०-नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर।
८ प्र० राजस्थान सस्थान बीकानेर प्र० का० १९६० ई०
९ प्र० नागराज प्रकाशन सूरतगढ़ प्र० का० वि० स० २०१८
१० प्र० रामकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस नागौर प्र० का० १९६१ ई०
११ प्र०-सुमन प्रकाशन चिड़ावा प्र० का० वि० स० २०२०
१२ प्र० वृन्दावन सर्वोदय आश्रम ट्रस्ट थाना बालायन जा प्र० का० १९६८ ई०
१३ प्र०-ललित प्रकाशन मन्दिर झुंझुनू (राजस्थान) प्र० का० १९६२ ई०
१४ बारहठ प्रकाशन पेराला प्र० का० १९६७ ई०

और 'पूछ मूछ की मुलाकात'[1] आदि की रचना हुई है वहां महाभारत के प्रसगा और पात्रा को लकर लिखे गये काव्यो की सख्या भी कम नही है। मानखो 'राधा' शकुन्तला और 'गोपीगीत' के उपजीव्य महाभारत या महाभारत के प्रमुख पात्रा से सबधित पौराणिक प्रसग रहे हैं। इन्ही काव्या स थोडा हटकर उपनिषदो के प्रसगो के आधार पर 'भ्रमर फळ' और 'अन्तरजामी' की रचना हुई है। एतिहासिक कथा वस्तु वाले काव्या म देळया को दिवलो म जहां ऐतिहासिक तथ्यो की रचना करने म कवि ने काफी सतकता का परिचय दिया है वहां एतिहासिक पात्रा और प्रसगो को अपनाते हुए भी 'मरु मयक' एव 'सीसदान' म अलौकिक घटना प्रसगा और चामत्कारिक कार्यों को विशेष प्रश्रय दिया गया है। लोककाव्य को आधार बनाकर लिखे गये प्रबन्ध काव्यो म मरवण एव काल्पनिक कथानक वाले काव्या म डा० मनोहर शर्मा कृत 'पद्मी एव कुजा' उल्लेखनीय है।

काव्य रूप की दृष्टि स विचार करने पर आधुनिक राजस्थानी काव्या को तीन भागा म विभाजित किया जा सकता है—

आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्य

महाकाव्य	एकार्थकाव्य	खण्ड काव्य

वस्तुत उपर्युक्त तीना प्रकारो म भी अन्तिम दो प्रकार के ही प्रबन्ध काव्य आधुनिक राजस्थानी में लिखे गये हैं किन्तु कतिपय कृति लेखको उन कृतिया की भूमिका लेखका और एक आध आलोचका ने कुछ रचनाओ को महाकाव्य की सज्ञा से अभिहित किया है अत यहा उन पर उस दृष्टि से विचार करना भी आवश्यक हो गया है।

आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्या म एसी कृतिया जिनके कृति लेखका उनके भूमिका-लेखका और कतिपय आलोचका ने महाकाव्य कहा है, तीन है—१ मरु मयक २ शकुतला और ३ रामरथा।

जहां तक मरु मयक के महाकाव्यत्व का प्रश्न है इसके लेखक ने इस सम्बन्ध म कुछ भी नही कहा है। वह तो इस चरित काव्य स अधिक कुछ नही मानता है[2] किन्तु 'आधुनिक राजस्थानी साहित्य' क लेखक श्री भूपतिराम साकरिया क मतानुसार— मरु मयक सगबद्ध प्रबन्ध काव्य है। इस महाकाव्य की श्रेणी म रखा जा सकता है।[3] इस प्रकार मरु मयक क महाकाव्य का दावा कवि द्वारा नही अपितु एक आलोचक द्वारा किया गया है। महाकाव्य क कतिपय बाह्य लक्षणो का निर्वाह कर दने मात्र स ही कोई कृति महाकाव्य नही बन जाती। मरु मयक के चरितनायक के धीरोदात्त उच्च क्षत्रिय वशी होने और इसकी सग सख्या १४ होने क कारण ही इस महाकाव्य नही कहा जा सकता। यदि महाकाव्य की यही कसौटी है तो फिर 'रामदूत' न क्या अन्याय किया है? उसके नायक भी उच्च कुलोत्पन्न धीरोदात्त क्षत्रिय हैं और उसकी सग सख्या भी १५ है। यही नही सस्कृत लक्षण ग्रन्थकारा द्वारा निर्धारित कतिपय

---

१ पूछ मूछ की मुलाकात श्री कन्हैयालाल दूगड प्र०-लाला सीताराम हनुमान प्रसाद भिवानी।

२ मरु मयक' मुखपृष्ठ एव अन्यत्र लखक न मरु मयक लिखन क पश्चात (रामदेव चरित्र) लिख कर अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है।

३ आधुनिक राजस्थानी साहित्य भूपतिराम साकरिया, पृ० स० ८४

अन्य बाह्य लक्षणों की भी यह काव्य पूरा करता है किन्तु इतने भर से ही तो इसे महाकाव्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि महाकाव्य इन सबसे परे कुछ और होता है। हिन्दी साहित्य कोश, भाग—१ में महाकाव्य के सभी प्रमुख लक्षणों को ध्यान में रखते हुए उसे इस प्रकार परिभाषित किया गया है—"महाकाव्य वह छन्दोबद्ध कथात्मक रूप है जिसमे क्षिप्त कथा प्रवाह या अलंकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित सांगोपांग और जीवन्त लम्बा कथानक हो जो रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ हो सके जिसमें यथार्थ कल्पना या सम्भावना पर आधारित ऐसे चरित्र या चरित्रों के महत्त्वपूर्ण जीवनवृत्त का पूर्ण या आंशिक रूप में वर्णन हो जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी न किसी रूप में प्रतिनिधित्व कर सकें जिसमें किसी महत्प्रेरणा से अनुप्राणित होकर किसी महदुद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्त्वपूर्ण गंभीर अथवा रहस्यमय और आश्चर्योत्पादक घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर सश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति विशेष या युग विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों, मानसिक अवस्थाओं और कार्यों का वर्णन और उद्घाटन किया गया हो और जिसकी शैली इतनी गरिमामयी और उदात्त हो कि युग युगान्तर तक महाकाव्य को जीवित रहने की शक्ति प्रदान कर सके।"[1]

उपर्युक्त परिभाषा को ध्यान में रखते हुए विचार करते हैं तो पाते हैं कि 'मरुमयंक' महाकाव्य तो क्या उसके आस पास भी कहीं नहीं ठहर पाता है। न उसमें वृहद् कथा है न उसकी शैली उदात्त है न उसमें सम्पूर्ण युग की संस्कृति को समाहित करने की क्षमता है और न ही महाकाव्योचित गरिमा तक वह पहुँच पाया है। उपदेश और इतिवृत्त की प्रधानता एवं सामान्य कविता के कारण वह एक आदर्श कथा नायक एवं गौरवशाली कथा सूत्र को लेकर चलने के पश्चात् भी सामान्य चरित काव्य से अधिक कुछ नहीं बन पाया है।

अब रहा 'शकुन्तला' का प्रश्न। न केवल इसके रचयिता ने ही इसे महाकाव्य कहा है अपितु इसके भूमिका लेखक श्री चन्द्रदान चारण ने भी इसे महाकाव्य सिद्ध करने का प्रयास किया है।[2] सम्भवतः इसी कारण श्री भूपतिराम साकरिया ने भी बिना किसी विवाद के इसे एक महाकाव्य स्वीकार कर लिया है।[3] जहाँ तक 'मरुमयंक' और 'रामदूत' से तुलना का प्रश्न है यह कृति काव्यत्व और महाकाव्य के लक्षणों की दृष्टि से निःसन्देह भारी पड़ती है किन्तु उपर्युक्त तथाकथित महाकाव्यों से श्रेष्ठ ठहरने के नाते भी तो इसे सम्पूर्ण रूप से महाकाव्य नहीं स्वीकारा जा सकता क्योंकि महाकाव्य के लिए अपेक्षित ऊँचाइयों तक यह नहीं पहुँच पाई है। महाकाव्योचित शैली और गरिमामययुक्त उच्च कवि कल्पना का अभाव, जीवन के विविध पक्षों की गहरी एवं सांगोपांग विवेचना की न्यूनता, प्रतिपाद्य युग की सांस्कृतिक चेतना को पूर्णरूपेण न प्रस्तुत कर सकने की विवशता एवं पात्रों के चरित्र के लिए अपेक्षित महानता के अभाव के कारण ही शकुन्तला महाकाव्य पद की अधिकारिणी नहीं बन सकी है। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र सर्गों का आयोजन इसकी प्रवाहात्मकता में व्यवधान उपस्थित करता है। इसका लघु कलेवर भी इसे

---

१ हिन्दी साहित्य कोश भाग १ पृ० सं० ६२७ सं०—डा० धीरेन्द्र वर्मा आदि।

२ शकुन्तला भूमिका पृ० सं० ७ और ८

३ 'शकुन्तला कवि की नवीनतम रचना है। यह एक महाकाव्य है।'
आधुनिक राजस्थानी साहित्य भूपतिराम साकरिया पृ० सं० ८८

महाकाव्य की परिसीमा मे प्रविष्ट होने देन म बाधा उपस्थित करता है। यही नहीं, प्रस्तुत काव्य म कही-कही उभरा हलकापन भी इसे महाकाव्य के योग्य नही ठहरने देता है। वारागनाम्रा की भाँति नत्र मटकाती', 'कमर लचकाती' हुई नायिका शकुन्तला महाकाव्योचित गरिमा का निवाह कहा कर पाती है—

अठ फिर
शकुन्तला
नण मटकाती
कमर लचकाती
विलमाती
अपणी सायण्या न।[1]
यही नही जिस नायिका के महत्त्व क प्रति कवि स्वय शकालु बना हो—
कुण ही बा ?
विश्वामित्र री करणी
मनका री जायी,
के
पापाचार री ?
नहीं—
हेत भाव री
नगी
वासना री बेटी[2]

उस कृति को महाकाव्य के उच्च आसन पर कस बैठाया जा सकता है ? इन सब वाता स कृति के भूमिका लखक परिचित हैं और उन्होन स्वय इस बात का उल्लेख करते हुए लिखा है— क 'शकुन्तला' रै वास्ते भी कह सकै है क इस रो आकार छोटो है इस म महाका य जिसी गभीरता और व्यापकता नानी और गीता र कारण कथा विखरयोडी सी है।'[3] इसीलिए उन्हें आगे यो समाधान भी प्रस्तुत करना पड़ा है— पण अ सारी वाता कता वखत इस बात रो भी ध्यान राखणो चाइज क शकुन्तला नय जमाने री नयो महाकाव्य है। जे इस म कोई पुराणी शत पूरी न भी हावे तो भी इस रो काय सदेश देख र इस न महाका य री सना दी जा सकै है।'[4] पर इस प्रकार नये जमाने का नया महाकाव्य घोषित करने स कोई बात नही बनती और न ही केवल काव्य-सदेश की महत्ता ही किसी कृति को महाकाव्य बना देन के लिए पर्याप्त होती है।

---

१ शकुन्तला करणीदान बारहठ पृ० स० ३२-३३
२ वही पृ० स० ३३
३ वही (भूमिका से उद्धृत)
४ वही भूमिका पृ० स० ६

इसी क्रम में एक और कृति का उल्लेख भी आवश्यक हो गया है जिसे महाकाव्य मानने का आग्रह उसके कथा विस्तार एवं बाह्य लक्षणों की पूर्ति के आधार पर किया जा सकता है। यह कृति है—श्री विश्वनाथ 'विमलेश' की रामकथा। इसमें कवि ने राम जन्म से लेकर राम के बनवास से लौटकर राज्याभिषेक तक की कथा विस्तार के साथ ५ सर्गों में लगभग ६०० पृष्ठों में कही है। जहां तक कथा-विस्तार और नायक के उच्च कुलोत्पन्न धीरोदात्त होने का प्रश्न है रामकथा दोनों ही स्थितियों में सही उतरती है। यही नहीं इसका काव्य सदृश पात्रों का आदर्श चरित्र और वर्णन विस्तार आदि भी इस महाकाव्य की सीमा के निकट ला खड़ा करते हैं किन्तु इसके महाकाव्यत्व के पथ में बाधा उपस्थित करने वाली सबसे बड़ी बात है प्रस्तुत काव्य की इतिवृत्त-प्रधानता। सारा काव्य ही लगभग बड़े सपाट ढंग से लिखी गयी घटनाओं का समुच्चय भर बनकर रह गया है। वस्तुतः यह रामकथा का गद्य के स्थान पर अलंकरणहीन पद्यमय वर्णन भर बन पड़ी है। ऐसी स्थिति में इसे महाकाव्य की संज्ञा कैसे प्रदान की जा सकती है? न इसमें वर्णनों की रम्य छटा है न कल्पना की ऊंची उड़ान न चरित्रों को सशक्त रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है और न ही किसी युगीन विचारधारा का प्रतिपादन ही। इन सबके अतिरिक्त तात्कालिक युग की सांस्कृतिक ऊंचाइयों को छूने का प्रयास भी इसमें नहीं हुआ है। यहां तो केवल कथा कहने का आग्रह ही प्रमुख रहा है। इन्हीं सब कारणों से यह कृति महाकाव्य के गौरव-पूर्ण आसन पर पदासीन होने की अधिकारिणी नहीं बन सकी है।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट हो गया कि ये कृतियां महाकाव्य तो नहीं मानी जा सकती। तो क्या हम इन्हें खण्ड काव्य की संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं? किन्तु इनका कथा विस्तार, प्रस्तुत पात्र की लगभग सम्पूर्ण जीवन गाथा का इनमें समाहित होना प्रासंगिक कथाओं का आयोजन वर्णन विस्तार आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो कि इन्हें खण्ड काव्य की श्रेणी में खड़ा करने में आपत्ति करती हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि इन्हें फिर कौनसी श्रेणी में स्थान दिया जाय? इस प्रश्न का समाधान हम हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिलेगा क्योंकि वहां भी इस प्रकार के अनेक काव्यों की रचनाएं हुई हैं जो महाकाव्य और खण्ड काव्य दोनों की ही परिधि में नहीं आतीं। ऐसे काव्यों के लिए उनके सामान्य लक्षणों के आधार पर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने एक नया ही वर्ग तैयार किया है और वह वर्ग है एकार्थ काव्य का। एकार्थ काव्य का स्वरूप निर्धारण करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में कहा गया है—

१ एकार्थ काव्य की रचना भाषा या विभाषा में होती है। २ यह सर्गयुक्त होता है। ३ यह एकार्थ प्रवण होता है अर्थात् चतुर्वर्ग में से कोई एक ही इसका उद्देश्य होता है। ४ इसमें सभी सन्धियां नहीं होती हैं कुछ ही सन्धियां होती हैं। इसमें अनेक रस असमग्र रूप से अथवा एक रस समग्र रूप में रहता है।[1]

एकार्थ काव्य की इस परिसीमा में रहते हुए हिन्दी के कतिपय तथाकथित महाकाव्यों पर समालोचनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए साहित्य कोशकार ने जो बातें लिखी हैं कमोबेश रूप में राजस्थानी के इन आधुनिक प्रबन्ध काव्यों पर भी लागू होती है। स्थिति को और अधिक स्पष्ट करते हुए उसमें

१ हिन्दी साहित्य कोश सं० धीरेन्द्र वर्मा प्रभृति पृ० सं० १८१

लिखा गया है—'अधिकतर कृतियों के शीर्षकों के साथ महाकाव्य शब्द का सयोग तथा उनमें महाकाव्य के स्थूल लक्षणा-सर्गीकरण सर्गान्त मे छद परिवर्तन आदि का अनिवार्यत पालन इस बात के प्रमाण हैं। यही कारण है कि आधुनिक युग का कदाचित ही कोई एकार्थ काव्य सगहीन है। फिर भी युगान्तर व्यापी सत्य गभीर जीवन-दर्शन, विराट कल्पना एव शली मे गरिमा और उदात्तता के अभाव के कारण ये एकार्थ काव्य की सीमा से आगे नही जा सके हैं।'[1] यही स्थिति राजस्थानी के इन तथाकथित महाकाव्यो के साथ रही है अत हम इन्हें एकार्थ काव्य से अधिक और कुछ नही मान सकते हैं।

उपयुक्त विवेचन मे आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यो के सम्बन्ध मे कतिपय विशिष्ट बिन्दुओ पर विचार करने के पश्चात अब आगे प्रबन्ध काव्यों के सर्व स्वीकृत तत्त्वो के आधार पर उनकी सामान्य प्रवृत्तिगत विशेषताओ पर विचार किया जायगा। ये तत्त्व हैं—१ कथावस्तु २ चरित्र विधान ३ वचारिक एव सास्कृतिक परिवेश ४ वर्णन ५ रस-व्यजना ६ कला विधान एव ७ सन्देश।

१ कथावस्तु

आधुनिक राजस्थानी के अधिकाश प्रबन्ध काव्यो का कथानक पुराण ग्रथो धार्मिक स्रोतो या इतिहास से लिया गया है। इस प्रकार स्वतन्त्र या कल्पित कथानक—जहा कि लेखक कथा को चाहे जसा मोड दे सकता है—का आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यो मे बहुत कम प्रचलन रहा है। पौराणिक धार्मिक ऐतिहासिक या पूर्व प्रसिद्ध कथानक को लेकर काव्य रचना करने वाले कवि को कथा सगठन की दृष्टि से पर्याप्त सतर्कता का परिचय देना पडता है। वह एसे कथानको मे एक सीमा तक ही परिवर्तन कर सकता है जहाँ तक कि कथा के मूल स्वरूप का कोई आच नही पहुँचे। एसे कथानको मे परिवर्तन मुख्य रूप से दो प्रकार से हो सकता है प्रथम कवि स्वीकृत कथानक के कुछ एसे प्रसगो को छोड सकता है जो उसकी दृष्टि मे महत्त्वपूर्ण नही हैं और काव्य को किसी भी प्रकार से आकर्षक या सुष्ठु बनाने मे सहायक नहीं हो रहे हो। द्वितीय वह मूल कथानक मे कुछ ऐसे (सभावित) प्रसगो की कल्पना कर सकता है जो पात्रो के चरित्र में निखार ला सकें एव कृति को और अधिक आकर्षक तथा प्रभावी बना सकें। इन दोनो स्थितियो से आगे बढने का प्रयास जब कभी किसी कवि द्वारा किया जाता है तो वह अनधिकार चेष्टा ही कही जायगी। आधुनिक राजस्थानी के प्रबन्ध काव्यकारो ने अपनी सीमा का अतिक्रमण करते हुए कथा मे ऐसा कोई परिवर्तन नही किया है जो उसके मूल स्वरूप को ठेस पहुँचाता हो। जहाँ यह प्रवृत्ति शुभ मानी जायगी वहा कही कही इसका कट्टरता से निर्वाह आज के बुद्धिजीवी पाठक के लिए एक उलझन भरी स्थिति भी उपस्थित कर देता है। क्योंकि पौराणिक एव धार्मिक प्रसगो और ऐतिहासिक घटनाओ के साथ बहुधा अनेक अलौकिक घटनाए तथा किवदन्तिया जुडी रहती हैं-जिन्हे यथा-तथ्य रूप मे रखना आज का पाठक स्वीकारता नहीं है। वह कृतिकार से यही अपेक्षा करता है कि वह कुशलतापूर्वक ऐसे प्रसगों को निकालकर या तार्किक आधार प्रदान कर कथा को अधिक सुगठित एव प्रामाणिक रूप प्रदान करे। आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यकारों मे बहुतो ने इस बिन्दु की ओर ध्यान नहीं दिया है फलत उनके कथानको मे ऐसे प्रसग सहज रूप मे ही आ गए हैं। सीसदान' मरु मयक'

१ हिन्दी साहित्य कोश स० धीरेन्द्र वर्मा प्रभृति पृ० स० १६२

'शकुंतला' रामायण, 'रामदूत', अमरफल, मंतरजागी प्रभृति सभी काव्यों में ऐसे प्रसंग न्यूनाधिक रूप में देखे जा सकते है।

ऊपर आधुनिक राजस्थानी काव्यों की इस प्रवृत्ति-मूल कथानक के मध्य छेड़छाड़ न करने का उल्लेख हुआ है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कवियों ने उसमें किंचित् भी हेर-फेर नहीं किया है। राधा' मानखो' शकुन्तला' अमरफळ आदि काव्यों में कथानक के मूल स्वरूप की रक्षा करते हुए भी सोद्देश्य अपेक्षित परिवर्तन किया गया है। यह परिवर्तन कहीं कथा को और अधिक सुगठित और सुघड़ बनाने की दृष्टि से हुआ है तो कहीं कथा के चरित्रों को और अधिक निखारने की दृष्टि से तो कहीं युग सन्देश और युगीन विचारधारा को प्रतिपादित कर काव्य को युगानुरूप बनाने के अभिप्राय से। मरवण में तो लौकिक कथानक को आध्यात्मिकता का बाना ही पहना दिया गया है। यह बात दूसरी है कि केवल एक इसी पक्ष पर ध्यान जमे रहने के कारण अपेक्षित काव्य सौष्ठव एवं सुघड़ कथा संयोजन का निर्वाह नहीं हो पाया है।

आधुनिक राजस्थानी के प्रबन्ध काव्यों में कथा का प्रारंभ मुख्यतः दो रूपों में हुआ है। प्रथम, पारम्परिक ढंग से मंगलाचरण ईश वन्दना[1] आदि का निर्वाह करते हुए कथा नायक के जन्म या उससे भी पूर्व के प्रसंगों का उल्लेख करते हुए एवं द्वितीय, पारम्परिक मान्यताओं को ठुकराते हुए कथानक को किसी एक आकर्षक बिन्दु से बड़ी नाटकीयता के साथ प्रस्तुत करते हुए।[2] इन दोनों स्थितियों के अतिरिक्त दो एक कृतियां ऐसी भी हैं जहां पुरातन एवं नवीन शैली का सामंजस्य दिखाई देता है। यहां प्रारंभिक पंक्तियां मंगलाचरण या ईश वन्दना के रूप में न होकर काव्य के मूल सन्देश को लेकर उपस्थित हुई है। शकुंतला के प्रारम्भ की ये पंक्तियां—

> तू जुग नारी जुग री सोभा
> जुग री आभा जुग धरम सार।
> जुग जुग स्यूं जागी अटलजोत
> मा बहन नार रो अमर प्यार।[3]

---

१ विद्या बुद्धि बलरा राजा।
अग्र पूज ! रिध सिधरा कंत।
चाप् चरण ज्ञान रा गाडा।
तूठो लम्बोदर इकदंत ॥१॥

मरु मयंक पृ० सं० १

२ जद स्यूं परण्या है जाडेची
सिधराव सूकण क्यूं पडग्या ?
क्यूं डील साकळी सो बणग्यो
क्यूं नणं-नणं र म्हां बडग्या ?
दोहाग दे दियो राण्यां ने
के चूक पडी ? के खोट पडी ?
क्यूं हुया ओपरा अन्नदाता ?'

सीसदान, अमन' पृ० सं० ९

३ शकुंतला करणीदान बारहठ

किसी दवी-देवता की स्तुति म न लिखी जाकर नारी शक्ति की स्तुति म लिखी गयी है। 'रामदूत' म भी कवि न प्रत्यक सग से पूव उसके के द्रीय भाव की व्यजक पक्तियाँ रखी है।[1]

कथानक म नवीन प्रसगा की उद्भावना एव सोद्देश्य किये गये परिवतना की दृष्टि स शकुन्तला' राधा' मानखो' एव 'अमरफळ' उल्लखनीय हैं। शकुन्तला म महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान एव कालिदास के 'अभिज्ञान शाकु तल' के तो सभी महत्त्वपूण प्रसग स्वीकार ही गये हैं, कि तु विवाह के पश्चात शकुन्तला का स्वप्न म दुष्यन्त-दशन, गौतमी द्वारा शकु तला की स्थिति की ओर कण्व ऋषि का ध्यान आकर्षित करन का प्रसग दुष्य त द्वारा ठुकराय जान पर शकु तला का स्वच्छापूवक कश्यप क आश्रम म पहुँचना आदि कई की मौलिक उदभावनाए हैं जो कि कथा विस्तार एव चरित्र चित्रण म सहायक बन पडी हैं। 'राधा म पूव स्वीकृत प्रसगो का अपनान हुए भी सम्पूण कथा को एक नया अथ दन का प्रयास किया गया है। राधा और कृष्ण का प्रेम पारम्परिक न होकर विश्व के विशुद्ध प्रेम भाव का प्रतीक है—जहा न छल है न छद्म न राग है न द्वेप। राधा की कथा भी स्थूल नहीं है। यहाँ राधा के प्रणय जीवन स सम्बन्धित सभी प्रमुख प्रसगो को कवि न अलग अलग शीपकों म प्रगीता के रूप मे प्रस्तुत किया है। परन्त कहीं-कहीं ऐसा प्रतीत होता है कि 'राधा म प्रबन्धात्मकता का सम्यक निवाह नहीं हो सका है पर वस्तुत ऐसा नही है। राधा म कथा-सूत्र कही कहीं अत्य त विरल होते हुए भी एकदम विच्छिन्न नही हुआ है। इस सम्बन्ध मे यह तथ्य भी स्मरणीय है कि जन मानस म राधा कृष्ण की कहानी इस रूप म समायी हुई है कि किसी गौण प्रसग के छूट जाने पर भी उस कथासूत्र टूटा टूटा-सा नजर नही आता। उसका सस्कारी मन स्वय कथा के उन विशृ खलित धागा को जोड लेता है। यहा यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि राजस्थानी प्रब ध काव्यो की परम्परा म सवथा भिन्न यह कथा रूप 'राधा मे कहाँ स आया ? स्पष्ट है कि 'राधा' के कथा-सघटन म कवि कनुप्रिया स प्रभावित है।

---

१ प्रथम सग आरम्भ करन मे पूव कवि ने निम्न पक्तियाँ प्रारम्भ म अलग से दी हैं—
राम लखण सू मिलण री आ पली वळा
घार वटुक रो रूप करया जगळ म मळा
जाण राम सू भूतकाळ री सगळी का'णी
दो दुनिया म मेळ करावण उमडी वाणी।

रामदूत पृ० स० ८

इसी प्रकार हर सग से पूव उसके के द्रीय भाव को व्यजित करन वाली पक्तिया रखी गयी है।

२ (१) मुरली (२) प'ला प'ल (३) पूजा (४) दरसण (५) पिणघट
(६) माखण (७) बदनामी (८) तिरस (९) गोरधन (१०) ब्याव
(११) गम (१२) रूसणो (१३) होळी (१४) बिदा (१५) ओळू
(१६) रुकमणीजी (१७) घनस्याम (१८) बिजोग (१९) पालणो (२०) जुद्ध

राधा सत्यप्रकाश जोशी

२ चरित्र-विधान

आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यो के अधिकाश पात्र धार्मिक, पौराणिक या ऐतिहासिक प्रसगो से सम्बन्धित रहे हैं। इस कारण उनका मूल स्वरूप सामान्यत पहले से निश्चित रहा है और कवियो को नये सिरे से उनकी सृष्टि नही करनी पडी है। पर इस सुविधा के कारण कवियो को अपने पात्रो के चरित्राकन म विशेष सजग भी रहना पडा है, क्योकि साधारण पाठक जहाँ लोक मानस म प्रतिष्ठित चरित्रो का अवरोह सहन नही कर सकता वहाँ लोक तिरस्कृत पात्रो का उदात्तीकरण भी उसे अच्छा नही लगता है। पौराणिक, धार्मिक या ऐतिहासिक पात्रो के सदर्भ म उक्त दोनो स्थितियो से भिन्न एक और भी स्थिति हो सकती है और वह है—युगीन समस्याओ के निराकरण हेतु ऐसे पात्रो का आधुनिकृत रूप।

उपर्युक्त स्थितियो के सदर्भ मे जब आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यो पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि कवियो ने पात्रो के मूल स्वरूप म अधिक परिवतन नही किया है। अधिकाश म वे अपने पूर्व चित्रित रूप म ही अकित हुए हैं। हा कही-कही एकाध कवियो ने इस दृष्टि से कल्पना की अतिशय दौड लगाने की कोशिश की है किन्तु इस अविवेकपूर्ण दौड म वे एसे फिसले हैं कि अपने साथ कृति को को भी ले गिरे है। 'रामदूत' मे कई स्थलो पर ऐसा हुआ है। एक स्थल पर तो राम को सहज मानवीय कमजोरियो से युक्त चित्रित करने के मोह म कवि ने उनके मुख से सीता के प्रति ऐसे सशयोद्गार भी व्यक्त करवा दिये हैं—

जे रावण मे रमती जाव, घर आई तू सीरा।[1]

इस प्रकार राम का सीता के प्रति किया गया अनावश्यक सदेह राम और सीता दोनो के चरित्र की गरिमा के अनुकूल नही कहा जा सकता। आगे भी एक स्थल पर सीता का यह कथन—

भूखी तीसी मरू न काई बूझे साता[2]

उसके गौरवशाली चरित्र के अनुरूप नही कहा जा सकता। वियोगिनी सीता राम को सदेश भेजते समय अपनी भूख प्यास जन्य व्याकुलता का उल्लेख करे यह गभीर व्यक्तित्व की धनी एव सहनशक्ति की साक्षात प्रतिमूर्ति सीता के लिए कहा तक शोभनीय कहा जा सकता है?

राधा,' शकुतला' और देळया को दिवलो म पात्रो के चरित्र को अधिक सजीव एव प्रभावी बनाने की दृष्टि से अभीष्ट परिवतन किये गये हैं। राधा' मे श्री जोशी ने राधा को प्रेम की एक समर्पित मूर्ति के रूप म चित्रित किया है। उसे इस बात से कतई कोई डाह नही है कि उसका प्रिय सबको मुक्त हस्त से प्रेम का दान करता है। अन्य गोपियाँ जब राधा का ध्यान इस ओर खीचने का प्रयास करती है तो वह कृष्ण की इस नादानी पर हस पडती है।[3] श्री कोमल कोठारी एव विजयदान देथा के शब्दो

---

१ रामदूत श्रीमन्तकुमार व्यास पृ०स० २५
२ वही पृ० ६२
३ तिरस राधा श्री सत्यप्रकाश जोशी पृ० स० ५१ (द्वितीय सस्करण)

म—'राधा के प्रेम ने विश्व की समस्त पीडा को आत्मसात कर लिया है। वह पवित्र प्रेम की चिर प्रतीक है, वह विश्व के सृजनात्मक तत्वों की पोषक है।'[१]

राधा का चित्रण प्रेम की समर्पित मूर्ति एव आत्म विस्मृत नायिका के रूप म तो अन्य काव्यो म भी देखने को मिलता है पर इस काव्य म राधा का जो मातृ वत्सला रूप प्रस्तुत किया गया है वह बडा ही अनूठा, मार्मिक और सांकेतिक बन पडा है। उसके मन की कोई अधूरी साध है तो—

> दूधा कद भीज म्हारी काचळी
> कद म्हार काधे पडसी लाळ
> कद तो धाऊ ला पीळा पातडा।[२]

वह भयानक जगल म कृष्ण की बाट जोहती पग-पग पर आपत्तियो स जूझती किसलिए घूमती थी? अपने प्यार की निशानी के रूप मे एक सलोने बालक की प्राप्ति के लिए ही तो। इसीलिए तो उसे अपनी प्रीत 'अडोळी लगती है और अलूणी' गोद के कारण ही तो वह यह कहने को विवश है कि—

> प्रीतडली निरफळ म्हार भाग,
> कोई सू एा तो अपसू एा म्हार हाय
> करम तो माडया वेमाता झूरणा।[३]

राधा की भांति ही शकुतला मानखो तथा दळया को दिवलो म उनके रचयिताओ ने प्रमुख पात्रा को सजाने सवारने म विशेष उत्साह दिखाया है। तपसी शकुन्तला कामदेव री रमणीय रती और मजुनता री मूरत मनहर' ही नहीं अपितु आज के युग की स्वाभिमानी नारी भी है जो अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग एव निश्चय के प्रति दृढ है।

दुष्यन्त के यहा स तिरस्कृत होकर लौटने पर शकुतला के साथ गयी कण्व ऋषि के आश्रम की वृद्ध महिला मा गौतमी शकुन्तला स आग्रह करती है कि वह पुन पितृ-गृह लौट चले। शकुन्तला अधकार पूर्ण भविष्य को देखते हुए भी जिस दृढता से मा के उस प्रस्ताव को ठुकरा देती है वह शकुन्तला के स्वाभिमानी चरित्र पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त है—

> बोली शकुन्त 'माता मरी
> माइत र घर स्यू विदा हुई।
> माइत तो फरज निभा दीयो,
> माइत घर लागू घणा बुरी।
> जे नारी साची हूँ माता
> तो नारी धरम निभाऊ ली।
> म देखू ली दुरवासा न
> हूँ अमर जोत जगाऊ ली।[४]

---
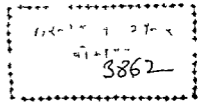
१ राधा सत्यप्रकाश जोशी पृ० स० २६ (द्वितीय सस्करण)
२ वही पृ०स० ८६ (द्वितीय सस्करण)
३ वही, पृ०स० ८६
४ शकुन्तला पृ०स० १०३

शकुंतला का यह निश्चय जहाँ अपमानित एवं आहत नारी हृदय के क्षोभ एवं आक्रोश को व्यक्त करता है वहीं उसके अन्तर्मन एवं आहत मातृ हृदय का मनोविज्ञान सम्मत प्रतिक्रिया को भी। शकुंतला के इस निश्चय में योद्धा मन का स्वाभिमानिनी नारी का रूप देखा जा सकता है। उसकी यह ललकार 'म्हे दूजी दुरपदा नै' उसके अन्तर में छिपे इस निश्चय—

> जग जाण है नारी कोगी
> आंसू री बगा पाटली है।
> पण जग नै हूं जताद्यूं
> या कोगी शाकुन जात री है।[1]

की ही प्रतिध्वनि है।

नारी चरित्रों को रचना एवं प्रधानता में ही प्रधानता नहीं मिली है अपितु संज्ञा एवं रूढ़ियों की रचना में भी यह छाया हुई है। डॉ० मनोहर शर्मा के मरवण का नामकरण भी इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। उन्होंने ढोला-मारू के प्रसिद्ध कथानक को अपनाते हुए भी अपनी कृति का नाम ढोला-मरवण या ढोला न रख कर नारी प्राधान्य के कारण ही मरवण रखा है। दूठां की रचनाओं में प्रधान चरित्र महाराणा प्रताप का होते हुए भी पत्ता पाप कविवर पृथ्वीराज की पत्नी किरण और महाराणा की पत्नी पदमा को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। मानखा की सुभद्रा का तेजस्वी व्यक्तित्व तो पाठकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। मानखो में जहाँ एक ओर उसकी नारी सुलभ कोमलता एवं मातृवत्सलता को उभारा गया है वहीं दूसरी ओर उसके क्षत्रियोचित तेजस्वी व्यक्तित्व को भी दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया गया है। नारी सुलभ करुणा एवं राजपूतोचित गरिमावश वह चित्रसेन गन्धर्व को अभयदान का नाम सुनकर ही अभय दान दे देती है और बाद में उसके प्रतिद्वन्द्वी के रूप में अपने सगे भाई कृष्ण को जान कर भी वह अपने वचनों से पीछे नहीं हटती है। इस परिस्थिति में उसका आक्रोश कुछ और बढ़ जाता है। युद्ध के लिए अर्जुन को तत्पर करने से पूर्व के वार्तालाप एवं पश्चात रणांगण में कृष्ण के साथ हुए वाक्युद्ध में आक्रोश तप्त सुभद्रा का जो रूप निखरता है वह भुलाये नहीं भूलता। युद्ध भूमि में कृष्ण के बाण से आहत अर्जुन मूर्छित पड़ा है भगिनि की ममता के वशीभूत कृष्ण सांत्वना देने आगे बढ़ते हैं किन्तु कथानक के इस चरम बिन्दु पर एकाएक सुभद्रा की आर्त कण्ठ की वाणी गूंज उठती है—

> हरि आता देख सुभद्रा उठ
> गळ गळी क्यों अमज्याया थ।
> अ पाप पड थाडा भुज भाई
> पादू र मती लगाया थ।[2]

और केवल वाणी रूप में ही नहीं अपितु क्रिया रूप में भी वह—

> कर इया हाथ गांडीव लियो
> गोली पनका म रीस रमी।[3]

कृष्ण से युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाती है।

---

१ शकुंतला पृ०सं० १०३
२ मानखो गिरधारीसिंह पड़िहार पृ०सं० ७६
३ वही पृ०सं० ७७

आधुनिक राजस्थानी प्रबंध काव्या म उभरे प्रखर नारी चरित्रों की तुलना में पुरुष चरित्र इतने प्रभावशील नहीं बन पडे है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनके चरित्रों म कोई मोड या परिवर्तन नहीं आया हो—जिसे उल्लेखनीय माना जाय। 'मरमयक' रामदूत रुठया को दिवलो, रामकथा आदि प्रबंध काव्यों म पुरुष चरित्र को अपेक्षित महत्त्व प्रदान करते हुए, उन्हें युगीन विचारधारा के परिप्रेक्ष्य म पुनर्मूल्यांकित किया गया है। रामदेव जनसाधारण म लौकिक-कष्ट निवारक, चामत्कारिक सिद्धियों के स्वामी और 'परचा' देने वाले के रूप म लोकप्रिय एव पूजित हैं। जन-साधारण म उनके प्रति जो श्रद्धाभाव है उसका मूल रामदेव की अलौकिक शक्तियां एव उनसे सम्बद्ध चामत्कारिक घटनाओं की किंवदन्तियां हैं। पर 'मरमयक' के प्रणेता ने रामदेव के सम्बन्ध म प्रचलित इन किंवदन्तियों को विशेष महत्त्व नहीं दिया है, अपितु उन्हें उन्होंने अपने युग के एक महान जन-नेता के रूप म चित्रित किया है। रामदेव की लोकप्रियता का कारण उनका चमत्कारी व्यक्तित्व नहीं अपितु उनका जन-साधारण की समस्याओं मे गहरी रुचि लेना और राजकीय वैभव को त्याग सामान्य-जन के साथ एकमेव हो जाना रहा है। उच्च राजवंश म उत्पन्न होकर भी उन्होंने जहां एक ओर ऊंच नीच और छुआ छूत की भावनाओं को समाप्त किया वहां दूसरी ओर राष्ट्र की तात्कालिक आवश्यकता के अनुरूप हिंदू मुस्लिम एकता को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार रामदेव का परचा और चमत्कारों म अलग हटा यह लोकोपकारी मानवीय स्वरूप अधिक स्वाभाविक और मार्मिक बन पडा है।

मरमयक' की भांति ही 'रामदूत' म भी नायक हनुमान के चरित्र को उभारने का पूरा पूरा प्रयत्न किया गया है। राम कथा के साथ तो हनुमान का उल्लेख प्राय सर्वत्र मिल जायगा किन्तु उनके व्यक्तित्व को लेकर ही स्वतंत्र काव्य लेखन अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ है। रामदूत म इसी बिंदु को ध्यान म रखते हुए हनुमान के व्यक्तित्व की एक पूर्ण झांकी प्रस्तुत की गई है। पूरे काव्य म हनुमान के व्यक्तित्व के तीन रूप उभर कर सामने आते है—प्रथम है—नीति-कुशल एव कूटनीतिज्ञ हनुमान द्वितीय है—निर्भीक एव पराक्रमी हनुमान तथा तृतीय है—पूर्ण समर्पित एव स्वामीभक्त हनुमान। राम-सुग्रीव मैत्री एव लंका में दौत्यकर्म प्रसंग म जहां हनुमान के व्यक्तित्व का प्रथम स्वरूप उभर कर सामने आया है वहां समुद्र लंघन लंका दहन एव राम रावण युद्ध के प्रसंगो म बाहुबलि हनुमान का ओजस्वी रूप उभरा है और राम दरबार प्रसंग म पूर्ण समर्पित भक्त हनुमान के दर्शन होते हैं।

रुठया का दिवलो के नायक राणा प्रताप का चरित्र अनेक ऐतिहासिक विवादों के पश्चात भी जन साधारण म स्वतंत्रता के अनन्य उपासक के रूप म अति लोकप्रिय रहा है। प्रस्तुत कृति म भी कवि ने यथा संभव उनके लोक स्वीकृत, ओजस्वी, संघर्षशील एव स्वातन्त्र्य प्रेमी चरित्र को ही उभारने का प्रयास किया है—यद्यपि उसने उनके सहज मानवीय रूप को भी नहीं भुलाया है। कहीं वे अत्यधिक उत्तेजित नजर आते हैं तो कहीं विचलित और कहीं परिवार के मोह म व्यग्र।

समग्र रूप से आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों म राधा, शकुन्तला और सुभद्रा का प्रखर व्यक्तित्व मां गौतमी का मातृवत्सला-स्वरूप रामदेव का समन्वयवादी चरित्र राणा प्रताप का सहज मानवीय रूप रामकथा के राम का पारम्परिक आदर्श रूप नचिकेता का अध्यात्म प्रवण व्यक्तित्व एव शर्मिष्ठा का दुर्दमनीय और तेजस्वी स्वरूप उल्लेखनीय बन पडा है।

वचारिक एव सास्कृतिक परिवेश

किसी भी साहित्यकार का अपने युग की सास्कृतिक एवं वचारिक धारा से अछूता रह पाना म्भव नही है। वस्तुत उस अपने युग का चितेरा उसी स्थिति म कहा जा सकता है जबकि युग चन्तन की प्रतिध्वनि उसके काव्य मे सुनी जा सके। इसके लिए आवश्यक नही की काव्य का विषय निवाय रूप से वतमान जीवन स सीध सम्पृक्त हो पौराणिक और एतिहासिक प्रसगो के माध्यम से ी वह युगीन विचारधारा का प्रतिपादन करता चलता है। ऐसे प्रसगो मे चयन के साथ उसम यह ाशा की जाती है कि वह उन पौराणिक एव एतिहासिक प्रसगो को भी युगानुरूप नवीन अथवत्ता दान करे तथा जीवन की बदलती हुई परिस्थितियो एव बदलते मूल्यो के परिप्रेक्ष्य म उन्हे नवीन दर्भो म प्रस्तुत करे। इस दृष्टि स जब आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यो पर विचार करते हैं तो ाते हैं कि जहाँ उनम प्राचीन कथा और पात्रा के साथ युगीन विचारधारा सपृक्त है वहाँ राजस्थान की स्कृति भी अपने स्थानीय रगो के साथ मुखर है।

आज की वज्ञानिक प्रगति ने मानव की चिन्तन प्रक्रिया को बहुत दूर तक प्रभावित किया । आज वह सहज रूप से किसी बात को नही स्वीकारता। जो बुद्धिगम्य और तर्कसगत है वही सके लिए मान्य है। आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यकार युग की बौद्धिकता व तार्किकता स प्रभावित ए बिना नही रहे हैं।

प्रजातन्त्र शासन प्रणाली ने आज जन शक्ति के महत्त्व को बहुत बढा दिया है। आज जनता ऊची और कोई सत्ता नही है। जनशक्ति की अवहेलना किसी भी दृष्टि से समीचीन नही कही सकती। तभी तो पौराणिक एव ऐतिहासिक पात्रो के मुख से भी ऐसे उदगार व्यक्त हुए—

क जुलम ज्यादती करै न सहसी आज जागती जनता।[१]

ख जनता री आवाज पिछाणै व राजा अब रहसी।
जुलम ज्यादती मनमानी करणा'ळा वेगा ढहसी।[२]

ग जनसेवा सू पाव राजा निस्चै हो निसतारो।[३]

जागती जनता की इस चेतना का उल्लेख स्पष्टत वतमान कालिक चिन्तन का ही प्रभाव है। १वी शती के रामदेव भी जनता के साथ मिलकर शासन प्रबन्ध करने की बात सोचते हैं—

राजकाज रो भार
पिताजी सूप्यो सारो
मिलकर करा प्रबन्ध
जन म हित आपा रो।[४]

यही नही वे तो जीवन के हर क्षत्र म सहकारिता को लाना चाहते हैं—

---

१ रामदूत पृ०स० ५७
२ वही पृ० स० ७२
३ वही पृ० स० ७२
४ मरमयक पृ० स० १०६

बणसी उतणो लाभ
सदा सगळा न मिलसी
हूसी हकरो याव,
चाव सू भलो मिलसी[1]

इससे भी प्रागे बढकर मानव-समता की जो बात कवि ने उनके मुख से कहलायी है वह निश्चय ही प्राज के सुलझे हुए प्रगतिशील चितन की वाणी लगती है—

ग्रब मिनख–मिनख म भेद नही,
सगळा मे एक ग्रलख जागो
श्री रामदेव र राजस म
हिन्दू मुस्लिम रो भ्रम भागो।[2]

स्पष्ट है कि मानव-समता और साम्प्रदायिक एकता के ये भाव १५ वी शता की उपज नहीं अपितु इनके पीछे कवि का अपना ही युग बोल रहा है।

ग्राज हमारे चिन्तन का धरातल काफी बदल गया है। अब ईश्वर और उसके अवतारो की गरिमा चमत्कारपूर्ण कार्यों म न रहकर उनके जनसेवक रूप म समाहित हो गई है—

रीत रायता रो जाळ मर्यादा म सब ने ढाळ
हिम्मत हार हुया विना भौम न सुधारला
लुच्चाई रो लोप बाट सच्चा रो धम ठाट
जनसेवा रो साचो जुग जुग सू उतारू ला[3]

'रामदूत के राम भी अपने जीवन की सार्थकता मर्यादा की स्थापना और जनसेवा का सच्चा आदर्श प्रस्तुत करने म ही मानते हैं भक्ता मे अपना ईश्वरत्व मनवाने म नही।

जीवन-सघर्षो से दूर गहरे जगलो और गहन गुफाओ मे तपस्यारत होने को आज जीवन से पलायन माना जाने लगा है। जीवन के रहस्यो और मानव समस्याओ का समाधान जीवन से पलायन कर नहीं अपितु उनके बीच गुजरते हुए नव पथ का अन्वेषण कर ही किया जा सकता है। जीवन से भागकर जीवन की परिभाषा कैसे समझी जा सकती है—

जे काया माया म रती

ममता री अक्ल सक्ल आती।
जग म रहण स्यू जीवण री
परिभाषा सही समझ आती।[4]

---

१ सन्मथक पृ० स० ११०
२ वही पृ० स० १०८
३ रामदूत पृ० स० १६
४ शकुतला पृ० स० ५५

शकुन्तला के दुर्वासा जग से पलायन करने के कारण जीवन की सही परिभाषा न समझ पाने का अफसोस करते है तो शकुन्तला की गौतमी भी पर की पीड़ा से परे हटकर ऋषि मुनियों का स्वर्ग में जाना उचित नहीं मानती—

पर री पीड़ा स्यूं पर होर
परलोकी भाळ निसरामी।
कर निरो नह नारायण स्यूं
नर स्यूं भाग हा निस्पापी।[1]

आज का मानव मुक्ति जैसी किसी वस्तु को पाना भी चाहता है तो दीन दुनिया से परे हटकर नहीं—

परमेश्वर पर री पीड़ा में
दखिया रो आँसू पूछण में
मुक्ती रो मारग सीधो ही
दुनिया रा दरद मिटावण में।[2]

इस प्रकार जीवन और जगत मुक्ति और परमेश्वर के सम्बन्ध में यह परिवर्तित दृष्टिकोण वर्तमान युग की ही देन है।

मध्य युग के ढोल गवार शूद्र पशु नारी के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण में आज जबरदस्त परिवर्तन आ गया है। पुरुष समाज स्वयं नारी पर किये गये इन अत्याचारों को महसूस करने लगा है और वह कई प्रकार से नारी जागरण में सहायक बना है। कहीं वह घोषणा करता है—

नारी मरजादा रखवाळी
नारी तो धरम टिकाणी है।
नारी है सत न साभ्योडी
नारी गीता री बाणी है[3]

तो कहीं नारी और नर की समानता का समर्थन—

रळ आधो आघ अग पूरो
जद मिनख लुगाई कुण कम है।
ज नर है नद पुरुषारथ रो
तो नारी उण रो उदगम है।[4]

इस प्रकार आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों में यत्रतत्र युगीन विचारधारा की अनुगूंज स्पष्टत सुनी जा सकती है।

जहाँ तक इन प्रबन्ध काव्यों के सांस्कृतिक परिवेश का प्रश्न है भारतीय संस्कृति के प्रमुख बिंदुओं अतिथि सत्कार शरणागत वत्सलता प्रण पालन स्वाभिमान की रक्षा स्वामिभक्ति लोकोपकार

१ शकुन्तला पृ० स० ७१
२ वही पृ० स० ७२
३ वही पृ० स० ७६
४ मानखो पृ० स० १६

आदि का तो यथा प्रसग अक्न हुआ ही है, किन्तु इनमे जो बात विशेष रूप से उल्लेखनीय बन पडी है, वह है—राजस्थानी सस्कृति लोक-जीवन एव लोक विश्वासो के परिपार्श्व म इनका प्रस्तुतीकरण।

जिन कृतियो के कथानक सीधे राजस्थान के इतिहास से एव उसकी सस्कृति से सम्बद्ध रह हैं उनमे तो स्थानीय रग बहुत गहराया हुआ है ही किन्तु पौराणिक एव इतर प्रसगो को आधार बनाकर निर्मित प्रबन्धात्मक काव्यो म भी स्थानीय सस्कृति का उभरता स्वर बहुत स्पष्ट सुना जा सकता है। मरवण' कू जा मरु मयक 'सीसदान दळ या को दिवलो आदि काव्यो म—जिनका सीधा सम्बन्ध यहाँ की सस्कृति, जीवन एव इतिहास से रहा है—एस अनक चित्र दखन का मिल जायेंगे जो यहाँ के सामान्य जीवन की यहा की अपनी सामाजिक एव सास्कृतिक परम्पराओ की और यहा की समृद्ध लोक साहित्य परम्परा की भव्य भाकी प्रस्तुत करत हैं। कू जा की इस भूलती मस्त मवरण की भाकी भला राजस्थान के किस गाव और शहर म देखने को नही मिलगी ?

> उड उड रग जाव लरियो भोट भोट जोर।
> बिजळी को मन मान मनाव, ज्यू सावरण को लार ॥[१]

सावरण क लोर की मस्ती म भूमते राजस्थान का अपना एक रग है तो युद्ध-स्थल म मद मस्त हाथिया की तरह रणमद म भूमत वीरो वाले राजस्थान का अपना दूसरा ही रग है। नारियल के स्थान पर सिर भेंट करने की परम्परा राजस्थान के अतिरिक्त और कहा मिलेगी—

> नाळेर जिग्या सिर भेंट करयो
> रगता स्यू चळू कराई हूँ
> चिरणामत रूप दियो पति नै
> परसाद जिग्या खुद आई हूँ ।[२]

पति को चरणामृत के स्थान पर भेंट कर देन और प्रसाद के रूप म स्वय उपस्थित होने का साहस तो राजस्थानी नारी ही दिखना सकती है।

'मरु मयक एव रामकथा म विवाहादि अवसरो पर किय गये नग चार (विधि विधान) अपन हाथ म हाथ डालकर राजस्थानी परम्पराओ को ही तो लिय खडे है। इन कृतियो म राम जन्म के अवसर पर राजमहल क जिस उल्लास भरे वातावरण का चित्र अकित हुआ है वह राजसी शान शौकत और ठाठ-बाट स परे वतमान सामान्य राजस्थानी पारिवारिक स्थिति के अधिक निकट है। इसी भाति राम विवाह प्रसग म पीढ़ स भाकती हुई वतमान कालिक राजस्थानी ववाहिक परम्पराओ को स्पष्ट देखा जा सकता है। अपन आचलिक चित्र भला किस सुहावने नहीं लगेंगे ? किन्तु पौराणिक प्रसगो को वतमान युगीन आचलिकता म रग देना कहाँ तक समीचीन है ? अपनी क्षेत्रीय सस्कृति को प्रस्तोतन का आग्रह एक सीमा तक तो उचित ठहराया जा सकता है किन्तु उत्साह क अतिरेक म बढाय गय कदम आलोचको की टीका टिप्पणिया क शिकार बनन से नहा बच सकत।

---

१ कू जा डा० मनोहर शर्मा वरसा वप १ अक १

२ सीसदान श्री 'अमन पृ० स० ४०

राधा' और शकुंतला म भी स्थानीय प्रभाव को परिलक्षित किया जा सकता है किन्तु उसका विस्तार खटकने की सीमा तक नही हुआ है। शकुंतला काव्य म कूंजा के हाथा शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त को भेजे गये स देश म कूंजा' शुद्ध राजस्थानी परिवेश की उपज है फिर भी आलोचको की आपत्तियो की शिकार नहीं है। 'राधा म कृष्ण की मगल-कामना के लिए राधा द्वारा बोले गये 'राती जोग भी तो स्थानीय प्रभाव का ही तो परिणाम हैं—

> जद काळी नाग न नाथरण
> काह जमना मे चिभकी मारी
> तो उणरी कुशळ कामना सारू
> दई-देवता न
> रातीजगा री बोलवा कुण बोली ?[1]

कृति के मूल कथ्य के साथ तालमेल बठने के कारण ऐसे वरणन आलोचना का विषय नही बन सकते।

इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे सायास या अनायास राजस्थानी के य प्रबन्ध काव्य स्थानीय वातावरण स प्रभावित प्रेरित है। इनम न केवल राजस्थानी सस्कृति एव सामाजिक मान्यताए ही प्रतिबिम्बित हुई है वरन यहां की प्रकृति भी बीच बीच म यथा प्रसग अपनी झलक दिखाती रही है। इतना सब कुछ होते हुए भी इनका आचलिक रग या स्थानीय प्रभाव इतना गाढा नही हो गया कि कोइ कृति केवल आचलिक कृति भर बनकर रह गयी हो।

वरणन—

आधुनिक राजस्थानी प्रब ध काव्यो म—विशेष रूप से पौराणिक व एतिहासिक कथानक पर आधारित काव्यो मे-इतिवृत्त की प्रधानता होने के कारण अपेक्षित वरणन विस्तार मिलता है। य वरणन कही काव्य-कथा को विस्तार देन की दृष्टि से तो कही कथानक की आवश्यकता के आधार पर और यदाकदा शास्त्रीय लक्षणो की पूर्ति की दृष्टि से किये गये हैं। इन वरणनो मे युद्ध वरणन प्रकृति वरणन और पुत्र जन्म विवाहादि उत्सवो पर सपादित किये जाने वाले रीति रस्मो स सम्बन्धित वरणन ही अधिक हुए है।

युद्ध वरणन क प्रसग रामकथा 'रामदूत मरु मयक, मानखो शकुन्तला राधा, देळ या का दिवलो आदि प्रबन्ध काव्यो म विस्तार या सक्षेप मे अवश्य आये है। य वरणन अधिकाश म पारम्परिक ढग स ही हुए है। युद्ध सम्बन्धी प्रचलित का य रूढियो एव परम्पराओ का निर्वाह ही इनम विशेष रूप स हुआ है। वसे रस-व्यजना पर विचार करते समय इन पर विस्तार स प्रकाश डाला गया है अत यहां पुनरावृत्ति के भय स इसके बारे म विशेष नही लिखा जा रहा है।

रीति रस्मो स सम्बन्धित वरणनो की दृष्टि स रामकथा और मरु मयक म उनके रचयिताओ की विशेष रुचि परिलक्षित होती है। रामकथा का प्रारम्भ ही रामजन्म के उत्सव स होता है। कवि न इसका विस्तार म वरणन किया है। यहां नगर की सजावट नागरिको के उत्साह रनिवास की चहल

---

1 राधा श्री सत्य प्रकाश जोशी पृ० स० ७८ (द्वितीय सस्करण)

पहल परिजना के आपसी परिहास और मृत्यजना (कामकमीरा) क उल्लास के साथ-ही माथ नामकरण-सस्कार सम्बन्धी विधि विधाना का वणन कवि न उत्साह म किया है। कवि का यह उत्साह राम विवाह प्रसग पर भी पूववत देखा जा सकता ह। विभिन्न नेगचारा' के साथ चारा भाईया का विवाह जिस विधि स सम्पन्न हुआ, उसका यह उदाहरण द्रष्टव्य है—

लिया नीम की डाळिया खड्यो नवगी त्यार।
च्यार दूल्हा मारिया द्वारे तोरण च्यार।
कामण गाव कामणी चौक मातिया पूर।
भाण-बेटिया मागरी अड अड के दस्तूर।
भूवा निज निज वाद क ल्यिा पीडिया मार
सीता की मा हरखती भर मौत्या स थाळ
कर जुहारी आरता, राई लूण उछाळ।[1]

इसक साथ ही सज्जन-गोठ, विदाई आदि प्रसगा का विस्तार से वणन हुआ है। इन वणना म उभरा सामयिक प्रभाव कहा कही कालदोष[2] का भागी बनने से नही बच पाया है।

'रामकथा की तरह ही मरु मयक' क कवि न भी एसे वणना म काफी रुचि ली है। मरु मयक का विवाह सग[3] तो पूरा का पूरा विवाह सम्बन्धी विधि विधाना क वणना स ही भरा पडा है—

जानी कर मखोल
क्वे वयू देर लगावो
तोरण आयो बीन
दही द कुवरी ब्यावो

१ रामकथा, पृ० स० ४६

२ राम विवाह प्रसग पर कवि न जिन रीति रिवाजा का उल्लख किया है उनम स आकर वतमान की सहज ही अलग स पहिचाना जा सकता है। इसी प्रकार सजन गोठ क अवसर पर उसन जिन मिठाइया आदि का वणन किया ह उनम म कइ का प्राचीन काल म कोई अस्तित्व नही था—

लाड कनली और इमरती रसकनी रस म ही भरती
कळाकद अर मिसरीमावो जा जीव जी म हो खावो,
राजभोग बरफी रसगुल्ला घणी छूट में खावो खुल्ला
केसरबाटा गुन्जा जामुन वगी मिटाया सारा चुन चुन
और भोत कुण नाम गिणाव कया के क खाया जाव।
भुजिया दाळ समोसा प्यारा पूरी साग रायता न्यारा।

रामकथा पृ० स० ४५

३ मरु मयक, पृ० स० ७५ स १०२

हसे सगी रो साथ,
बीद भुक दही चिपायो
सामू निरख जवाइ ए
कामणिया गामो ।[1]

पूरे सग म लगभग इसी प्रकार के वणन ह । इसके अतिरिक्त पूरी कृति म यत्र-तत्र वणन विस्तार की ओर ही लखक का ध्यान रहा है । वह कही सुगन विचार [2] मे रम गया है तो कही राज्य व्यवस्था कमी हो ? उसका विस्तार म वणन करने लगा है[3] और कही आदश समाज की स्थिति के वणन म लगा गया है ।[4] कहने का तात्पय यही है कि इन कृतियो म रचनाकारो का ध्यान अधिकाश म या तो घटना का इतिवृत्त प्रस्तुत करन म ही लगा रहा है या फिर विविध स्थितियो एव विधाना स सम्बधित वणन विस्तार म ही ।

वणना की इस परम्परा म प्रकृति-वणन एसा बिदु है जहा आधुनिक राजस्थानी प्रबधकारो ने कुछ अधिक रुचि ली है । चू कि उसमें केवल इतिवत्तात्मक तत्व ही नही उभरे है अपितु कई सरस मनोहारी एव कल्पनायुक्त मार्मिक स्थल भी आय है अत आगे उस पर सक्षिप्त विस्तार म विचार किया जा रहा है ।

प्रकृति चित्रण

प्रब ध का यो म प्रासगिक रूप स न्यूनाधिक रूप म प्रकृति का चित्रण किया जाता है । आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध का यो म भी प्रकृति चित्रण की ओर प्राय हर कवि ने ध्यान दिया है । कही यह नखशिख ग्र थो की शर्तों को पूरा करने की दृष्टि से हुआ है तो कही प्रसग की आवश्यकता के आधार पर । इन का यो म प्रकृति चित्रण आलम्बन और उद्दीपन दोनो ही रूपो मे हुआ है । आलम्बन रूप मे प्रकृति चित्रण म जहा एक ओर शुद्ध इतिवृत्तात्मक शली[5] को अपनाया गया है वहा दूसरी ओर हृदय को विस्मा त कर नवीन उद्भावनाओ से युक्त चित्र भी खीचे गये हैं ।[6] मानवीकरण के रूप मे प्रकृति

१ मरु मयक पृ० स० ८८
२ वही पृ० स० १० एव ८४
वही नियो सग पृ० स० ४७
४ वही समाज शिक्षा सग पृ० स० १०३
५ सुदर सुन्दर विरछ सुहाणा पछी गाव गीत सुहाणा
च्यारू मर दिस हरियाळी फूल हांसन्या डाळा डाळी
यो निरमळ पाणी को झरणा तव्य झील न सोलह करण
हिरण हिरणिया उछळे नाग सोवणू घणू सुहाणू लागें
रामकथा विमनन्द अध्याय पलो पृ०स० २०
६ भीणी भीणी सी सौरमडी
घूम हा यू मनहार निदा ।
मे जही मानिया हा हा
रग मरब सा गिरनार करया ।
शकुन्तला वरणाजन बारहठ पृ० स० ६

चित्रण के साथ-ही साथ अलंकार रूप म, प्रतीकात्मक रूप म एव सदेशवाहक क रूप म भी प्रकृति चित्रण यत्र-तत्र देखने को मिल जाता है। यदा कदा उपदेश रूप म प्रकृति चित्रण भी इन काव्यो म हुआ ह।

प्रकृति का मानवीकरण रूप म चित्रण शकुतला म ही विशेपरूप म हुआ है। जहा कहा भी कवि को अवसर मिला है उसने तन्मय होकर प्रकृति सौदय के प्रभावशाली चित्र खीचे ह। मानवीय क्रिया-कलापो को प्रकृति पर आरोपित करन म तो कवि विशप उत्साही दिखलायी पडता है तभी तो उम कभी हवा मस्ती म सोयी हुई प्रतीत होती है (वायरियो सूत्यो नीदडली), तो कभी सरावर का जल स्थिर, तपस्या रत योगी सा दिखाई पडता है (जळ जप्या ऐन ही जोगी सो) तो कभी रजना पूण परितृप्ता नायिका की नाइ सुख की निद्रा म बसुध पडी दिखाइ दती है (ज्यू धाप्योडी सी रेन पटी) और कभी रात्रिकालीन वसुधा नइ नवली दुलहन सी प्रतीत होती है—

वा लाज चादणी हूवेडी,
छाया लूकेडी कामुकता।
ज्यू हरख भाव म सामडी,
ही नई बीनणी सी बसुधा।[१]

प्रकृति का सदेशवाहिका का कायभार कूजा' और 'शकुतला म सौपा गया है। डा० मनाहर शमा का 'कूजा' तो विशुद्ध सदश काय की श्रेणी म आने वाली रचना है। बीकानर के महाराजा दक्षिण की चाकरी' म रहते हुए अपनी प्रियतमा को जो सदश भेजते है उम ल जाने का भार व कूजा (एक पक्षी विशेष) को सर्वाधिक उपयुक्त पात्र समझकर सापत है। उस मागदशन कराते समय कवि जहाँ एक आर राजस्थान के गौरवशाली इतिहास का वणन करता चलता है वहा दूसरी आर यहाँ की प्रकृति के मनोरम चित्र भी खींचता चलता है—

आथूणे अम्बर म हालो, धारा का ससार।
भूरी भूरी रेत सुरगी पसरी अत न पार॥
या कुदरत का माया
मरुधर की सोभा जग म एक ना
हिरदा सरमाव॥[२]

शकुन्तला भी अपने प्रियतम दुष्यत को अपना सदश भेजा के लिए कूजा' को ही सम्बोधित करती है—

कूजा राणी जाय रो
परगा ज्या र देश
साजन भळ सुणाइज
म्हारो ओ सन्देश।[३]

---

१ शकुन्तला करणीदान बारहठ, पृ० स० ४८
२ कूजा डा० मनोहर शर्मा छद सख्या ८७
३ शकुन्तला श्री करणीदान बारहठ पृ० स० ६१

और यो साजन को सन्देश ले जाने की बात कह वह उस आगे के भाग का परिचय करवाती हुई प्राकृतिक स्थितियों से भी अवगत कराती चलती है—

लुँआ तीखी लागसी
दिखणादी है पून।
सूरजडो तपसी घणो
उडसी आगे धूळ।[1]

प्रतीक रूप में प्रकृति चित्रण डा० मनोहर शर्मा के अमरफळ में हुआ है। नचिकेता के राह में आयी हुई सिंह सर्प गुफा आँधी आदि—बाधाएं वस्तुतः मानव मनोविकारों की प्रतीक हैं। भ्रमित चित्तावस्था के प्रतीक रूप में पवन का यह चित्र द्रष्टव्य है—

सरणाती मारग भूली सी
पून बावळी सी बोले।
रूखां मांय उळझती चाल,
डूंगर में डिगती डोल ॥६॥[2]

उपदेशात्मक रूप में प्रकृति चित्रण मरु मयंक में विशेष रूप से हुआ है—

खेजडिया सीनों तान खडी
जाण सत खातर सती अडी
बावळिया शूळां सूं छाया
जाण कुभाव मन में आया।[3]

इन काव्यों में उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण प्रायः पारम्परिक ढंग से ही हुआ है। जो प्रकृति संयोग के क्षणों में संयोग सुख को और अधिक बढा देती है वही वियोगावस्था में और अधिक व्यथित करने वाली बन जाती है—

लख टोखी र साथ बावळी किया लटूम
पड प्रीतम र हाथ जिया धण मूं न्हो चूम
कंचन किरणा भाकर माथ एडी छितरी
कुंकु वाळी कामण जाण महला इतरी।[4]

यहाँ प्रकृति के संयोगात्मक चित्र राम को मयोगावस्था का स्मरण करवा कर और अधिक उद्दीप्त कर देते हैं परन्तु राधा में स्थिति इसमें सर्वथा विपरीत है—

भोळा पपया क्यूं कुरळाव
म्हारी उमस बगा वाउळ आव
थारी तिरस म्हारो कठ सुखाव
थारी बळती दाभ बुभाऊ
तो म्हैं जनम जनम सुख पाऊं।[5]

---

१ शकुन्तला पृ० सं० १
२ अमरफळ डा० मनोहर शर्मा
३ मरु-मयंक श्री बाहू महर्षि पृ० सं० ६०
४ रामदूत श्री श्रीमन्तकुमार व्यास पृ० सं० ७२
५ राधा श्री सत्यप्रकाश जोशी पृ० सं० ८५ ८६ (द्वितीय संस्करण)

उपयु क्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यो मे प्रकृति चित्रण को प्रमुखता न मिलते हुए भी, उसकी सवथा उपेक्षा नही हुई है। शुष्क मरुदेशवासी कवियो ने अपने इन प्रबन्ध काव्यो मे प्रकृति के अनेक रम्य एव आकषक चित्र खीचे हैं।

रस-व्यजना

आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यो म रस की दृष्टि से शृ गार वीर और करुण रस की ही प्रधानता रही है वसे कही-कही हास्य शात एव युद्ध के परिप्रेक्ष्य मे वीभत्स एव रौद्र रस का वणन भी मिल जाता है। शृ गार और वीर दोनो ही रसो का चित्रण अधिकाश म पारम्परिक ढग से ही हुआ है।

शृ गार के उभय पक्षा सयोग और वियोग के पारम्परिक एव मौलिक उदभावनाओ से युक्त वणन आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यो म यतम्तत तो देखने को मिल ही जायेंगे किन्तु रसराज शृ गार जिनका अगीरस है ऐसे कई स्तरीय प्रबन्ध काव्य भी आधुनिक राजस्थानी म लिखे गये है। इनम प्रमुख हैं— राधा' 'शकु तला' 'मरवण एव गोपीगीत। प्रथम दो काव्यो म जहाँ लौकिक प्रेम का प्राधान्य रहा है वहाँ अन्तिम दो काव्या म आध्यात्मिक प्रेम का। वसे 'मरवण' और गोपीगीत का कथानक भी लौकिक या पौराणिक प्रेम गाथाओ म सम्बन्धित है किन्तु उनको आध्यात्मिकता का बाना पहनाय जाने के कारण उनका लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम म परिवर्तित हो गया है। जहा राधा म प्रेम बाल्यावस्था की विभिन्न स्वाभाविक स्थितिया से गुजरते हुए पूणता की ओर अग्रसर होता दिखाया गया है वहाँ शकु तला का प्रेम प्रथम-दृष्टि परिचय का प्रेम है। उसका कथा सघटन इस रूप म हुआ है कि सयोग शृ गार के विविध मनोहारी चित्र अकित करन के अवसर उसम अपक्षाकृत कम आय हैं। फिर भी दोनो काव्या मे एक बात स्पष्ट है कि इनम सयोग शृ गार का जो चित्रण हुआ है वह अत्यन्त स्वाभाविक रूप म हुआ है लक्षण ग्रथो के शास्त्रीय विविध विधान इनके आडे कही नही आये हैं। शृ गार की अनेक स्थितिया म कुछ ही का अकन इनम हो पाया है। वय सधि पूवराग आदि के विरल चित्र ही इन कृतिया म देखने को मिलेंगे। प्रेम का विकास स्वाभाविक स्थितियो स गुजरत हुए कही भी स्थूल मासलता या वासना के स्तर तक नही पहुँचा ह। 'शकुन्तला म प्रेम की चरम परिणति के रूप म दो बार शारीरिक मिलन (सभोग) का अकन हुआ है किन्तु उसम कही भी वासना को उच्छ खलता नही आ पाई है। कवि ने बडे कौशल के साथ उस स्थिति की ओर इगित भर किया है—

(क) हिवडे री कळिया खिलगी
काया न ममता मिलगी।
मनमधु री सरस हिलोरा
ब इकरस म हिल मिलगी।[1]

(ख) पत्ता ओटे पत्ता ओले अधरा पर धर हा नण जुड्या।
हिय पर हिय अर तनमय मनमय पल पल हा परमानद घड या।
छिणमिण, बिरखा री बू द पडी हिवडा हँस्या स रूँखा रा।
फळ म बदल्या हा, फूल जका स पख पखेरू सिणगारया।[2]

---

१ शकु तला श्री करणीदान बारहठ पृ० स० ५
२ वही पृ० स० २४

यहा यह द्रष्टव्य है कि कवि ने सभोग मे पूव की स्थिति का चित्रण करने मे जहाँ पर्याप्त उत्साह एव कुशलता का परिचय दिया है वहा रतिश्रान्ता नायिका की मनोहारी छवि अकित करने की ओर से वह सवथा उदासीन रहा है। यही स्थिति राधा की भी रही है। उसके कवि ने प्रेम पथ की मोहिनी गलिया के अनेक मनोहारी चित्र अकित करते हुए भी स्थूल वासना की ओर कहा दृष्टि निक्षेप नही किया है। अत्यन्त स्वाभाविक स्थितियो मे विकसित प्रम क जो भव्य चित्र राधा' म अकित हुय हैं वे राजस्थानी साहित्य की एक अनमोल थाती हैं। उसके पला प ल, 'पूजा' पिणघट मरवण' आदि मे जो चित्र अकित हुए हैं व द्रष्टव्य है—

पण प ला प ल
सुगणी जसोदा रा जाया!
थू म्हारो नाव पूछियो—
लजवती लाज
म्हन दूलेवडी कर न्हाकी।
दो आखरा रो भोळो-ढाळो नाव
म्हार सूखत कठा र
पोयण म भवरा ज्यू अटक्यो।
म्हार होठारी लिछमण रेखा म
बण जानकी दाभण लागी।[1]

प्रथम मिलन के पश्चात पिणघट की यह छेड़छाड भी कम आन ददायक नही है—

आज मन रो म्यानो दरसाऊ
अचपळा का'ह!
जद म्हारी मटकी फूटे,
तो जाण नेहरा बादल वूठ
जाण प्रीत रो पाणी बरस।
फूटी मटकी मू जद धारोळा छूटे
तो जाण हेत रा झरणा तूठ।
भीज्य डा वसण जद म्हारी दह सू लिपट जाव
तो म्हारा मन म यू लखावे—
म्हारो कोडीलो का'ह म्हन बाया म भरली।
थारी बाया रो औ बधण
म्हन जुग जुग र बधण सू
मुगती दव।[2]

इसी प्रकार के अन्य सरस वणना की मनोहारी छटा राधा म यत्र तत्र देखने को मिल जायगी। 'रामरूपा 'रामदूत प्रभृति रामकथा पर आधारित काव्यों मे कवि लोग सप्रयास शृगारिक

१ राधा श्री सत्यप्रकाश जोशी पृ० स० ३५–३६ (द्वितीय सस्करण)
२ वही पृ० स० ४६

स्थलो को बचा गये हैं। राम के प्रति पूज्य भाव ही इसका मुख्य कारण कहा जा सकता है। हा विप्रलम्भ शृ गार का वर्णन करने में इन कवियों को कोई दोष दिखायी नहीं दिया है अत राम और सीता की वियोगपूर्ण मन स्थिति का अंकन इनमें अवश्य हुआ है। वियोग की दस स्थितियों में मरण और मूर्च्छा को छोड़ अन्य सभी का न्यूनाधिक रूप में अंकन हुआ है। 'मानखो' की स्थिति अलबत्ता इस दृष्टि से भिन्न है। गन्धर्व चित्रसेन की संभावित मृत्यु की कल्पना से ही उसकी प्रेयसी सिहर उठती है और प्रिय की उपस्थिति में ही संभावित वियोग का जो हृदय द्रावक चित्र वह अंकित करती है उसे करुण विप्रलम्भ के अन्तर्गत स्थान दिया जा सकता है—

था बिछड्या साजन कुरज जिया
हू आखी अमर कुरळाऊ ।
इण स्यू तो आछो राव रळ
बाथा में भेळा बळ ज्याऊ ।।[1]

आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों में संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार का ही प्राधान्य रहा है। कूंजा गोपी गीत और रामदूत का तो कथा-संयोजन ही इस ढंग से हुआ है कि उनमें संयोग का कोई अवसर ही नहीं आया है। अत ऐसी स्थिति में वहां केवल विप्रलम्भ शृंगार का ही चित्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त भी 'रामकथा' मानखो एवं शकुन्तला में वियोग शृंगार का ही प्राधान्य रहा है। राधा और मरवण ये ही दो मुख्य प्रबन्ध का ये ऐसे हैं जहां शृंगार के उभय पक्षों का समान चित्रण हुआ है। विप्रलम्भ शृंगार की दृष्टि से जो चित्र इन काव्यों में अंकित किये गये हैं, उनको पारम्परिक चित्रों से अलगाया नहीं जा सकता। यहां भी तन की भूख से व्यथित, नायक-नायिकाएं मौसमी प्रभावों से व्याकुल होकर या प्रिय को पुकारते स्पष्ट सुने जा सकते हैं—

क पाणी बिन या बाडी सूख माळी वेगो आव ।
तन में मन में भरी वेदना अब आया ही साव ।
यो जोबन थिर नाही
बादळ की बूंदा लाग लायसी ।
बिजळी डरपाव ।।८५।।[2]
(ख) गज मोंत्या मती रस पाकी, हाळी वेगो आव ।
जोबन ज्यू बरसाती नाळो, चाल्यो आया साव ।।
जीणो निरफळ धार्यो
पिरथी में खोद हीरो एरलो
पारख न जाण ।।२८।।[3]

स्मृति, अभिलाषा चिन्ता उद्वेग आदि सभी वियोग जन्य मन स्थितियों के चित्र आधुनिक राजस्थानी के इन प्रबन्ध-काव्यों में मिल जायेंगे किन्तु स्थानाभाव के कारण यहां एक-एक का उदाहरण प्रस्तुत करना संभव नहीं होगा।

---

१ मानखो श्री गिरधारी सिंह पड़िहार, पृ० स० ५
२ कूंजा डा० मनोहर शर्मा वरदा वर्ष १ अंक १
३ मरवण डा० मनोहर शर्मा वरदा, वर्ष १ अंक ३

नायिका का नख शिख वर्णन शृंगारी कवियों का प्रिय विषय रहा है, किन्तु आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों मे ऐसे चित्र बहुत कम देखने को मिलते हैं। सोद्देश्य तो कोई कवि इधर प्रवृत्त हुआ ही नही है। किन्तु प्रसगवश जो चित्र उभरे हैं वे भी पारम्परिक चित्रों से सर्वथा भिन्न हैं। हाँ एक आध स्थलो पर अवश्य ही पारम्परिक उपमानों का सहारा लिया गया है—

वा गोरी बरण गोरज्यासी,
ही आख कटारा सी तिरछी।
ज्यू नाक नुकीली सुग्र री,
ही कमर कमाणी सी पतळी।[१]

अन्यथा तो छायावादी सौन्दर्य-बोध से प्रेरित कवियों ने नायिका के रूप-सौन्दर्य को अकित करने मे स्थूल उपमानों को कम ही काम लिया है। ऐसे चित्रों मे स्थूल मासलता के स्थान पर सूक्ष्म भावनाओं का ही प्राधान्य रहा है—

किरणा र सामी शकुन्तला
सौव ही मधुरी सभया सी।
अनुपम उपहार विधाता री
कवि री सिरमोड कल्पना सी।[२]

शकुन्तला के प्रथम दर्शन के समय दुष्यन्त को जो अनुभूति होती है वह भी द्रष्टव्य है। शकुन्तला की अलौकिक रूपराशि से हतप्रभ बना दुष्यन्त शकुन्तला से ही पूछ रहा है कि तू कौन है—

चन्दो टुकडो ! जो काळसमय,
रवि किरणा ! तू मधुकर सुखकर।
या तपवन री लहलयो कमल
या कला स्वय साकार सुघड।
कामदेव री रमणीय रती
मजुलता री मूरत मनहर।[३]

शकुन्तला की भाति मानखो की सुभद्रा का यह रूप भी किसी छायावादी कवि की नायिका से कम स्पृहणीय नही है—

झिळमिळी चानणी री पळको
ज्यू आस उजास किरण आई
फूला री मीठी सास जीसी
तन पर कळिया री कवळाई।[४]

---

१ शकुन्तला श्री करणीदान बारहठ, पृ० स० १०
२ वही, पृ० स० १४
३ वही पृ० स० १७
४ मानखो श्री गिरधारीसिंह पडिहार पृ० स० ७

परम्परा से विच्छिन्न, छायावादी सौंदर्य-बोध से प्रेरित उपयुक्त चित्र आधुनिक राजस्थानी काव्य के प्रगति चरणों को स्पष्टतः इंगित करते हैं।

युगीन परिस्थितियां बदल जाने के कारण आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों में वीर रस के वे सांगोपांग जीवन्त चित्र देखने को नहीं मिलते जिसके कारण प्राचीन राजस्थानी साहित्य विश्व साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। फिर भी युगों-युगों का जो एक शानदार परम्परा राजस्थानी वीर काव्य की रही है, उसके परिप्रेक्ष्य में आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों में जो पारम्परिक चित्र अंकित हुए हैं वे अपने पुरातन रंगों में भी कहीं कहीं काफी आकर्षक बन पड़े हैं। प्रचलित काव्य रूढ़ियों के सहारे खींचा गया युद्ध स्थल का यह चित्र दृष्टव्य है—

> मदमाती कंकाळी नाल छळ छळ रगता न पियां पियां,
> नद उमड्यो तो डग डग डरपी गोद्या वाळो सुत लियां लियां,
> घुळ मिलगो मुण्डां के माई जद मुण्ड खड़ये मुण्डमाळी को,
> तुण्डां में तुण्ड पिछाण्यो ना थर थर काप्यो जी काळी को।[1]

इस प्रकार काव्य रूढ़ियों से युक्त वर्णन या युद्ध-स्थल के सामान्य वर्णनात्मक चित्र 'रामदूत' 'शकुन्तला' और 'रामकथा' में देखने को मिल जायेंगे किन्तु वीरों के आन्तरिक उत्साह के वर्णन का इन कृतियों में प्रायः अभाव सा है और यह भी सत्य है कि इन काव्यों में युद्धों का वैसा सजीव एवं रोमांचकारी वर्णन पढ़ने को नहीं मिलता है जैसा कि प्राचीन राजस्थानी वीर काव्यों में देखने को मिलता है। 'मानखो' में अवश्य ही वीरों के आन्तरिक उत्साह का एवं प्रतिशोध की ज्वाला में धधकते साक्षात महाकाल बने वीरों के रोमांचकारी चित्रों का सफल अंकन हुआ है। यहाँ अर्जुन का एक ऐसा ही चित्र दृष्टव्य है—

> घण रै हाथां स्यूं धनुस लियो
> सिरकस खिड्या अवधूत जिया।
> धर जाड जडाको सास खींच
> घण कोप भाभडा भूत जिया॥
> घायल तन तातो रगत झर,
> उण ही रंग रळनो उणियारो।
> विकराळ काळ सो कुंताळो
> वीरां सी जगती आस्यारो॥[2]

इसके अतिरिक्त युद्ध वर्णन को भी लक्ष्य की गयी कवि की मौलिक उद्भावनाएँ मानखो की विशिष्ट उपलब्धि कही जा सकती है। भयंकर युद्ध चल रहा है घोड़ों के परों से उड़ी गर्द पृथ्वी और आकाश के बीच में एक आवरण के रूप में फैल गयी है मगर क्यों—

> घवळां री घसळां खेह उडी
> कण रळया गरद री गौट बणी
> ज्यूं धर री बळ नभ निजराव
> इण कारण आडी आट बणी॥

---

१ देळयां को दिवलो श्री बनवारीलाल मिश्र सुमन' पृ० सं० ४३
२ मानखो श्री गिरधारीसिंह पड़िहार पृ० सं० ७८

का जोवा माझ्यो मरण जिग
भख भूखा काळ लुकाव है।
का आभ आडा ओलो द
धण धरती रगता न्हाव है ॥[1]

जहा एक ओर युद्ध म उफनते शौय क ओजस्वी चित्र देखन को मिलते हैं वहाँ जुगुप्सा उत्पन्न करन वान वाभत्स चित्र भी यत्र तत्र दखन को मिल जात है। आधुनिक राजस्थानी के प्रबध का यो मे कही कही एस वीभत्स दृश्य भी दखने को मिल जात है—

चटकाव कुत्ता खोपडिया छक पट गादडा गरळाव।
व उड कागला दोगी ल ज लड गिरजडा कुरळाव
खप्पर न लोहो सू भरकर नर भक्ष अघोरी गटकाव
गळ मू घी माथा री माळा हाथा स् हाड्या चटकाव।[2]

वीर रस क साथ ही इन प्रबध का यो म जा करुणा स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई है वह अनेक स्थना पर पाठका को करुण रस म आपाद मस्तक सराबोर कर डालती है। डा० मनोहर शर्मा का पछी ता आद्यन्त ही एक करुण का य है। इसके अतिरिक्त शकु तला और मानखो म भी करुण स्वर बहुत गहर गू जत हुए सुनाई पडते हैं। वस रामदूत रामकथा दळया को न्विलो' आदि म एस प्रसग आय हैं जहा पाठक का मन करुणा से भर उठता है किन्तु सम्पूण प्रकृति म ही करुणा की स्वर लहरियाँ तो मानखा म ही व्याप्त हुई हैं—

अ डी बिलखे गायक धरणी ज्यू पलका गळ बादळ ढळग्यो।
नणा रो गाला, होटा रो हिंगळूरी बिंदली रग रळग्यो।
करुणा भरगी आग बन म गगार गौरे पाणी मे।
रूखा री पाती पाती मे परया री कवळी बाणी म॥
अणजाणी एक उदासी सी बायरिय री लरा घुळगी।
बा पीड कळपते प्राणा री छळकी जड चेतन पर ढुळगी।[3]

मानखो म जहाँ मानवीय करुणा सम्पूण प्रकृति म व्याप्त हुई है वहा प्रकृति के इस लाडले पछी का कुटुम्ब स बिछुन्न पर दर-दर भटकना भी कम कारुणिक नही है—

रूख रूख उळझयो फिरयो ना निरख्या क नण।
नग मूद खोल्यो हिया नाय सुण्या व बण॥१११॥
भाड भाड उळझयो फिरयो पछी प्रेम अधीर
पाड पत्ता पायो न पण जर-जर भयो शरीर॥१३१॥[4]

---

१ मानखो पृ० स० ७३ ७४
२ रामदूत श्रीमन्तकुमार व्यास पृ० स० १००
३ मानखो श्री गिरधारीसिंह परिहार पृ० स० ६-७
४ पछी डा० मनोहर शमा

शृ गार, वीर एव करुण रस के अतिरिक्त राजस्थानी क आधुनिक प्रबन्धकारा का मन जिसम रमा है वह है-शान्त रस । 'मरु मयक', 'अतरजामी और अमरफळ तीना ही काव्या का भुकाव अन्याय रसो की अपक्षा शात रस की ओर विशेप रहा है । रामकथा म भी अन्यान्य रसा का समावश होते हुए भी शान्त रस की अपनी एक निराली छटा रही है । अन्तरजामी म कवि का मूल सन्देश बिना किसी विवाद के उस सब शक्तिमान की सत्ता स्वीकारन का ही रहा है—

ग्यानी विग्यानी अभमानी
नरा को अन्तरपट खोनो
जाक बळ सू ब्रह्माण्ड बध्यो
अन्तरजामा की जय बोलो ॥५१॥[1]

इसी प्रकार 'मरु मयक का विवक सग, अमरफळ का तृतीय सग निर्वेद प्रधान कहा जा सकता है । अमरफळ म जहा मत्यु रहस्य चर्चित विषय रहा है, वहाँ मरु मयक के विवेक-सग म एक साथ कई प्रश्न उठाये गये हैं—

कुण ओ जीव ? ब्रह्म के किण नै ?
कुण ईश्वर ? कुण कमलाकान्त ?
ओ ससार रच्यो क किण न ?
जन्म मरण सुख दुख, किण हाथ ?
किण विध जीव मोक्ष पद पावे ?
कीकर कट कम री नाथ ?[2]

ऐसे कई प्रश्न यत्र-तत्र 'रामकथा म भी उठाये गये हैं किन्तु रामकथा के कवि न उनम गहरे खोने म कोई रुचि नही दिखलाई है । यहा एक बात स्पष्ट है कि इन कृतिया म मौलिक चिन्तन का अभाव है । आदिकाल से ही उठाय जा रहे इन प्रश्ना के समाधान म कविया न पारम्परिक धारणाओ का ही सहारा लिया है । हमारे दाशनिक मनीषिया एव ऋषि मुनिया न जो कुछ इन गहन समस्याओ क सम्बन्ध म सोचा है उसे ही आधार बनाकर इन पर विचार किया गया है ।

कला विधान

आधुनिक राजस्थानी क अधिकाश प्रब धकाव्या म कथा तत्त्व की प्रधानता एव इतिवत्तात्मकता की प्रमुखता के कारण अन्य अन्य पक्ष कमजोर पड गय है यह पहल स्पष्ट किया जा चुका है । जहाँ इतिवत्त प्रधान नही है वहा विचार पक्ष प्रधान होन क कारण काव्य-सौष्ठव एव भाषा अनकरण की ओर कविया का ध्यान कम ही गया है । इस स्थिति का असर इन कृतिया के भावपक्ष क साथ-ही-साथ कला पक्ष पर भी पडा है । अलकारा की महीन पच्चीकारी के दशन तो इनम बहुत ही कम हाते हैं, किन्तु कल्पना की ऊची उडाना एव मनोरम तथा रम्य चित्रा की भी एक सीमा तक न्यूनता ही रही है । भाषा की मधुरता पद-लालित्य नाद सौन्दय एव शब्दों के जडाव-कसाव के सम्बन्ध म भी राधा,

---

१ अन्तरजामी डा० मनोहर शमा वरदा, वष ५ अक ३
२ मरु-मयक श्री कान्ह महर्षि पृ० स० १३५

मानखो आदि दो एक कृतियो म ही अपेक्षित सतकता दिखलायी गयी है अन्यथा अधिकाश काव्यो म तो क्या कहन का ही आग्रह प्रमुख रहा है । फलत जहाँ एक ओर भाषा एव शब्द प्रयोग को लेकर कई अनियमितताए एव तज्जन्य समस्याए खडी हो गई है, वहाँ दूसरी ओर य कृतियाँ अपन कलागत सौदय का यूनता क कारण सहृदयो पर अपनी मधुर स्मृति की छाप छोड जाने म भी विशष सफल नही हुई है । काव्य प्रकरण की दृष्टि से ये प्रबन्धकार न तो राजस्थानी साहित्य की विशिष्ट परम्पराओ स विशेष प्ररित हुए हैं और न ही हिन्दी सस्कृत आदि अन्य भाषाओं स ही विशष प्रभावित ।

जहा तक भाषा का प्रश्न है आधुनिक राजस्थानी प्रब ध काव्यो की भाषा दनन्दिन व्यवहार म प्रयुक्त हान वाली राजस्थानी है जिसम यत्र तत्र कवियो की क्षत्रीय बोली के शब्दो को देखा जा सकता है । साथ ही साथ हिन्दी (खडी बोली) के प्रभाव एव सस्कृत तत्सम शब्दो का बाहुल्य भी कई का यो म स्पष्ट दिखाई पडता है । क्षत्रीयता के अन्तगत स्वर एव हिन्दी सस्कृत के प्रभाव पर विचार करन से पूव एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है । ऊपर मैंने जो दनन्दिन व्यवहार की राजस्थानी' की बात कही है उसस स्वाभाविक रूप से एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या इससे भिन राजस्थानी साहित्य की कोई अलग भाषा अब भी काव्यो म व्यवहृत हो रही है ? जिसका कि सम सामयिक भाषा म सीधा कोई सबध नही है ? वस्तुत यह सही है कि आज भी राजस्थानी काव्य जगत का एक वग साहित्य रचना म विशेष रूप स कविता के क्षत्र मे ऐसी भाषा का प्रयोग करता चला आ रहा है— जिस कतिपय आलोचको ने डिंगळ कहा है । वीर प्रशस्ति काव्यो एव विशेष रूप से श्री मुकुर्नसिंह और उन जसे ही कतिपय अन्य प्राचीन परम्परा के समथक कवियो की कृतियो म जिस भाषा का प्रयोग हुआ है वह आज स कई सौ वष पूव की राजस्थानी साहित्यिक भाषा के अधिक निकट कही जा सकती है । राजस्थानी क आधुनिक प्रबन्ध काव्यकार इस दृष्टि से पुरातन के मोह को छोड चुके हैं । उनका यह कदम न केवल साहसिक ही माना जायेगा अपितु स्तुत्य भी है क्योंकि राजस्थानी को एक मृत भाषा समझन या कहने वाल विद्वानो के तक का यह एक सबल उत्तर है ।

आधुनिक राजस्थानी के प्रबन्ध काव्यो पर भाषा की दृष्टि से विचार करने पर उनके दो स्वरूप स्पष्ट दृष्टिगत होते है । प्रथम प्रकार की वे काव्य रचनाए हैं–जिनम ठेठ राजस्थानी का प्रवाह अपन जीवन्त एव सुष्ठु रूप म प्रवाहित हुआ है और दूसर प्रकार क वे काव्य है–जो प्रत्यक्ष या परोक्ष म कहा न कही हिन्दी स प्ररित–प्रभावित हैं । प्रथम श्रेणी की रचनाओ म उल्लेखनीय हैं–श्री सत्यप्रकाश जोशी की राधा श्री पडिहार का मानखो एव श्री 'अमन का सोसदान । द्वितीय प्रकार की रचनाओ म डा० मनोहर शर्मा के अधिकाश काव्य श्री विमलेश की रामकथा एव श्री बनवारीलाल मिश्र सुमन' का ऊळया का दिवलो आदि काव्य आते हैं । उपयुक्त दोनो श्रणियो के मध्य की स्थिति म भी कुछ काव्य है जिनम सस्कृत क तत्सम शब्दो का अपेक्षाकृत बाहुल्य होते हुए भी उनके कवियो का झुकाव उन्ह राजस्थानी के प्रकृत रूप की ओर ल चलने का विशेष रहा है । ऐस काव्यो मे शकुन्तला रामदूत एव मरु-मयक' उल्लेखनीय हैं । फिर भी ये कवि अपने को हिन्दी के प्रभाव से सवथा बचा नही पाये हैं और कई स्थलो पर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का मूल चितन हिन्दी म चला है और पश्चात उसका राजस्थानी अनुवाद उसन प्रस्तुत कर दिया है । 'मरु मयक म ऐसा कई स्थलो पर हुआ है—

कुल रीत वेद विधि नै विचार
सब क्रिया करय धर्मानुसार

रवि पूजन नाम करण सारा
संस्कार किया न्यारा-न्यारा[1]
(मूल)

अब इसी का यह अनुवाद भी देखिये—
कुल रीत वेद विधि को विचार
सब किया कृत्य धर्मानुसार
रवि पूजन नाम करण सारे
संस्कार किये न्यारे-न्यारे।

और भी देखिये—
रतना जड़ी चूनडी श्यामल
लगी समेटण सुन्दर रात[2]
(मूल)

रतना जडी चूनडी श्यामल
लगी समेटन सुन्दर रात
(हिन्दी अनुवाद)

'शकुंतला' का कवि भी सर्वथा इससे बच नहीं पाया है—
चंदो टुकड़ो ! वो कालस मय
रवि किरणा ! तू मधुकर सुखकर।

या तपवन री लहलयो कमल
या कला स्वयं साकार सुघड़।
कामदेव री रमणीय रती
मंजुलता री मूरत मनहर।[3]
(मूल)

अब इसी का हिंदी अनुवाद भी देखिये—
चन्दा-टुकड़ा ! वह कालिखमय,
रवि किरणें ! तू मधुकर सुखकर।
या तपवन का लहलहा कमल
या कला स्वयं साकार सुघड़।
कामदेव की रमणीय रति सी,
मंजुलता की मूरत मनोहर!

---

१ मरु-मयंक श्री कान्ह महर्षि, पृ० सं० २६
२ वही, पृ० सं० ६
३ शकुन्तला श्री करणीदान बारहठ पृ० सं० १७

इस प्रकार चिन्तन के स्तर तक पहुँचा हिन्दी का यह प्रभाव, कवियो की राजस्थानी भाषा की अल्पज्ञता का द्योतक नही माना जा सकता। क्योंकि आज भी इन सबके दैनन्दिन व्यवहार की भाषा राजस्थानी ही है किन्तु प्रारम्भिक स्तर से ही शिक्षा-दीक्षा का माध्यम हिन्दी होने के कारण और बचपन से ही हिन्दी मे लिखने सोचने की आदत के कारण ही न चाहते हुए ही यह प्रभाव कई स्थानो पर उभर आया है।

आधुनिक राजस्थानी काव्य भाषा म कई प्रकार के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। जहाँ एक ओर दशन निदय कृत्य धर्मानुसार बहुश्रुत अनूप विषमता अनुशासन, नितम्ब उपवन, नूतन श्यामल, उन्नत साक्षात रक्षक, मयक दक्ष जसे शताधिक सस्कृत तत्सम शब्दो का प्रयोग नि सकोच किया गया है, वहाँ अरबी फारसी (उदू) के प्रचलित शब्दो को अपनाने म भी कापण्य नही दिखलाया गया है। उदाहरणाथ फरमान दिल बाजी जुलम (जुल्म) बेजार दिलगीर, इजाजत, इज्जत फरजी (फर्जी), अरमान आदि पचासो शब्दो को लिया जा सकता है। इन दोना के अतिरिक्त कुछ प्रचलित अग्रजी शब्दो का प्रयोग भी इनम हुआ है—वारट वोट लोट (नोट), टेम (टाइम) इच किरासन (केरोसीन) आदि कुछ एसे ही शब्द हैं। सस्कृत के तत्सम शब्दो के अतिरिक्त उदू और अग्रजी के जिन शब्दो का प्रयोग इन कृतिया म हुआ है—उनम से अधिकाश बोलचाल की राजस्थानी म स्वीकारे जा चुके है, फिर भी उनका प्रयोग पौराणिक काव्या म होना अवश्य ही खटकता है।

बहुतायत से प्रयुक्त सस्कृत के तत्सम शब्द तक की दृष्टि से अपने प्रयोग का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं क्योंकि आज भारत की भारोपीय परिवार की सभी समृद्ध भाषाओ म इनका प्रतिशत ५० से ८० तक मिलता है। ऐसी स्थिति म साहित्यिक राजस्थानी म इनका सहस्रो की सख्या म आ जाना कोई विशेष उल्लेखनीय बात नही है। लेकिन जिन सस्कृत तत्सम शब्दो के बहुत ही उपयुक्त एव मधुर पर्याय राजस्थानी मे उपलब्ध हैं उनका बहिष्कार कर तत्सम शब्दो का प्रयोग करना,अवश्य ही विचारणीय बन जाता है, क्योंकि इस कारण से कई बार कृति की आत्मीयता समाप्त होकर वह कुछ-कुछ पराई सी प्रतीत होने लगती है।

सस्कृत के तत्सम शब्दो के सम्बन्ध मे जो समस्या है वह है उनका तद्भवीकरण। राजस्थानी भाषा की प्रकृति के अनुकूल बनाने के लिए सस्कृत के अनेक शब्दो को लेखको ने तदभवरूप म प्रस्तुत किया है किन्तु एसे तदभव शब्दो म वर्तनी की एकरूपता का निर्वाह नही हो पाया है। एक कवि ने जिसे सष्टि लिखा है दूसरे ने उसी को सिस्टी' और तीसरे ने स्निस्टी तथा चौथे ने शिष्टि लिखा है। इस प्रकार शब्दो के सम्बन्ध म यह धाधली अलग अलग कविया के अलग अलग प्रयोगो से ही नही अपितु कई बार तो एक ही कवि के एक ही शब्द के भिन्न रूपो मे प्रयोग के कारण भी हुई है जसे मरु मयक म अकेले दिन शब्द को एक ही दोहे म तीन भिन्न रूपो म लिखा गया है—

जिण दिन म थारे घर आऊँ,
उण दिण दुनिया री दिन्न घिरे।[1]

शकुन्तला' म भी ऐसे उदाहरण कई स्थलो पर देखने को मिल जायेंगे। एक ही पक्ति म आये आशा के दो रूप भी विचारणीय हैं—

आसा जीवण जीवण आशा[2]

---

१ मरु-मयक श्री कान्ह महर्षि पृ० स० ४८
२ शकुन्तला श्री करणीदान बारहठ, पृ० स० १३८

विद्रोह करने की प्रेरणा देने के लिए जिस मनोभूमि की आवश्यकता थी, उसका निर्माण चित्रसेन ने बडी कुशलता से किया है। सुभद्रा के औत्सुक्य और दृढता दोनो को चरम-सीमा पर पहुँचाते हुए वह बड़े रहस्य भरे अदाज से या कहता है—

मत पूछ मावडी वो कुण है ?
सुणता ही पग पाछा पडसी।
पौरस रा पाड झुक जिण न
अबळा री बळ काई अन्सी ?[1]

बात-बात म मुहावरो और लोकोक्तिया का प्रयोग तो बात को और अधिक सरस एव प्रभावी बना देता है। वसे तो न्यूनाधिक रूप म प्राय सभी प्रबन्ध काव्यकारों ने इनका उपयोग किया है, किन्तु 'मीसम्मान इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। दो सर्गों के इस छोटे से खण्ड काव्य म पचासो लोकोक्तियो एव मुहावरो का प्रयोग हुआ है। ये प्रयोग राजस्थानी भाषा के अपने विशिष्ट स्वरूप को उजागर करते हैं—

'जद स्यू परण्या है जाडेची
मिधराव सूकणें क्यू पडग्या ?
क्यू डील साकळो सो बणग्यो,
क्य नण-नण र म्हा बडग्या ?
दोहाग द न्यियो राण्या ने
के चूक पडी ? के खोट पडी ?
क्यू हुया ओपरा अन्दाता ? [2]

आत्म कथात्मक शली म लिखे गये काव्य हृदयस्थ भावो की अभिव्यक्ति देने और पाठकों को सहज विश्वास म लेने म अधिक सक्षम होते ह। आत्म विस्मृति म खोये पात्र या आत्म-स्वीकृति को तत्पर पात्र जिस सहजता के साथ पाठको से साधारणीकृत होते ह वे काव्य की प्रभविष्णुता कई गुना बढ़ा देते हैं। 'गधा' ही आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यो म एकमात्र ऐसा काव्य है जहाँ आद्यन्त इसी शली का निर्वाह हुआ है। विस्मृति के गत म खोया गधा की आत्म-स्वीकृति, बात को कितनी सहज और विश्वसनीय बना देती है—

पग प ला प ल
अचपळा बान्द बवर।
पू म्हारो अबार पुगवो पकड
गुरगी जमना र काठ
उण कम्ब रूम र पमवाडे
म्हार नणां म टुग-टुग जोवण लागो,

---

१ मानखो श्री नियन्नीमिन्न न्हिार पृ० स० १३

२ सामन्तन धा ग्मन पृ० स० १

थार कौडील हाथ रो
निवायो परस
म्हार रू-रू म
भणकारा रा भाला मारण लागो ।
रगत नाडिया मे
जाण पाळो जमग्या ।
ग्राख पथ ग्राख मारग
पगा म भासर रो भार लिया
धणी दौरी चाली ।[1]

गीतो का प्रयोग भी ग्राधुनिक प्रबन्ध काव्या मे होने लगा है। भावो की तीव्रता एव प्रगाढता को ग्रभिव्यक्ति प्रदान करने म उनका विशेष योग रहता है। 'राधा' तो वस्तुत ऐसे प्रगीता का ही काव्य है। 'शकुन्तला' म भी कवि ने इसी शली को ग्रपनाया है। उसका 'भरत सग' तो गीतो का सग्रह सा जान पडता है।

छद प्रयोग की दृष्टि से ग्राधुनिक राजस्थानी प्रबधकारो न मुक्त छन्द को ग्रपनाकर ग्रपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया है। सवप्रथम 'रामदूत' के प्रारम्भ म कवि न इसे ग्रपनाया है। पश्चात 'राधा' तो पूरी ही मुक्त छद मे लिखी गयी है। शकुतला के 'ग्रोळमो' सग का तानाबाना भी ग्रद्यात इस छद मे बुना गया है। मुक्त छन्द क ग्रतिरिक्त दोहा, छप्पय, कवित्त चौपाई सवया प्रभृति बहुप्रचलित छदा का प्रयोग इन कृतियो म हुग्रा है। यहा यह बात स्मरणीय है कि राजस्थानी का पारम्परिक एव विशिष्ट गीत[2] (छद)—जिसके ६० से भी ग्रधिक भेद हैं—का प्रयोग ग्राधुनिक प्रबन्ध काव्या म किसी कवि न नही किया है।

ग्रलकारा की दृष्टि स उपमा उत्प्रेक्षा ग्रनुप्रास, रूपक यमक, श्लेष ग्रपन्हुति प्रभृति ग्रलकारा का ही विशेष प्रयोग देखने को मिलता है। यहा यह बात द्रष्टव्य है कि सप्रयास ग्रालकारिकता किसी भी कवि म नहा मिलती। कथा प्रवाह म जो ग्रलकार स्वत ग्रागये ह उन्ह छोड

१ राधा श्री सत्यप्रकाश जोशी, पृ० स० ३७

२ 'गीत नाम से प्राय उस पद्यात्मक रचना का भान होता है जो गाइ जाती है परन्तु डिंगल भाषा के गीत दूसरी तरह के ह। य गाये नहा जाते विशेष ढग से पढे जात ह और इनक लिखने की भी एक खास शली है। एक गीत म तीन या तीन म ग्रधिक पद होते ह। प्रत्यक पद दोहला कहलाता है। पूरे गीत म एक ही घटना ग्रथवा तथ्य का वणन रहता ह। जिस सभी दोहला मे प्रकारान्तर से दोहराया जाता है। पहले दोहले म जो बात कही जाती ह वही दूसरे म भी रहती है, परन्तु दोहराई इस तरह जाती है कि पढने व सुनने वाल को उसम पुनरावत्ति दिखाई नही देती। गीत के कइ भेद हैं। डिंगल के भिन भिन रीति ग्रथा म इनकी सख्या भिन्न भिन्न बतलाइ गई है। उदाहरणाथ रघुवर पिंगल म ३३ रघुनाथ रूपक म ७२ और 'रघुवर जस प्रकास' म ६६ प्रकार के गीता का लक्षण उदाहरण सहित विवेचन है।'
राजस्थानी भाषा और साहित्य श्री मोतीलाल मेनारिया, (तृतीय सस्करण) पृ० स० ९२ ९५

अप्रत्यक्ष अलंकार ढूँसने का प्रयास इन काव्यों में कहीं नहीं हुआ है। अलंकारों के सम्बन्ध में एक बात और भी उल्लेखनीय है, और वह है राजस्थानी के अपने विशिष्ट अलंकार वयण-सगाई[1] के सम्बन्ध में। जिस वयण सगाई का निर्वाह प्राचीन कवि की रचनाओं में पाया गया था और जिसकी अनिवार्यता को चुनौती देने का साहस एक समय किसी भी राजस्थानी कवि में नहीं था उसी 'वयण सगाई' शब्दालंकार की आधुनिक प्रबन्ध काव्यकारों ने सर्वथा उपेक्षा की है। कहीं स्वतः 'वयण-सगाई' का निर्वाह हो गया है यह बात दूसरी है अन्यथा इसके लिए कहीं भी सचेष्ट दृष्टिगत नहीं होते।

आधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्यों में प्रयुक्त अलंकारों में भी सादृश्यमूलक अलंकारों में की गई नवीन कल्पनाएं ही पाठकों की दृष्टि को बाँधने में अधिक समर्थ हुई हैं। पर्वत शिखरों पर छितराई हुई रवि रश्मियों की यह उपमा कितनी अनूठी बन पड़ी है—

कचन किरणा भाखर माथ एनी छितरी
कु कु काची कामण जाण महला ऊतरी।[2]

'कु कु काची कामण' की महलों में मानपूर्वक उतर कर जाने की यह उपमा जहाँ बड़ी मनोरम बन पड़ी है वहाँ जीवन से थकी निराश मिमवती गान्धार पत्नी का अजित विश्वास एवं ममता की साकार प्रतिमूर्ति सुभद्रा के आँचल में अभय पाकर निढाल पड़ जाने की मुद्रा का—लम्बी यात्रा से थकित नदी एवं सागर मिलन की स्थिति से—उपमित किया जाना भी कम प्रभावी नहीं बन पड़ा है—

हायाऊ उठा सुभद्रा जद
सा र ल ढाल्स देव ही।
ज्यू ममता सागर कन नदी
थाकयोड़ी सिसकया लव ही।[3]

---

१ शब्दालंकारों में 'वयण सगाई' डिंगल का एक अत्यन्त लोकप्रिय अलंकार रहा है। यह एक प्रकार का शब्दानुप्रास है। परन्तु संस्कृत हिन्दी के अलंकार ग्रन्थों में इसका नाम नहीं मिलता। यह डिंगल का अपना अलंकार है। डिंगल के रीति ग्रन्थों में इसकी बड़ी महिमा गायी गई है और कहा गया है कि जिस स्थान पर वयण सगाई संगठित हो जाती है वहाँ फिर अशुभगण दग्धाक्षर इत्यादि के दोष नहीं रह जाते।

वयण सगाई वयण और सगाइ इन दोनों शब्दों से मिलकर बना है और इसका अर्थ होता है वयण का सम्बन्ध या वयण द्वारा स्थापित सम्बन्ध। वयण सगाई का साधारण नियम यह है कि छन्द के किसी चरण के प्रथम शब्द का प्रारम्भ जिस वयण से हुआ हो उसके अंतिम शब्द का प्रारम्भ भी उसी वयण से होना चाहिये।

वयण सगाई के सात भेद माने गये हैं जिनमें मुख्य तीन हैं—अधिक सम और न्यून। इनको क्रमशः उत्तम मध्यम और अधम भी कहते हैं।'

राजस्थानी भाषा और साहित्य श्री मोतीलाल मेनारिया, (तृतीय संस्करण) पृ०सं० ८६–८७

२ रामदूत पृ०सं० २३

३ मानखो पृ०सं० २८

इसी प्रकार 'रामदूत' म समुद्र पार करते हुए हनुमान की तुलना जिन भिन्न भिन्न स्थितियों से हुई है, वहाँ उचित का ग्रनूठापन एव उपमाओं की नवीनता एक नय सौंदय की सृष्टि करती है—

क लिक्टी ग्राभ माभ मडो यू टूट बग ज्यू पु च्छळ तारो।[1]
ख धरती ग्रम्बर बिच उडतोडो ज्यू ज्वालामुख भ कर फाटो।
ग श्री ग्रणुमान फव उडताडा पाख पसार उडयो ज्यू हिंवाळो।
घ लीलण ग्रम्बर–ऊदर न जू पुच्छ फाम पर ोट पसरगी
यू विकराळ हुयो गरज जिमि रावण मारण मोत इतरगी।[2]

इन ग्रछूती एव ग्रनूठी उपमाग्रा क ग्रतिरिक्त राजस्थानी जन जीवन एव लाक सस्कृति मे चयनित विशिष्ट उपमाना एव सम्बोधना का प्रयाग भी ग्राधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्या की ग्रपनी एक विशेषता है। य प्रयाग जहा एक ग्रार काव्य की सरसता बढान म सहायक हुय है वहा दूसरी ग्रोर राजस्थानी लाक-सस्कृति एव लोक जीवन का रूपायित करने म समथ भी। ग्राग एस ही कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'सुगनी जसोदा रा जाया'। रे म्हारा कान्ह कामणगार। म्हारी हेजळी जामण ग्रखोट पूणचों कौडीला हाथ कूँ कूँ पगल्या सुपारी सा ग्रडी मोत्या विचली लाल वादीली चूनडी ग्रादि। इसी सन्दभ म ठेठ राजस्थानी जीवन स चयनित य उपमायें भी द्रष्टव्य है—

भोळी मरवण सूख हुई ह्वै ना खोंपोळी।[3]
रामदूत देखी सूकेडी सागर सी जद सीता।[4]

सन्देश—

साहित्यकार जिस किसी भी कृति की सृष्टि करता है उसक पीछे उसका कोई-न-काई उद्देश्य ग्रवश्य रहता है। मनोरजन-के ग्रतिरिक्त किसी सामयिक समस्या का समाधान प्रस्तुत करन मानव जीवन के सम्मुख कोई ग्रादश उपस्थित करन या किसी जटिल दाशनिक पहली को सुलभान या किसी शाश्वत सत्य को उदघाटित करन या फिर एसे ही ग्रन्य उद्देश्य म प्ररित होकर वह ग्रपनी कृति की सृष्टि करता है। इन सबके पीछे प्रेरणा रूप युगीन परिस्थितिया काई विशिष्ट घटना या उसक मन का कोई प्रबल भावना कायरत हो सकती है। ग्राधुनिक राजस्थानी प्रबन्ध काव्या क पीछे जहा एक ग्रार ग्रान्श पुरुषो की जीवन गाथा प्रस्तुत कर समाज क सम्मुख एक ग्रादश उपस्थित करन की एव उनके निमल यश को गाकर स्वय को परितुष्ट करन की भावना प्रबल रही है[5] वहा दूसरी ग्रोर युगीन समस्याग्रा

१ रामदूत पृ० ३६
२ वही पृ० स० ४०
३ वही पृ० स० २५
४ वही पृ० स० ६२
५ मरुधर मयक, श्री राम देव,
महिमामय पूरण सत्यमेव ।।३६।।
मैं ग्रा रो जीवन चरित चाय
लिखणो चाहूँ स्व पर हिताय ।।३७।।
मरु मयक श्री कान्ह महर्षि, पृ० स० ६।

का कोई स गोपप्र समाधान प्रस्तुत करने की कवि की लालसा और सामयिक घटनाओं (युद्धादि) से उत्पन्न संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के प्रति लोगों में उत्साह आदि के भाव संचरित करने की कवि-इच्छा भी। रामकथा 'रामदूत' मर मयक' पूरु मूछ की मुलाकात' आदि को लिखने आदि काव्यों के प्रणयन का मुख्य उद्देश्य श्रेष्ठ चरित्रों का गुणगान कर समाज के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित करना रहा है। मानखो एवं 'देळ'यां को लिखने में भारत चीन एवं भारत पाक युद्ध की पृष्ठभूमि में लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करने और उनके सोये हुए शौर्य को उत्तेजित करने का दृष्टिकोण प्रमुख रहा है। मानखो का कवि म्हारी बात में अपने इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता हुआ स्पष्ट शब्दों में लिखता है— वीरां रो जस गावणो राजस्थान रे कवि रो परम्परा स्यूं सुभाव रयो है। वीरता रो भाव जीवतो जागतो राखण रै धरम नै इण धरती रो कवि कदै नईं भूल्यो। हूँ म्हारी रचनावां में सदा उण लीक नै निभावण री चेष्टा करतो रयो हूँ अर इण खंड काव्य में भी उणी धरम नै पालणो चायो है।[1] यही नहीं उसने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर बड़े स्पष्ट शब्दों में अन्याय प्रतिकार हेतु युद्ध का खुला समर्थन किया है—

रण नै अधरम मत को नारद
अधरम बधिये री औसद है
सगती पूजा रा सत-नादं
ओ करम अकरमा री हद है
रण जद जद लोक धरम कारण
तो परम पुन्न परमारथ है[2]

किन्तु राधा में 'मानखो' के विपरीत युद्ध की भर्त्सना की गयी है और उसकी नायिका युद्धजन्य भीषणताओं का अत्यन्त कारुणिक चित्र खींचते हुए कृष्ण को युद्ध क्षेत्र से लौट आने के लिए बार बार पुकार रही है—

मन रा मीत कान्हा रे—
जग में जमड्यो घमसाण तो
जमना में लोई र'सी नीर,
माटी र जासी लाखां बोटियां।
बस्ती में धावा रिसता सूर
लूला लगडा बण घन भाडसी।
अलघड र जासी सगळी भोम
ऊजड विरगी होसी कोटडियां।
क्यूं मेट रखवाळा री नाव,
मुन्जा फौजां नै पाछी मोडल।[3]

---

१ मानखो गिरधारी सिंह पडिहार म्हारी बात से।
२ वही पृ० सं० ८६
३ राधा श्री सत्यप्रकाश जोशी, पृ० सं० ६५

'मानखो एव राधा के अतिरिक्त 'शकुन्तला, मरु-मयक देळ या को दिवलो 'रामदूत,' रामकथा 'सीसदान' आदि सभी काव्या म युद्ध का वणन हुआ है किन्तु उनक कवि युद्ध के औचित्य-अनौचित्य को लेकर कही नही उलझे हैं।

'शकुतला म नारी के खोये हुए सम्मान को पुन प्रतिष्ठित करन म कवि न अतिशय उत्साह दिखलाया है। उसके काव्य का घोपणा पत्र भी इसी बात पर आधारित है—

जग जाए है नारी कोरी
आसू री बणी पोटळी है।
पण जग न हू जतळा दस्यू
आ मोटी शक्त जोत री है।[1]

यही नही उसन तो 'दो आखर म स्पष्ट लिखा है कि—'अनीत री शकुन्तला म ई जुगरी शकुतला वणाए रो पूरो जतन कर्‌यो है। ई जतन म ज हू सफल हो सक्यो ह तो म्हार सोभाग री बात ही हो सी।'[2] शकुतला की भाति 'माखो म भी नारी को उच्चासन पर प्रतिष्ठापित करन म कवि श्री गिरधारी सिह पडिहार ने काफी उत्साह दिखलाया है—

नारी निरमळ है भगती सी
बळ इतो जूझल जगती स्यू।
+ + +
सुभ धरम करम मरजादा री
नारी नर री रखवाळी है॥[3]

उपयुक्त कृतिया म—युद्ध एव नारी की सामाजिक स्थिति—इन दो ज्वलन्त समस्याओ को उठाकर उनका निराकरण अपने अपन ढग से करन का प्रयास हुआ है। इस प्रकार मूल रूप म इन पौराणिक एव धार्मिक कथानको वाले काव्यो का उद्देश्य अतीत के परिप्रेक्ष्य म वतमानकालिक समस्याओ को सुलझाना ही मुख्य रहा है किन्तु इसका तात्पय यह नही है कि य समस्यायें इन कृतियो पर हावी हो गई हैं। यदि ऐसा हो जाता है तो वह कृति सफल कृति नही कही जा सकती जसा कि मरु-मयक' के साथ हुआ है। अतिरिक्त उत्साह म आकर उसके कवि न न कवल वतमान युग की अछूतोद्धार एव हिन्दू मुस्लिम-एकता जसी समस्याओ को उठाया है अपितु वह बकारी भ्रष्टाचार एव विदशी भाषा के मोह जसी शुद्ध आधुनिक उलझनो मे भी उलझ पडा है। १५वी शती के कथानक म इन सब का उल्लेख किसी भी दृष्टि से उचित नही कहा जा सकता।

उपयुक्त स्थितियो स भिन्न शुद्ध तात्विक प्रश्नो का सुलझान का प्रयास डा० मनोहर शर्मा क अन्तरजामी एव अमरफळ म हुआ है। वस उनके मरवण म भी लौकिक प्रम मे लोकोत्तर प्रेम की ओर बढन का प्रयास हुआ है। अमरफळ मे मृत्यु रहस्य' जसी उलझी हुई दाशनिक पहेली का अत्यन्त सरल भाषा म सुलझान का प्रयास हुआ है—

---

१ शकुन्तला श्री करणीदान बारहठ पृ० स० १०३
२ वही भूमिका पृ० स० १४
३ मानखो श्री गिरधारीसिह पडिहार, पृ० स० १६

काया साध भावन साध,
साध संत की निरमळ टेव।
अन्तर मुख इन्द्रीगण करल,
अमरफळ पावो नर नर ॥५१॥[1]

अंतरजामी के मूल मन्तव्य की ओर इंगित करते हुए श्री तुलाराम जोशी ने काव्य के प्रारम्भ में लिखा है— 'मूल रूप में 'अंतरजामी' काव्य वर्तमान युग के लिए एक उद्बोधन गीत है। इसमें समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त अन्तर्यामी की महिमा प्रकट की गई है, जो भारतीयता का एक स्निग्ध सन्देश है। साथ ही इसमें परमाणु अस्त्रों से सज्जित वर्तमान मानव को उसकी अहंकार वृत्ति के निराकरण के लिए सजग किया गया है।'[2]

इस प्रकार *स्वान्तः सुखाय और परहिताय लौकिक समस्याओं के समाधान और पारलौकिक* जगत की उलझन भरी गुत्थियों को सुलझाने, शुद्ध लौकिक प्रेम एवं विशुद्ध ईश्वरीय प्रेम जैसे अनेक प्रमुख बिन्दुओं को दृष्टिपथ में रखकर, आधुनिक राजस्थानी प्रबन्धकाव्यों के प्रणेताओं ने काव्य रचना की है।

---

१ अमरफळ डा० मनोहर शर्मा वरदा वर्ष १, अंक २
२ अंतरजामी डा० मनोहर शर्मा वरदा वर्ष ५ अंक ३

प्रकृतिकाव्य

प्रकृति और मानव का आदिकाल से ही घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। विश्व प्रांगण में नेत्र खोलते ही मानव का जिससे प्रथम परिचय (साक्षात्कार) हुआ था वह थी प्रकृति। प्रकृति का रम्य एवं मनोरम, क्रूर एवं भयावह, शांत एवं स्थिर, आलोडित एवं उद्वेलित, ऐसा कौन-सा रूप है जिसे मानव ने नहीं देखा है? कभी वह प्रकृति के रहस्यों को विस्फारित नेत्रों से देखता रहा है तो कभी उसका हृदय प्रकृति के रौद्र रूप को देखकर भय मिश्रित श्रद्धा से भर उठा। कभी वह प्रकृति की सौंदय-छटा को कुतूहलभरी नजरों से निहारता रहा है तो कभी उस प्रकृति के कण-कण से अपार स्नेह बरसता प्रतीत हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव जाति के आदिकाल से ही प्रकृति और मानव का साहचर्य प्रतिपल का बना हुआ है और आज भी प्रकृति से बहुत कुछ दूर हटकर भी वह प्रकृति से असम्पृक्त नहीं हो पाया है। सुख और दुःख, हर्ष और विषाद की सहचरी प्रकृति को लेकर मानव मन को जिन नाना भावों की अनुभूति हुई उनकी विविध रूपों में अभिव्यक्ति, उसके साहित्य में आदिकाल से ही मिलती है। विश्व की अन्यान्य भाषाओं की भांति राजस्थानी भाषा में भी प्रकृति का स्थान अन्यतम रहा है। उसके आदिकाल से लेकर आजतक के साहित्य में हम प्रकृति को किसी-न-किसी रूप में निरंतर चित्रित अवश्य पाते हैं। हां, युगीन परिस्थितियों और तात्कालिक साहित्यिक मान्यताओं के अनुसार कभी उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण की प्रधानता रही तो कभी आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण की।

राजस्थानी साहित्य में प्रकृति चित्रण के इतिहास को अंकित करने से पूर्व एक बात स्पष्ट कर देनी आवश्यक प्रतीत हो रही है और वह है-राजस्थान की प्राकृतिक स्थिति। संभवतः राजस्थान प्रदेश को अपनी सौन्दर्य सुषमा प्रदान करने में प्रकृति ने सर्वाधिक कृपणता का परिचय दिया है। फलतः यहाँ के साहित्य में उसकी उन नानाविध मोहक छवियों का अंकन नहीं हो पाया है जिनका अत्यन्त आकर्षक एवं हृदयहारी चित्रण संस्कृत आदि के साहित्य में मिलता है।

प्राचीन राजस्थानी साहित्य में अधिकांशतः उद्दीपन रूप में ही प्रकृति चित्रण हुआ है। प्रकृति को आलम्बन बनाकर स्वतंत्र प्रकृति काव्य के प्रणयन का अभाव न केवल राजस्थानी में ही देखने को मिलता है वरन् हिन्दी की तात्कालिक सभी उपभाषाओं की यही स्थिति रही है। उस समय के साहित्य में प्रकृति को जहाँ कहीं आलम्बन बनाया भी गया है तो भी प्रसंग की अनुकूलता के आधार पर अन्यथा अधिकांश में तो संयोग और वियोग की पृष्ठभूमि में उसका उद्दीपन रूप में ही विशेष रूप से अंकन हुआ है। आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण की दृष्टि से श्री नरोत्तमदास स्वामी ने 'वसन्त विलास' को राजस्थानी

की प्रथम उल्लेखनीय कृति बतलाया है ।[1] वसे आधुनिक काल म पूव तक राजस्थानी साहित्य म बारहमासा' पट ऋतु वणन आदि के रूप म प्रकृति क उद्दीपन रूप म वणन की ही प्रधानता रही है। ढोला मारू रा दूहा और वेलि क्रिसन रुक्मणि री जसी कृतियो म भी कठिनाई स कही दो चार स्थलो पर प्रकृति का आलम्बन रूप म चित्रण हुआ है[2] अन्यथा वहाँ भी उद्दीपन रूप म ही प्रकृति चित्रण का प्राधान्य रहा है ।[3]

राजस्थानी साहित्य म आलम्बन रूप म प्रकृति चित्रण की प्रवृत्ति का प्रस्फुटन तो वस्तुत आधुनिक काल स ही हुआ है । पाश्चात्य साहित्य से सम्पक के कारण ही प्रकृति भी स्वतन्त्र रूप म काव्य प्रणयन का विषय मानी जान लगी है । राजस्थानी कवियो ने लगभग ३०–३५ वष पूव ही इस बात को स्वीकार कर लिया था । इसम पूव या तो सुधारवादी आन्दोलना स प्रेरित होकर जातीय उत्थान-सम्बन्धी उदबोधनात्मक गीत ही राजस्थानी म लिखे जाते रह या फिर राजदरबारा एव सामन्तो की छत्रछाया म पारम्परिक शली का साहित्य ही मुख्यत रचा जाता रहा । वसे इस अवधि म भी छुटपुट रूप स इतिवृत्तात्मक शली म प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताए लिखी जाती रही हैं । श्री धमचन्द सेमका की ग्रीष्मागमन एक एसी ही रचना है जिसम बडे सपाट ढग से ग्रीष्म ऋतु का वणन हुआ है ।[4] श्री समका

---

१ प्राचीन राजस्थानी और प्राचीन गुजराती का वसन्त विलास काव्य एक भावुक कवि हृदय से निकली हुई अत्यन्त मनोहारिणी रस से सराबोर काव्य रचना है ।

प्रस्तावना, वळायण पृ०स० ६

२ जिण भुईं पन्नग पीयणा कयर कँटाळा रूख ।
आके फोगे छाहडी हू छा भाजई भूख ।।६६१।।

ढोलामारू रा दूहा, स श्री नरोत्तमदास स्वामी प्रभृति पृ०स० १६०

बाजरिया हरियाळिया विचि विचि वेलाँ फूल ।
जउ भरि वूठउ भाद्रवउ मारू देश अमूल ।।२५०।।

वही पृ०स० ५७

३ निहसे वूठौ घण विण निळाणी
वसुधा थळि थळि जळ वसई
प्रथम समागम वसत्र पदमणी
लीधे विरि ग्रहणा लसई ।।१६७।।

वेलि क्रिसन रुक्मिणी री पृथ्वीराज राठौड
स सूयकरण पारीक प्रभृति पृ०स० २२३

सावण आयउ साहिबा पगई विलबी गार ।
अच्छ विलघी बलडया नरा विलबी नार ।।२६६।।

ढोला मारू रा दूहा पृ० स० ६२

४ ऋतुराज कीनो छे गमन, यो ग्रीष्म भारी आगयो
गरमा गरम लूवा चले अब तावडो पडने लग्यो ।
तप्तसू भूमि तप छे मिनख अब घबरा रह्या
हालत बुरी छे हो रही अब ग्रीष्म म दुख पारह्या ।।
मारवाडी हितकारक, वप ३ अक २, पृ० स० ४४, मई १९२१

की इस रचना के अतिरिक्त भी प्रवासी राजस्थानी यदा कदा एसी रचनाओं की सजना करते रहे। उधर राजस्थान मे भी सामन्ती साहित्य क समानान्तर जन जागरण को बढावा दन वाले साहित्य का सृजन होता रहा। इस साहित्य द्वारा मुख्यत शोषण के विरुद्ध सघष के लिए प्रेरणा और जागृति के स्वर फूके गये। प्रकृति को यदि आलम्बन बनाया तो वहा भी उनका यही विद्रोही स्वर प्रमुख रहा। प्रकृति उनके लिए मुख्य प्रतिपाद्य नही थी, वे उसके माध्यम म सामाजिक विषमताओ को ही अंकित करने म रुचि प्रदर्शित करते रह—

> महला पोडया पातळिया सिया मरे
> ऊपर ओढया है शाल दुशाल।
> करमा काकड म कमतर कर,
> ज्यारो काई होनो होसी हवाल॥
> कमधजिया नहि कमतर कर
> पडया खावे फुलाव है गाल।
> राता बाजे वरारी पानडी
> वाधे क्यारा री करसा पाळ॥[1]

इस प्रकार आधुनिक काल के प्रारम्भिक चरण म जो प्रकृति चित्रण हुआ है, उस विशुद्ध प्रकृति चित्रण नही कहा जा सकता।

आधुनिक राजस्थानी साहित्य म प्रकृति का प्रधानता दते हुए काव्य रचना का आरम्भ श्री चन्द्रसिह कृत बादळी[2] के साथ हुआ। इसके पश्चात तो कळायण[3] लू[4] साझ[5] दसदेव[6] मेघमाळ[7], प्रभृति स्वतन्त्र प्रकृति काव्यो की रचना बराबर होती रही। इन स्वतन्त्र काव्यो क अतिरिक्त प्रकृति चित्रण से सम्बन्धित शताधिक रचनायें मुक्तक रूप म लिखी गई हैं और प्रबन्ध काव्यो म भी प्रासगिक रूप से प्रकृति चित्रण के अनेक स्थल आये है।

राजस्थान प्रदेश की विशेष प्राकृतिक स्थितियो क कारण यहा प्रकृति चित्रण सम्बन्धी काव्य म सुन्दर की अपेक्षा शिव का प्राधान्य रहा है। शिव की यह रुझान बादळी लू कळायण मेघमाळ साझ प्रभृति स्वतत्र प्रकृति काव्य प्रणेताओ और मुक्तक काव्य-लेखको म समान रूप से देखा जा सकती है। दसदेव म तो यह शिव भाव इतना प्रबल हो उठा है कि यह काव्य मरुभूमि क दस प्राकृतिक उपादानो का उनकी उपयोगिता से प्रेरित होकर लिखा गया प्रशस्ति गान ही बन गया है। यही स्थिति एक सीमा तक कळायण की भी रही है। उसम भी कवि वर्षा ऋतु की मनोरम छटा का

---

१ सियाळो श्री सावलराम शर्मा आगीवाण, वर्ष १ अक ३ पृ० स० ७
२ श्री चन्द्रसिह प्र०का०–वि०स० १९९८
३ श्री नानूराम सस्कर्ता प्र०का०–वि०स० २००६
४ श्री चन्द्रसिह प्र०का०–१९५४
५ श्री नारायणसिह भाटी प्र० का०–१९५४ ई०
६ श्री नानूराम सस्कर्ता प्र० का०–१९५५ ई
७ श्री सुमेरसिह शेखावत प्र० का०–वि० स० २०२१

वर्णन इतनी तन्मयता से नहीं करता जितनी तन्मयता से वह वर्षा से होने वाले लाभों और कळायण की अनुकम्पा से मरु जीवन में संचारित होने वाले सुखों का वर्णन करता है। यहाँ के कवि बड़े अनुनय भरे स्वरों में बादळी की मनुहार करते हुए कहते हैं--

क जीवण न मह तरसिया
बजड भरवै वार
बरसै भोळा बादळी
आयो आज असाढ़।
आस लगाया मुरधरा
देख रही दिन रात
भागी आ तू बादळी
आयी रुत बरसात।[1]

ख वूठ कळायण मुरधरा पूरण आसी आस
तो तूठयां रा रंग रना मोजा बारा मास।[2]

ग अगन-झळा उकळ उनाळो
अवनी बणी अलाव
ओ असाढ रा मेघ अचपळा
अब तो बरसण आव।
धारयो लुआ दुधारो।
मरुभोम-मुसाणा--
भुळस जीव जमारो[3]

यह अनुनय-विनय वर्षा तक ही सीमित नहीं है लू का स्वागत भी इसी संदर्भ में किया गया है। वही तो आखिर प्राणदायिनी बादळी की जन्मदात्री है--

क सोभा सकल बसन्त री सौंप मुरधर आप
लू आ थे फूलो फळो पावो सुख अणमाप[4]

ख जीवण दाता बादळ या था सू जीवण पाय
भल लूआ आजो किती मुरधर सहसी लाय[5]

आधुनिक राजस्थानी प्रकृति काव्य की एक और प्रमुख प्रवृत्ति-प्रकृति को लोक धरातल पर निरूपन परखने की रही है। प्रकृति के स्वतन्त्र रूप से चित्रण की अपेक्षा प्रकृति और मानव जीवन का संश्लिष्ट चित्रण उसमें अधिक मिलता है। श्री ससर्ता में तो यह प्रवृत्ति सबसे अधिक मुखर रही है।

---

१ बादळी श्री चन्द्रसिंह पृ० सं० २ एवं ३
२ कळायण श्री नानूराम संस्कर्ता पृ० सं० ५
३ मघमाळ श्री सुमेरसिंह शेखावत पृ० सं० १
४ लू श्री चन्द्रसिंह पृ० सं० १ (द्वितीय संस्करण)
५ वही पृ० सं० ७१

श्री नारायणसिंह भाटी कृत साम, श्री चन्द्रसिंह कृत बादळी और श्री सुमेरसिंह शेखावत कृत मघमाळ में भी प्रकृति का लोक जीवन सापेक्ष चित्रण देखने को मिलता है।[1]

इस प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही प्राकृतिक परिवर्तनों के सम्बन्ध में प्रचलित नाना विश्वासों और रूढ़ मान्यताओं का इन कवियों ने सोत्साह ग्रहण किया है। वर्षा को लेकर, राजस्थान के जनमानस में जो विश्वास घर किये बैठे हैं उनकी अभिव्यक्ति प्रायः सभी प्रकृति काव्य प्रणेताओं में समान रूप से मिलती है—

> क. ऊगत भाण्यां भाण्ड्या दिखना नागी माग
> सूरज तवडो तावियो बर विरगा सजोग।[2]
>
> ख. हालर पड़ा तग रहा जा जाए बरसून
> मिनया पता भावमा साचो करगा सगून।।[3]
>
> ग. पार्जा मन-माजा चिड़कलिया
> हाव रज-न्हाए।
> माम पनमा मरण-उबाळ,
> माठर सगन मणाऊ।
> मडसी मघ मोकळा—
> मोत्या मह मघाऊ।[4]

उपर्युक्त शकुनों और लोक विश्वासों के अतिरिक्त, लोक जीवन का प्रभाव जो एक अन्य रूप में भी राजस्थानी काव्यों में देखा जा सकता है वह है—लोक काव्य से प्रेरणा। श्री सरस्वती विशेष रूप से इससे प्रभावित हैं। उनकी कळायण में कई स्थलों पर ऐसा लगता है कि किसी लोक-गीत को ही साम्यिक हेरफेर के साथ प्रस्तुत कर दिया गया है—

---

१ क नाच्यां निरख खेत हून हर हरियाळी
बाजर बरबर' बोल बुळाव तिल द ताळी
हुवा हरा पान, पूनमिम पन्ना खीच
आणंद वर्षं अपार आभ जद माच्या भीच
हाली सोळी मातरी, भीगी छाटा ओमर
करमा खाती जोय खेतडा, मोद मना अभिनय कर
कळायण सरस्वती पृ० सं० ८८

ख चोव कच्चा आसरा पडव नीच अपार
रे माटी नर पूगिया, छाता पर उरा वार।
बादळी चन्द्रसिंह पृ० सं० ४७

२ बादळी श्री चन्द्रसिंह पृ० सं० २५ चतुर्थ संस्करण

३ कळायण श्री नानूराम संस्कर्ता पृ० सं० १६

४ मघमाळ श्री सुमेरसिंह शेखावत पृ० सं० ११

नीमा पर पाकी पणी नीमोळयां रसाग़र
सावणियो बर्व आवसी माइण हाइ मतार।
(कळायण श)

नीम नीमोळया पारी सावणिया बर्व आसी घो राज।[1]
(लाकगीत)

लाकगीता की यह गुनगुनाहट 'कळायण' म कुमारी कन्याम्रा द्वारा वर प्राप्ति क लिय गाये गीत म भी स्पष्ट सुनी जा सकती है।

लोकगीतो की यह प्रभाव केवल इन प्रकृति काव्यो तक ही सीमित नहीं रहा है अपितु प्रकृति को आधार बनाकर लिख गय अनेक गीता और कविताओ म भी उनके उभरे हुए स्वर स्पष्ट सुन जा सकते हैं। श्री मदन गोपाल शर्मा के काव्य-सग्रह गोखे ऊभी गोरडी[2] म सग्रहीत सिड़कोली[3] 'घिर घिर आई बादळी'[4] गाज है मवलो[5] सुरगो सावण लागियो[6], श्री गजानन वर्मा की अम्बर बिमक बीजळी[7] कुरदातळी[8] श्री कमलाकर का बसन्त रो गीत[9] आदि अनेक रचनाए इस कोटि म आती हैं।

आधुनिक राजस्थानी काव्यकार न प्रकृति चित्रण क प्रचलित विविध रूपो म से आलम्बन उद्दीपन एव मानवीकरण रूप को ही विशेष अपनाया है। वस प्रतीक उपदेश एव अलकार रूप म भी प्रकृति चित्रण हुआ है, किन्तु उन तीनो की तुलना म बहुत ही कम। यही वह बिन्दु है जहाँ से उसे प्राचीन राजस्थानी प्रकृति काव्य से अलगाया जा सकता है। प्राचीन राजस्थानी प्रकृति-काव्य म जहाँ मुख्यत उद्दीपन रूप म प्रकृति चित्रण की प्रधानता रही है वहाँ आधुनिक काल म प्राधान्य आलम्बन रूप म प्रकृति चित्रण का रहा है और प्राचीन काल की अपेक्षा अन्य अन्य रूपो म प्रकृति चित्रण भी पर्याप्त मात्रा म हुआ है। बादळी' 'लू' कळायण साझ मघमाळ आदि सभी प्रकृति काव्यो म

---

१ कळायण श्री नानूराम सस्कर्ता पृ० स० १२
२ गोखे ऊभी गोरडी प्रकाशक-राजस्थान लेखक सहकारी समिति लि० जयपुर।
३ वही पृ० स० १३
४ वही पृ० स० १७
५ वही पृ० स १६
६ वही पृ० स० २०
७ ओळमो मई १६७ पृ० स० ३२
८ वही पृ० स० ३३
९ मरवाणी वष २-अक ३-४ पृ० स० ३

मुख्यत आलम्बन रूप से ही प्रकृति–चित्रण हुआ है ।[१] दैनन्दिन जीवन म खेल जा रह प्रकृति के रोल एव उसके नाना मनोहारी तथा रौद्र रूपो को अकित करने म इन कवियो ने विशेष उत्साह प्रदर्शित किया है । श्री सत्स्वर्ता म जहा कल्पना-जन्य रम्य चित्रो के स्थान पर मानव जीवन को प्रभावत करन वाले प्रत्यक्ष दृष्टिगत होन वाले स्थूल चित्रो का अकन हुआ है वहा श्री चन्द्रसिह एव श्री नारायणसिह भाटी मे कल्पना के रगीन चित्रो की ओर झुकाव अधिक रहा है । श्री भाटी मे तो छायावादी नजरिये के कारण यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मुखरित हुई है । स्वतत्र प्रकृति काव्यो की भाति प्रकृति चित्रण सबधी स्फुट कविताओ म भी आलम्बन रूप म प्रकृति चित्रण का प्राधान्य रहा है किन्तु उनम उद्दीपन रूप म प्रकृति चित्रण भी कम नही हुआ है । प्रकृति को स्वतत्र रूप स आलम्बन बनाकर स्फुट कविताओ की सजना करन वाल कविया म श्री गजानन वर्मा श्री कन्हैयालाल सठिया श्री मदनगोपाल शर्मा श्री मनोहर 'प्रभाकर' श्री किशोर कल्पनाकात श्री सौभाग्यसिह शेखावत श्री कल्याणसिह राजावत, श्री गोपाल सिह राजावत, श्री कल्याणसिह शेखावत श्री सुमनेश जोशी, स्व० गणेशीलाल व्यास उस्ताद' श्री त्रिलोक गोयल डा० मनोहर शर्मा श्री सत्येन जोशी श्री उदयवीर शर्मा प्रभृति का नाम उल्लखनीय है । इन सभी कविया की रचनाएँ मुख्यत मरुवाणी 'ओळमो एव वरदा तथा छुटपुट रूप म अन्य पत्र-पत्रिकाओ' म प्रकाशित होती रही हैं ।

---

१ क मिरगलिया सा भर चौकड्या
भादूड रा लोर ।
छिया—तावड री ल्हैरा उड—
मिण धरा रा छोर ।
भाजी फिर लगन सू ।
पिछवा चाल पून, न
बरस छाट गगन सू ।

मेघमाळ श्री सुमेरसिघ शेखावत पृ० स० ६०

ख खिण दक्खण खिण उतर दिस
खिण चोगरदी चट्ट
कुण जाण किण खोज म
बीज भफाभप भट्ट ।

बादळी श्री चन्द्रसिह पृ० स० ३३ (पचम सस्करण)

ग जगाणो उरसा सेज मयक
समन्दर हिवड लहरा हार ।
अरक चा आग भप आभूण
उतर बादलिया सिणगार ।

साभ श्री नारायणसिह भाटी पृ० स० १५

उद्दीपन रूप म प्रकृति चित्रण प्रधानत सयोग और वियोग की पृष्ठभूमि मे ही हुआ है। पारम्परिक ढग से सयोग के क्षणो म प्रकृति को सुखभाव को और अधिक बढाते हुए और वियोग के क्षणो मे दु खभाव को और अधिक गहराते हुए चित्रित किया गया है[1]। इन परिस्थितियो के अतिरिक्त कही-कही सामान्य स्थिति मे भी प्रकृति प्रेरणा से आन्दोलित मानव मन का बडा ही सहज एव स्वाभाविक अकन हुआ है।

लीक से हट हुए य वर्णन अपने वैशिष्ट्य के कारण सहज ही रमणीय बन पडे हैं। वर्षा का मौसम है चारो ओर उमग भरा वातावरण है। प्रफुल्लता के इन क्षणो मे बालको की स्वाभाविक उल्लास भरी क्रीडाओ के य दृश्य द्रष्टव्य हैं—

नान्हा गीगा पालणा खिल खिल अछळिया
चूस गूठो चावसू, मार पगलिया ॥
बालक रमै गुडाळिया छोटा टाबरिया
छाटया पकडण छोळ मे रुड रुड लडखडिया।
तिरिया मिरिया तालडा टाबर तडपडताह
भाग तिसळ खिलखिल छप छप पाणी माह।[2]

---

१ (क) मिमजर माळा घातिया
कोयलडी कुरळाय।
ऊबा लागे अणखणी,
हियो हिंडोळा खाय ॥
लड भूबा लूबा हुई
वेना तरवर डाळ।
चूनिये री लूब क
भूव पिव गळ डाळ ॥

प्रोळ, श्री नारायणसिंह भाटी पृ०स० ११ एव १७

(ख) मुग्ग मारा क्रिया कळाव सायघण हिवडो घूमर खाय।
गाजता पीव पयोधर माद आखडी लूबा-भड उळभाय।

साझ नारायणसिंह भाटी पृ०स० ४३

(ग) साझ री सोन्या सूनो गेह जागियो जोबन रो सिणगार।
टळिया नैणिया हृदा नीर हाला हिवड री मनुहार।

वही पृ० स० ५१

कुरजा कागा, मुरटा विरहण कब सनस
पठया। बरस्यो पीवन बरसा तरस दम।

बटाऊ श्री नानूराम सस्कर्ता पृ०स० ३६

२ बादळी श्री चन्द्रसिंह पृ०स० ५५ एव ५७

श्री सस्कर्ता कृत कळायण मे भी ऐसे ही बालमन के उत्साह का अतिरेक इन शब्दो म अभिव्यक्त हुआ है—

चभळ चभळ कर चालता ढळन पाणी पाळ ।
तडपडता तिसळन पड तिरण ताई बाल ।।[1]

बाल मनोवृत्ति का कैसा सुन्दर अकन है । तालाब पानी स लबालब भरे हैं । तालाबो की पाळ की चिकनी मिट्टी का गीलापन सूखा नही है । महीनों की प्रतीक्षा के पश्चात भरे इन तालाबो म तरने का लोभ सवरण करना बच्चो के लिए बडा कठिन हो रहा है । उपालम्भ म बचने क लिए वे जानबूझ कर टलवापाळ की गीली मिट्टी पर दौडते हैं और फलस्वरूप एकदम फिसलकर पानी भरे तालाब म जा गिरते हैं, अब भला उन्हें तरने स कसे रोका जा सकता है ?

प्रकृति के उद्दीपन रूप के चित्रण मे बारहमासा एव षटऋतु-वणन का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है । वर्ष की बारह महीनो की बदलती प्राकृतिक स्थितियो का उल्लख करती वियोगिनी नायिका परदेश गये अपने प्रियतम को लौट आन का आग्रह इन बारहमासा म करती है । राजस्थानी मे 'बारहमासा' की एक सुन्द परम्परा रही है । यद्यपि साहित्य जगत म आज यह धारा काफी मन्द पड गयी है, किन्तु सवथा अवरुद्ध नही हुइ है । श्री विमलेश का लुगाया का गीत[2] नाम से लिखित बारहमासा श्री गजानन वमा की 'बारहमासा'[3] नामक लम्बी कविता और उन्ही की 'बारहमासा'[4] नामक काव्य कृति इस कथन की पुष्टि करते हैं । पारम्परिक बारहमासा और इन आधुनिककालिक बारहमासो म कोई मौलिक अन्तर नही है । प्रारम्भ मे बदलती हुई प्राकृतिक स्थितियो की ओर सकेत और पश्चात अपनी विरहव्यथा की अभिव्यक्ति यही क्रम इनमे भी रहा है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

ओजियो
बसाख बितायो धरती पर फूली भार बसत की
विरछ विरछ की डाल डाल प नइ-नइ पतिया लागी
जो साजन सै बिछड गई थी व इब पाछी आगी
जी थे भी हठ छोडो
पाळो थे या ही रीत लिखन की
दिनभर तो अगनी सी बरस रायू लूवा चाल
बदन अमस ण्या की हो तर को पान न हाल
जी जी की जी जाण
सूझे ना कोई बाना सत की[5]

---

१ कळायण पृ०स० ३४
२ सतपक्वानी श्री विमलेश पृ० स० ८७ प्र० का०—१९५८ ई०
३ सानो निपज रेतम श्री गजानन वर्मा प्र० का०—वि० स० २०२१ (द्वितीय सस्करण)
४ श्री गजानन वर्मा प्र० का०—वि० स० २०२१
५ सतपक्वानी विमलेश पृ० स० ९०

श्री गजानन वर्मा कृत बारहमासा की—लोक जीवन की ओर रुभान और संगीत तत्व की प्रधानता[1]—दो उल्लेखनीय विशेषताएँ है। वैसे पारम्परिक 'बारहमासा' से कोई उल्लेखनीय भिन्नता उसमें भी नहीं उभर पाई है। हाँ, प्रत्येक माह के गीत से पूर्व की चार पंक्तियों की योजना–जाकि दोनों के मध्य सेतुबंध का काय करती है[2]—अवश्य ही कुछ नवीनता लिये हुए हैं, अन्यथा तो अधिकांश में तो वर्णन उसी पारम्परिक शैली में हुआ है—

> माघ रो महीनो आयो वन बागा रंग सवायो
> चिड़कलिया माळा घाल, नणदूली भारी चाल
> भंवरा फूलाँ पर डोल कळियाँ स घू घट खोल
> मौसम बासंती आव था बिन जिवड़ो दुख पाव
> सामळो आव फागण नाचतो, चारु कू टाँ मे गूंज गावणा।[3]

मानवीय काय कलापों और मानव सौंदर्य को उपमित करने के लिए प्राकृतिक क्रियाओं एवं उपमानों का प्रयोग साहित्य में प्राचीन काल से चला आ रहा है। उसी तरह प्रकृति के काय व्यापारों पर मानवीय भावों के आरोपण की प्रवृत्ति भी नूतन नहीं कही जा सकती, यद्यपि हिन्दी साहित्य में व्यापक रूप से इसका उपयोग छायावादी काव्य में ही देखने को मिलता है। राजस्थानी साहित्य में सायास इस प्रवृत्ति को अपनाने का प्रयास तो साँभ काय में ही हुआ है किन्तु बादळी 'लू' कळायण आदि में भी अनेक स्थलों पर सहज रूप में ही प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण हुआ है। 'बादळी' और लू में तो कवि ने दोनों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकारते हुए उन्हें एक जीवित प्राणी के रूप में मानते हुए और अनेक स्थलों पर उन्हें सम्बोधित करते हुए अपनी बात कही है। बादळी में प्रकृति मानव की तरह ही हँसती रूठती ईर्ष्या और द्वेष से दग्ध होती एवं प्रसन्नता से खिलखिलाती हुई चित्रित हुई है। प्रियतम सूर्य को बादली प्रेयसी की कौनसी पोशाक पसन्द आयेगी वह यह स्थिर नहीं कर पा रही है फलतः चपला नायिका की भाँति क्षण क्षण में वेश परिवर्तित कर वह स्वयं को निरख परख रही है—

> पहर बदळ बादळी
> बदळ पहर बदळाय
> सूरज साजन न सखी
> कुण सी आसी दाय।[4]

---

१ 'गीता र बीच बीच म आयोड़े मुक्तका ने जे कथनी (कमटी) माना तो पूरो बारहमासा एक संगीत रूपक (ओपेरा) ज्यू रगमच माथ खल्यो जा सके। कई गीत भावगीता (ACTION SONGS) क रूप म और कई नाच र गीता की द्रिस्टी सू ही लिख्या गया।
पाठकाम् बारहमासा गजानन वर्मा पृ० स० ३२

२ हरेक गान सू पली मुक्तक दियो है आ खातर क एक म्हीनें र गीत रो दूज म्हीन र गीत सू मेल बण्या र सक न भावा रो तातो बिगड़ नहीं।
वही पृ० स० ३२

३ बारहमासा श्री गजानन वर्मा पृ० स० ६६

४ बादळी पृ० स० १५ (चतुर्थ सस्करण)

बेचारी बदली तो सूरज स जन के लिए यो परेशान हो रही है और उधर जरा उन साजन महोदय के तो रगढग देखिये—

रमियो रवि सार न्विम
मेटी कुळ री काण।
लाली लूग्रा लूटली
ग्राथरा पीळो नाए।[1]

इसे तो परकीया नायिकाग्रो के साथ रमरा करन स ही फुसत नही मिल रही है, लेकिन लू के साथ सूय का यह रमरा महँगा पडा। स्वय लू के घर का ही क्या हाल हुग्रा, यह भी दृष्टव्य है—

चाद किरण रात्यू रमी
कौरा टीवडिया
भात पली भू जिया
लूग्रा कडकडिया ।।[2]

लू दिनभर पराय पुम्प के साथ रमरा करती रही ग्रौर उधर उसका गहस्वामी टीबा (वालुका स्तूप) च द्र किरणो के साथ रगरेलिया मनाता रहा, यह बात दूसरी है कि बेचारे निबल पति की चारी पत्नी गयी ग्रौर उस नायिका की कोपाग्नि का भाजन बनना पडा।

प्रकृति जगत म मानवीय भावनाग्रो का कसा स्वाभाविक एव प्रभावी ग्रारोपरा हुग्रा है। कवि चन्द्रसिंह की लू ग्रौर 'बादळी' म ऐसे ग्रौर भी ग्रनेक स्थल है जहा प्रकृति पर मानवीय काय यापारो ग्रौर भावनाग्रो का सुन्दर ग्रारोपरा हुग्रा है।

बादळी' का सूरज तो कुल री काण मेटने वाला ह किन्तु क्या कळायरा का सूरज भी ऐसा है? नहा। वह तो बेचारा एक ग्रादश पति की भाति स्वय प्रियतमा धरा से मिलन का बन-सवर रहा है—

बादील नभ बाधियो पचरग पेचा तारा
हरखरा लागी धरा धरा सजतो साजन जारा।[3]

कळायरा का यह सूरज पति जितना सीधा ग्रौर सरल है, उसका चपल बालक बादल उतना ही नटखट ग्रौर शतान है तभी तो—

बादळ छोटा बाळका ग्राभ कोठ ग्राय
ग्राळा नाळो काढियो पाणी रह्या बुबाय।।[4]

उसने चुपचाप जाकर ग्राकाश रूपी 'कोठ' का नाला धीरे मे खोल दिया ग्रौर वही पानी वर्षा के रूप म बहकर पृथ्वी पर ग्रा रहा है।

ग्राधुनिक राजस्थानी काव्य म ऐसे ग्रनेक स्थल मिल जायेगे जहाँ प्रकृति पर मानवीय भावो को ग्रारोपित किया गया है। स्वतन्त्र प्रकृति काव्य एव प्रब ध काव्यो तगत ग्राये प्रकृति वर्णन तथा मुक्तक

---

१ लू पृ स० ६१ (द्वितीय सस्करण)
२ वही पृ० स० ६३ (द्वितीय सस्करण)
३ कळायरा, पृ० स० १८
४ वही पृ० स० २६

प्रकृति-काव्य के उन सब स्थलो की ओर यहाँ इंगित भर ही किया जा सकता है, जिनमें प्रकृति का मानवीकरण रूप में अंकन हुआ है।

श्री नारायणसिंह भाटी कृत साँझ काव्य में सन्ध्या सुन्दरी की रूप-सुधा और कमनीय काय विधि के बड़े चित्ताकर्षक वर्णन हुए हैं। रूं-रूं जैसे रक्ताभ परों वाला सन्ध्या-सुन्दरी के प्रकृति रंगमंच पर आगमन और पश्चात की विभिन्न भाव भंगिमाओं एवं मुद्राओं के जो मौन चित्र यहाँ मुखरित हैं वे कितने भव्य बन पड़े हैं—

(क) आव कूं कूं पगल्या मन
 अठ तो काटा रो ससार'
 सन ना धोसू हळदी चीर
 जिकण म रिमझोळा रो भार'
(ख) लुकाती दिवलो अवर ओट
 निरखवा आई ओ ससार।
 धड़कती छाती धीमी चाल
 मुळकता नैणा सुरमो सार।
(ग) अेकली छाह नहाव नीर
 लहरा धुप लहरियो रग।
 साझ रो लूटण रूप अथाग
 पवनियो तिरसौ वणै तरग।[1]

वस्तुत साझ का यह रग रूप छायावादी शैली एव शिल्प की ही देन है किन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि कवि ने छायावादी रचनाओं का अनुवादभर करके रख दिया है या छायावादी कवियो के भावो को राजस्थानी म प्रस्तुत कर दिया है।

चित्रात्मकता राजस्थानी प्रकृति काव्य की एक अन्य उल्लेखनीय विशेषता है। लू बादळी और साझ के चित्र सहज ही मन को बाध लेते हैं। लू के एक-एक छन्द म जिन वारणिक चित्रो की सृष्टि की गई है, वे बडे मर्मस्पर्शी बन पडे हैं। भीषण गर्मी और तप्त लूओ म जीवन के लिए व्याकुल बन मृगयूथ का क्रूर काल से जूझते हुए जसा हृदयद्रावी अकन 'लू म हुआ है उसके दर्शन राजस्थानी प्रकृति काव्य तो क्या अन्यत्र भी दुर्लभ हैं। 'लू के इन्ही भावो से प्रेरित होकर प्रसिद्ध चित्रकार आचार्य नन्दलाल बसु ने जो चित्र इस कृति के आरम्भ म बनाया है वह इस कथन की साक्षी दे रहा है। लपटो के रूप म पिघली हुई ज्वाला के प्रवाह म पडी हुई गर्भवती हरिणियाँ उनसे त्राण पाने के लिए भागी जा रही हैं लेकिन जाए भी तो कहाँ—

पेट भार हिरण्या वहै रह यो न ओगो कोय।
रूआ रूआ नीसर लूआ धूआ लोय॥[2]

---

१ साझ श्री नारायण सिंह भाटी पृ० स० ५ और ३७
२ लू श्री चन्द्रसिंह पृ० स० १९

भीषण गर्मी के कारण प्यास से व्याकुल मृगयूथ जो कभी पानी पीने के लिए जावता जैसा छोळा छोळ, अब खेळ्या में टूट्या पड्या काळा दिन घोळा, किंतु दुर्भाग्य यहां भी तो उनका पीछा नहीं छोडता। मानव द्वारा तालावों की पाळ पर रखे गये पानी से भरे मिट्टी के बर्तन लूओं द्वारा उड़ाई गई धूल से कभी के भर चुके हैं। अब वहां बच रही है केवल गीली धूल। उसी धूल में अपनी तृष्णा को बुझाने में प्रयत्नरत्न हरिणों की कारुणिक स्थिति का यह चित्र देखिये—

ठाडी आली ठाड में गोडी मामी पाळ
अब किण विध पाछा फिरै किण विध साधे छाळ।
मूका तगरा सींगटी लवट पड्या आटाळ
जी लूआं ले नीसरी आया हिरणां काल।[1]

(ऐसी गीली मिट्टी में प्यास से व्याकुल हरिणों की ठाटियां बरबस टिक गई हैं और पाल पर घुटने टिक गये हैं अब यह किस प्रकार वापिस मुड़े और किस प्रकार छलांग भरे।

जलशून्य घटकपालो में उनके सींग लगे हुए हैं, ऊपर की तरफ पैर हो चुके हैं और वे उलट पड़े हुए हैं। उनके प्राण लूओं द्वारा निकाल लिये गये हैं। हरिणों का सर्वनाश प्रस्तुत हो गया है)

इससे भी बढ़कर प्रकृति के क्रूर उपहास का चित्र आगे खींचा गया है—

मा मरती रे हाचळां लाग रह्या वाछोट।
लूआं मती उघाडज्यो आता जाता ओट।[2]

मानवेतर प्रकृति से सम्बन्धित लू के ये चित्र मरु प्रकृति के भीषणतम रूप को अंकित करने में सफल हुए हैं। इन चित्रों से भिन्न श्री सम्वर्ती कृत कळायण में मानवीय जगत के जो चित्र अंकित हुए हैं वे भी पूर्णतः यथार्थ के धरातल पर खड़े हैं। चिलचिलाती धूप से अंगार बनी धरणी पर नंगे पांव दौडते इन बालकों की दशा तो जरा देखिये—

टाबरिया भाज्या बगे भळती ताती लाय।
बळता पांव घसाड़ता पोटा में चिरळाय।[3]

गर्म धूल में पैर जल रहे हैं आसपास में कहीं छाया या आश्रय नहीं है। विवश बालक गीले गोबर में जानबूझकर अपने पैर डालकर शीतलता प्राप्त करने में प्रयत्नरत हैं।

लू और कळायण के इन चिर-परिचित चित्रों की अपेक्षा सांझ के चित्रों में कल्पनाजन्य चामत्कारिकता के दर्शन अधिक होते हैं। वैसे राजस्थानी ग्राम्य जीवन के अति परिचित चित्रों का अभाव भी सांझ में नहीं है—

बटाऊ बैठा आड पिनाण
ऊठडा मारग झुरक जाय।
सुणीज फूरणी मूरी दान
मोद तूं मूमल रूप सराय।[4]

१ लू श्री चन्द्रसिंह पृ०सं० २५
२ वही, पृ०सं २६
३ *कळायण श्री नानूराम संस्कर्ता, पृ०सं० ७*
४ सांझ श्री नारायणसिंह भाटी पृ०सं० २५

इन परिचित चित्रो के साथ ही कल्पना की रगीन तूलिका से सध्या-सुन्दरी क जो मोहक चित्र अकित हुए हैं, वे राजस्थानी साहित्य के लिए अवश्य ही एक नवीन उपलब्धि कहे जा सकते हैं—

हूवो थिर समदर आभो जाण
कसा म धुळ कसुबल रग
निचायो साझ नार निमि चीर
दई क देवत नण सुरग।
ऊफणी आड छाज कठक ?
उरसा सुगन चिडी री पाग।
गळआ तीरा पाण पयाण
हमला पीढ़ाणा नस नाग।[1]

प्रकृति के काय-कलापो के पीछे एक अनात रहस्यमयी सत्ता को स्वीकारना कविया की सामान्य परिपाटी रही है। सभी रहस्यवादी कविया न प्रकृति क नाना कार्यों के लिए उस विराट सत्ता को प्ररक माना है और प्रकृति की नानाविध छवियो म उसक दशन किये है। छायावादी कवि भी प्रकृति क माध्यम से कही-कही उस विराट सत्ता तक पहुचने को लालायित दृष्टिगत होत है। आधुनिक राजस्थानी कवि इस प्रवत्ति की ओर विशप आकृष्ट प्रतीत नही होते। उनकी प्रवत्ति प्रकृति के सहज दृष्टिगत होन वाले सौन्दय को अकित करन म ही विशेष रमी है। हा नारायणसिंह भाटी कृत साझ अवश्य इसका अपवाद है। उसम यत्र तत्र प्रकृति के माध्यम से उस विराट सत्ता को सकेतित करन का प्रयास अवश्य किया गया है—

(क) कहदे कुण अेडो जग माय,
कर जो परभाता री साझ ?
दिना री सूरज हदी जोत
भर क्यू रातडली री भाझ ?
(ख) प्रात री बाल हसी र माय
जूभत सिखरा जोबन बीच।
ढळता दिनडा री उणपाळ
बता कुण बठ यो आस्या मीच ?[2]

प्रकृति के विभिन्न काय कलापो म किसी अनात सत्ता के दशन करने की तरह ही प्रकृति के माध्यम से दार्शनिक चिन्तनाओ और नवीन वचारिक उपलब्धियो को प्रस्तुत करने की परम्परा भी साहित्य जगत म रही है। आधुनिक राजस्थानी साहित्य म श्री कन्हैयालाल सेठिया और डा० मनोहर शर्मा की प्रकृति चित्रण सम्बन्धी अनेक रचनाओ मे यह प्रवृत्ति देखी जा सकती।

श्री सेठिया ने अधिकाशत अन्योक्ति के सहारे और कही कही रूपक का प्रयोग करते हुए अपन विचारो को विभिन्न प्राकृतिक काय-व्यापारों के माध्यम से व्यक्त किया है। इनकी कविताओ मे

---

१ साझ पृ०स० १३
२ वही पृ० स० ५७ एव ६१

एक ओर किसी प्राकृतिक स्थिति या प्राकृतिक कार्य-व्यापार का यथार्थ अंकन करते हुए अन्त में किसी अनुभूत सत्य को सकेतित भर किया गया है[1] तो दूसरी ओर प्रारम्भ से ही अन्योक्ति के सहारे कोई विचार या अनुभूति व्यजित हुई है।[2] इनकी प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताओं में कहीं शरीर की *नश्वरता एवं ससार की निस्सारता की ओर सकेत हुआ है*[3] तो कहीं मानव के मिथ्या अह पर चोट हुई है।[4] कहीं मानव की ईर्ष्यालु वृत्ति को आड़े हाथों लिया गया है[5] तो कहीं सुख की मृगतृष्णा में भटकते मानव का ध्यान उसके प्रयत्न की व्यर्थता की ओर खींचा गया है।[6]

श्री सेठिया की प्रकृति चित्रण प्रधान बहुत सी कविताओं में मानव को सत् की ओर प्रेरित करने का प्रयास भी हुआ है। कहीं उसे प्रकृति की भांति ही विशाल हृदय बनने की प्रेरणा दी गयी है[7] तो कहीं 'गम' खाने की महत्ता का बखाण हुआ है।[8] कहीं स्वच्छन्दता की सीमाओं पर प्रश्न चिन्ह अंकित करते हुए उसे सयमित जीवन की श्रेष्ठता का पाठ पढ़ाया गया है[9] तो कहीं स्वय को मिटाकर भी परोपकार और अपने निर्मल कार्यों की सुगन्ध में सृष्टि को परितृप्त करने का सन्देश दिया गया है।[10] इन कविताओं के सन्देश को देखकर सहज ही एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या ये सब रचनाएँ उपदेश-काव्य के अन्तर्गत नहीं आयेंगी? यह सही है कि श्री सेठिया की इन कविताओं में मानव को विभिन्न किसी सत् कार्य को अपनाने की प्रेरणा दी गयी है किन्तु जहां निरे उपदेश काव्य में स्थूलता और बोध तत्त्व की प्रमुखता होती है वहां श्री सेठिया की इन कविताओं में कल्पना की रम्यता विचार प्रतिपादन की सर्वथा अनूठी एव आकर्षक शैली तथा सरसता इन्हें साधारण उपदेश-काव्य की तुलना में काव्यत्व की दृष्टि से बहुत ऊंचे आसन पर प्रतिष्ठापित करती है। बात को स्पष्ट करने के लिए एक उदाहरण देना असगत नहीं होगा—

चन्नण सौरम बसा प्राण म
भूठा हाड घसाव क्यू ?
रगड धापज्या गुण ना छीजे
तो ओ विसंणू हमणू है,
कचन काया घमा मनै तो
प्रभु लिलाड पर बमणू है।
जस फनास्यू जामण थारो
धरती तू पिसताव क्यू ?
चन्नण सौरम बसा प्राण म
सूखा हाड घसाव क्यू ?[11]

---

१ दूबडी, मींझर श्री कन्हैयालाल सेठिया पृ० स० २४
२ भवरो वही, पृ० स० १४
३ भर भर पाका पान पड वही, पृ० स० १०
४ माटी वही पृ० स० ५५
५ पपीहो, वही पृ० स० ३७
६ पछी वही पृ० स० ४४
७ सखरियो मींझर श्री कन्हैयालाल सेठिया पृ० स० २२
८ दूबडी वही, पृ० स० २४
९ गीत चिडकल्या वही, पृ० स० २६
१० गीत वही पृ० स० ३२
११ गीत, मींझर श्री कन्हैयालाल सेठिया, पृ० स० ३२

यहाँ जीवन की साथकता का सदेश स्वय का अस्तित्व मिटाकर भी जग कल्याण की भावना के प्रति निष्ठा मे दिया गया है । कविता की पक्ति पक्ति से यह सदेश फूट रहा है किन्तु पाठक को कहा एसा प्रतात नही हाता कि कवि उसे उपदेश की कडवी घूट पिला रहा है ।

डा० मनोहर शर्मा ने भारतीय दशन के अनुरूप विचारो की अभिव्यक्ति अपनी प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी रचनाओ म की है। उनकी अधिकाश कविताओ मे एक तो विचारा की मौलिकता का अभाव रहता है और द्वितीय उनका बात कहने का ढग इतना सपाट होता है कि वे रचनाएँ पाठक का न तो किसी विचार बिन्दु पर चिन्तन क लिए उद्वेलित कर पाती हैं और न ही उसकी स्मृति हृदय पटल पर काई स्थायी प्रभाव ही छोड जाने म सफल होती है । एक दो उदाहरण बात को स्पष्ट करन के लिए पर्याप्त होगे—

> एक बूद म एक लहर,
> अर एक लहर म सौ सागर ।
> एक किरण म एक चाद
> अर एक चाद मे नट नागर
> एक किरण म कासिवसुत को
> सारो तेज समायो ।
> एक बून्द म सारो सागर,
> आयो रूप दिखायो ।[1]

काव्य मे प्रकृति चित्रण सम्बन्धी चर्चा म आज के बहुचर्चित काव्य आदोलन–नयी कविता का अपना एक विशेष स्थान रहा है । सौन्दर्य बोध के प्रति नय कवि का बदलता हुआ नजरिया उसके प्रकृति चित्रण सम्बन्धी वणनो को प्राचीनो से सवथा अलगाता है । उसक लिए प्रकृति न तो रोमानी कल्पनाओ के स्वप्निल जाल बुनन का साधन ही रही है और न ही विरह उपजाने का बहुत अच्छा आलम्बन हा । वह अपनी उलझती हुई मन स्थिति के अकन की दृष्टि से अन्य अन्य बाता को अपेक्षा प्रकृति की ओर अग्रसर हाता है और अपनी भावनाओ का आरोपण प्रकृति के विभिन्न काय कलापो पर करता है । उसका यह आरोपण स्थूल न होकर उसकी स्वय का उलझी एव उलझी हुई मन स्थिति क अनुरूप जटिल एव सश्लिष्ट होता है—

> रात घनस डोर ज्यू तरणाव
> रीस म भरियोडी
> धारा धूज मेंदी वरणी रेत
> रूस स्वाळी बिना तडफा तोड
> गिगन मान्गी र दावड म लुकतो
> करडेंस रा आखर चुगतो
> मूडी लाबो निसास छोड
> सरणाटो घणा बिकराळ घणो सकाळ है ।[2]

---

१ गजमाला, डा० मनोहरलाल शर्मा साधना अक–२

२ काळो घोडो, श्री मणि मधुकर, राजस्थानी अक, पृ० स० ५४

यहा जीवन सघप से हारे थके, ऊब एव खीक से भरे व्यक्ति की विवश, कु ठित एव आक्रोशपूरण मन स्थिति का अकन हुआ है

आज का नया कवि जटिल से जटिनतर बनती जा रही जीवन की परिस्थितिया और अनेक विवादो के बीच झूलती मानवीय सवन्नाग्रा को सप्रपित करन के लिए कही प्रकृति को प्रतीक[1] रूप म व्यवहृत करता है तो कही प्राकतिक बिम्बा[2] क सहार अपनी बात कहता है। कही मानवीकरण का सहारा लेना है तो कही नवीन प्राकतिक उपमाना स बात को सकेतित करता है। यह सही है कि नयी कविना से पूव भी प्रकति का अकन इन सभी रूपा म हुआ है किन्तु जसा कि पहले स्पष्ट हो चुका है कि नये कवि का सौन्दयबोध के प्रति बदला हुआ नजरिया और बात को प्रस्तुत करने का उसका सवथा भिन्न तरीका उसके प्रकृति चित्रण सम्बन्धी वर्णना का पूव वर्णना से अलगाता है—

(क) डूबकी लगाई
लाल तलाब रै माय
बुझ्योडो दिन अर
नागी होवण लागी
आकास नैं मुट्ठी म
सावटती अचपळी रात

(ख) काचो कूपळ र
नणा म मुळकतो
मदरो मन्दरो
मीठो मीठा हिरमची उजास[3]

---

१ धारा जाग
निदरीज तो बाग अर बगीचा।
सतरा नवी कविताबा ओंकार पारीक राजस्थानी ग्रेक, पृ० स० ५६
२१ धूजता पगा
परो दवतो
मुरदो न्नि
अर दूजी तरफ
खर्राटा लेवती
मिजाजण रात
आतरो किरकर डा० गोरधनसिंह शेखावत पृ० स० ६

२ थारी आळयू
धीम–धीम
हालन पाणी म
लाबी पतळी तिरती
सावळी छीया
ग्रोळयू किरकर पृ० स० २८

३ (क) साझ किरकर पृ० स० २०
(ख) बसन्त वही, पृ० स० २६

इसके अतिरिक्त नयी कविता म हुए प्रकृति चित्रण के सम्बन्ध म एक बात और है, यह यह कि नये कवि के लिए प्रकृति स्वतत्र रूप स कविता का विषय नही रह गयी है, परिवेश की सपूर्णता और साधकता की दृष्टि से ही वह प्राकृतिक स्थितियो को अकित करता चलता है।

आधुनिक राजस्थानी प्रकृति काव्य मुख्यत चार शलियो म लिखा गया है। इतिवृत्तात्मक शली प्रतीकात्मक-शली सम्बोधनात्मक शली और आलकारिक शली। इन चारो म भी इतिवृत्त प्रधान वर्णनात्मक शली का प्राधान्य रहा है। इसम कल्पना चितन और अनुभूति को उतना महत्त्व नही दिया जाता जितना कि प्रत्यक्ष दशन के यथा-तथ्य वर्णन को। श्री सस्कर्ता कृत दसदेव इसी कोटि की रचना है। इसम प्रकृति का शुष्क इतिवृत्तात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति चित्रण सम्बन्धी अधिकाश स्फुट कविताओ एव प्रबध काव्यो के कई प्रकृति चित्रण सम्बन्धी स्थल भी लगभग इसी श्रेणी मे आते हैं। स्फुट कविताओ या प्रबध काव्यो के प्रासगिक वर्णनो के रूप म आया प्रकृति का इतिवृत्त प्रधान चित्रण उतना उबाने वाला नही होता जितना स्वतत्र प्रकृति काव्य का यह रूप। श्री सस्कर्ता के कळायण म कई स्थलो पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि कवि मरु-जीवन एव मरु प्रकृति का बडा स्थूल परिचय प्रस्तुत कर रहा है। इस सदभ म एक सुखी मरु परिवार का यह वर्णन देखिए—

> जळहर जामी बाप मात ज्यू राता देश्री
> राम लखण सा वीर राधका सी भौजाश्री
> आळी भाळी व न दनोश्री गायडमल सा
> मरद अठ अमराव सा कवर कदा म केळ ज्यू
> मुरधर रा नर मेळ राख वध कड़ू वो वेल ज्यू ।[1]

ऐसे वर्णनो की यह उकताहट दसदेव जसे काव्य म और अधिक बढ जाती है। उसे पढने पर तो ऐसा लगता है कि मानो कवि—नीम खेजडो फोग भाडखो जाळ कूवो जो'डो, धोरो खदेडो एव खाण—मरुप्रकृति के इन दस दवों की उपयोगिता पर कोई परिचयात्मक भाषण दे रहा है या फिर कोई अध्यापक स्कूली बच्चो को इनकी उपयोगिता पर लेख लिखा रहा है। ऐसे वर्णनों से अधिक नहीं, एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

> चरम रोग चट हर हटाव दाद दुखणिया।
> खाव खुजली मरज मिटाव वेद थकणिया॥
> सोढ सग रस रळ साबण सुदर भाव।
> काया कचन हुव रफड उण सू जे न्हाव॥
> नीम पष्टा द त उजाळ मोनी सा चिलक जबर।
> मुखड मे खुसबू सूवाणी दुरगध डर दुबकी ववर॥[2]

नीम चम रोग को हटाता है दाद मिटाता है फोड खत्म करता है खुजली के मरज को दूर करता है सुदर साबुन उसस बनती है नीम का पेस्ट दातो को मोती सा उज्जवल बना देता है आदि आदि। पूरी कृति ऐसे पचासो उदाहरणो से भरी पडी है।

---

१ कळायण श्री नानूराम सस्कर्ता, पृ० स० ६१
२ नीम दसदेव श्री नानूराम सस्कर्ता पृ० स० २

प्रकृति को आलम्बन बनाकर लिखी गयी बहुत सी स्फुट कविताएँ भी इतिवृत्तात्मक शैली में ही लिखी गयी हैं। श्री नागराज शर्मा की 'बिरखा बीनणी'[1] श्री गजानन वर्मा की 'अम्बर चिमके बीजळी', श्री हरमन चौहान की 'मारिया'[2] श्री मदनगोपाल शर्मा की 'धिर धिर आई बादळी' 'गाज है मेवलो', श्री मनोहर प्रभाकर का 'फागण रो गीत'[3] श्री सौभाग्यसिंह शेखावत की 'पाळा'[4] श्री कानसिंह की 'चौमासा'[5] 'सियाळो'[6] 'ऊनाळो'[7] श्री उदयवीर शर्मा की 'भभूलिया'[8] डा० मनोहर शर्मा की 'ऊषा'[9], 'वनदेवी'[10], 'किरण'[11] आदि पचासों कवियों की सैकड़ों ऐसी रचनाएँ सहज ही गिनायी जा सकती हैं।

सम्बोधनात्मक शैली में लिखी गई प्रकृति चित्रण सम्बन्धी रचनाएँ बहुत अधिक तो नहीं हैं, फिर भी उनकी कमी नहीं महसूस होती। श्री चन्द्रसिंह ने अपनी लू और बादळी में अनेक स्थलों पर इसी शैली का उपयोग किया है, यथा—

मा बारा बाखोरिया धिग धिग पकड़े चाल
लूआ नडी आवता खिणक राख्या स्याल।[12]
वेगी बावड़ बावळी धान रह्यो अळमाय
पाना मुख पीळजियो झुर झुर नीचा जाय।[13]

श्री चन्द्रसिंह की भांति श्री सुमेरसिंह शेखावत की 'मेघमाळ' में भी इसी सम्बोधनात्मक शैली को अपनाया गया है, पर कवि श्री चन्द्रसिंह से प्रभावित न होकर 'मेघदूत' से प्रभावित है। डा० मनोहर शर्मा के 'कूंजा' काव्य में भी जहाँ कहीं प्रकृति चित्रण हुआ है, वहाँ वह मेघदूत की शैली से ही प्रभावित है। 'मेघमाळ' में कवि आद्योपान्त इस शैली को नहीं निभा पाया है और उसने कुछ ही छन्दों के पश्चात स्वतंत्र रूप से प्रकृति चित्रण प्रारम्भ कर दिया है। श्री नारायणसिंह भाटी की 'साँझ' में भी अनेक स्थलों पर इसी शैली को अपनाया गया है। 'साँझ' में कवि ने जिन विशेषणों से सध्या को सम्बोधित किया है वे राजस्थानी कविता क्षेत्र में सर्वथा नये प्रयोग हैं। कवि ने कहीं साँझ को 'रात री ऐ ननकडी बन तो

१ बिरखा बीनणी नागराज शर्मा पृ० सं० ३
२ ओळमा, मई १९६७ पृ० सं० ११६
३ मरवाणी, वर्ष २, अंक ३–४, पृ० सं० १
४ वही, वर्ष २, अंक १ पृ० सं० २६
५ अळगोजो सं० श्रीमन्त कुमार व्यास पृ० सं० ८२ (द्वितीय संस्करण)
६ वही पृ० सं० ८२–८३, (द्वितीय संस्करण)
७ वही पृ० सं० ८३, (द्वितीय संस्करण)
८ साधना वर्ष १२ अंक १
९ वरदा वर्ष २ अंक ३, पृ० सं० १५
१० वही वर्ष २, अंक ३ पृ० सं० १५
११ वही, वर्ष २ अंक ३ पृ० सं० १५
१२ लू श्री चन्द्रसिंह पृ० सं० ३१ द्वितीय संस्करण
१३ बादळी श्री चन्द्रसिंह, पृ० सं० ७३ चतुर्थ संस्करण

कही 'नीदगी नणन्ल' और कही 'परणनी सूरग परी रो खाळ' कहकर सम्बोधित किया है। पर कवि को इसस सतोप नही। वह यह नही समझ पा रहा है कि सध्या क लिए सर्वाधिक उपयुक्त सम्बोधन विशपण कौनसा होगा ? तभी तो वह लगातार छह बार बता किम वरण थन्न आज कहकर हर बार एक नया उपमान सामने रखता है, और दूसरे ही क्षण उस ठुकरा दता है।

प्रतीकात्मक शली म प्रकृति को चित्रित करन की ओर रहस्यवादी एव प्रगतिवादी कवियो ने विशप ध्यान दिया है। डा० मनोहर शर्मा ने अमरफल नामक काव्य म आधी वर्षा जगल आदि प्रकृति क उपादान विभिन्न मनोभावो के प्रतीक क रूप म आय है। प्रगतिवादी कवियो न शोपण अन्याय गरीबी आदि के विरुद्ध सघप को प्रेरित करन के लिए प्रकृति को विभिन्न प्रतीको के रूप म चित्रित किया ह। श्री रेवतदान चारण कल्पित की अधार घोर आधी प्रचड वा धुवाधोर धमधम करती आधी साधारण आधी नही अपितु इनकिलाब री आधी[1] (क्राति की आधी) है जो प्राचीन परम्पराओ एव शोपण पर आधारित व्यवस्था को भूमिसात कर दना चाहती है। यह वह आधी है जिसके बल से—

> नीवा र आग दबियोडी जुग जुगरी माटी द झपटो
> ने उडी किया न जडा मूळ पसवाडो फरलिया पलटो
> तिनके ज्यू उडगी तलवारा धोच रो रूप कियो भाला
> रूखा र पत्ता ज्यू उडगी वे लाज बचावण रा ढाला।[2]

युगो स परा तल रौदी जाने वाली मिट्टी भी आज अपन को रौदने वाले विशाल दुग को ले उडी है। इसी से मिलते जुलत भाव श्री त्रिलोक शर्मा की उगतो सूरज'[3] मे व्यक्त हुए हैं। इसम क्राति का आधी क रूप म और ऊगते लाल सूरज को आशा और साम्यवादी शासन व्यवस्था के प्रतीक रूप म चित्रित किया गया है।

श्री रेवतदान चारण कल्पित की भाति ही श्री मघराज मुकुल, श्री गजानन वर्मा आदि कवियो न प्रगतिशील स्वरो को वाणी प्रदान करने के लिए प्राकृतिक प्रतीको का सहारा लिया है। डाफर का युग की बदलती हुई विचारधारा जिसम शोपण पर आधारित व्यवस्थाएँ समाप्त हो रही है, का प्रतीक मानते हुए कवि मुकुल उसका स्वागत उन्मुक्त हृदय से कर रहे हैं—

> अब मानख पर बरडाती
> हाड पासळा न थरराती
> म्हैत माळिया री डोळी म
> पडी तरडा न लडकाती
> तन री लेऊ लाही पीऊ
> शापण री छाती तन्नानी।
> हड हड करती डाफर बाज है।

---

१ झळगोजो स० श्रीमन्तकुमार व्यास पृ० स० २७
२ वही पृ० स० २७
३ वही पृ० स० १०३

वाज है ता क करा ?
या ममा वावरो ह
वाने है ता वाजए थो
ठटा ठरा गीतडला अव
लाने है ता लाजए थो ।[1]

डाफर' की तरह ही मुकुल की छिया तावडो[2] कविता म छाया और धूप धनवान और गरीब क प्रतीक रूप म आय हैं। इमम ना वदलत युग–जीवन की ओर सकेत हुआ ह। श्री गजानन वर्मा न भी पू जीपति वग और शापित वग की स्थिति को स्पष्ट करते हुए इन्ही प्राकृतिक प्रतीका का सहारा लिया है। धनवाना पर सीधा प्रहार न करन हुए उन्हे उन्होंने पृथक्तावादी रोहीड' क वक्ष म उपमित किया है—

भाड वाठका कर ककेडा
घर मेजडा भेळा नडा
धरती माता मू वतळाव
राहीडा घर अलग वणाव[3]

कवि का मन सकेन करन म ही नही भरा है अत आग उसने वात को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है—

खेजडला नै करसा जाए
रोहीडा धनवान वखाए
रूप रगीला घणा डावडा
काळा पडसी तप तावडा
नहं ज्यासी अ पाका फूल
उडसी जद धोरा री धूल।[4]

श्री गजानन वर्मा म जहाँ रोहीड का पू जीपति वग के प्रतीक रूप म चित्रित किया है, वहाँ श्री इश्वरानन्द शर्मा न अपनी रोहीड रो फूल[5] कविता म उसे स्वार्थी नताआ क प्रतीक रूप म अ कित किया है।

आधुनिक राजस्थानी काव्य म अन्य शलिया की अपेक्षा आलकारिक शली म प्रकृति चित्रण की न्यूनता रही ह। श्री कन्हैयालाल सेठिया डा० नारायणसिंह भाटी आदि दा तीन नाम ही एस हैं जिन्होंन प्रकृति के अलकृत चित्र अ कित करन म रुचि प्रदर्शित की है। डा० नारायणसिंह भाटी न सध्या-सुदरी के अप्रतिम सौन्दय का अ कित करने म कल्पना की रगीन तूलिका का भरपूर एव शानदार उपयोग किया है—

---

१ मनाणा री जागी जोत श्री मघराज मुकुल', पृ० स० ८४
२ वही, पृ० स० ८३
३ सोनो निपज रेत म श्री गजानन वमा, पृ० स० ३३
४ वहा पृ० स० ३८
५ अळोजो स० श्री श्रीमन्तकुमार व्यास, पृ० स० १२७ (द्वितीय सस्करण)

हस विण बनडी तणी सुहाग ?
बाम्ळी भीणी घू घट श्रोट ।
बीखर डाबर नणा लाज
चमक्क चोखी कारा गोट[1]

दुलहन सी बनी इस नवेली सध्या सु दरी का एक रूप और भी है । 'डाबर नणी' यह श्यामल सध्या सुन्दरी 'भीणे घू घट की ओट' मे लज्जा भरी मुस्कान फक कर गौरवर्ण प्रियतम 'दिवस' को तो रिझा लेगी कितु मटबोले देवरो की मसखरी मे तो उस सयानी ननद ही बचा सकेगी । श्री कन्हैयालाल सेठिया न अपनी 'सिझया बहू' म इन्ही भावो क आधार पर सध्या सु दरी के जिस सुखी पारिवारिक जीवन की सृष्टि की है वह बडा ममस्पर्शी बन पडा है—

गौरे दिन र लार सिझया बहू सावळी आई ।
माथ बाध्यो चाद बारलो
पग पाजेबा तारा
सुपना बाजूब द जडाऊ
सोव कामण गारा
साग पेइ भर नीदडली नण मोवणी ल्याई ।
गौरे दिन र लार सिझया बहू सावळी आई ।
बादळिया दो च्यार कु आरा
देवरिया मटबोला
भोजाई कोयल री जाद
कर वितोला रोळा
पकड कानडा पून दकाळ या स्याणी नणन्द बाई ।
गौरे दिन र लार सिझया बहू सावळी आई ।[2]

सागरूपक क सहारे मानवीय जगत क कार्य-व्यापारो को प्रकृति पर जिस सुघडता के साथ घटित किया गया है वह कवि कल्पना और सौन्दय को निरखन परखने की उसकी उन्मुक्त दृष्टि का परिचायक है ।

एक ऐसा ही अन्य रूपक वर्षा के स दभ म कवि की अनूठा सूझ बूझ एव कल्पना चमत्कार के कारण बहुत ही सरस बन पडा है—

सूरज र सोन रो भूखो
समन्दिये रो खार
मन मीठो कर बादळियो बण
जा पूग्यो गिरनार,
खाई चुगली पून, कोरडो—

१ साझ श्री नारायणसिंह भाटी पृ० स० ३
२ सिझया बहू मीझर श्री कन्हैयालाल सेठिया पृ० स० ३०

बिजळी रो कर त्यार,
कूटण लाग्यो सूरज
ढळती ग्रामूडा री धार
काढ धर्‌यो चुपचाप बापडो
गमघणख रो हार,
लाजा मरतो गळ यो जणा ही
छेकड छूटी लार।[1]

इस प्रकार समग्र रूप म कहा जा सकता है कि राजस्थानी कविया न प्रकृति चित्रण के अपन दायित्व को उत्साह के साथ निभाया है यद्यपि प्रकृति ने उनके मरु प्रदेश का अपनी सौदय सुषमा प्रदान करन म कृपणता ही दिखलायी है। यही कारण है कि यहाँ प्रकृति चित्रण सम्बधी काव्य म सुदर की अपक्षा शिव' का प्राधान्य रहा है। इसके अतिरिक्त आलम्बन रूप म प्रकृति चित्रण की प्रधानत कही कही 'बारहमासा आदि की प्राचीन परम्परा का निवाह प्रकृति का लाक जीवन एव लोक विश्वास सापेक्ष अकन, मानवीकरण रूप म उसका प्रस्तुतीकरण और चित्रात्मकता आधुनिक राजस्थानी प्रकृति काव्य की अन्य उल्लेखनीय विशेषताए रही हैं। न्यूनता यदि किसी बात की खटकती है तो वह यही कि प्रकृति के नानाविध कार्यों क पीछे उस रहस्यमय विराट सत्ता क स्पदन का अनुभव राजस्थानी कविया न नही किया है। शली की दृष्टि स प्रकृति चित्रण सम्बधी सभी प्रचलित प्रमुख शलिया (इतिवृत्तात्मक शली, सम्बोधनात्मक शली आलकारिक शली एव प्रतीकात्मक शली) को अपनाया है। वस्तुत प्रकृति चित्रण ही एक एसा पक्ष रहा है जिस लकर आधुनिक राजस्थानी के विभिन्न क्षेत्रो म सचरण करने वाल कविया ने कुछ-न कुछ अवश्य लिखा है। इसके अतिरिक्त प्रकृति को लेकर स्वतन्त्र काव्यो की रचना भी आधुनिक राजस्थानी काव्य की एक उल्लेखनीय उपलब्धि कही जा सकती है।

१ बादळियो मींझर श्री कन्हैयालाल सेठिया, पृ०स० ४२

गौरवपूर्ण पृष्ठो के ओजस्वी गीत गुनगुनाने वाले साहित्यकार और इतर विषयो पर कविताएँ करने वाले नये तथा पुराने सभी साहित्यकारो ने इस समय स्वयं को लोक जीवन के विविध मधुर पक्षो को उदघाटित करने वाले इन गीतो तक ही सीमित कर लिया। बस इस अवधि मे किसी ने क्रान्ति एव प्रगति की बात भी कही तो भी माध्यम के रूप म उसने गीत विधा को ही स्वीकारा। ऐसे गीतो मे विषय की नवीनता के बावजूद भी अभिव्यक्ति एव शब्द प्रयोग के स्तर पर तात्कालिक गीतकारो का लोक-गीतो लोक जीवन एव लोक भाषा म इस कदर सम्मोहित होने का परिणाम यह हुआ कि एक समय म उनके द्वारा सर्जित गीतो एव लोकगीतो म अन्तर कर पाना कठिन हो गया।

यहाँ स्वभावत एक प्रश्न उपस्थित होता है कि शिष्ट साहित्य क्यो इस सीमा तक लोक साहित्य से सम्पृक्त हो उठा। इस प्रश्न पर विचार करने से कई बातें सामने आती है। प्रथम पद्यकथाओं की एकरसता से ऊबे पाठक श्रोता और कवि जब किसी नये माध्यम की तलाश म थे तो उन्हे लगा कि बदलाव के लिए यह विधा सर्वाधिक उपयुक्त है। विशेष रूप से कवि वर्ग ने इसे अपने बहुत ही उपयुक्त पाया। नये कवियो ने महसूसा कि वतमान स्थिति मे जन साधारण तक सीधे पहुँचने का सरलतम और निरापद माग यही है। इस सबध म श्री तेजसिंह जोधा का यह कथन कि—"राजस्थानी कवि का जिस जनमानस के निकट पहुँचना था उस हेतु लोकगीतो की मनोरम आधारभूमि नये विषयो के चयन की सुविधा भावबोध की सहज सतरंगी आकषण एव लय और ध्वनि का दूर और देर तक गुनगुनाने वाला सहजा लिए उपस्थित थी [1] पूर्णत सही है।

राजस्थानी के ये गीतकार जिस ससार म विचरण करते रहे वह बहुत कुछ यहा के लोकमानस की मधुर कल्पनाओ एव मीठी आशाओ का ससार था जिसम लोकगीतो की भाति ही वे मधुर स्वप्न सजाये जाते रहे जिन्हे अपने दर्नान्दिन जीवन म पा लेना उनके लिए सहज सभव नही था। इस मधुर जीवन की ललक बस प्रत्येक ग्रामवासी के मन म रहती है किन्तु राजस्थानी गीतकारो का उन स्थितियो से एक विशेष मानसिक लगाव महसूस करने का कारण और भी रहा है। इस समय के प्राय सभी प्रमुख गीतकार मूलत ग्रामवासी थे। उनके बचपन और शशव का जो अधिकाश समय वहा के जिस मस्ती के आलम म बीता, उसकी मीठी याद शहरो के सघषपूर्ण वातावरण म और अधिक गहरा उठी। शहरी जीवन की कटुताओ ने उनके बचपन के तप्त और अभिशप्त क्षणो को सहज ही मधुर स्मृतियो म परिणत न भी किया हो तो कम से कम कडुआहट से मुक्त अवश्य कर दिया। श्री सत्यप्रकाश जोशी, श्री गजानन वर्मा श्री कल्याणसिंह राजावत श्री लक्ष्मणसिंह रसवन्त श्री मदनगोपाल शर्मा प्रभृति सभी गीतकारो—जो कि आज शहरो म स्थापित हो चुके हैं—के साथ यही स्थिति रही है।

इन सब स्थितियो के अतिरिक्त इस समय के अधिकाश राजस्थानी गीतो म चित्रित रोमानी ससार और कोरे भावुकतापूर्ण चित्रो के प्राधान्य का एक कारण और भी था और वह यह था कि उस समय जन साधारण ने भी इन गीतो का भरपूर स्वागत किया। सहस्रो-सहस्रो प्रवासी राजस्थानियो के लिए अपनी मिट्टी की गन्ध लिए हुए ये गीत समय के अन्तराल और वातावरण की भिन्नता के कारण और भी अधिक मधुर हो उठे। उधर यहाँ के सामान्य जन के लिए भी अपनी अतीतोन्मुखी प्रवृत्ति के

---

१ स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी काव्य की नयी प्रवृत्तियाँ श्री तेजसिंह जोधा
राजस्थान विश्वविद्यालय की एम ए (हिन्दी) परीक्षा हेतु प्रस्तुत अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध

कारण जन जीवन से तेजी से विलुप्त होती जा रही स्थितियां का प्रश्न कुछ समय तक आकर्षण का केन्द्र बना रहा।

इन गीतो का कथ्य चाहे वह प्रेम प्रीति से सम्बधित रहा हो या दनन्दिन जीवन के सामान्य काय व्यापारो स या फिर चाहे प्रकृति चित्रण स जुडा हुआ हो या कि उत्सव, पव आदि के अवसर पर व्यक्त होने वाले समूहगत उत्साह आदि के भावो मे हर स्थिति म पारम्परिकता स गहरे रूप म सम्पृक्त रहा है। यहाँ तक कि प्रगतिशील दृष्टि के कवि एव गीतकार भी उस पारम्परिक दृष्टि का त्याग नही पाये है। पारम्परिकता स जुडने की यह स्थिति केवल कथ्य के धरातल तक ही सीमित नही रहा है, अपितु अभिव्यक्ति के स्तर पर भी हम राजस्थानी के इन गीतकारो को उसके दायरे म बाहर भाकते हुए बहुत कम पाते हैं।

यहा तक आधुनिक राजस्थानी गीतो की पृष्ठभूमि और उसकी कतिपय उल्लेखनीय विशेषताओं की ओर इगित हुआ है। आगे कथ्य एव शिल्प की दृष्टि से उन पर अपेक्षया विस्तार स विचार करेंगे।

राजस्थानी गीतकारो का सर्वाधिक प्रिय विषय रहा है—शृगार। शृगार के उभय पक्षो सयोग और वियोग को उनम समान रूप से लिया गया है। इन गीतो म नायिका की रूप राशि के चित्राकन स लेकर परस्पर प्रेमालाप तक की स्थितियो का सहज और उन्मुक्त भाव से वणन हुआ है। राजस्थानी लोकगीतो म जिस प्रकार सकस' बिना किसी वजनाओ और कुण्ठाओ के व्यक्त हुआ है, उसी भाति इन गीतों म भी—

> सायधण खेलण रा दिन च्यार
> कुण जाणे कद बळा बीते सज रासो सिणगार
> थे सागर म्हैं मीन माछळी ग्रीन करू मझधार
> थे अवर म्हैं पाख पखेरू उडल्यू पख पसार
> सायधण खेलण रा दिन च्यार[1]

वसे कही कही बात को सहज और सरल रूप म न रखकर काम भावनाओ का प्रदशन प्रतीको के माध्यम स भी हुआ है—

> सेजा सूती सपनो आयो माथ मौर मकतो हो
> भुळ भुळ म्हार नणा ढळता मोती चुगतो हा
> माझळ रात रा
> बोल माझळ रात रा होठा माय हिंगळू भरता हो
> माझळ रात रा[2]

इस गीत म मयूर पति या प्रियतम का प्रतीक है और पूरे गीत म कवि ने क्रमश सम्पूर्ण शृगार का उपभोग उसके द्वारा दिखलाया है।

---

१ दीवा काप क्यू सत्यप्रकाश जोशी पृ०स० २८, प्र०का०–वि०स० २००३ (द्वितीय सस्करण)
२ वही पृ०स० २८

गीता म प्रेम और सयम' का इस सहजता तक अ कन ता फिर भी स्वीकाय है किन्तु जहा च सना का प्राधान्य एव मामल सौदय के उपभाग का भाव प्रमुख हा उठा है वहीं गीत के स्तर म निश्चित रूप स गिरावट आई है—

सामा र सौरम री आपा
करग्या अदला-बल्ली-ए
थारी निजरा घणी ठगौरी
म्हारी निजरा ठगली ए
एक बार बस एक बार ही
थान थोडी चाख ल्यू [1]

किन्तु यहा यह सन्तोष का विषय है कि इस छिछलेपन तक एक आध गीतकार ही गया है अन्यथा अधिकाश म परिष्कृत रुचि और सौन्दयबोध का ही परिचय दिया गया है। इस परिष्कृत रुचि का निभाव नायिका क सौदयाङ्कन म भी उसी तत्परता स हुआ है बस वहा पारम्परिक उपमाना और और अतिशयोक्तिपूर्ण वणना म पूववर्ती कवियो का ही अनुसरण अधिकाश म हुआ है—

गज गामण गळहार आ कुण गारली
बमाता री रूप-तिजारी चार ली
सो सूरज सो जाव घू घट काढ्ता
ओड चाद उग जाव नण उघाडता
पलका रे परकोट छवा मरोडली
बमाता री रूप तिजोरी चोर ली[2]

सयोग-शृ गार की भाति विप्रलम्भ शृ गार पर लिखे गय गीतों म भी नायिका की विरह-व्यथा का अ कन पारम्परिक शली म ही हुआ है। प्रिय के वियोग म व्याकुल नायिका की मन स्थिति का वणन ममस्पर्शी होते हुए भी भारतीय कुलवधू क सहज गौरव क विपरीत शिष्टता की सीमाओ का अतिक्रमण करने वाला नहीं कहा जा सकता। प्रिय-स्मृति (ओळू) को उद्दीप्त करन वाली विभिन्न प्राकृतिक स्थितियो के मध्य प्रिय स लौट आन की प्राथना करती हुई विरह विदग्धा नायिकाओ के मधुर उपालम्भ भर अनक चित्र इन गाता म अ कित हुए हैं—

क उमड घुराऊ काठळ बीज
पळकह र धोरा म बरस मह
म्हारा घण हताळू
परणी न पाछी तो सभाळ
बरस घुळाया माळ माळव
कद सू उडीक म्हारे नह
रात बिताई लाखीणी राता
उडीक उडीक आथमिया सूरज

[1] पणिहारी ओम पुरोहित, पृ०स १०, प्र०का०—१९७० ई०
[2] रामनिधा मत तोड कल्याणसिंह राजावत पृ० स० ३०, प्र० का० —वि० स० २०१८

सपना री मारगियो भूल्यो
इतरो मत तरसाय
म्हारो जोबन ढळतो जाय[1]

ख थान सुमरु आम दिन अर आखी रए
जी आलीजा थारी ओळू डी आव
हिवड हूक उठाय व चाल पट या चितचोर
मार टहूको डूगरा
ज्यू उड ज्याव मोर
थारी मिरगा नणी छिन छिन फर नग
म्हारा मीठा मारु ओळू डी आव ।[2]

शृ गार के पश्चात गीतकारो का सर्वाधिक प्रिय विषय रहा है—मरु प्रकृति का अ कन। बाहर से रूक्ष एव कठोर प्रतीत होने वाली यहा की प्रकृति से यहा का सामान्य जन रागात्मक स्तर पर किस गहराई तक जुडा हुआ है यह बात गीतो को पढने पर स्वत प्रकट हो जाती है। इन गीतो के शब्द शब्द म कवियो का मरु प्रकृति स प्रम यक्त हुआ है। उन्होने जिस तल्लीनता और उल्लास के साथ प्रकृति क सुन्दर और मोहक रूप व गीत गाय हैं उसी उत्साह के साथ उसके रूक्ष एव कठोर रूप को भी चित्रित किया है। प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन उभय रूपो म अ कन इन गीतो म हुआ है। यहा की शीतल स्निग्ध शुक्ल प क्षीय रात्रि तप्त लूओ से दहकती भीषण दोपहरी सावण की मस्ती म भीगी घडिया और फाल्गुन क सहज उल्लास म डूबे सम्पूर्ण वातावरण को कवियो ने समान रूप से बडी ही आत्मीयता और उमग क साथ अ कित किया है। इन प्रकृति चित्रो म कल्पना की रंगीनिया का चमत्कार कम है स्मुक्त रूप से प्रकृति क साथ भोगे हुए आह्लादक क्षणो का चित्रण अधिक। ऐसी स्थिति म इन गीतो म स्वत ही प्रकृति का जीवन सापेक्ष अ कन हुआ है। इन गीतो म चित्रित प्रकृति क सम्ब ध म एक बात और भी उल्लेखनीय है और वह यह है कि इनम अधिकाश म उन भावनाओ एव स्थितियो का अ कन हुआ ह जो कि वयक्तिक होन का अपक्षा सामूहिक या समूहगत अधिक रहा हैं।

यद्यपि इन गीतो म प्रकृति की सभी ऋतुओ एव नाना रूपो का अ कन हुआ है किन्तु वर्षा के सन्दर्भ म सावन और वसन्त क सन्दर्भ म फाल्गुन ही इन गीतकारो के मध्य सर्वाधिक प्रिय रहे है। अकेले फाल्गुन को ही लकर दर्जनो गीतकारो न फागण आयो रे या इसी स मिलत जुलत शीर्षक वाले गीतो म अपन मन क सहज उल्लास को बडे ही उन्मुक्त रूप स व्यक्त किया है—

व फला री निछरावळ करदो फागण आयो रे
होळी गावण द।
हा रे! होळी गावण दे न चग बजावण द
होळी गावण दे।

१ रगरूड लक्ष्मणसिंह रसवन्त पृ० स० २३ प्र० का०—१९६७ ई०
२ गाय ऊभी गाम्री श्री मनमोहन शर्मा पृ० स० २७ प्र० का०—१९५४ ई०

बायरी बण बावळी पग पायल बाध नाच ओ
धरती री कूपळ कूपळ मे मदो राच ओ
रग चढावण दे ।[1]

ख रग बरसातो मन हरसातो चगा छायो रे
फागण आयो रे
मदमातो वायरियो भीणो फागणियो ल'राव रे
कायल बाल इमरत घोळ हियो हबोळा खाव रे
होरी गमक लूरा ठणक उनमाद मचायो रे
फागण आया र[2]

श्री गजानन वमा के होली आइ रे[3] श्री मन्नगोपाल शर्मा के 'फागण आया[4] श्री सत्य प्रकाश जोशी के 'फागण रो राम'[5] आदि इनका गीता म इन्ही भावा को भिन्न शब्दावलि म अभिव्यक्ति मिली है। फाल्गुन के इन गीता की तरह सावण के गीता म भी साधारण जन के मन के उल्लास की सामूहिक अभिव्यक्ति हुई है—

लाग्यो लाग्यो ए सुरगो सावण लागियो
आया आया हली, बादळ सुहावणा
सोनचिडी गीतडला गाव
बोल मीठा बोल
झिरमिर वरस खील बतासा
अ बर बाज ढोल[6]

उपयुक्त भावा म मिलत जुलते भावा एव कथ्य वाले बीसा गीत इस अवधि म लिखे गय। वणनात्मकता एव सपाट दृश्याकन इन गीतों की एक और विशषता कही जा सकती है। इन गीतो म न केवल भाव साम्य ही दृष्टिगत होता है अपितु शब्द प्रयोग एव शली की दृष्टि म भी आश्चयजनक रूप से समानता लक्षित की जा सकती है। इस समानता का कारण किसी एक समृद्ध और सपन्न भावराशि वान गीतकार से अ य अन्य गानकारा का प्रभावित होना नही रहा है अपितु इन सबके समान प्रेरणा स्रोत, लोकगीता म ही इसका समाधान खोजा जा सकता है।

प्रकृति के इस साधारणीकृत रूप के अ कन की अपेक्षा श्री क हैयालाल सठिया एव कही कही श्री कल्याणसिंह राजावत प्रभति गीतकारो के प्रकृति चित्रण सम्ब धी गीत करना के अनूठेपन, विचारो

---

1 रामतिया मत तोड, पृ० स० ७८
2 रमाळ पृ० स० ५४
1 सोना निपज रेत म, पृ० स० १२२
2 गोख अूभी गोरडी पृ० स० ४३
3 दाखा काप वयू पृ० स० २६
4 गाख अूभी गोरडी पृ० स० २०

की मौलिकता और प्रस्तुतीकरण की सर्वथा निजी शैली के कारण विशेष उल्लेखनीय बन पड़े हैं। इनमें जहां एक ओर प्रकृति के रूप सौंदर्य का उन्मुक्त अंकन हुआ है वहां दूसरी ओर प्रकृति के माध्यम से शाश्वत सत्यों के उद्घाटन का प्रयास भी। इन गीतकारों ने प्रकृति के आलंकारिक चित्रण में मन मृग को कल्पना के विस्तृत प्रांगण में निर्बाध चौकड़िया भरने का अवसर प्रदान किया है। इस हेतु कहीं मानवीकरण का सहारा लिया गया है तो कहीं अन्योक्ति का और कहीं रूपक का। इस दृष्टि से श्री कन्हैयालाल सेठिया के सावण री डाकरी [1] दवणी [2] सिंझ्या बहू [3] एवं श्री कल्याणसिंह राजावत के परभाती [4] आदि गीत उल्लेखनीय बन पड़े हैं।

प्रकृति के माध्यम से शाश्वत सत्यों के उद्घाटन और विभिन्न मानवीय समस्याओं के समाधान में श्री कन्हैयालाल सेठिया ही विशेष रूप से प्रवृत्त हुए हैं। प्रायः गीतकारों के सृजन के सम्बन्ध में यह आक्षेप लगाया जाता है कि भावुकता और सीमित दृष्टि के कारण वे पूर्ण सत्य के साक्षात्कार में असफल रहते हैं किन्तु श्री सेठिया के साथ यह आक्षेप लागू नहीं होता। उन्होंने अपने अधिकांश गीतों में जिस किसी भी मानवीय समस्या या शिवकारी सत्य को उठाया है उसका निर्वाह बड़े कौशल के साथ करते हुए पाठक या श्रोता को कहीं ऐसा आभासित नहीं होने दिया कि गीतकार कहीं अपनी ज्ञानगरिमा का प्रदर्शन करने को लालायित है या फिर उन्हें व्यर्थ ही नैतिकता और आदर्श के उपदेश वाले पाठ पढ़ा रहा है। उनका गीत [5] नामक रचना इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। इसमें कवि ने सीप चन्दन और मोती के क्रमशः सागर धरा और वृक्षों के साथ हुए सम्वाद के माध्यम से परोपकार की महत्ता का प्रतिपादन कलात्मक ढंग से किया है। पूरे गीत में कवि ने कहीं भी प्रत्यक्षतः यह नहीं कहा है कि जीवन की सार्थकता परमार्थ साधना में है फिर भी पुष्प में समाहित सौरभ की भांति इस गीत के अन्तर से स्वतः ही यह भाव सहज रूप में प्रस्फुटित हुआ है। [6]

प्रकृति चित्रण सम्बन्धी गीतों में प्रकृति के मृदु एवं शिव रूप के साथ साथ रूक्ष और कठोर रूप का सहज भाव से हुआ अंकन भी कवि की अपनी मिट्टी के प्रति रही हुई ममता और असीम प्यार की भावना का ही व्यंजित करता है। उसका अपनी मिट्टी या अपनी मातृभूमि के प्रति अगाध ममत्व और श्रद्धा का भाव उन गीतों में और भी उभरता के साथ प्रकट हुआ है जहां उसने पूर्ण भावावेश में यहां के वैभवशाली अतीत का यहां के समृद्ध साहित्य का यहां के अजेय योद्धाओं का यहां की साहसशीला वीरांगनाओं का एवं यहां के वैविध्यपूर्ण लोक जीवन का अंकन किया है। इस प्रकार राजस्थान या 'धोरां री धरती' और मरुधर देस की सीमाओं में आबद्ध ये गीतकार सहज ही क्षत्रीयता की भावना से

---

१ मींझर कन्हैयालाल सेठिया पृ० सं० १६
२ वही पृ० सं० २४
३ वही पृ० सं० ३०
४ रामसिया मा ताज, पृ० सं० ६८
५ मींझर पृ० सं० ३२
६ आधुनिक राजस्थानी काव्य में प्रकृति चित्रण सम्बन्धी विशद विवरण के लिए कृपया प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का प्रकृति काव्य नामक अध्याय देखें।

ग्रमित होन के दोषी ठहराये जा सकते हैं किन्तु उन पर यह दोष ग्रारोपित करन से पूव इन सबके पीछे कायरत उनकी मूल भावना को जान लेना ग्रावश्यक होगा। भावात्मक रूप म भारत को एक राष्ट मानते हुए भी जब ग्रपने समय के प्रबुद्धतम साहित्यकारा ने ग्रामार सोनार वा ग्रौर म्हारे रळी ग्राळो दश गुजरात' जसे गीता की सजना सहज उल्लास म मर कर की है उस स्थिति म म्हारो प्यारो राजस्थान के गीत गुनगुनाने वाले गीतकारो पर क्षेत्रीयता की भावना से जकडे रहन का दोषारोपण कसे किया जा सकता है ?

इन गीतो म दो एक गीत तो इतन ग्रधिक लोकप्रिय हो चुके हैं कि ये लगभग लोकगीत ही बन गये हैं। यहा उन गीता के कतिपय ग्र श उद्धत करना ग्रसगत नही होगा—

क म्हारी ग्राखडिया रो तारा दुलारो प्यारो मरुधर देस
सोने रा डूगर ज्यू चमक रेतडली रा ढेर
पन्ना ज्यूं जडियोडा उगम व मरुधर रा कैर—म्हारी०
ठडी राता मारग वर्गी वलडिया री सल
माटर रेतांरी मौजा थारी जिए र ग्रगाडी फल—म्हारी०[1]

ख धरती धारा री
ग्रा तो सुरगा न सरमाव
ई पर देव रमण न ग्राव
ई रो जस नर ना री गाव
धरती धोरा री
सूरज करण करण न चमकाव
चन्दा इमरत रस बरसाव
तारा निछरावळ करजावें
धरती धारा री[2]

इन गीतो म ग्रागे एक एक करके यहा के इतिहास लोकजीवन ग्रौर प्रकृति की विशेषताग्रो का वणन हुग्रा है। इन्ही तीन बातो को ग्राधार बनाकर ग्रन्य ग्रनेक गीता की रचना भी २०-२५ वर्षों म हुई है जिनम कहीं-कही गौरवपूण ग्रतीत की पृष्ठभूमि म वतमान की दुरावस्था का चित्रण करत हुए समयानुकूल परिवतन की माग भी की गयी है[3] पर ग्रधिकाश म मुग्धभाव स यहाँ का ऐतिहासिक, प्राकृतिक एव लोकजीवन की विशषताग्रा का ही गुणगान हुग्रा है।

शृगार प्रकृति ग्रौर मातृभूमि के स्तुतिपरक गीतो की तरह ही सामान्य जनो क पारिवारिक जीवन ग्रौर सामाजिक पव उत्सवो ग्रादि ग्रादि स सम्बधित गीता की सख्या भी पयाप्त रही है। इन गीता म पति-पत्नी के प्रणय सूत्रो को प्रगाढ करन वाल परस्पर के मधुर हास परिहास भाई बहिन क पवित्र स्नेह-बधन ननद भावज के मध्य की मीठी चुहलियां देवर भाभी की सरस नोक झोंक माता पिता

१ रक्त दीप श्री गणपतिचन्द्र भण्डारी पृ० स० १५४ प्र० का० वि० स० २०१६
२ मीमर, पृ० स० ६१
३ म्हारो ऽस दीवा कांपै क्यू पृ० स० ६७

एवं सास श्वसुर तथा जेठ जेठानी आदि के वात्सल्य एवं ममत्व भरे व्यवहार का अंकन हुआ है तो साथ ही साथ पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष एवं अविश्वास के मध्य पनपते इन रिश्तों की कटुताओं का भी चित्रण हुआ है। ये सब चित्र सामान्य जन के दैनन्दिन जीवन के मध्य से उठाये गये हैं और इनमें वैयक्तिक विशेषताओं भिन्नताओं एवं विचित्रताओं के स्थान पर उन सामान्य प्रचलित स्थितियों का वर्णन हुआ है जो कि प्रायः हर परिवार के बीच पायी जाती हैं। ऐसी स्थिति में ये चित्र वस्तुतः वैयक्तिक अनुभूतियों के चित्र न रहकर समूचे जीवन उसकी सामान्य प्रचलित भावनाओं के चित्र बन गये हैं फलतः एवं प्रत्येक चित्र में सामान्य पाठक या श्रोता को ऐसा लगता है कि यह तो उसी की बात कही जा रही है। इसी कारण ऐसे गीत जनसाधारण में बहुत अधिक लोकप्रिय रहे हैं —

क पौ फाटी जद बोलण लाग्या
पाख-पखेरू पीपळ डाळ
छाने छोराणी पीसण बैठी
बाजर मोठ चिणा की दाल
बडी जिठाणी आयी गीगली
बाजण लाग्या मोवन थाळ
नणद सुरंगी सारया देवे
घर घर बांध बानरवाल
पौ फाटी जद बोलण लाग्या
पाख-पखेरू पीपळ डाळ[1]

ख किरत्या पूज रे चढती बागर
पूनम री पूजूं उगतो चांद
दवी दवा री करस्यूं बोलवा
मनवांछा सावणिया री तीज
मिठड़ाला ओल्हर लास्यां बीर सूं

कोनी म्हैं मांगूं चीरा कांचळी
कोनी म्हैं मांगूं दीखणा चीर
कोनी म्हैं मांगूं पग री मोचड़ी
मिठड़ा हाथळ रा ओबर बार
ओबर बधवान्यां बारा गावड़ी[2]

उपर्युक्त गीतों जैसे पचासों गीतों में पारिवारिक जीवन के नाना विध सामान्यीकृत चित्र सहज रूप में अंकित हुए हैं। इस सन्दर्भ में श्री आकार पारीक की चर्चा न केवल उनके गीतों की संख्या के कारण ही आवश्यक है अपितु उनके विषय चयन और प्रस्तुतीकरण के सरल एवं प्रभावी ढंग के कारण

१ मारो निरजन रन म, पृ० सं० ६१
२ दीवा बार बटू पृ० सं० ८९ (द्वितीय संस्करण)

भी। सामान्य व्यक्ति के जीवन के नाना पक्षो को एव समाज के श्रमजीवी वर्ग के विभिन्न व्यवसायी-जनो को उन्होने अपने गीतो का आधार बनाया है। ऐसे गीतो म जन कल्याण एव सुधार की भावना से प्रेरित होकर लिखे गये कुछ गीत जहा एक ओर समष्टिगत जीवन का मोटा चित्र अकित करते हैं वहा दूसरी ओर उन गीतों का उद्बोधनात्मक स्वर उनकी प्रभविष्णुता एव अपील की क्षमता को निश्चित रूप से ठेस पहुचाता है। इस सबके बावजूद 'मारवाड'[1] म सकलित उनके गीत उन्हे समष्टि जीवन और उसकी सामूहिक भावनाओ के कुशल चितेरे के रूप म प्रस्तुत करते हैं।

पारिवारिक जीवन पर आधारित इन गीतो की लोकप्रियता ने प्रगतिशील विचारधारा के पोषक कवियो को इस ओर के लिए प्रेरित किया कि जनसाधारण तक सहज सम्प्रेषित होने के लिए गीत विधा को स्वीकारें। वैसे तो आजादी से पूर्व के स्वतत्रता आन्दोलन के राजस्थान के जन नायको एव समाज-सुधारको ने भी इस बात को भाप लिया था कि जनता म जागृति लाने एव चेतना के स्वर फूकने की दृष्टि से जनभाषा और सरल सहज गीतो के माध्यम से प्रस्तुत बात ही सबसे अधिक प्रभाव कारी सिद्ध होगी। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रगतिशील दृष्टिकोण वाले कवियो ने भी इसके मर्म को पहिचानते हुए ऐसे नाना प्रकार गीतो की रचना की, जिनमे कभी जनता को नव निर्माण के लिए कटिबद्ध होने को प्रोत्साहित किया गया तो कभी उन शताब्दियो की शोषण एव अत्याचार की परम्पराओ को ध्वस्त कर सर्वथा नवीन समाज सगठन के लिए उकसाया गया। इस अवधि म सरकारी रीति-नीति के पोषक गीतकारो के छद्म क्रान्तिकारी स्वर भी समान रूप और वाणी लेकर इनके साथ आ मिले। फलत तथाकथित क्रान्तिकारी दृष्टिकोण के पोषक गीतो एव गीतकारो की सख्या तो बहुत बढ गयी, किन्तु साथ ही साथ जनसाधारण म उनका प्रभाव भी निरन्तर कम होता गया।

प्रगतिशील गीतकारो के गीतो की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि प्राय ऐसे सभी गीतकारो ने अधिकाश म पारिवारिक एव सामाजिक जीवन के मधुर क्षणो को मोहक चित्राकन करते हुए उसके मध्य कही धीरे से अपनी बात को रखा है। फलत क्रान्ति और परिवर्तन के जोशील भाषणो की अपेक्षा ऐसे गीत जनमानस को उद्वेलित करने म अधिक सफल हुए हैं। इस दृष्टि से श्री गजानन वर्मा के गीत सर्वाधिक सफल कहे जा सकते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

अडवो ऊम्यो खेत म
सोनो निपजे रेत म
खबरदार हरियाळी खेती पर कुण नजर लगावे।
रात अधेरी बाट ताड आ कुण छान सी आवे।
उजाड नाख रे
हरी भरी खेती पर घूमर घाल रे।
अडवो ऊम्यो खेत म
सोनो निपजे रेत म
चावड धावड चौर करयो आसूजी धरती वायो
दिन भर करयो निनाण खेत म दायू लोग लुगाइ
अडवो ललकारे
ओ अगड बोलो कुण पाव उजाड रे।[2]

---

[1] आकार पारीक प्र० वा० १९६८ ई०

[2] सोनो निपजे रेत म पृ०स० ३०–३१

भी। सामान्य व्यक्ति के जीवन के नाना पक्षों को एवं समाज के श्रमजीवी वर्ग के विभिन्न व्यवसायी जनों को उन्होंने अपने गीतों का आधार बनाया है। ऐसे गीतों में जन कल्याण एवं सुधार की भावना से प्रेरित होकर लिखे गये कुछ गीत जहाँ एक ओर समष्टिगत जीवन का मोहक चित्र अंकित करते हैं वहाँ दूसरी ओर उन गीतों का उद्बोधनात्मक स्वर उनकी प्रभविष्णुता एवं अपील की क्षमता को निश्चित रूप से ठेस पहुँचाता है। इस सबके बावजूद मारवाड़[1] में संकलित उनके गीत उन्हें समष्टि जीवन और उसकी सामूहिक भावनाओं के कुशल चितेरे के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

पारिवारिक जीवन पर आधारित इन गीतों की लोकप्रियता ने प्रगतिशील विचारधारा के पोषक कवियों को इस ढंग के लिए प्रेरित किया कि जनसाधारण तक सहज सम्प्रेषित होने के लिए गीत विधा को स्वीकारें। वैसे तो आजादी से पूर्व के स्वतन्त्रता आन्दोलन के राजस्थान के जन नायकों एवं समाज सुधारकों ने भी इस बात को भाँप लिया था कि जनता में जागृति लाने एवं चेतना के स्फुरण की दृष्टि से जनभाषा और सरल सहज गीतों के माध्यम से प्रस्तुत बात ही सबसे अधिक प्रभावकारी सिद्ध होगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रगतिशील दृष्टिकोण वाले कवियों ने भी इसके मर्म को पहचानते हुए ऐसे नाना प्रेरक गीतों की रचना की, जिनमें कहीं जनता को नव निर्माण के लिए कटिबद्ध होने को प्रोत्साहित किया गया तो कहीं उसे शताब्दियों की शोषण एवं अत्याचार की परम्पराओं को ध्वस्त कर सर्वथा नवीन समाज गढ़ने के लिए उकसाया गया। इस अवधि में सरकारी रीति-नीति के पोषक गीतकारों के छद्म क्रान्तिकारी स्वर भी समान रूप और वाणी लेकर इनके साथ आ मिले। फलतः तथाकथित क्रान्तिकारी दृष्टिकोण के पोषक गीतों एवं गीतकारों की संख्या तो बहुत बढ़ गयी, किन्तु साथ ही साथ जनसाधारण में उनका प्रभाव भी निरन्तर कम होता गया।

प्रगतिशील धारा के गीतों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि प्रायः एमे सभी गीतकारों ने अधिकांश में पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के मधुर क्षणों का मोहक चित्रांकन करते हुए उसके मध्य बड़ी धीरे से अपनी बात को रखा है। फलतः क्रान्ति और परिवर्तन के जोशीले भाषणों की अपेक्षा ऐसे गीत जनमानस को उद्वेलित करने में अधिक सफल हुए हैं। इस दृष्टि से श्री गजानन वर्मा के गीत सर्वाधिक सफल कहे जा सकते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

> अडवो ऊभ्यो खेत म
> सोनो निपज रेत म
> खबरदार हरियाळी खेती पर कुण नजर लगाय।
> रात अधारी बाड़ तोड़ ओ कुण छान सी आव।
> ऊजळ चाल रे,
> हरी भरी खेती पर घूमर घाल रे।
> अडवो ऊभ्यो खेत म
> मोती निपज रेत म
> चावड धावड चौक करयो आसूनी धरती बायी
> दिन भर करयो निनाण खेत म दोयूं लोग लुगाई
> अडवो ललकारे
> ओ अगड बोलो कुण पाव उखाड रे।[2]

---

१ ओंकार पारीक प्र० का० १९६८ ई०

२ सोनो निपज रेत म पृ०सं० ३०–३१

श्री गजानन वर्मा ने अधिकांश में अपने गीतों में परिवर्तन एवं नवीन व्यवस्था की स्थापना के लिए संकेत भर किया है किन्तु श्री रेवतदान चारण के गीतों में शोषण के विरुद्ध संघर्ष के स्वर काफी तीखे हैं।[1]

धर्म प्रचारकों और भक्तों के मध्य गीत सदैव से ही लोकप्रिय रहे हैं। एक के लिए जहाँ यह अपने सिद्धान्तों के प्रचार प्रसार का सरल एवं प्रभावी मार्ग है वहाँ दूसरे के लिए अपने हृदय की वेगवती भावधारा को व्यक्त करने की सक्षम सही राह है जहाँ भावों के उद्दाम स्रोत बिना किसी बंधन के स्वाभाविक रूप में फट पड़ते हैं। राजस्थान के आधुनिक काल में जैन धर्मावलम्बियों ने तो नाना ही दृष्टियों से गीतों का खूब सहारा लिया है[2] किन्तु इसके अतिरिक्त भी अन्य मतावलम्बियों में भी अन्य काव्य रूपों की अपेक्षा गीत ही अधिक लोकप्रिय रहे हैं। वैसे तो इस अवधि में पचासों भक्त कवियों ने चरजाओं एवं पदों के रूप में अपने अपने आराध्य के प्रति अपना आत्म निवेदन किया है किन्तु भाव एवं भाषा दोनों ही दृष्टियों से वे अपने पूर्ववर्ती भक्त कवियों का अनुसरण करते ही अधिक प्रतीत होते हैं। ऐसी स्थिति में वे गीत अधिक जन प्रचलित नहीं हो सके। हाँ इनके मध्य एक आध कवियों के गीत अवश्य ही अपनी मौलिकता, तन्मयता एवं निश्छल भावाभिव्यक्ति के कारण सहज ही अपनी ओर ध्यान आकृष्ट कर लेते हैं —

का हजी ! किण विध अळगी होऊ
पलकां बारे बुहारु आमूडा आगणिया धोऊ
सावळ पल भर दरस दिखाओ नणा दीपक जाऊ–का हजी०
मारगिया अबडो रे मोहन रण अंधारी थाय
जग काटो भारी बिच माहे म्हासू रयो न जाय
था बिन दुबडा रो मुख जोऊ–का हजी०
पग पावडिया हाथ बिछाऊ हाथां ऊपर फूल
धीमो धीमो हाल बाळूडा चुभसी रेखा फूल
चिन्ह चरणा री माळा पोऊ–का हजी०
थारे बिन जिवडो न रहसी जासी पिंजर ताड
लाय समासो दील न लासी, बठैं नी मुख मोड
प्रेम रो अमर बण बोऊ–का हजी०[3]

गीतों की इस चर्चा में उन गीतों को भी नहीं भुलाया जा सकता जो प्रबन्धकाव्यों में आये हैं। इस दृष्टि से राधा, शकुन्तला और डाक्टर मनोहर शर्मा के गद्य छन्द में लिखे गए गोपीगीत, मरवण, कुब्जा आदि काव्य उल्लेखनीय हैं। डा० शर्मा ने इन काव्यों में यद्यपि स्वच्छन्द गद्य छन्द का प्रयोग किया है किन्तु कलेवर विस्तार एवं कथात्मकता में बंधे होने के कारण उन गद्य काव्यों में भी वह भाव प्रवणता एवं तीव्रता नहीं आ पाई जो कि गीतिकाव्य का सर्वाधिक प्रमुख तत्त्व है। इसके

---

१ विशेष विवरण के लिए देखें प्रगतिशील काव्य
२ विशेष विवरण के लिए देखें धार्मिक एवं भक्ति काव्य
३ पद राजश्री साधना, राजस्थान के कवि सं० रावत सारस्वत, पृ०सं०१३८

विपरीत उनमे वर्णनात्मकता वचारिक ऊहापोह एव कहीं कहीं उपदेशात्मकता की पुट आने के कारण भावो के स्तर पर जो गति शथिल्य आया है वह उन्हें प्रगीतो के अधिक निकट ला खडा करता है। डा० शर्मा के इन काव्यो की अपेक्षा श्री जोशी कृत राधा गीतिकाव्य के अधिक निकट है। यद्यपि कथा सूत्र उसमे भी सर्वथा गौण नहीं हुआ है फिर भी वहा कवि का ध्यान अधिक से अधिक संवेगात्मक स्थलो के चयन और उन्हें पूर्ण तन्मयता तथा भाव वेग के साथ प्रस्तुत करने का रहा है। अत राधा काव्य के बहुत से अश कथा सूत्र मे बद्ध होते हुए भी स्वतन्त्र रूप से रखे जाने पर एक सफल गीति की श्रेणी मे आ जाते है। उदाहरण स्वरूप यहा एक एसे ही अश प्रस्तुत है —

म्हान साथणिया मसो मारती ओ
कोइ नग नचाती ब्रिज री नार
जमना मे धसमस अडा धोवता
बरजती स्याणी भोजाया बरजनी
बोलती पाडोसण म्हान बोल
जद म्हैं आनी रे थाग बारण
टाकनी सब सणिया म्हान टोकती
कूव मुळकाती र विणियार
जद म्है सुणता थारी वासरी
मावड री आख्या मोती दमकता
सुपना मे आता आळ जजाळ
जद म्ह चटियोडी नदिया लाघती[1]

इस पूरे गीत मे राधा की मर्म वेदना, गहरे पश्चात्ताप के रूप मे व्यक्त हुई है। उसे इसी एक बात का भारी दुख है कि परिवार लोक और समाज की परवाह न कर उसने कृष्ण की प्राप्ति के लिए क्या कुछ नहीं किया? किन्तु उसे बदले मे क्या मिला? लोक निंदा और लाछना। उसे उसकी भी परवाह नहीं होती यदि इस प्रीति की यादगार के रूप मे वह एक सुन्दर सलोने बालक को पा सकती। एसे ही प्रगाढ भावो वाले राधा के बहुत से गीतो मे उसकी मर्म वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है।

'शकुन्तला' मे राधा की तरह पूरे काव्य का ताना बाना तो गीतो के सहारे नहीं बुना गया है किंतु साकेत के नवम सर्ग की तरह ही उसका 'भरत'[2] नामक अष्टम सर्ग भी स्वतन्त्र गीतो के सहारे ही अपनी यात्रा पूरी करता है। दुष्यन्त द्वारा परित्यक्त शकुन्तला, अपमानित, लाछित एव तिरस्कृत नारी के रूप मे जिस भयकर पीडा को भोगती है एव आत्म भर्त्सना के व्यथित कर देने वाले जिन क्षणो के मध्य वह गुजरती है उसकी अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न गीतो के माध्यम से हुई है। यद्यपि प्रबन्ध के नियमो के विपरीत होते हुए भी शकुन्तला के ये गीत उसकी आहत वेदना को जो अभिव्यक्ति देने मे सफल हुए हैं, वह अन्य किसी रूप मे सभव नहीं था।

---

१ राधा सत्यप्रकाश जोशी, पृ० स० ८१

२ शकुन्तला श्री करणीदान बारहठ, पृ० स० १०५

गान भेद के भिन्न प्रकारों में ध्वनि गीत समूह गीत एवं युगल गीत तीनों प्रकार के गीतों की रचना आधुनिक राजस्थानी के गीतकारों ने की है। ध्वनि-गीतों की सजना में श्री गजानन वर्मा विशेष सक्रिय रहे हैं। श्री नरोत्तमदास स्वामी के शब्दों में 'ध्वनि गीतों के रचनाकार के रूप में श्री गजानन वर्मा अपनी बिल्कुल पृथक और विशिष्ट सामर्थ्य रखते हैं। जीवन की अबाध गति और उसकी हर चंचल लहर का संगीत वे अपने गीतों में उतार पाये हैं। दादी नानी के निरंतर गतिशील चरखे और करघे के श्रम संगीत की ध्वनि प्रयाण और उद्बोधन की प्रेरक ध्वनि, रंदे सुनार लुहार खिजार के औजारों की ध्वनि कहना चाहिए अमर संगीत की जिन चिर नवीन लहरियों से लोक जीवन आन्दोलित है उसमें अपनी अभिव्यक्ति को अभिसिंचित करने की लगन और कुशलता श्री वर्मा को प्राप्त है और वे अपने ध्वनि-गीतों में कई साधक

---

२ आधुनिक राजस्थानी में ऐसे गीतों की संख्या पर्याप्त रही है जहां क्वचित परिवर्तन के साथ किसी प्रसिद्ध लोकगीत की धुन को अपनाया गया है। यहां उदाहरणार्थ एक दो गीत प्रस्तुत हैं—

क साझ पड़ या घर जाऊं रे कान्ह।

राधा पृ० सं० ४५

तुलनीय—

उचल मगर जाऊं ओ माय

उढ़िया काचर लाऊं ओ माय

वीरो म्हारो भाई ओ माय विजयदान देथा पृ० सं० १८

ख म्हारे हाथां में सुरंगी महंदी राचणी जी राज

गोरल ऊभी गोरडी पृ० सं० २२

तुलनीय—

आ तो सिणजी रे मेला बादळी रे लाल

सरवण माटी आ सं० विजयदान देथा पृ० सं० २४

और भी

सुसरोजी घड़ायो म्हारो बाटलो रे लाल

सासू जी जड़ायो म्हारा रतन जड़ाव

जड़र म टगा रे लाल

हिवड़ो आज हरखतो डोले प्रीतडली री पाळ

सानो निपजे रेत में पृ० सं० ७०

तुलनीय —

आतो सिण जी रे मेला बादळी रे लाल

अन्तो भूर मत भोला साथ

रंगीलो धण री बादळी रे लाल

आतो भवर जी रे मेला बादळी रे लाल

सरवण माटी आ सं० विजयदान देथा, पृ० सं ३४

चित्रा को सही रूप में उतार पाये है।'[1] उनके 'बाज घूघरिया[2] सटकनळी'[3], 'घुण रे पिंजारा'[4], 'चन्ना माळिया'[5] आदि बहुत से सफल ध्वनि गीत जनसाधारण के मध्य काफी लोकप्रिय रहे हैं। श्री गजानन वर्मा के अतिरिक्त श्री गणेशीलाल उस्ताद श्री ओंकार पारीक श्री सत्यनारायण प्रभाकर अमन प्रभृति गीतकारों ने भी सफल ध्वनि गीतों की रचना की है जिनमें स्व० उस्ताद के ऐसे गीत काफी प्रचलित प्रमाणित हुए है।

समूह गीतों की रचना विशेष रूप से सामाजिक जीवन के उन प्रसंगों से सम्बन्धित होती है, जहां वैयक्तिक उल्लास एवं उत्साह के स्थान पर समूह मन के ओज, उमंग आदि भावों को अभिव्यक्त होने का अवसर मिलता है। सामाजिक जीवन में ऐसे क्षण विशेष रूप से तीज त्यौहार आदि के साथ ही आते हैं या फिर 'लावणी' आदि सामूहिक श्रम से सम्पन्न होने वाले कार्यों के साथ। राजस्थानी में ऐसे होता ही प्रसंगों से सम्बन्धित गीतों की रचना हुई है जिसमें स्व० गणेशीलाल व्यास उस्ताद और श्री गजानन वर्मा के गीत ही विशेष लोकप्रिय हुए।

युगल गीत की संख्या अपेक्षाकृत कम रही है। ऐसे गीत अधिकांश में पति पत्नि के मध्य होने वाले मधुर संवादों के रूप में ही लिखे गए हैं। इनमें भी गीतकारों की प्रवृत्ति दो ओर लक्षित की जा सकती है। एक ओर ऐसे गीत रचे गए है जहां उन्मद यौवन के समस्त सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त उन्मुक्त प्रणयोच्छ्वासों को अभिव्यक्ति मिली है तो दूसरी ओर श्रम सीकरों के मध्य पनपते (विकसित होते) सद्गृहस्थ के निर्मल प्यार का मधुर अंकन हुआ है। प्रथम प्रकार के गीतों में श्री मदनगोपाल शर्मा का 'कच्यो उड ज्यासी'[6] श्री लक्ष्मणसिंह रसवन्त का 'मुकळावो'[7] आदि गीत एवं द्वितीय प्रकार के गीतों में श्री गजानन वर्मा एवं स्व० उस्ताद के बहुत से गीत द्रष्टव्य हैं।

रूप विधान की दृष्टि से पाश्चात्य काव्य जगत में लिरिक के पांच भेद माने गये हैं— १ सम्बोधन गीति (ODE) २ शोक गीति (ELEGY) ३ पत्र गीति (EPISTLE) ४ गीत (SONG) एवं ५ चतुर्दशपदी (SONNET)। आधुनिक राजस्थानी के गीतकारों ने (SONG) गीत के अतिरिक्त सम्बोधन गीति एवं शोक गीति तक ही अपने को सीमित रखा है। सम्बोधन गीति के स्वरूप को लेकर विचारकों में पर्याप्त मतभेद रहा है फिर भी उदात्त दृष्टिकोण भव्य शैली आत्मपरकता एवं गेयता उसके प्रमुख लक्षण माने गये हैं। वैसे संस्कृत हिन्दी और राजस्थानी साहित्य में भी पशु पक्षियों में आत्माभिव्यक्ति और उन्हें मध्यस्थ बनाते हुए अपने संदेश प्रेषित करने की परम्परा रही है,

---

१ भूमिका सोनी निपजै रेत में पृ०सं० १६ (द्वितीय संस्करण)
२ सोनो निपजै रेत में पृ०सं० ३६
३ वही, पृ०सं० ४२
४ वही पृ०सं० ४८
५ वही पृ०सं० १३८
६ गोम ऊभी गोरड़ी पृ० सं० ५६
७ रसाल पृ० सं० ३५

किन्तु आधुनिक साहित्य म जिस प्रकार की सम्बोधन-गीतिया लिखी जा रही हैं उनका तन्त्र पाश्चात्य ODE से ही सीधा जुडा हुआ है। शली की दृष्टि से सम्बोधनात्मक गीतिया दो रूपा म लिखी गइ हैं— प्रथम वस्तु विशेष को सम्बोधित करते हुए आत्माभिव्यक्ति की गई है और द्वितीय वस्तु विशेष पर ही अपन भावो को आरोपित करत हुए आत्मकथात्मक शली को अपनाया गया है। अधिकाश रचनाएँ प्रथम प्रकार की शली म ही लिखी गइ हैं। इस दृष्टि से श्री कल्याणसिंह राजावत के गीत उल्लेखनीय बन पडे हैं। उनका 'रामतिया मत ताड'[1] फूल फूल रो मोल'[2] दिवला कितरी बाट बळी[3] आदि गीतो मे इस शली का सुदर निवाह हुआ है। आत्मकथात्मक शली म अधिकाशत सुख दु ख की वयक्तिक अनुभूतिया एव आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति हुइ है। श्री मनोहर गोपाल शर्मा रचित पाच पखेरू[4] श्री सत्यप्रकाश जोशी रचित ल्होडी जी[5] आदि आत्मकथात्मक शली म लिखे गए उल्लखनीय गीत हैं।

किसी प्रिय या आदरणीय की मत्यु पर उसके सम्मानाथ या कि शाक प्रदशनाथ काव्य रचना की परम्परा काफी प्राचीन रही है। इस प्रकार के काव्य को मरसिया सना से अभिहित किया जाता रहा है। आधुनिक शोक गीति को 'मरसिया' का विकसित रूप तो नही माना जा सकता किंतु फिर भी दानो म काफी साम्य है। दोना म ही अतर की पीडा की सहज एव मार्मिक अभिव्यक्ति होती है। वतमान म शाक गीति क दो रूप प्रचलित हैं—प्रथम वयक्तिक प्रसगो से उद्वेलित कवि मन की पीडा को व्यक्त करन वाल शोक गीत एव द्वितीय ऐस किसी महान पुरुष के विछोह से सम्बधित जो कि अपनी विशिष्ट उपलब्धिया एव सेवा त्याग या बलिदान के कारण जन-साधारण का श्रद्धेय रहा हो। प्रथम प्रकार की गीतिया गीतकार के वयक्तिक जीवन स सीधे सम्पृक्त होते हुए भी अतर की गहन पीडा से भीगी हान क कारण सहृदया को सहज ही द्रवित कर लेती हैं। राजस्थानी म 'सरोज-स्मृति' जसी शोक गीति तो दूर वयक्तिक पीडा स उन्मूत सामान्य शोक-गीतिया का भी अभाव ही कहा जा सकता है, हा मरसिया परम्परा का निवाह फिर भी 'रावल नरेन्द्रसिंघ रा मरसिया'[6] जसी रचनाओ मे हुआ कहा जा सकता है। वसे मुकुन्दसिंह बीदावत कृत 'बहुनामी री बेलि'[7] पर फिर भी इस दृष्टि से विचार किया जा सकता है। इसकी रचना कवि ने अपन एक मित्र की दो वर्षीय अबोध बालिका की मृत्यु स क्षुब्ध होकर की है। चूकि इस कृति म उस बालिका से सम्बधित उन स्मृतिया का अकन बहुत कम हुआ है जो कवि के मानस को अपनी स्मृतिजन्य पीडा म पुन पुन आलाडित करता रहा है, अपितु इसके व्याज मे कवि ने वतमान की दुरावस्था का चित्रण करत हुए उसके लिए अपन आराध्य को दोषी ठहराया और इसी बात के लिय उसे अनेक प्रकार स उपालम्भ दिये हैं। इस प्रकार यह रचना व्यक्तिगत जीवन के ही एक मार्मिक प्रसग स उत्प्रेरित होत हुए भी उपालम्भ-काव्य के अधिक निकट है।

---

१ रामतिया मत तोड, पृ०स० ३
२ वही, पृ०स० ५
३ वही, पृ०स० १६
४ गोम ऊभी मारू पृ०स० ४८
५ दीवा काप क्यू
६ शभुसिंह मनोहर मरुवाणी, वप ७ अक—४ पृ०स० २५
७ प्रकाशक सप शक्ति प्रकाशन, जयपुर प्र०का०—१९६७ ई०

द्वितीय प्रकार की शोक गीतियो म आलम्बन के प्रति वयक्तिक सान्निध्य के बावजूद भी ममत्व या अपनत्व की अपेक्षा श्रद्धा का भाव प्रबल होता है, फलत उनम व्यक्त हुए उद्गारो म पीडा उतनी घनीभूत नही रह पाती। अधिकाश म ऐसी गीतियो मे श्रद्धेय या आलम्बन की उपलब्धियो एव महानताओ से अभिभूत कवि मन उसके महत्त्व को दर्शाने और उसके निधन से सावजनिक जीवन म हुई क्षति को अकित करने म ही अधिक रम जाता है। आधुनिक राजस्थानी मे गाधी नेहरू या शास्त्री जस दिग्गज नताओ के काल कवलित होने पर ही विशष रूप से शोक विह्वल कवियो की लेखनी से ऐसे शोक गीतियो की रचना हुई हैं। वस अपूव शौय का परिचय दते हुए देश हिताथ मरने वाले योद्धाओ की स्मृति मे भी यदा कदा कतिपय शोक गीतियाँ लिखी गई हैं। इन शोक गीतियो म महात्मा गाधी के निधन पर लिखी गई श्री कन्हैयालाल सेठिया कृत 'बापू'[1] एव श्री रेवतदान चारण कल्पित कृत 'बिख रा आख म आसू'[2] शीषक गीतिया भाव द्रवणता और कथन की ऊष्मा के कारण पाठक को सहज ही द्रवित कर देती है—

> आभ मे उडता खग थमग्या
> गल में बता पग ठमग्या
> हाथो सो फूटयो धरती पर
> क कुण गमग्या क कुण गमग्या ?[3]

निष्कपत आधुनिक राजस्थानी साहित्य के इतिहास मे एक समय ऐसा आया जबकि वहा गीत सर्वाधिक लोकप्रिय विधा रही। गीत की इस लोकप्रियता का कारण एक ओर जहा पद्यकथाओं एव गद्य प्रशस्ति गानो की एकरसता स ऊबे पाठक श्रोता एव स्वय कवि वग द्वारा बदलाव की माँग थी, वहा दूसरी ओर स्वत त्रता प्राप्ति के पश्चात जनसामान्य के बढे हुए महत्त्व और आम आदमियो की भीड का प्रत्यक वस्तु को तजी से अपनी ओर आकर्षित करने का मुद्दा भी। इस कारण कुछ ही समय पूव राजाओ एव सामन्तो के गुणगान करन वाल कवियो ने भी समय की परिवतनगामी गति को पहिचानकर स्वय को भी उसी के अनुरूप ढालना शुरू किया और राजाओ की जय-जयकार करन वाल वे हा कवि अब जन शक्ति की जय जयकार करन लग। इन लागो न देखा कि जनमानस के निकट पहुचन का सहज और सरल रास्ता गीत के अतिरिक्त अन्य नही है अत उन्हान लोकमानस क अति प्रिय एव उसके भावो की निश्छल अभिव्यक्ति करन वाल लोककाव्य क क्षेत्र म घुसपठ करना उचित समझा। फलत इन गीतो का कथ्य शिल्प और शली तीनो ही राजस्थानी लाकगीतो से दूर तक प्रभावित रह। कहीं-कहीं तो यह प्रभाव इतन स्थूल रूप म उभर कर सामन आया कि सामान्य लोक गीतो और इन कवियो द्वारा सर्जित गीतो म अन्तर कर पाना ही कठिन हो गया।

जहा तक इन गीतो क कथ्य का प्रश्न है वह सामान्यत सामाजिक एव पारिवारिक जीवन के विभिन्न पक्षो म ही सम्बद्ध रहा। वयक्तिक सुख-दुःख एव ततजन्य अनुभूतियो की अभिव्यक्ति इन गीतों म कम ही हो पाई। वस्तुत य गीत व्यष्टि मन की पीडा या उमग क व्यजक न होकर समष्टि

---

१ मीजर पृ०स० १०
२ गाधी प्रकाश स० वेन्श्याम पृ०स० १२
३ मीजर पृ०स० १२

वग की सामूहिक भावनाग्रा क ग्रभिवक्ता ही विशेप रूप से बने रहे। फलत प्रेम एव शृङ्गार सम्बन्धी गीता स लेकर प्रगतिशील दृष्टिकोण क परिचायक गीता तक ग्रौर प्रकृति चित्रण एव देशभक्ति सम्बन्धी गीनो से लकर धार्मिक एव ग्राध्यात्मिक उपदेश प्रधान गीता तक सामूहिक भावो के ग्रभिव्यजना की यह प्रवृत्ति समान रूप से प्रभावी रही।

ग्रब तक हुई राजस्थानी गीता की इस चचा क सम्ब ध म एक बात की ग्रोर इगित करना ग्रनपक्षित नहा हागा कि राजस्थानी साहित्य जगत म गीत ही एक एसी विधा रही है जिसका सवाधिक दुरुपयोग किया गया। गीत–जो कि सवथा मन के राग विराग से जुडा हुग्रा है–को प्रचार प्रसार का साधन बनाकर न कवल उसक साथ ही भारी मजाक किया गया ग्रपितु इसी के माध्यम स जन भावनाग्रा का गलत उपयाग भी हुग्रा। कम्पोस्ट खाद के विनापन स लकर परिवार नियोजन की उपयोगिता समभान तक ग्रौर सहकारी जीवन का पाठ जन साधारण क गल उतारन स लकर गाधी भक्ति ग्रौर भूगोल भक्ति का पाठ पढान तक के लिए समान रूप स इसका दुरुपयोग किया गया। यही नही वडल्न म एसी रचनाग्रा को साहित्य क नाम पर भुनाया गया। तभी ता ग्रनाधिकारिया द्वारा किय गय गीत के इस ग्रवमूल्यन से दु खी होकर सच्च गीतकारा की मम वदना या फूट पडी—

गीत, एक घायल मोरियो।
पाखा खोस खोस र
कागला बेतुको साग भर
चिडकल्या ग्रळमडो समभ र
ग्राळा सजाव
स्याणा मोरछडा वणा र
बहम्या र भाडो दे,
देख र ग्राभो निसास नाख,
बापडी गू ज मोरडी
डू गरा म सिर धुणे।[1]

राजस्थानी गीतो का वतमान स्थिति की इससे ग्रधिक सटीक व्याख्या ग्रौर क्या होगी ?

---

[1] कूकू श्री कन्हैयालाल सेठिया पृ०स० २, प्र०का०–वि०स० २०२७

प्रगतिशील काव्य

हिन्दी साहित्य जगत में 'प्रगतिवाद' एवं 'प्रगतिशील' शब्द पर्याप्त विवाद के विषय रहे हैं। एक ओर कुछ आलोचक दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में करना समीचीन समझते हैं और यह मानते हैं कि मार्क्सवादी दर्शन एवं विचारधारा को व्याख्यायित करने वाला साहित्य या कि उनके सिद्धान्तों के अनुरूप सर्जित साहित्य ही प्रगतिशील या प्रगतिवादी साहित्य है। वहीं दूसरी ओर कतिपय अन्य विद्वान इन दोनों शब्दों में अंतर मानकर उनके अलग अलग रूप निर्धारित करते हैं। उनके अनुसार प्रगतिवाद शब्द तो मार्क्सवादी दर्शन एवं विचारों से अनुप्राणित साहित्य के लिए ही रखा जाए किन्तु प्रगतिशील साहित्य के अन्तर्गत वह सभी साहित्य भी समाहित किया जाए जो कि अपने युग को विकास पथ पर अग्रसर करने में अग्रगण्य रहा हो चाहे उसकी सर्जन चेतना के मूल में मार्क्सवादी दर्शन न भी रहा हो[1]। आज यह बात लगभग मान ली गयी है कि मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्राणित साहित्य को प्रगतिवादी साहित्य कहा जाये और अग्रगामी विचारों के पोषक साहित्य को प्रगतिशील साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया जाए—जिसमें प्रगतिवादी साहित्य भी समा जाता है। हम भी यहाँ इसी आधार पर प्रगतिशील शब्द को स्वीकारते हुए इसके अन्तर्गत आधुनिक राजस्थानी काव्य की उन सब रचनाओं पर विचार करेंगे जिसने युग को मार्ग की वाणी देकर समाज को प्रतिगामी स्थितियों से बचाकर प्रगतिपथ पर अग्रसर किया।

आधुनिक राजस्थानी साहित्य में प्रगतिशील काव्य की पृष्ठभूमि के रूप में उन रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है जो कि प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (१८५७ ई०) के आसपास या उससे कुछ पूर्व रची गयी थीं और जिनमें मुख्यतः तात्कालिक सामन्तों और राजा महाराजाओं को अंग्रेजों के

१ मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से अनुप्राणित साहित्य को प्रगतिवादी साहित्य और इस साहित्य सहित इसके अलावा के उस समस्त आधुनिक साहित्य को जो मूलतः मानवतावादी और अग्रगामी है—चाहे उसके रचयिता का दार्शनिक दृष्टिकोण कुछ भी हो—और उस समस्त प्राचीन साहित्य को भी, जो अपने युग की ऐतिहासिक परिस्थितियों में जिसने समाज और संस्कृति को आगे बढ़ाने की प्रेरणा दी और जो मानवतावादी भावनाओं से पूर्ण है, प्रगतिशील साहित्य कहा जाना चाहिए।

हिन्दी प्रगतिशील कविता: डा० रणजीत, हिन्दी साहित्य संसार, प्रगतिशील प्रकाशन दिल्ली, प्र० का०–१९७१ ई०

विरुद्ध एक जुट होकर संघर्ष करने को उद्घोषित किया गया था। इन रचनाओं के सर्जकों में एक ओर सूर्यमल्ल मिश्रण जैसे समर्थ कवि हुए हैं जिन्होंने जनसाधारण में स्वाभिमान स्वतन्त्रता और वीरता के भाव जगाने वाले काव्य की सर्जना की, तो दूसरी ओर शंकरदान सामौर जैसे जनकवि हुए हैं जिन्होंने समय से पूर्व ही अंग्रेजों की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति को ताड़कर, तात्कालिक शासनाधिकारियों को उस खतरे के प्रति आगाह कर दिया था—

महलज चूरण मोकळा चम्पा सुख्या चिगज
लूटण भूपा लालचा आया वस इंगरेज ।।[1]

यह नहीं खतरे की गंभीरता का महसूस करते हुए उन्होंने हिंदू मुस्लिम एकता की बात भी बड़े स्पष्ट शब्दों में की जो कि उस समय को देखते हुए उन कवियों के प्रगतिशील चिन्तन का ही परिणाम कही जायगी—

मिल मुसलमान राजपूत औ मरटा
जाट सिख पथ छाड तजर जुल्मी
दोन्सी दसरा दखियोड़ा दाकल कर
मुलक रा मीठा ठग तुरत मुदमी[2]

और इसमें भी बढ़कर इस राष्ट्रीय संकट के समय आनाकानी करने वाले नरेशों को खूब आड़े हाथों लेकर पूरा उत्साह प्रदर्शित किया—

तन मोटो, मोटा तगन मोटा वस गभीर
हुओ दस हित वयू हम मन छागो हम्मार ।।[3]

इस प्रकार अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित करने वाले साहित्य की सर्जना उन कवियों की प्रगतिशील दृष्टि का ही परिचायक मानी जायगी।

राष्ट्र और समाज की तात्कालिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में सोचने की इस प्रवृत्ति को राजस्थानी साहित्य के आधुनिककाल के प्रथम चरण में विशेष रूप से प्रोत्साहन मिला। इस दृष्टि से प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारों ने पर्याप्त सजगता का परिचय दिया। इन लोगों ने मारवाड़ी समाज की पतितावस्था को ध्यान में रखते हुए सुधारवादी एवं प्रेरणास्पद साहित्य की सर्जना में विशेष रुचि दिखलायी। उन्होंने गद्य और पद्य में समान रूप से इस पहलू को छुआ। इस दृष्टि से प्रथम उल्लेखनीय नाम आता है श्रीयुत शिवचन्द्र भरतिया का जिन्होंने एक ओर तो भारत के अन्य अन्य प्रान्तों की अपेक्षा राजस्थानवासियों के सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में पिछड़ जाने की बात को गंभीरता से लिया और अपनी रचनाओं के माध्यम से भरपूर प्रयास किया कि मारवाड़ी समाज अपनी अशिक्षा एवं अन्धविश्वास जन्य कुरीतियों को छोड़कर प्रगति पथ पर अग्रसर हो तो दूसरी ओर केवल जातीयता या प्रान्तीयता की सीमाओं में ही न बंधे रहकर, राष्ट्रीय स्तर पर विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, देश

१ राजस्थानी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना– श्री भंवरसिंह सामौर
आलोक, सत्र १९६८-६९ पृ० सं० ५३ (चूरू)

२ वही

३ वही

म औद्योगिकरण की उपयोगिता एव एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता जसे विषयो पर भी मुक्त रूप से विचार किया ।[1] प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारो म भी भरतिया जी न जिस दूरदर्शिता का परिचय दते हुए अपने प्रगतिशील विचारो को जिस निर्भीकता क साथ प्रस्तुत किया, वसी दृष्टि की व्यापकता और दूरदर्शिता का परिचय अय अय प्रवासी राजस्थानी साहित्यकार नही दे पाये । उहोने राष्ट के अय तात्कालिक महत्त्वपूर्ण मुद्दो को छोडकर केवल मारवाडी समाज और राजस्थानी भाषा साहित्य की उनति को ही अपना सर्वोपरि लक्ष्य बना लिया । अपेक्षया दृष्टि की यह सकुचितता भी एक बहुत बडे वग की प्रगति के साथ जुडी हुई थी अत इन साहित्यकारो के प्रयास को भी नकारा नही जा सकता ।

प्रवासी राजस्थानियो न समाज उत्थान एव शिक्षा प्रसार की दृष्टि म जिस जागरूकता का परिचय दिया वसा उत्साह तो राजस्थान के तात्कालिक साहित्यकार ने नही दिखलाया किन्तु फिर भी वह अपन समय क प्रवाह स अछूता नही रहा । विशेष रूप से उसन दयानद आदि समाज सुधारको के कार्यों स प्रेरित होकर राजस्थानी समाज क कानो म भी सुधार मत्र को फूकने म काफी उत्साह दिखलाया जो गत शताब्दी पूव ही बगाल महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशो म फूका जा चुका था । इस दृष्टि स श्री ऊमरदान लालस का नाम उलखनीय है । उहोन जहाँ एक ओर भ्रष्ट साधुओ और पाखण्डियो क काले कारनामो का पर्दाफाश कर उह खूब आड हाथो लिया वहाँ दूसरी ओर जनसाधारण को अफीम, शराब आदि कुव्यसनो क परित्याग को भी प्रेरित किया । चूकि वे स्वय काफी समय तक साधुओ क साथ रह चुक थे अत उनकी आतरिक विकृतियो से भली भाँति अवगत थे । इसलिए व एस साधुओ के यथार्थ रूप को जनसाधारण क सामन लान म सफल हुए है—

मारवाड रा माल मुफ्त म खाव मोडा
सवक जाका सग गरीबा द नित गोडा
दाता द वितदान मौज माण मुसडा
लाखा न धन लूट पूतळा पूजक पडा
जग ठगक्का जागटा खाखी परधन खावणा
मरुधर म वाडा मिनक करमा एक कमावणा[2]

भ्रष्ट और पतित साधुओं क गर्हित आचरण का कच्चा चिट्ठा खोलन की दृष्टि स उनकी अमल्ला रा आरमा[3] और साट सना रा सुनासा'[4] नामक कविताए उल्लखनीय हैं । उहाकी कुछ अ य कविताए अमल रा औगण[5] 'दारू रा दाम[6] और तमाखू रा ताडना[7] मूलत उपदेशात्मक

१ दृष्टव्य निबन्ध भरतिया किरण नाहटा
२ ऊमर काव्य ऊमरदान, पृ० स० १६५–६६ तृतीय सस्करण, वि० स० १९८७
३ वही पृ० स० १६७
४ वही, पृ० स० १६१
५ वही पृ० स० २७५
६ वही पृ० स० २६६
७ वही पृ० स० २६३

रचनाएँ होते हुए भी तात्कालिक जीवन म इन सवव्यापी बुराइयो को दूर करने की दृष्टि से महत्वपूण बन पडी हैं।

सुधार की हवा उस समय इतनी प्रबल थी कि एक समय म अश्लील गीत गालियो के सग्रह प्रकाशित करने एव लिखवाने वाले प्रकाशकों तक को अपनी भूल स्वीकारते हुए सभ्य गाली सग्रह प्रकाशित कर प्रायश्चित करना पडा।[1]

इस युग म जहाँ श्री ऊमरदान जसे कवियो ने सामाजिक जीवन की विकृतिया और कुरीतिया के निवारणाय लेखनी उठाई, वहाँ इसके बाद वाल समय म सव श्री जयनारायण व्यास, माणिक्यलाल वर्मा, हीरालाल शास्त्री एव गणेशीलाल व्यास उस्ताद' जसे कवियो न राजनतिक जन जागरण की दृष्टि से अपनी लेखनी का उपयोग किया। जनसाधारण तक अपने विचार सप्रेषित करन तथा शोषण और अन्याय पर आधारित तात्कालिक सामन्ती शासन व्यवस्था के प्रति विद्रोह के भाव जागृत करने की दृष्टि से इन कवियो न लोकप्रिय धुनो का सहारा लिया। जनता की स्वय की भाषा म सरल किन्तु सीधे अपील करन वाले गीतो की रचना की। चूकि इन गीतो के अधिकाश रचयिता मूलत कवि नही थे और न ही कवित्व उनका अभीष्ट था अत उनम काव्यत्व का पक्ष गौण रहा फिर भी जनसाधारण म जागृति लाने और क्रान्तिकारी विचारो को प्रसारित करने की दृष्टि से उनकी उपलब्धियो को नकारा नही जा सकता। इन्होने एक ओर युगो युगो से पीडित एव शोषित किसान म आत्म-सम्मान जगाने का प्रयास किया—

उठाव दुख अतरो क्यू करसाण
कदी जेठ की ज्वाला म तू कई लेवा न बाळ दह ?
काळी अधियारी राता मे, कई लेवा ने भेल मेह ?
जगळ भीतर घास भू पडी जोगी बणकर क्यू जागे ?
फाटयो कथल्यो डाल पीठ पर ताप क्यू धूणी आगे,
हा हा हू हू करे मदद पर कोई न थार आवे है,
थारा मू डा आगे थारी मेनत लूटया जावे है।
सूडा सूर सियाळ सू सल्या
कोई नी माने थारी काण
उठावे दुख अतरो क्यू करसाण ?[2]

---

१ जोधपुर के डी०जे० बुक डिपो न सभ्य गाली-सग्रह' के प्रकाशन से पूव रसिक मारवाडी भाइयो के मनोरजनाथ एव रसिकजना के दिल बहलाव के लिये दसो गाली-सग्रहो का प्रकाशन किया था। सीठणो एव गालियो का यह सिलसिला उस समय इतना प्रबल था कि इस कुरीति की ओर से जनसाधारण का ध्यान हटाने के लिए सत्प्रचार कार्यालय जयपुर' और एसी अन्य सामाजिक सस्थाओ को उनके समकक्ष ही अनेक प्रचारात्मक गीत प्रचारित करने पडे।

२ किसान माणिक्यलाल वर्मा अळगोजो स० श्रीमन्त कुमार व्यास पृ०स० ४५ (द्वितीय सस्करण)

तो दूसरी ओर जनसाधारण को देश और जाति ... हेतु ... प्रस्तुत करते हुए त्याग और बलिदान के लिए प्रेरित किया —

> तू भी आजा साथ तुम्ह जा
> आ भाई तू भी तो आजा
> सभा सबने भरा जाति म
> और देश म जगा चमार
> सब साथ में बार बार म
> राग गहा गाय को ध्यान
> कष्ट त्याग बलिदान करना ?
> घर का ध्यान न तनिक धरना ?
> देश जाति हित सुख मरना
> ईश हाथ भाग तरेना ?[1]

और तीसरा भार भाग्य के नाम पर दुःख भरने की बात का सरासर मूर्खता बताते हुए, उस पुरुषार्थ के बल पर नव जीवन निर्माण के लिए प्रोत्साहित किया —

> तकदीर का ठीकरो फोड़ धरो पुरुषारथ लार निगाओ जरा
> सब भेठ निलाड़ लिखत करो अब भाग के भाग लगाओ जरा
> मुरदापण छोड़ के मर्द बणो मरदी पर ख्याल दिखाओ जरा
> दिल को धड़को सब दूर करो डरन डर पार भगाओ जरा ।[2]

इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व की प्रगतिशील रचनाओं में समाज सुधार, जातीय उत्थान, शोषण के प्रति सगठित सघर्ष और राजनैतिक अधिकारों के प्रति सजगता के भाव जागृत करने वाले भावों एवं विचारों का ही प्राधान्य रहा। वस्तुत स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही राजस्थानी प्रगतिशील काव्यधारा ने गति पकडी। देश की ताजा आजादी ने कवियो में नव विश्वास और आशा का सचार किया और उन्होंने अपनी रचनाओं में बड़े बड़े सुनहरे स्वप्न सजोते हुए अपने उत्साह को व्यजित किया। यहाँ भी दो स्थितियाँ रही। एक ओर वे कवि थे जो कि किसी राजनैतिक मतवाद या विचारधारा से पीडित नहीं थे अपितु जिन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्तरिक उल्लास से प्रेरित होकर विकास और नव निर्माण के गीत गाये तो दूसरी ओर मार्क्सवादी विचारों से प्रेरित कवियों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति को ही अपना अन्तिम ध्येय न मानते हुए अप्रस्तुत रूप से ऐसी रचनाओं की सृष्टि प्रारम्भ की जिसमें स्पष्ट रूप से साम्यवाद की स्थापना के लिए रक्तक्रांति की बात कही गयी।

प्रथम धारा अर्थात् आन्तरिक उत्साह एवं उल्लास से प्रेरित होकर विकास एवं नव निर्माण के उमग भरे गीत लिखने वाले गीतकारों की सख्या राजस्थानी में पर्याप्त रही है। स्व० गणेशीलाल व्यास उस्ताद स्व० सुमनेश जोशी श्री गजानन वर्मा श्री निरजननाथ आचाय, श्री मदनगोपाल शर्मा

---

१ आ भाई तू भी तो आजा श्री जयनारायण व्यास, आगीवाण स० बालकृष्ण उपाध्याय पृ० स० १ नवम्बर १९३७

२ गीतपचीसी हीरालाल शास्त्री

प्रभति बीसो कवियो ने ऐसे शताधिक गीतो एव कविताम्रो की रचनाएँ की जिनम आजादी का तहेदिल से स्वागत करते हुए सुनहले भविष्य के सुदर स्वप्न सजोय गये हैं और देश के नव निमाएा के लिए साधारएा जन को तन मन धन से जुट जाने का आह्वान किया है। स्व० उस्ताद के स्वतत्रता प्राप्ति के समय और कुछ बाद तक लिखे गये गीत[1], स्व० सुमनेश जोशी की 'नवी रागएी'[2] म सकलित गीत श्री गजानन वर्मा के 'सोनो निपज रेत मे'[3] सकलित अनेक गीत, श्री मदनगोपाल शर्मा के 'गोख ऊभी गोरडी'[4] क कई गीत, श्री निरजननाथ आचाय के 'धरती रा गीत'[5] आदि काय सकलन ऐसी ही रचनाओ से भरे पडे हैं। ऐसी रचनाओ के पीछे भी कविया का प्रमुख दृष्टिकोण जनजागरण एव नवनिर्माण के लिए उनमे उत्साह का सचार करना रहा है अत यहाँ भी उपदेश प्रमुख और कवित्व गौण हो गया है। ऐसी स्थिति म इस प्रकार लिखे गए सकडा गीता म से उदाहरण स्वरूप एक आध रचना का उल्लेख ही पर्याप्त होगा—

मन रो अधारो हट जासी जनता जुग समभएा नै लागी
तन रा पग बधएा कट जासी, जनता हेत हिलएानै लागी
जन आख्या खुलता ही उडगी, ऊच नीच अळगाई रे
आजादी आता ही हुयगी, भिचकएा सू भरपाई रे
जनता भय भागएानै लागी
निग्री निबळाइ निठ जासी, जनता आपूँ बधएान लागी
जळ बिजळी कळबळ खेडा म अन री उपज बधाई रे
रेल सडक मोटर सू सुधरी, करसएा तएाी कमाई रे।
जनता करज भरएा नै लागी
सिर री देवाळो दह जासी, जनता कम खरचएान लागी।[6]

विकास और निर्माण के प्रति यजित हुआ यह उत्साह अधिक समय तक नही ठहर पाया, क्योकि जनता न शासन से जिन बाता की अपेक्षा की थी, उन सब की पूर्ति क स्थान पर उन्ह मिला भ्रष्टाचार और अनाचार का पोषक एक नया सामती वग। अत जनता का विश्वास उन सब नारा स हट गया। ऐसे अवसर पर मोहभग की स्थिति म पहुँचे ये ही कवि तीखे शब्दा म भ्रष्ट शासन-व्यवस्था की तीखी आलोचना करने लग। जनता के विश्वास को जो जबरदस्त ठेस शासनाधिकारियो के कृत्य कलापो से लगी उसकी पीडा को उस्ताद जस कविया न बडे मार्मिक शब्दा म व्यक्त किया है—

---

१ देखें मरवाणी वष १० और ११ के जनकवि उस्ताद अक
२ प्र० का०–१९५६ ई०
३ प्र०का०–वि०स० २०२१
४ प्र०का०—१९६५ ई०
५ प्र०का०—१९६३ ई०
६ जनता जुग समभएा नै लागी गणेशीलाल व्यास 'उस्ताद'
मरवाणी वष १०, अक ८, पृ०स० ४८

लोग कय पूरा ऊगो, दिन बठै गयो परवान
हाथ हाथ न लागण दो", दिल री रानी पास
मुलक री मा कठी आजादी,
पूत पितर में मच्या दिखाळो, घाम' गिर बरबादी
मिनखपणे रो राम विसरग्यो, मेव पूजीज मेग
दल स्वारथ सू जन रा नेता किया पागळो देस
सिपाई हाथां धूड उडादी
वितरा तो टुकडां पर विरग्या, बाकी गांठ गमादी
मोटा मगर कुटम न माव, नियळा भुगतै दड
बापू रो उपदेश विसरन, सत हुआ सो खड
सयाणा सेठ बण्या सतवादी
खादी त्याग गरीबी बणगी, जन-जुग री गहजादी ।[1]

जनता के इस दुःख दर्द को अकेले उस्ताद ने ही वाणी नहीं दी, अपितु अमन' जैसे अन्य प्रगतिशील कवियों ने इस भ्रष्ट और पतित अवस्था का सांगोपांग चित्रण करते हुए इस सारी अव्यवस्था के प्रति उत्तरदायी लोगों को खूब आड़े हाथों लिया है। उन्होंने कहीं व्यंग्य के सहारे स्थिति को स्पष्ट करने का प्रयास किया है—

गांधी जी चलग्या सुख पाया ।
आ भ्रष्टाचारी देख देख,
काळा-बाजारी देख देख
ई भाटा मारी भारत री
तस्कर व्योपारी देख देख ।
वा छोड पावती दुख भाया—
गांधी जी चलग्या सुख पाया ।[2]

तो कहीं शासनाधिकारियों की निलज्जता को देखते हुए उन्हें स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी है—

सिर ऊंच लियो है झूपडल्या अब नहीं तकली काची ऐ,
ऐ जाण गई छै जीण स्यूं तो मौत माण रा आछी है।
म्हैला री नींव हुई थोथी
अब छात टूटणी बाकी है
आ टपल्या र मुंहाथ, जिण्या
अब लाय छूटणी बाकी है।[3]

---

१ आ कडी आजादी गणेशीलाल व्यास 'उस्ताद'
मरुवाणी वर्ष ११ अंक ५ पृ० स० १५३

२ थे मत आया चूंठिया, अमन पृ०स० ६१

३ माग चूंठिया, अमन, पृ० स० ४१

इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही उल्लास एव उमग म फूट कवियो के उत्साही स्वर अपेक्षित परिवतन न आ पाने की स्थिति म हौले हौले वतमान की भ्रष्ट और पतित व्यवस्था क प्रति आक्रोश की आग उगलने लगे, किन्तु फिर भी इन बदली हुई स्थितियो म सरकारी रीति-नीतियो को वाणी प्रदान करने वाली रचनाओ का सजन एकदम बन्द नही हुआ है । वह अब भी 'धरती हला मारे'[1] और गीत भारती[2] के रूप म यदाकदा 'सहकारी जीवन', अल्पबचत आदि के गीत गुनगुनाता सुनाई पड़ जाता है ।

यहा तक जिन परिस्थितियो का वणन हुआ है उनम प्रगतिशील विचारधारा की अपेक्षया स्थूल स्थितिया ही उभर कर सामने आयी, किन्तु इस विचारधारा न कवि लोगो को अन्य दृष्टि से भी प्रभावित किया है और उसके परिणाम ऊपरी स्थितिया जितने स्थूल नही रहे। कविता का आम आदमी के जीवन स सीधे जुड जाना प्रगतिशील विचारधारा की सबसे महत्वपूण उपलब्धि कही जा सकती है। अब तक की कविता मे विशिष्ट वीरो या प्रेमियो को ही आधार बनाया जाता रहा या फिर सयोग और वियोग की परम्परित धारणाओ को ही हर बार एक नये अन्दाज म प्रस्तुत किया जाता रहा इन सब स्थितियो के बीच आम आदमी कही दखल नही दे रहा था। अब यह पहली बार देखा गया कि कवियो का ध्यान साधारण व्यक्ति की ओर गया और उन्होने उसके जीवन को अपनी रचनाओ म अकित करना प्रारम्भ किया।

आम आदमी को कविता का विषय बनाने के सम्बन्ध म भी दो स्थितियाँ रही । एक ओर कवियो ने ग्राम्य जीवन और साधारण कृषक परिवार क ऐसे अनेको चित्र अकित किये जहाँ सवत्र मस्ती का आलम गूजता है और हर पल हर घडी चन की बशी बजती हुई सुनाई पडती है, तो दूसरी ओर कवियो ने ग्राम्य एव कृषक जीवन के प्रति इस भावुकतापूण दृष्टिकोण को छोडकर उनके कठोर एव सघषपूण जीवन के यथाथ चित्र अकित किये हैं। यहाँ भी प्राधान्य प्रकारान्तर से उन्हीं कवियो का रहा है जिनका ग्राम्यबोध "अहा। ग्राम्य जीवन भी क्या है" की स्थिति स आगे नही बढ पाया है। हिन्दी मे ऐसी रचनाएँ करन वाले कवियो से राजस्थानी के ऐसे कवि केवल एक ही दृष्टि से भिन्न पडते हैं कि उन्होंने ग्राम्य जीवन क इन मुक्त क्षणो का स्वय भोगा है, अत उनके चित्रो म जीवन को एकागी दृष्टि से प्रस्तुत किये जाने के बावजूद भी नितान्त अविश्वसनीयता नही रह गयी है और यही कारण है कि एक सीमा तक साधारण जन का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने म भी ये चित्र सफल हुए हैं। ऐसी रचनाओ के सम्बन्ध म एक स्थिति और भी रही है वह यह कि उसमे ग्राम्य जीवन के छोटे से छोटे उपादान को कविता का विषय बनाया गया है फलत उनका धरातल काफी विस्तृत हो गया है। उनम एक ओर चरखा कातती हुई कतवारी गायो को चराता हुआ 'गुवालिया ऊटो को लिए घूमने वाला राइका पेट पालन के लिए चक्की चलाती हुई पिसारी और रुई धुनते हुए पिंजार का चित्र अकित हुआ है तो दूसरी ओर दनन्दिन जीवन के अभिन्न अग बन चरस 'कुवारी, बिनावणी 'पणघट' आदि का स्तवन भी हुआ है।[3]

---

१ हलवन्तसिंह देवडा, वेदव्यास, प्र० का० १९६६ ई०

२ बाबूलाल 'लालकवि

३ इन विषयो पर लिखी पचासो कविताओ म कतिपय उल्लेखनीय रचनाएं है श्री ओंकार पारीक की 'गीत पिसारी रा गीत राइके रा, गीत बिनावणी रा गीत पिणघट रा (मारवाड़)

ग्राम्य जीवन के आकर्षक और मोहक चित्र अंकित करने वाली ऐसी कविताओं में कतिपय कविताएँ तो बहुत ही अधिक लोकप्रिय हो चुकी हैं। इस दृष्टि से श्री गजानन वर्मा की सावनथाळ, बोलण लाग्यो काग, हिवड़ो आज हरखतो डोल आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इन गीतों की लोकप्रियता के पीछे जहाँ कंठ की मधुरता एक मुख्य कारण रही है वहाँ दूसरी ओर लोकमानस की प्रिय कल्पनाओं की सरस अभिव्यक्ति भी जनमन को गुनगुनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती रही है। ऐसी रचनाओं के एकाध उदाहरण दृष्टव्य है—

क पौ फाटी जद बोलण लाग्या
पागे पखेरू पीपळ डाळ
छोटी छोराणी पीसण बैठी
बाजर माठ चिणा री दाळ
बड़ी जिठाणी जायो गीगलो
बाजण लाग्यो सोवनथाळ
नणद सुरंगी सातया देव
घर घर बाधे बानरवाळ ।[1]

ख खलो बुहारयो भाड यो ढोला
है कद रो तयार जी
वगा पाछो बावड़ो तो
अन धन भरा भंडार जी
बाजर री राटी पोई
फोफळिया रो सागजी
जीमण बैठी गोरडी जद
बोलण लाग्यो कागजी
बाजर री रोटी पोई ।[2]

राजस्थानी में ग्राम्य जीवन के इन मधुर एवं प्रिय दृश्यों को अंकित करने वाले कवियों की अपेक्षा उन कवियों की संख्या कम रही है जिन्होंने ग्रामीणों के कठोर एवं संघर्षपूर्ण जीवन के यथार्थ चित्र अंकित किये है। इस दृष्टि से साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित कवियों ने विशेष उत्साह प्रदर्शित किया है। उन्होंने किसानों की गरीबी और शोषण से जर्जरित जीवन को अमीरों एवं जागीर

श्री गजानन वर्मा का घुणरे पिजारा मरवण चाल ए सोवनथाळ गणगण गाडी जाय' (मानो निपज रेत म) श्री लक्ष्मणसिंह रसवंत का सवन्क बाल रावडी (रसाल) श्री सत्य प्रकाश जोशी की विणजारा बीरा (नीवा काप क्यू) आदि।

1 मोना निपज रेत म गजानन वर्मा, पृ० स० ८९ (द्वितीय सस्करण)

2 बोलण लाग्यो काग सानो निपज रेत म गजानन वर्मा प्र० का०-वि० स० २०२१, द्वितीय सस्करण पृ० स० ६३-६४

दारा के ऐयपाशी जीवन के साथ साथ चित्रित कर दोना वर्गों के बीच के वैषम्य को उभारने का प्रयास किया है जिससे इस कृषक मजदूर वर्ग को क्रान्ति के लिए तयार किया जा सके। साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित इन कवियो की रचनाओ पर आगे विस्तार से विचार होगा। यहा तो कतिपय उन रचनाओं की ओर सकेत हुआ है जिनमे ग्राम्य जीवन के प्रति भावुकतापूर्ण दृष्टि को छोडकर यथार्थवादी दृष्टि अपनायी गयी है। श्री सत्यनारायण प्रभाकर 'अमन' की कइ कविताओ मे इस यथार्थवादी दृष्टि का सुदर निर्वाह हुआ है। बडे सवेरे से लेकर अर्द्ध रात्रि तक काय मे व्यस्त कृषक गृहवधू की यह दिनचर्या ग्रामीणो के कठिन जीवन की एक झाकी प्रस्तुत करती है—

एक प्हैर र भाभरके उठ घट्टी भोव
पीस पीसणो, काढ बुहारी, दही विलोव।
छोरी दवे भाट पड्या से ठीकर ठाली
सिर पर मेल इडूणा घडो पाणी न चालो।
चाटा कर र स्यार भैंस री छाडी पाडी,
गाय लवारी बाखडती री धारा काढी।
ढाढया घाली चाग नीरियो टोघडिया नै
गोवरपोठो कर यो छमकिया फाफळियान।
आख दिन कर कार अन्त वा' के फळ पाव ?
सासू, सुसरे, धणी, नणद री गाळया खाव।
खा फिटकारा कर बापडी दावा दूवी,
ना घाल सळ नाक हाजरी हरदम ऊभी।[1]

यहाँ तक प्रगतिशील कविता के उस पहलू पर विचार हुआ है—जिसका प्रत्यक्ष या परोक्ष मे किसी भी राजनैतिक मतवाद से कोई सीधा सम्बन्ध नही रहा है। आगे प्रगतिशील कविता के एक मुख्य पहलू प्रगतिवादी कविता पर विचार हुआ है—जिसकी पृष्ठभूमि मे मुख्यत साम्यवादी विचारधारा सक्रिय रही है। इस विचारधारा से प्रेरित कवियो मे रेवतदान चारण 'कल्पित', भीम पाडिया, प्रेमचन्द रावल मनुज देपावत त्रिलोक शर्मा श्रीमन्तकुमार व्यास प्रभृति कवियो का नाम उल्लेखनीय रहा है। इन कवियो ने अपनी रचनाओ मे सामन्ता अत्याचारो और पूजीपतियो द्वारा किए जा रहे शोषण का तीव्र विरोध करते हुए—जीवन के वैषम्य, शोषण और अत्याचार की क्रूरतम स्थितियो के बडे ही रोमाचक चित्र अकित किए हैं और साथ-ही साथ स्पष्ट शब्दो मे इन सारी व्यवस्था को मटियामेट कर एक नये समाज की सरचना के लिए कृषको एव मजदूरो का आह्वान किया है।

कृषक एव मजदूर वर्ग मे नवचेतना का सचार करने की दृष्टि से इन कवियो को बहुत कुछ कहना पडा है। क्योकि शताब्दियो से दासत्व का जीवन जीते जीते यहाँ का कृषक हीनता का शिकार बन चुका था। दासता उसके रक्त की एक एक बूद मे समायी हुयी थी। उसे शोषण और अन्याय कहीं तो नहीं साल रहे थे क्योकि युगो युगो से उसे यही सब कुछ पढाया जाता रहा कि यह सब तो उसके भाग्य का लेख है, जिससे वह ऐसा जीवन व्यतीत कर रहा है। इसी भाग्यवाद के कारण अपने

1 बापडी का चूठिया 'अमन', पृ० स० ५-८

शोषणकर्त्ताओं के प्रति घृणा या प्रतिशोध के भाव उससे कोसो दूर थे। चूंकि उसने अपने उन शोषण कर्त्ताओं को स्वामी और रक्षक के रूप में देखा था, शोषणरत्ता के रूप में नहीं अत इन्हीं सब स्थितियों में जीना उसकी आदत बन चुका था और शोषण एवं अन्याय में पिसते रहना वह अपनी नियति मान मान चुका था। तभी तो भूखे पेट अपमानित और अवमानित होकर ही नहीं अपितु शारीरिक प्रताडनाएँ पाकर भी निलज्ज हँसी हँसना उसकी विवशता बन चुकी थी। ऐसी स्थिति में विचारो से इतने जड बने यहाँ के शोषित वर्ग को जगाने एव उसमें आत्मसम्मान एव आत्मगौरव के साहसी स्वर फूकने के लिए कवियो को उसे कई प्रकार से समझाना पडा। सबसे पहले उस पर किये जा रहे शोषण अत्याचारो एव उसके तथा उसके आकाओ के जीवन के आकाश पाताल के वैषम्य को उसके सामने रखा। एक ओर भूख से बिलबिलाती जनता थी तो दूसरी ओर ऐय्याशी का जीवन व्यतीत करने वाले सामन्त लोग थे—

जद मह अधारी राता म लूटोडो ढाणी चवती हा
तो मारू रा रग मला म दारू री महफिल जमती ही
जद वा उनाळू लूआ म करसे री काया बळती ही
तो छत भवर रे चौबारे, चौपड री जाजम ढळती ही।[1]

जीवन की इस विषमता का अन्त यहा तो नहीं हुआ। इन दीनहीन मानवो की अपेक्षा उन विलासियो के कुत्ते और घोडे भी कहीं ज्यादा भाग्यशाली थे—

घोडा न दाणा खावण ने वा दाल चिणा री भिजियोडी
पण इणरा टाबर भूखा हा किसमत इणसू खिजियोडी
कुत्तीरा हुचरिया बठा, जीम कचरा री थाळी मे
पण एक मिनख रा टाबरिया भूखा सूता नीवाळी म
हा दाळ पाव भर कर भेळी घोडा री जूठण उठियोडी
वा भाग सरायो भूखा रो-बा गई नेण दूजा भारी।[2]

बेगारी और शोषण यही तो उसकी कारुणिक जीवन कथा का अंतिम अध्याय नहीं था। उसकी जीवन शक्ति को जोक की तरह चूसनेवाला पूजीपतिवर्ग भी उसके जन्म से ही उसके साथ लगा था जो कि मृत्यु पर्यन्त उसका पीछा नहीं छोडता। इस प्रकार भूख, कर्ज हीनता और दीनता के शिकार बने इस सामान्य प्राणी म आत्मविश्वास का सचार करने के लिए कवियो ने उसे विविध प्रकार से समझाया। कभी उसे उसकी कायरता के लिए धिक्कारा (ताकि उसमे किसी भी प्रकार से आत्मसम्मान के भाव जग सकें)—

सूरज मघ समन्दर माटी बोली मोसा देता
लाणत रे धरतीरा करसा, लाग लूटग्या खेती[3]

---

1 माटी थने बोलणो पडसी, चेत मानखा रेवतदान चारण 'कल्पित' प्र०का० वि०स० २०१४, द्वितीय सस्करण, पृ०स० १८
२ धणियारी श्री प्रेमचन्द रावल 'निरकुश' अळगोजो पृ०स० ४१
३ सात जुगा रो लेखो चेत मानखा, पृ०स० ११

तो दूसरे ही क्षण उसे युगों-युगों के अत्याचारों की याद दिलाकर अब भी सावधान होने को कहा गया—

इण माटी म सौ-सौ पीढ़ी, मरगी भूखी प्यासी,
भाग भरोसे रह्यो बावला, प्रीत करी ग्रकासी,
कदे तो पडग्यो काळ ग्रभागो, गिणगिण काढयो दोरो,
कदे तो ठाकर लाटो लाटयो, कदे लाटग्यो बोरो,
कद तो बरी लावो पडग्यो कद ग्रायगी रोळी,
कितरा दिन तक सबर करता, माटी हँसने बोली,
रे कदा चेत मानखा चेत
जमानो चेतण रो ग्रायो ।[1]

लेकिन भला युगा-युगो की निद्रा यो ही थोडी भग हो सकती है ? आजादी मिलने तक के परिवर्तन को वह उनीदी आखो से देखता रहा है । उसकी ग्राखा म अब भी अतीत के मोहक स्वप्न तरते रहे हैं । इस स्वप्न जाल से बचने के लिए पूर्णत जागृत होने की आवश्यकता थी—

उठ खोल सणी-दी ग्राखडल्या, नैणा री मीठी नीद तोड,
रे रात नही ग्रब दिन उगियो, सुपना रो भूठा मोह छाड
थारी ग्रास्या म राच रया, जनाळ सुहाणी राता रा
सू कोट वणावे उण जूनोड, जुगरी बोदी बाता रा
पण बीत गयो सो गयो बीत अब उणरा कूडी ग्रास त्याग
छाती पर पैणा पड्या नाग, रे धोरा ग्राळा देश जाग ।[2]

किन्तु जागकर यथार्थ से परिचय भर कर लेना ही तो पर्याप्त नही है । ग्राज तक की शोषण और अन्याय की समस्त परम्पराओ से जूझना और अपने खोए हुए अधिकार को पाने के लिए सगठन बद्ध होकर सघर्ष करना और अधिक आवश्यक था तभी कवि को लिखना पडा—

सज्जो ग्रेक सघट्टण, पथ पलट्टण, राज उलट्टण आज वढौ
मन मे मिनखापण, नण सुरापण, खाये खापण मेल कढौ[3]

और पथ पलटने की तमन्ना से आगे आने वाले इस सगठन के एक-एक सदस्य से इतने साहस की अपेक्षा थी कि वह हर खेत को रणक्षेत्र म बदलकर यह सिद्ध करदे कि इस मिट्टी का सच्चा रगरेज वही है—

खेत बण्या रणखेत खेतडो ऊपर धजा फरूक
धोरो ऊपर बध्या मोरचा, ऊभी फौज उडीक
हेला देवा जितरी जेज
म्हे हा माटी रा रगरेज
धरती ज्यू चावा ज्यू रगदा ।[4]

---

१ चेत मानखा, चेत मानखा, रेवतदान चारण 'कल्पित', पृ०स० १
२ रे धोरा ग्राळा देश जाग श्री मनुज दपावत ग्रळगाजो, पृ० स० ३३
३ उछाळो चेत मानखा , श्री रेवतदान चारण कल्पित, पृ० स० ४६
४ माटी रा रगरेज, वही, पृ० स० ४१

इस प्रकार हर खेत को रणक्षेत्र में बदल देने का साहस युगों युगों से प्रताडित यह मानव जब सजो लगा तो 'इन्कलाब' की वह आधी आयेगी जिसमें आज तक की अन्याय और शोषण की समस्त परम्पराएँ भूमिसात हो जायगी—

नींवा रे नीचे दबियोडी जुग जुग री माटी द भफटो
ल उठी किला ने जडा मूल, पसावाडो फर लियो पलटो
तिणक ज्यू उडगी तरवारा, गोच गे रूप कियो माला
रूखा र पत्ता ज्यू उडगी व लाज बचावण री ढाला
जा पडी उतरडी म बोतल मद पीवण रा प्याला उडग्या
मैफिल रा उडग्या ठाठ बाट व महला रा रखवाळा उडग्या
वे दब जुगारा सिंघासण रडवडता पडिया ठोकर मे
वे ऊधा लटक अधरबम्ब नहिं भल अम्बर न धरती
अ धार घोर आधी प्रचड आ धुआगोर धव धव करती
आव है उर म आग लिया गढ कोटा बगला न ढहती ।[1]

और तब लाल सूरज' उग आने का इन कवियो का स्वप्न साकार हो सकेगा—

पण पूरब खानी थे देखा बा ऊग सूरज लाल लाल
सोन री किरणा फट रही, पाप्या पर भू व आज काळ।[2]

इस प्रकार इन सारी रचनाओ मे एक सुनिश्चित विचार दर्शन को स्थापित करने का प्रयास हुआ है। विशेष रूप से साम्यवादियो के शोषणहीन, श्रम और सत्ता पर आधारित ऐसे समाज की ओर सामान्य जन को आकृष्ट किया गया है, जिसमे सत्ता और प्रभुत्व कहीं होगा तो वह मजदूर किसानो के हाथो मे। यहा एक बात यह ध्यान मे आती है कि इस विचारधारा मे धर्म एव जातीयता के सम्बन्ध मे सोचने का एक विशेष दृष्टिकोण रहा है। धर्म यहा सीधेसाधे व्यक्ति को ठगने की एक गहरी साजिश माना गया है और जातीय व्यवस्थाएँ उस साजिश का जिन्दा बनाये रखने का शानदार भुलावा। अत मार्क्सवादी चिन्तन से प्रेरित कवियो ने इन दोनो को नकारा है। जहाँ तक आधुनिक राजस्थानी काव्य का सम्बन्ध है कवियो ने धर्म एव जातीय सम्बन्धो को लेकर बहुत कम लिखा है। फिर भी जब इस ओर विचार करते हैं तो ध्यान सहज ही नानूराम सस्कर्ता जैसे कवियो की ओर चला जाता है, जो वैचारिक दृष्टि से चाहे साम्यवाद के समर्थक न भी रहे हो, किन्तु जिन्होने इन व्यवस्थाओ के कारण कटु से कटु स्थितियो से गुजरने का अनुभव प्राप्त किया है। अत सहज ही उनकी आहत वाणी धर्म के नाम पर पनपने वाले पाखण्ड और जातीय सम्बन्धो की सार्थकता के नाम पर मानव मानव मे ऊँच नीच की भयकर खाई उत्पन्न करने वाली व्यवस्था के विरोध मे फूट पडी। उन्होने अपनी 'धूतराज'[3]

---

१ इन्कलाब री आधी चेत मानखा, पृ० स० २२

२ ऊगतो सूरज, श्री त्रिलोक शर्मा अळगोजो पृ० स० १०३

३ समय बायरो नानूराम सस्कर्ता, पृ० स० १५

'धम की ग्राड म',[1] 'बुरो है वणधम रो नाव,'[2] 'पर पचायत न पग मारे'[3] ग्रादि कविताग्रो मे इन तथा कथित धर्माधिकारियो का कच्चा चिटठा खोलकर रखने मे किंचित भी हिचकिचाहट नही दिखलायी है—

चरड चरड चिलमडिया चोस
ग्रोसर जीमता फिर
न्हावण धावण सार न जाण
कदे ना कुरलो कर
ग्र जनऊ म जू मार
पर पचायत न पग मार
ग्राडा पेचा पागड बाध
लागड खुला राख
मुख मीठा पेटा रा पापी
छुरी छिपाया राख
ग्र धोखो ग्रधम विचार
पर पचायत न पग मार ।[4]

निष्कपत कहा जा सकता है कि राजस्थानी कवियो के एक वडे वग ने समाज को सम-सामयिक समस्याग्रा से निपटन म निर तर पथ प्रदशक क रूप म ग्रपना सहयोग दिया है। ग्राजादी से पूव जब कि साधारण-जन म राजनतिक चेतना के स्वर फूकने ग्रौर रूढियो एव ग्रध परम्पराग्रों से उसे मुक्त करवान की ग्रावश्यकता थी तब प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारो ग्रौर राजस्थान के क्षेत्रीय साहित्यकारा ने ग्रपनी सीमाग्रो के बावजूद भी ग्रपने उस दायित्व को बखूबी निभाया। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात जबकि ग्रभिव्यक्ति पर लगे सारे प्रतिबध हट गये थ कविजना ने ग्रपनी ग्रपनी रुचि के ग्रनुसार एक ग्रोर जनता म स्वतत्रता के प्रति विश्वास जगान ग्रौर उसमे उनकी ग्रास्था को दृढ करने की दृष्टि से, विकास ग्रौर निर्माण की ग्रावश्यकताग्रो के उत्साही गीत गाये। दूसरी ग्रोर कुछ ग्रन्य कविया का जिनका सोचना यह था कि बिना किसी रक्त क्राति के साधारण व्यक्ति को सुविधाए प्राप्त नहीं हो सकेगी—ने ग्राज तक क शोषण ग्रौर ग्रत्याचारा के भीषण चित्रो को ग्रकित करते हुए साधारण यक्ति को इस बात के लिए उकसाया कि वह एक क्राति के द्वारा इन सब सडियल व्यवस्थाग्रो को समाप्त कर एक नये समाज का निर्माण करे। उधर स्वतत्रता प्राप्त किये वर्षों बीत जाने के बाद भी ग्राम ग्रादमी की हालत म ग्रपेक्षित परिवतन न ग्रा पाने की स्थिति म इन्हीं कवियो ने भ्रष्ट शासनकर्ताग्रा एव पतित जननताग्रा को खूब ग्राडे हाथो लेना शुरू किया जिन्होने कभी इन्हीं शासनाधिकारियो की रीतिनीतिया का इसी विश्वास के साथ समथन किया था कि ये ग्रपने त्याग ग्रौर श्रम से एक नूतन समाज के निर्माण म सफल हो सकेंगे। कहने का तात्पय यही है कि राजस्थानी के कवि ने सामाजिक, राजनतिक धार्मिक सभी क्षेत्रो म प्रतिगामी शक्तिया का विरोध किया ग्रौर ग्रग्रगामी कदमो का सदव ग्रपना समथन किया।

---

१ समय वायरो श्री नानूराम सस्कर्ता, पृ०स० २८
२ वही, पृ०स० ३५
३ वही पृ०स० ७८
४ वही, पृ०स० ७८

वीर एव प्रशस्ति काव्य

प्राचीन राजस्थानी साहित्य जहा अपने विपुल वीर काव्य के कारण वीर काव्य का पर्याय बन गया है वही आधुनिक काल म आकर उस धारा के मन्द पड जाने की बात अवश्य कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होती है किन्तु यह सत्य है कि राजस्थानी वीर साहित्य की अति समृद्ध परम्परा को देखते हुए आधुनिक काल के गत सत्तर वर्षों मे जो वीर काव्य रचा गया है, वह अत्यल्प है। इसका मुख्य कारण भारत की और विशेष रूप से राजस्थान की राजनतिक स्थिति मे निहित है। देश म सन १८५७ की क्राति से पूर्व जो व्यापक युद्धजनित उत्साह और मारकाट का वातावरण बना हुआ था वह राजस्थान म अग्रेजो की राजस्थानी नरेशो के साथ हुई सधियो के साथ मन्द अवश्य पड गया पर परम्परा से ही विद्रोही स्वभाव के कतिपय राजपूत सरदारो[1] ने रक्त की अतिम बूद रहने तक अग्रेज साम्राज्यवादियो से सघर्ष किया और राजस्थान के वीर कवियो ने अपने हृदय के भाव सुमन चढाकर इन वीरो की अर्चना की। यह अवश्य है कि इस सधि ने मुगलकाल के अतिम चरणो मे फली राजनतिक अस्थिरता एव अराजकता को राजनतिक स्थिरता म बदल दिया। फलत यहा युद्धो की सम्भावना लगभग समाप्त हो गई और ऐसी स्थिति मे आलम्बन के ही समाप्त हो जाने पर यहा यदि वीर काव्य सृजन की परम्परा मद पड गई हो तो आश्चय ही क्या ?

यहाँ प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि देश मे तब से लेकर सन १९४७ ई० तक स्वतत्रता प्राप्ति के आन्दोलन का समय आराम एव विश्रान्ति का समय नही था अपितु १८८५ ई० मे राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना के साथ ही सम्पूर्ण देश म क्रमश अग्रेजो के विरुद्ध सघर्ष का वातावरण बढता गया। अत ऐसी स्थिति म यह कसे कहा जा सकता है कि कवियो को उस सघर्ष की स्थिति म वीर काव्य सजन का कोई आलम्बन ही नही मिला ? इस आपत्ति के सम्बन्ध मे दो बातें है—प्रथम तो यह कि प्रस्तुत सघर्ष

---

१ अग्रेजो म अत तक लोहा लेने वाले राजपूत सरदारों म कतिपय प्रमुख सरदार निम्नलिखित थे—

भरतपुर के राजा रणजीतसिंह, आउवा के ठाकुर खुशालसिंह (कुशलसिंह) आसोप के ठाकुर शिवनाथसिंह ठाकुर बिशनसिंह गूलर ठाकुर अजीतसिंह आलनियावास कोठारिया के रावत जोधसिंह जोधपुर के महाराज मानसिंह नरसिंहगढ के राजकुमार चनसिंह सलूम्बर के रावत केसरीसिंह खाम्वरी के अभसिंह—चिमनसिंह शेखावाटी के डूगजी—जवार जी भगाणे के ठाकुर नाथूसिंह उमरकोट के रतनराणा लाडसर के ठाकुर सुमारणसिंह (सूमजी)।
राजस्थानी वीरकाव्य और सूयमल मिश्रण - डा० नरेन्द्र भानावत पृ०स० २५

चली आ रही युद्ध परम्परा स सवथा भिन्न प्रकार का था अन पारम्परिक काव्या की रचना की प्ररणा उसमे कम प्राप्त होती ? द्वितीय यह कि राजस्थान म राजाओ का राज्य होने क कारण, सघष का उग्र रूप प्रकट नही हो सका। अत कहा जा सकता है कि स्वतत्रता प्राप्ति स पूव के राजस्थान का राज नतिक वातावरण ही ऐस बना हुआ था जिसम परम्परावादी वीरकाव्य के सजन क लिए बहुत कम अवसर था। वीर भाव आधुनिक रूप अवश्य हो आग चलकर प्रगतिशील कविता क साथ प्रकट हुआ।

स्वतत्रता प्राप्ति क पश्चात यहा के अहिंसावादी दृष्टिकोण ने युद्ध को नकारते हुए सदव शाति का पक्ष लिया। यहा यदि चीनी आक्रमण नही होता ता शायद कुछ समय के लिए युद्ध इतिहास म पढन जसी वस्तु बनकर रह जाता। एसी स्थिति म परम्परावादी वीरकाव्य सजन की आशा कसे की जा सकती थी ? यद्यपि कश्मीर के कबायली युद्ध ने इस अहिंसावादी दृष्टिकोण को एक झटका अवश्य दिया, कि तु उसका अहसास लोगो को बहुत बाद म जाकर (भारत चीन और भारत पाक युद्ध क समय मे) हुआ। तभी तो कश्मीर के टीथवाल मोर्चे पर शहीद हुए परमवीर पीरूसिंह क अमर बलिदान को लकर सन १६६८ ई० के अन तर ही राजस्थानी कवियो की लेखनी उठी। इन परिस्थितियो म विशष रूप स गत १५ वर्षों म सृजित इस वीर प्रशस्ति का य का आकार प्राचीन राजस्थानी वीरकाव्य की तुलना म काफी बौना सा लग तो चौंकन जसी कोई बात नही।

जसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका ह, इस शताब्दी म देश का वातावरण विशष रूप स राजस्थान का वातावरण ही कुछ एसा बन गया था जहाँ पारम्परिक वीरकाव्य क सजन का कोइ विशष आधार नही रहा तब फिर युग युग म वीरता को ऊर्जस्वित करन वाली चारणी जिह्वा भला कस चुप रह सकती थी ? वीरो का प्रशस्ति गान करना जिनका स्वभाव बन चुका था एसी परम्परा के कवि इस विषम स्थिति म पहुँच कर सवथा मौन नही रहे। एक ओर सामयिक घटना प्रसगो को लकर उ होने अपनी वाणी को मुखरित किया तो दूसरी ओर वतमान को प्रेरणा देने क लिए य कवि राजस्थान क समृद्ध अतीत की ओर उमुख हुए। सामयिक घटना प्रसग की दृष्टि स बारहठ केसरीसिंह का चेतावणी रा चूगटया [1] महत्वपूर्ण रचना है। इसम कवि न केवल तेरह सोरठो क बल पर उदयपुर के तात्कालिक महाराणा फतहसिंह को अपन गौरवपूर्ण अतीत एव वश की उज्जवल मान मर्यादा का स्मरण करवाते हुए दिल्ली दरबार म जान स रोक दिया था।

---

१ औरा न आमाण, हाका हरवल हालणा।
किम हाल कुलराण हरवळ साहा हाकिया॥
नरियद सह नजराण, झुक करसी सरसी जिका
पसरेला किम पाण, पाण थका थारो फता॥
सिर झुकिया सहसाह सीहासण जिण सामन।
रळता पगत राह, फाव किम तोन फता॥
चेतावणी रा चूगटया बारहठ केसरीसिंह राजस्थानी साहित्य और सूयमल्ल मिश्रण
डा० नरेन्द्र भानावत पृ० स० ४२-४३

अतीत की ओर अभिमुख होने वाली वृत्ति भी दो धाराओं में प्रकट हुई। एक ओर कवियों ने राजस्थानी इतिहास के यशस्वी वीरों की अदम्य वीरता का अंकन एवं गुणगान प्रारम्भ किया तो दूसरी ओर विशिष्ट वीर के अभाव में सूर्यमल्ल मिश्रण की तरह सामान्य वीरत्व' को लेकर मध्यकालीन वीर समाज को अंकित करना प्रारंभ किया। प्रथम कोटि की रचनाओं में श्री नारायणसिंह भाटी कृत 'दुर्गादास, कविराव मोहनसिंह कृत वीर चरित्र सतसई'[1] श्री रामेश्वरदयाल श्रीमाली कृत हाडी राणी[2] रावल नरेन्द्रसिंह कृत वीर सतसई'[3] में आये—पाबूजी राठौड सुरताण गौड, पजनन राय ठाकुर शेरसिंह (रीया) राव दल्लेलसिंह बूला, जूभार रतनसिंह मोरडूगा, राव छत्रसाल (बूंदी), महाराणा राजसिंह, राठौड अमरसिंह—आदि वीरों के आख्यान एवं श्री मुकुनसिंह बीदावत कृत अमरसिंघ जी री वेलि[4] 'पाबूजी री वेलि[5] आदि उल्लेख्य हैं। इन ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त अन्य कई सामयिक वीरों के अपूर्व साहस एवं स्तुत्य देशभक्ति को लेकर भी इधर कुछ वर्षों में कई रचनाएँ प्रकाशन में आई हैं किन्तु इनमें चरित नायक का जीवन गाथा प्रस्तुत करने या उसके उज्ज्वल चरित्र को अंकित करने के स्थान पर उनके शौर्य का विभिन्न रूपों में प्रशस्ति गान ही मुख्य रहा है। ऐसे काव्यों को वीर चरित काव्य की श्रेणी में न रखकर वीर प्रशस्ति काव्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस कोटि की उल्लेखनीय काव्य कृतियां हैं—श्री नारायणसिंह भाटी कृत परमवीर[6] श्री हणुवंतसिंह दवडा कृत 'सूरा दीवा देसरा[7] श्री मुकनसिंह कृत सतान सतसई[8] एवं पीरू सिंघरी वलि'[9] श्री सवाईसिंह धमोरा द्वारा सम्पादित सतान सुजस[1], पीरू प्रकास[11] और 'गाधी गाथा'[12] श्री नाथूसिंह महियारिया कृत गाधी शतक[13] एव श्री वेद व्यास द्वारा सम्पादित गाधी प्रकास[14]।

---

१ वीर चरित्र सतसई कविराव मोहनसिंह (अप्रकाशित)
सन्दर्भ सूत्र—राजस्थानी वीरकाव्य और सूर्यमल्ल मिश्रण डा० नरेन्द्र भानावत पृ० ४६

२ १९६५ ई० मे कला प्रकाशन जालौर द्वारा प्रकाशित

३ सघशक्ति में कुछ अंश प्रकाशित। सदभ सूत्र – राजस्थानी वीरकाव्य और सूर्यमल्ल मिश्रण डा० नरेन्द्र भानावत, पृ० स० ४६

४ १९६५ ई० मे राजस्थानी साहित्य प्रकाशन जयपुर द्वारा प्रकाशित।

५ १९६४ ई० मे राजस्थानी साहित्य प्रकाशन जयपुर द्वारा प्रकाशित।

६ १९६३ ई० मे कलावतार पुस्तक मंदिर रातानाडा, जोधपुर द्वारा प्रकाशित।

७ १९६७ ई० मे राजस्थानी साहित्य प्रकाशन जयपुर द्वारा प्रकाशित

८ श्री सवाईसिंह धमोरा द्वारा सम्पादित सतान सुजस में सकलित

९ १९६६ ई० मे सघ शक्ति प्रकाशन जयपुर द्वारा प्रकाशित

१० सघ शक्ति प्रकाशन जयपुर द्वारा प्रकाशित।

११ १९६५ ई० मे सघ शक्ति प्रकाशन जयपुर द्वारा प्रकाशित

१२ १९६६ ई० मे साहित्य समिति द्वारा प्रकाशित।

१३ १९६१ ई० मे स्वय द्वारा प्रकाशित

१४ १९६६ ई० मे किताबघर जयपुर द्वारा प्रकाशित

इस श्रेणी की दूसरी रचना श्री रामश्वरदयाल श्रीमाली की 'हाडी राणी' है, जो दुर्गादास से प्रेरित और उसी के अनुकरण पर लिखी हुई प्रतीत होती है। कवि ने इसे 'श्रद्धांजलि काव्य' की संज्ञा से अभिहित किया है, पर उसका मुख्य लक्ष्य भारत पाक युद्ध की पृष्ठभूमि में भारतीय ललनाओं को आत्म-बलिदान के लिए प्रेरित करना रहा है। हाडा राणी का यह महान बलिदान जातीय संस्कारों या अति भावुकता का परिणाम न होकर अपूर्व राष्ट्र भक्ति दृढ इच्छा शक्ति और कर्तव्य के प्रति गहरी निष्ठा का परिणाम था—

खापण ओढे
मिनकापण ताणी मानखो
माटी हूं देसरी
माटी रै गारबा सारू
माथो दे
ऊंचा राखण मा रो मा भामरी
राणा ! धन जग मे जीणी
मरण बाळाचो
जीवण रो माल जग मे
जाणाजे मौत सू ।[1]

उपर्युक्त दो चरित्र काव्यों के अतिरिक्त कविराव मोहनसिंह रावल नरेन्द्रसिंह एवं मुकनसिंह आदि कवियों द्वारा सर्जित चरित्र काव्यों में चरित्र नायकों को युगीन संदर्भों में नवीन रूप में प्रस्तुत करने या किसी विशेष दृष्टिकोण से उनके चरित्र को अंकित करने का प्रयास नहीं हुआ है। इन काव्यों में या तो चरित्र नायक के लोक स्वीकृत रूप को ही प्रायः ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया गया है या फिर उनकी प्रशस्ति ही अधिक गायी गयी है। श्री मुकनसिंह के काव्य फिर भी थोड़े से भिन्न पड़ते हैं। उनमें कवि ने यथासंभव ऐतिहासिक सत्यों की रक्षा करते हुए बड़ी ओजस्वी वाणी में चरित नायकों का यशोगान किया है। आद्यान्त वयण सगाई के कठोर निर्वाह अनावश्यक अनुप्रास आग्रह और मध्यकालीन डिंगल भाषा के प्रयोग ने इन कृतियों को अत्यंत क्लिष्ट और कहीं कहीं अस्पष्ट भावबोध वाला बना दिया है। फलतः ये कृतियां ऐतिहासिक महत्त्व की होते हुए भी सामान्य पाठक के लिए अजायबघर की कौतूहलजनक वस्तुओं के सदृश दर्शनीय भर रह गया है। इनमें से उद्धृत एक दो अंशों से ही यह बात स्पष्ट हो जायगी—

आखन सिंह अमरो अमरापुर आधप्रभव अन्यिा आपाण।
साभरियो मरमाना सम्वरा, करमाळा कळदीज्या काण।
मवसर आद्र अ्गा आजूणा अमर अमर अवना आपाण।
अरक अगना आरज अचर, माम्पत मह मिनखा माण।।
अहिग अघप 'अजाचक' आज आख अुर अुजळाता अग।
रणवको रासीला रुडा रजरज रुळ रायमा रजरग।[2]

---

१ हाडी राणी श्री रामश्वरदयाल श्रीमाली पृ० सं० ८८।
२ अमरसिंघ री वलि मुकनसिंह पृ० सं० १० ११।

वीर प्रशस्ति काव्यों में नायक के अद्वितीय शौर्य का विभिन्न रूपों में 'बिडदान' का भाव ही प्रमुख रहा है। ऐसे काव्यों में न तो चरित्र नायक के जीवन का या जीवन के विशिष्ट प्रसंगों को तारतम्य के साथ प्रस्तुत किया गया है और न ही उसके युद्ध-स्थल के कार्यकलापों का ही विस्तार के साथ चित्रित किया गया है। इनमें अधिकांशत वीर नायक की नाना रूपों में प्रशस्तियां ही गायी गई है। जहाँ श्री भाटी के 'परमवीर' के प्रशस्ति स्वर परम्पराओं से हटकर परिष्कृत रूप में उभरे हैं,[1] वहाँ 'सूरादीवा देसरा' जैसी कृतियों में मध्य युग के स्वर में स्वर मिलाते हुए ही कवि का राव भाटों की तरह प्रशस्ति पाठ करते सहज ही सुना जा सकता है[2] 'पीरू प्रकाश' एवं 'सतान सुजस' में संगृहीत विभिन्न कवियों की रचनाओं में प्रशस्ति का पिछला स्वर ही प्रमुख रहा है। वीर प्रशस्ति काव्य की एक अन्य उल्लेखनीय कृति है श्री मुकनसिंह कृत 'भालाळे री वेलि'[3]। प्रस्तुत कृति में कवि ने राजस्थान के सुप्रसिद्ध लोक देवता एवं अनन्य वीर पाबूजी राठौड़ का संस्कृत स्तोत्र शैली में प्रशस्ति गान किया है।

आधुनिक राजस्थानी प्रशस्ति काव्य शृंखला में महात्मा गांधी को आलम्बन बनाकर लिखे गये काव्यों का विशिष्ट स्थान है। वैसे गांधी को भी हम एक वीर नायक के रूप में ले सकते हैं किन्तु उनका वीरत्व सामान्य युद्धवीरों से सर्वथा भिन्न रूप में अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने आजीवन देश मुक्ति के लिए महान संघर्ष किया, किन्तु उनका संघर्ष तीर तलवार वाला प्रत्यक्ष मारकाट का संघर्ष न होकर हिंसा के विरुद्ध अहिंसा का, क्रूरता के विरुद्ध आत्म शक्ति का अनूठा संघर्ष था। अत गांधीजी को एक वीर योद्धा स्वीकारते हुए भी उन्हें परम्परागत योद्धाओं की चली आ रही पंक्ति में खड़ा नहीं किया जा सकता। इस कारण गांधीजी की प्रशस्ति में लिखे गये प्रशस्ति काव्यों में पारम्परिक वीर प्रशस्ति वर्णना के चित्रित होने का प्रश्न नहीं उठता, फिर भी 'गांधी शतक' 'गांधी गाथा' और 'गांधी प्रकास' जैसी कृतियों में गांधीजी की प्रशस्ति नाना रूपों में हुई है। यहाँ कवियों ने युद्धवीरों के अश्व और असि के स्थान पर गांधीजी के चरखे और ऐनक को अपना आधार बनाया है। कवियों ने गांधीजी को भगवान से महान और श्रेष्ठ सिद्ध करने में भी कोई कसर नहीं रखी है।[4]

---

१ रगत बह्यो हिम ऊपरां नदियां घर ले आय।
जद लग लहर खेतड़ा, थारो नाम न जाय।
रण किलोळ जमना हिय, गंग सरग सोपान।
सरसत लहरां पवन पिण बांचे सुजस जिहान।
परमवीर श्री नारायणसिंह भाटी पृ० स० ३५, ६३।

२ सच्ची कह्यो सुराज नूं चित दरवण रण चाह।
जूझ भारी जग में, हिमगिर चालो नाह॥
आली हिमगिर ऊपरो काकड़ नाचे काळ।
अवर बोली अप्सरा, गास्यां घूमर घाल॥
सूरा दीवा देसरा श्री हणुवंतसिंह देवड़ा, पृ० स० २५

३ १९६३ ई० में संघ शक्ति प्रकाशन जयपुर द्वारा प्रकाशित।

४ क जिण घड़ियो गान्धि धनुस, नित पूछ चित चाव।
गांधी चरखो राजरो घड़ियो कवण बताव॥१४॥
गांधी शतक श्री नाथूसिंह महियारिया पृ० स० १०

विशिष्ट वीर या विशेष प्रसग से अलग हटकर सामान्य वीर एव सामान्य वीरत्व को ,सूयमल्ल मिश्रण की तरह आधार बनाने वाले कवियो मे श्री नाथूसिंह महियारिया का स्थान अग्रगण्य है । उनकी वीर सतसई मे सूयमल्ल की परम्परा का निर्वाह हुआ है और वीर पुरुष वीर नारी वीर बालक, कापुरुष, वीर पति, वीर पत्नी, युद्ध आदि सामान्य प्रसगो को लेकर नाना रूपो में उनके स्वरूप और स्वभाव को अकित करने का प्रयत्न किया गया है । इसी परम्परा की अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ हैं— गाडण रामदयाल एव खाडिया मुकुददान कृत 'वीर सतसई एव 'वीर सतसई । [1]

आधुनिक राजस्थानी वीर काव्य का एक रूप और भी रहा है वह है—उदबोधनात्मक एव प्रेरणात्मक वीर काव्य । भारत चीन (१९६२ ई०) और भारत पाक (१९६५ ई०) युद्ध से प्रेरित होकर ऐसी अनेक कविताओ का सृजन हुआ जिसमे भारतीय वीरो को मातृभूमि की रक्षा के लिए युद्ध मे मर मिटने की प्रेरणा दी गई । इन कविताओ म प्रतिपक्षी चीन और पाक को ललकारने, लतेड़ने एव तीखी आक्रोशपूर्ण वाणी में उनकी भत्सना करने के स्वर भी उभरे । 'मरवाणी , ओळमो , 'सघशक्ति', 'जलमभोम आदि सामयिक पत्र पत्रिकाओ म ऐसी स्फुट रचनाएँ प्रकाशित हुई । मरण त्यूहार'[2] कृति म ऐसी कई रचनाए सकलित हैं । इनमें श्री नारायणसिंह भाटे की 'मोटे मरण-त्यौहार , श्री गिरधारी सिंह पडिहार की मुरदा ज्यू जीणो लाणत है श्री भवरसिंह सामोर की महल सपना रा बणा मत', श्री नानूराम सस्कर्ता की जीतकर आज्यौ बीरा आदि रचनाए उल्लेखनीय हैं ।[3] आधुनिक राजस्थानी वीर काव्य पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि इन काव्यो के अधिकाश नायक राजस्थान से ही सम्बधित रहे हैं । मध्यकालीन भावभूमि से वे विशेष ऊपर नही उठ पाये हैं । आधुनिक वीर नायको म भी उनकी दृष्टि वीर पीरसिंह और परमवीर शतानसिह तक ही सीमित रही है । इसका एक प्रमुख कारण आधुनिक काल मे भी वीर काव्य की सजना करने वाले कवियो का प्रधानत चारण' एव 'राजपूत परम्परा से सम्बद्ध होना रहा है ।

राजस्थानी वीरकाव्य प्रणेताओ ने जहा रणागण मे प्रबल पराक्रम प्रदर्शित करने वाले वीरो का यशोगान किया वहा वीर पत्नियो का बखान करने म भी पीछे नही रहे । विशेषरूप से जौहर करने वाली ललनाओं एव पति की वीरगति प्राप्ति के पश्चात सती होने वाली पत्नियो के अपूव साहस, अदम्य मरणोत्कण्ठा एव उत्कट इच्छाशक्ति का बडे ओजस्वी ढग से वणन किया है । आधुनिक काल मे

स गीता नान दाता जिसा मोहण छा, तिसा थे भी,
मोहण कहाया वडा नीका गुण पाया छा ।।
कणी भात थारे तणा करा म्हे बखाण बापू
देश प्रेम छाया राष्ट्र पिता कहवाया छा ।
करमा रे घर थे सुकरमा हुआ छा नोका
सन तणा पूथला, थे पुथली रा जाया छा ।।
गाधीगाथा स०सवाईसिंह घमोरा पृ०स० १३

१ सदभ सत्र—राजस्थानी वीरकाव्य और सूयमल्ल मिश्रण , डा० नरेन्द्र भानावत पृ०४७

२ सपादक—श्री जीवन कविया एव भवरसिंह सामार । प्रकाशक—राजस्थानी साहित्य सस्थान, जयपुर, प्र० स० १९६६ ई०

३ मरण-त्यूहार

भी कविया की ललक ऐसे प्रसगा के प्रति कम नही हुई फलत व या तो एम प्रसगा के निए इतिहास का सहारा लेते हैं[1] या फिर (कानूनन सती प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिये जाने के पश्चात भी) राजस्थान के किसी कोने म यत्र-तत्र प्राप्त होन वाले एमे प्रसगा की प्रतीक्षा म आख लगाय बठ रहत हैं और जब कभी ऐसा प्रसग आ उपस्थित होता है तब पारम्परिक कविया की प्रतीक्षारत तृषित लेखनी उन पर टूट पडती है। उस समय उन्ह इतना उत्साह हो आता है कि वे यह भी ध्यान नही रखते कि सती होने वाली स्त्री के पति न कोइ अभूतपूर्व वीरता प्रदर्शित करते हुए वीर गति प्राप्त की है या रोग शय्या का सहारा लिये लिये ही वह इस ससार से कूच कर गया है। गत वर्षों के ऐसे दो उदाहरण हमारे सामने हैं जहाँ पति रुग्णतावश मृत्यु को प्राप्त हुए पर सस्कार प्रबला राजपूत ललनाएँ सहर्ष अपन पतिया के मस्तक को गोद म लिए जीवित चितारोहण कर गइ और कवि उनकी स्मृति म का य-रचना कर बठे। कवि रतन कृत सती चरित्र[2] एव रावल नरेन्द्रसिह कृत सती दयाल कुवरी जी भटियाणी खूड[3] की स्मृति म रचा काव्य एसी ही रचनाएँ हैं। इनस स्पष्ट है कि राजस्थानी का कवि किस सीमा तक परम्परा से जुडा हुआ है।

आधुनिक राजस्थानी वीर काव्या का परम्परा स यह गहरा लगाव उसके अभिव्यक्ति पक्ष से भी जुडा हुआ है। प्राचीन राजस्थानी वीर काव्या की जो रूढ धारणाए एव परम्पराएँ थी, लगभग उन सभी का (एकाध को छोडकर) इन काव्या म निर्वाह हुआ है। वही वीरा का सिंह, शूकर और धवल के पारम्परिक प्रतीका क रूप म चित्रण वही उनकी वीरता के लिए लालायित स्वग की अप्सराओ का वरण, वही शिवादि देवता उनके गण कापालिक कालिका आदि के युद्धक्षेत्र मे विचरण का चित्रण और इन सबसे भी अधिक वीरा के कार्यों एव उपलब्धिया का अतिरजित वणन।[4]

---

१ इस प्रसग म श्री सवाईसिह धमोरा द्वारा सपादित चित्तौड के जौहर व शाके नामक सकलन द्रष्टव्य है।

२ श्री सवाईसिह धमोरा द्वारा सपादित।

३ सघशक्ति, वष ३ अक १०, अक्टूबर १९६२ ई० पृ० स० ३०

४ क शूरवीर के सिंहादि प्रतीक—

भडपण सू भडने भुरज वण बठे सिरताज।
राजतिलक कोय न कर, वण सीह बनराज।

वीर सतसइ नाथूसिह महियारिया
पृ० स० ९

ख वीरों को रग देने की परम्परा—

वीरा को उनके अद्वितीय शौय क लिए रग देने (साधुवाद देन) की राजस्थानी वीर साहित्य की परम्परा रही है। आधुनिक राजस्थानी काव्य म भी इसका निवाह हुआ है। श्री मुकनसिह बीदावत न 'रग रा दूहा' नामक एक स्वतन्त्र कृति की ही रचना कर डाली है।

सक्षेप म आधुनिक राजस्थानी का वीर एव प्रशस्ति काव्य अनुभूति एव अभिव्यक्ति दोनों म अपने प्राचीन काव्य से कमजोर है हा, अलबत्ता प्रशस्ति गान की दृष्टि से वह फिर भी कुछ पुष्ट

श्री नारायणसिंह भाटी, श्री उदयराज उज्जवल, श्री हनुवतसिंह देवडा प्रभृति सभी कवियो ने 'रग रे दोह' लिखे हैं—

टीथवाळ री घाटियां विक्ट पहाडा बग।
सेख किय अदभुत समर, रँग पीरूसी रग।।
मिया कियो द्रिढ़ मोरचो, सबल पहाडी सग।
जीव भोक करग्यो विजय रँग पीरूसी रग।।

श्री उदयराज उज्जवल, पीरुप्रकास, पृ० स० १

सुणिया अर भणिया घणा, बाका बळहट बीर।
परतख म्हे गुणिया हम, रग रजवट रण धीर।

परमवीर, श्री नारायणसिंह भाटी, पृ० २६

ग वीरो के युद्ध को देखने के लिए सूय के रथ का रुकना, देवताओं का नभ से उनका रण निहारना एव स्वग की अप्सराओ का वीरो के वरण के लिए लालायित होना, शिव का मुण्डमाल के मुण्डो के लिए रणक्षेत्र म विचरण, योगिनियो का लहूपान आदि युद्धस्थल सम्बधी परम्पराओ का अकन—

चमर ढुळ ता चौसरां, गातां अप्सरगान।
सूरापण रो सेहरो, सुरग गयो सतान।

सूरा दीवा देसरा श्री हनुवतसिंह देवडा, पृ० स० ६५

अरक थम्यो असमान में कँपिया कोल कमट्ठ।
भेली जवनां भेर वा, जद पीरू जमघट्ठ।।

पीरू प्रकास, पृ० स० ४७।

सिव रभा नवलख सगत, आव स्वारथ हेत।
अधवी दीस सुरग हूं, धन भूमि रण खेत।
देवर सिर पडिया किया, घण अरिया विण मूड।
भाभी पर दळ देखज्ये, सू डाळा विण मूड।।
केता सिर तिल तिल किया, कर न सके सिवभेळ।
हेली कथ बसेरियो, मुडमाल रो मळ।।
गीध पिशाचण पीवनू छाह कर परछाय।
जिण निस सग ले सचर ये ही उण दिस जाय।।

वीरसतसई श्री नाथूसिंह महियारिया

दृष्टिगत होता है। परम्परा से वह अब भी सम्पृक्त है और युग की बदलती हुई परिस्थितियों ने उसकी क्षेत्रीयता को कोई विशेष प्रभावित नहीं किया है।

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त भी आधुनिक राजस्थानी वीर काव्य में एसे अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं जहाँ पारम्परिक शैली में वीरों वीरागनाओं एवं युद्ध का काफी विस्तार से वर्णन हुआ है। श्री महियारिया की 'वीर सतसई' तो पग-पग पर प्राचीन वीर काव्य परम्परा का स्मरण कराती चलती है।

हास्य एव व्यग्य

हसना मानव की सहज वृत्ति है। बुद्धि क पश्चात प्रकृति न मानव को हँसा ही एक ऐसी वस्तु प्रदान की है जो उस अ य प्राणियो स विलगाता है। साहित्य स्वीकृत नौ रसा म हास्य ही एक एसा रस ह, जहा आवाल वृद्ध समान रूप स प्रसन्नता का अनुभव कर सकत है। हास्य की व्यापकता सावजनीनता और उपयोगिता क कारण हा पाश्चात्य जीवन एव साहित्य म हास्य-व्यग्य का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वहा के स हित्य म इसका बडा ही सरस एव मनोरजक अकन हुआ है। इसक विपरीत स्वभाव स हा गम्भीर और आदिकाल से ही गहरी दाशनिक गुत्थिया म उलझ रहन वाल भारतीयो न अपन जीवन मे हास्य यग्य को विशष महत्त्व नही दिया फलत यहाँ के साहित्य म भी यह एक गौण रस के रूप म हा आया है। अब पाश्चात्य साहित्य स सम्पक के पश्चात सभी भारतीय भाषाआ क साहित्य म हास्य यग का फलक काफी विस्तृत हुआ है। अब गद्य और पद्य साहित्य क उभय पक्षा को लेकर नाना रूपा म हास्य यग्यपूर्ण रचनाआ की सजना बडी तजी स हाने लगी है।

हास्य को शास्त्रीय दृष्टि से विवेचित करन का प्रयास भारताय और पाश्चात्य दोना ही साहित्याचार्यों न किया हे और दृष्टि भेद क कारण दोनो क विवचन म पर्याप्त भिन्नता भा है किन्तु यहा उन पर विस्तार मे विचार करना सभव नही होगा। सस्कृत साहित्याचार्यों न 'हास्य' का उसका स्थायी भाव बताते हुए उसक निम्नलिखित भेद किये है—

(१) स्मित (२) हसित (३) विहसित (४) उपहसित (५) अपहसित (६) अतिहसित।[1] सस्कृत साहित्याचार्यो द्वारा प्रस्तुत किया गया यह वर्गीकरण उतना तक सम्मत नहा ह जितना कि पाश्चात्य विचारका का हास्य यग्य सम्ब धी विवचन। इस सम्बन्ध म वहा अनक विचारका ने काफी गहराई तक पठ कर अपन अपन मत प्रस्तुत किये हैं। आज वहा हास्य क निम्नलिखित सब स्वीकृत रूप मान्य है—

(१) स्मित हास्य (Humour) (२) वाक्छल (Wit) (३) यग्य (Satire), (४) वक्रोक्ति (Irony) और (५) प्रहसन (Farce)।[2]

हास्य क सामान्य स्वरूप पर विचार करन क पश्चात अब हम राजस्थानी साहित्य क सदभ म हास्य-व्यग्य पर विचार करत है। जसा कि पहल स्पष्ट किया जा चुका है कि भारतीय आचार्यों द्वारा

१ हिन्दी साहित्य म हास्यरस डा० बरसानलाल चतुर्वेदी पृ०स० २६ द्वितीय सस्करण १९६३ ई०
२ वही पृ० २७

हास्य को प्रमुख रस न मान जाने के कारण साहित्य म उसे वह स्थान नही मिल पाया जो उसे पाश्चात्य साहित्य में प्राप्त है। इसका असर राजस्थानी साहित्य म भी स्पष्टत देखने को मिलता है। यहाँ शृंगार एव वीर रस को जितना महत्त्व प्रदान किया गया है उसकी अपेक्षा हास्य सर्वथा उपेक्षित रहा है। या तो 'विसर' साहित्य म ही कही कहीं हास्य व्यग्य का प्रयोग हुआ है या वीररसान्तर्गत कायरो की भर्त्सना करते हुए कहीं-कहीं अच्छे मजाक किये गये हैं—

> कत ! घर किम आविया, तेगा री घण त्रास ?
> लहगे मूझ लुकीजिये, बैरी रो न विसास ।
> मैं तो विण सत हासिया, उण भड एक महेस ।
> काय दिये घण महएा, हूं भड हूत विसेस ।[1]

अन्यथा अधिकाश म तो वह द्वितीय श्रेणी की ही वस्तु रहा है। यहा यह अवश्य उल्लेखनीय है कि राजस्थानी पद्य साहित्य की अपेक्षा गद्य साहित्य म हास्य-व्यग्य के स्वर अधिक मुखर रहे हैं विशेष रूप से लोक साहित्य म तो वह सहज रूप से मुखरित हुआ है। अनेक प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक बाधाओ-बंधनो से विवश जनमानस ने अपने मन के उफान को इन लोक कथाओ के माध्यम से व्यक्त किया, फलत यहा व्यग्य की प्रधानता हो गई। इसके अतिरिक्त उस समय म मनोरजन के साधनो की कमी ने भी इस हास्य-व्यग्य विधा को प्रोत्साहित किया और लोक शिक्षण का बहुत ही सबल साधन होने के कारण भी इसे पर्याप्त प्रोत्साहन मिला।

राजस्थानी हास्य काव्य म 'भूगर के घेसळा' का एक विशिष्ट स्थान है। विचित्र असम्बद्धताओ से युक्त ये घेसळे आज भी जनवाणी पर स्थान पाये हुए हैं। कतिपय विद्वानो ने इन 'घेसळा' के पीछे किसी गहरे अर्थ की खोज म काफी दिमागी कसरत की है किन्तु वस्तुत इनके पीछे असम्बद्ध बातो से लोगो को हसाने की प्रवृत्ति ही मुख्य रूप म कार्यरत रही है।[2] उलटबासियो की स्मरण करवाने वाले कुछ एक घेसळे द्रष्टव्य हैं—

> गुवाड निकाळ पापड़ा में जाण्या बडजोर ।
> लाफा मार्‌या घेसळा, छाछ पडा मण च्यार ।
> लुगाया बाटा चुगल्यो ए चणॉ रा दाळ सा ।।
> भिडक भैस पापळ चढी नाय भागगो ऊट ।
> गधडे मारी नात की हाथी का दो टूक ।
> लुगाया लाठी ल्यावो ए, गून्डे म डारो घालो ।।[3]

राजस्थानी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम चरण म सुधारवादी भावना का बोलबाला रहा। सामाजिक कुरीतियो को लेकर अनेक प्रकार की रचनाए उस समय राजस्थान के भीतर और राजस्थान के बाहर (प्रवासी राजस्थानियो द्वारा) सर्जित होती रही। ऐसे सुधारवादी युग म सर्जित होने वाले साहित्य से अपेक्षा तो यही थी कि वहाँ व्यग्य का प्राधान्य हो, किन्तु अधिकाश कवियो ने

---

१ बारसतसइ सम्पादक—नरोत्तमदास स्वामी, नरेन्द्र भानावत प्रभृति, पृ० १३५ एव १४२
२ भूगर रा घेसळा डा० मनोहर शर्मा मरुवाणी, पृ० स० ५, वर्ष ५ अक १।
३ भूगर कविरा घेसळा, आळमा, पृ० स० ३८ वर्ष १, अक १।

ग्य वक्रोक्ति का सहारा छोडकर सीधे कोसन की शली को अपनाया फलत उनकी शली साहित्यिक कम, प्रहारात्मक अधिक हो गई। श्री ऊमरदान लालस की खाटे स तारो खुलासो'[1] असन्ता री आरसी,[2] 'तमाखू री ताडना'[3] अमल रा औगण[4] प्रभति कविताएँ इसी श्रेणी मे आती हैं। प्रवासी राजस्थानिया ने भी अधिकाश म, वृद्ध विवाह, बाल विवाह कन्या विक्रय दहज फिजूलखर्ची आदि कुरीतियो को लेकर सीधी चाट ही अधिक की है। ऐसी कविताओ म व्यग्य वक्रोक्ति का सहारा बहुत ही कम लिया गया है। जहाँ भी सीधे कोसने या निवेदन करने की शली को छोड, व्यग्य वक्रोक्ति का सहारा लिया गया है, वे रचनाएँ अवश्य ही अधिक प्रभावी एव सरस बन पडी हैं। श्री गुलाबचन्द नागोरी की 'कुवारा का दुखडा' एक ऐसी ही रचना है—

> सभा का भी पति वणग्या धिराण्या का तो छा ही ये।
> कहो कुण का वणा पति म्हे? कुवारा की सुणो अरजी॥
> डवल जोरू कर कोई। कठ तो छ ट्रिपल बीवी।
> सुजन म्हे एक सू राजी। कुवारा की सुणा अरजी॥[5]

लकिन समग्ररूप स उन सुधारवादी रचनाओ म एसी रचनाओ की न्यूनता ही रही है। पश्चात आगीवाण जम पत्र न राजनतिक जागरूकता का ध्वज अपने हाथ म लिया। यद्यपि यह पत्र मूलत राजनतिक था और हिन्दी म बालमुकुन्द गुप्त प्रभति लेखको न तात्कालिक विसगतियो को लेकर जसी तीखी व्यग्योक्तियाँ कसी हैं, वसा कुछ इस पत्र म देखन को नहीं मिलता, फिर भी देश की राजनतिक स्थिति स उद्वेलित एव राजस्थानी के सामन्ती शोषण की पीडा से उत्तेजित यह पत्र कभी कभी मुक्त हँसी हँसत हुए भी सुना गया है—

> आयो सियाळो पड रही ठार
> सिगडी ताप भर अगार।
> वठा भुक भुक भाला खाय,
> पडयो पगडो सिगडी माय॥
> हुआ भरळका उठी भाळ
> मूँछ मूँडा रा बळग्या बाळ
> फरयो हाथ ग्या नहा केस
> खिजमत होगई सार वस।[6]

---

१ ऊमर काव्य पृ० स० १६१ (तृतीय सस्करण)।
२ वही पृ० स० १६७।
३ वही, पृ० स० २६३
४ वही, पृ० स० २७५
५ कुवारा का दुखडा मातृभाषा प्रेमी नागोरी पचराज वष २ अक २ पृ० स० ४५
६ सियाळा री खिजमत श्री माणिक्यलाल सुराणा आगीवाण वष १, अक ४ (दिसम्बर १६३७) पृ०स० २

स्वतत्रता से पूव राजस्थानी साहित्य म अत्यन्त विरल रूप मे प्रवाहित होने वाली यह हास्य-व्यग्य धारा गत २५ वर्षों म काफी कुछ मुटिया गई ह । इसके मुख्यत दो कारण हैं—प्रथम तो 'मरुवाणी', 'ओळमो', 'कुरजा', मारवाडी' जस स्वतत्र राजस्थानी पत्रो का प्रकाशन एव द्वितीय कवि सम्मेलनो की बढ़ती हुई लोकप्रियता । इनम द्वितीय कारण ही प्रमुख कहा जा सकता है । क्योकि हास्य रस एक ऐसा रस है जो कवि को मच पर सुगमता से जमन देता है और लम्बे समय तक एक ही कवि जनता को 'विलमाये' रख सकता है । अत स्वाभाविक रूप स एस अवसरो पर ऐसी ही कविताओ की माग अधिक होती है । इसके अतिरिक्त आज हास्य-व्यग्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया है । अब उसके आलम्बन केवल कायर, कजूस मूख या गजी खोपडी वाले लोग ही नही रह गय हैं, अपितु वतमान जीवन की प्रत्येक सामाजिक, राजनतिक एव धार्मिक असगति पर अब उन्मुक्त रूप म हँसा जा सकता है । उन पर अच्छी खासी मीठी चुटकिया ली जा सकती हैं । इन सामाजिक एव राजनतिक असगतियो के अतिरिक्त हमारा दिन दिन वयक्तिक जीवन भी हास्य का भण्डार है, विशेष रूप से पति-पत्नी की नाक झाक तो मधुर हास्य सामग्री का स्रोत बन गयी है । इस प्रकार हास्य-व्यग्य का धरातल अब काफी विस्तृत हो गया है ।

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि मच ने (कवि सम्मेलनो ने) हास्य एव व्यग्य रचनाओं के लिए अच्छा खासा धरातल प्रस्तुत किया है । जहा यह सुविधा हास्य-व्यग्य के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है, वही यह उसकी सीमा भी बन गयी है । यह तो निर्विवाद रूप मे मानना ही पडेगा कि आधुनिक राजस्थानी साहित्य की अधिकाश हास्य-व्यग्य रचनाओ की सजना लोक माग पर हुई है । इसके कारण हास्य कवि के मस्तिष्क म हर समय अपने पाठक या श्रोता समाये रहत हैं । उसका हर सभव प्रयास एक-एक शब्द पर श्रोताओ को हँसाने और पाठको को आह्लादित करन का होता है । अब यह पाठको के स्तर पर निभर करता है कि उनको ध्यान म रखकर लिखी गयी कविता कसी बनी ? कवि के सम्मुख जिस वग का श्रोता एव पाठक होगा उसकी कविता भी लगभग उसी स्तर की होगी । शिष्ट और उच्च बौद्धिक हास्य की दृष्टि स सुरुचि सम्पन्न पाठको की आवश्यकता होती है । राजस्थान म शिक्षा का वतमान स्तर एव स्थिति दखते हुए ऐस उच्चस्तर के हास्य-व्यग्य की अपेक्षा नहीं की जा सकती ।

स्मित-हास्य (Humour) का स्तरीय निर्वाह तो हिन्दी साहित्य मे भी अपेक्षाकृत काफी न्यून रहा है ऐसी स्थिति म आधुनिक राजस्थानी साहित्य म उसका प्रवाह और भी क्षीण हो तो आश्चय ही क्या ? हा व्यग्य वक्रोक्ति एव वाक् वदग्ध्य की दृष्टि से आधुनिक राजस्थानी साहित्य ने फिर भी कुछ गति पकडी है, किन्तु यहा यह भी ध्यातव्य है कि हास्य-व्यग्य के इन काव्यो म हास्य, व्यग्य, वक्रोक्ति, वाक्-छल (वाक्-वैदग्ध्य) सभी परस्पर इस प्रकार गुम्फित हैं कि उन्ह सहज ही अलगाया नहीं जा सकता, फलत यहा उन पर सम्मिलित रूप से ही विचार करना समीचीन होगा ।

आधुनिक राजस्थानी हास्य व्यग्य-साहित्य का सबस सबल बिन्दु-जो उस प्राचीन साहित्य की अपेक्षा काफी समृद्ध बना देता है—आलम्बन का विस्तार है । कायर एव कजूस को यद्यपि अब भी कभी-कभी हास्य आलम्बन बनाया गया है—

प्रीतम रण चल्पिया इसा हथ लीधी तरवार ।
दाढी तन री छायली, ऊभा पाड वार ॥

पीव समर म जावता पाछा गया पधार
मडियो दीठो भीन पर, भाना महित सवार ।।[1]

तथापि अधिकाश म हमारे वतमान सामाजिक, राजनतिक एव पारिवारिक जीवन की असम्बद्धताए एव विसगतिया ही हास्य का आलम्बन बनी हैं। वसे कही-कही असामान्य शारीरिक गठन भी हास्य-व्यग्य का आधार बना है—

की न चढायो मास सूका रह्गया हाडिया।
लावो वदग्यो वास विन बूझे ही गूग म।
मवरो गोळ मटोळ, गीडी सो गुडतो फिर।
वद नहा र गाळ, मगळ सौगन खायली ।।[2]

पौराणिक देवी देवताओ न भी हास्य कवियो के लिए अच्छी खासी सामग्री प्रस्तुत की है। भगवान शिव के पारिवारिक जीवन का लकर या उनकी विचित्र वेशभूषा को लेकर सस्कृत साहित्य म कही-कही अच्छे खास मजाक किय गय हैं। हिन्दी म भी पौराणिक देवताओ को लेकर काफी कुछ स्तरीय हास्य विनोदपूर्ण रचनाए सजित हुई हैं। ऐसी स्थिति म राजस्थान का कवि भी इससे सवथा अछूता नही रहा है। शकर के पारिवारिक जीवन को लेकर ली गयी य चुटकियाँ बरबस पाठक के होठो पर मुस्कान ला देती हैं—

क एक दिन चिगरग्यो शकर जी रो नान्यो
ढेरो डप्पो सौह वट सुरी कर'र ढाह दियो
भाळा हा समाधि म
उठ लिया आधी म
उठया इत नार धूणो मूत र बुभा न्यो ।
ख शकर जी न कवण लागी एक न्नि पारवती
सगळ दिन बठयाकर माडिया बकार मती
भाळे हो र आधी
काना नीच दो दी
तो बोली जिया मरजी कर, मरज्याणा मार मती ।[3]

पौराणिक दवी-दवताओ का आधार बनाकर लिखी गया हास्य-व्यग्य प्रधान कविताओ म अन्य उल्लेखनीय रचनाए हैं—श्री विमलश का निरमा जा को वार'[4] नई साल को नयो कलण्डर'[5], श्री बुद्धिप्रकाश पारीक का मैं गया दव इन्दर क घर'[6], मैं गया सुरग म एक बार'[7], आदि। यद्यपि

१ वीर सतसइ श्री नाथूसिह महियारिया, पृ० स० ३१७
२ मू घा मोती श्री भीमराज भवीन, पृ० स० ६८
३ माट डापटा श्री मोहन आलाप, त्तमभाम पृ० स० ६७ वष २, अक २–३
४ दन्नगानी पृ० स० १८
५ वही पृ० स० ५६
६ इदर सू इण्टरव्यू पृ० स० ५
७ वही पृ० स० २१

उपयुक्त रचनाओ मे आलम्बन पौराणिक देवी-देवता रह हैं तथापि इनम मुख्यत वतमान समाज की किसी-न किसी समस्या को ही उठाया गया है । ऐसी रचनाओ म कवि का अभीप्ट वतमान जीवन की असम्बद्धताओ की ओर लोगो का ध्यान आकृप्ट करना रहा है । 'बिरमाजी को वाद' में जहाँ बढती हुई जनसख्या की स्थिति का उपहासास्पद चित्र अकित हुआ है, वहाँ 'मैं गयो देव इन्दर के घर' म वतमान समाज म व्याप्त भ्रष्टाचार, अनाचार आदि पर तीखी चुटकियां ली गयी हैं । सुधारवादी दृष्टिकोण से प्रेरित होकर लिखी गयी कविताओ के आलम्बन केवल पौराणिक देवी-देवता ही नही रहे हैं, अपितु भ्रष्टाचार, अनतिकता, नेताओ का दम्भी जीवन, बेकारी, महँगाई मिटते पुराने मूल्यो और स्थापित होते नये मूल्यो के बीच त्रिशकु की तरह अधर म लटके हमारे वतमान जीवन-क्षण सभी कुछ इनमें समाविष्ट हो गये हैं । यहाँ प्रमुख रचनाओ के कतिपय महत्त्वपूर्ण अशो को उद्धृत किया जा रहा है—

क अँ कळजुग म खाण न
खास चीज है धूळ
मूडा पीळा पड गया
हिवडै लागी सूळ
हिवड लागी सूळ
भाव रो ताव देखल्यो
कागदिया मोट्यार
देमरी जाव देखल्यो
घी दूधा मे खालिस की
तो वात छोडदयो
मिनखा म भी मिले—
मिलावट आज देखल्यो ।।[1]

ख ओ सर्किट को सुयो चोरटो
चोरी करक भाग्यो जार्‌यो
पाछ पाछ थाणेदार सिपाई चाल
जाके हाथ नहीं ओ आर्‌यो
ठिगणू थाणदार सरावी मतवाळो हो—
होळ्या होळ्या एक घडी म एक पैंड हळवासी मेलै
अर बूढको सिपाई जी क
हाडाँ म है कडक आज भी
एक घडी म बारा कोस भाग ज्यावे है
पीछ भो चोर नै नही व पकड सके हैं
क्यू ? भो म्हाटो जवर जग है
एक घडी म साठ कोस मार फलाग

---

१ बिरगा बीनणी श्री नागराज शर्मा, पृ० स० ८०–८१

पण लोगां में एक भ्रम भी होर्‌यो है
थाणेदार सिपाई न ई ग मिलर्‌या है
रिपिया की थारी स थाल थार पास्या स [ताबरो
ये दोनू भी पणा पाप है
जांग बूझ में कौया पन्ड धोरिंग्य न[1]

पति पत्नी की आपसी नार भार हम सभी क लिए अच्छे मनोविनोद का विषय हो सकती है, इस तथ्य को वर्तमान काल के हास्य कवियों न भली भांति अनुभूत किया है। दैनन्दिन जीवन म उभरने वाले ऐसे अनेक प्रसग हास्य कवियो के आलम्बन बने हैं—

म्हैं घर आकर पूछण लाग्यो, धोती ने गदी कुण करदी
बोली के धोती रो तोडयो टाबरिय टट्टी सू भरदी
म्हैं कियो बावळी धो धोती, घर घर्‌यो घणो साबण सोडो
बोली पिछत देख्यो कोनी बपू परणीज्यो घणो मोडा
म्हैं बोल्यो पाणी घाल बाळ, बोली के महन्दी लगाई है ॥
दूज दिन रूस' र जा सोगी बोनी मेरी आगग कोनी
म्हैं बोल्यो थारो के दूग, बोली बटो सिर दावो नी
म्हैं सिर दाबण न त्यार हुयो, बण सिर ढक पाव पसार दिया
बोली पगमा सरणा चाल, सायल गोडा स टूट रिया ।
म्हैं किसे कूवे म पडू अब, दे मुट्ठी जोर दबाई है ।[2]

आलम्बन विस्तार के साथ ही आधुनिक राजस्थानी हास्य-काव्य म जिस प्रवृत्ति ने सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त किया है वह है व्यग्य की प्रवृत्ति । चाहे विमलेश हो या बुद्धिप्रकाश या फिर 'भ्रमन' हो या सुदामा सभी कवियों म हास्य की अपेक्षा व्यग्य का प्राधान्य रहा है। श्री 'सुदामा की 'पिरोळ म कुत्ती ब्याई' म सगृहीत कविताओ म दो तीन कविताओ को छोडकर शेष सभी कविताएँ व्यग्य प्रधान है । उन्होने आज की भ्रष्ट जीवन-व्यवस्था और अति भौतिकवादी प्रवृत्ति से व्युत्पन्न महानगरीय जीवन की विकृतियो का यथार्थ अकन अपनी इन कविताओ मे किया है। उनका यह स्पष्ट मन्तव्य है कि समाज म इन प्रवृत्तियों का पनपना सामाजिक जीवन के लिए बडा भारी अभिशाप है ।[3] वे आज का इस अधोमुखी एव विकृत जीवन प्रणाली से स्वय पीडित ही नही हैं अपितु व्यापक सामाजिक धरातल पर खडे होकर सोचने क कारण, एक सीमा तक सत्रस्त भी है । फलत वे इन सबका एक ऐसा क्रूर यथार्थ भरा चित्र अकित करना चाहते है जिससे पाठक का मन सहज ही वितृष्णा से भर उठे ।

---

१ सकिड को सूयो छेडखाना, श्री विमलेश, पृ० स० १०६–१०
२ अक्ल ठिकाणे श्री नानूराम सस्कर्ता, जलमभोम, पृ० स० ३७ वष २, अक २-३
३ 'हूँ सोचू टिवली तो खाली शरीर सू एक दृश्यमान कुत्ती ही भला ही हुवो पण जद स्त्री पुरुष री माणस पिरोळ म वासना, लोभ, लिप्सा री कुत्ती यावणी शुरू हुव तो बा धरती खातर इ स्थूल कुत्ती सू घणी भयावह हुव ।'
पिरोळ मे कुत्ता ब्याई श्री अन्नाराम सुदामा (थोडी म्हारी ही)

राजस्थानी भाषा के मुहावरा का यथाथ ज्ञान एव भाषा पर अच्छा अधिकार उनके कथ्य को और अधिक प्रभावी बनाने म सहायक हुआ है । कहीं-कहीं चिन्तन की प्रबलता के कारण य कविताएँ विचार बोभिल अवश्य बन गयी हैं ।

श्री 'सुदामा' की तरह ही श्री बुद्धिप्रकाश मे भी व्यग्य की प्रधानता रही है । जहा 'सुदामा' का चिन्तन सम्पूर्ण समाज और वतमान जीवन की नानाविध विसगतियो का लेकर चला है वहाँ बुद्धिप्रकाश अधिकाशत मध्यमवर्गीय या निम्न मध्यमवर्गीय समाज की सामाजिक कुरीतियो की ओर विशेष भुके हैं । उनकी अनेक प्रसिद्ध कविताएँ— म्हैं गया देखवा दीवाळी [1], 'मैं गिर सातो करवाई'[2], 'मैं गयो साधवा न बरात [3] मैं गयो निमटबा एकबार'[4], म चढयो निकासी की घोडी [5] प्रभृति म निम्न मध्यमवर्गीय समाज की कुरीतियो की अच्छी खासी मजाक उडाई गई है और हास्यास्पद स्थितियो में उनका अन्त दिखलाकर लोगो को उस ओर से विरत होने को प्रेरित किया गया है । इनके अधिकाश व्यग्य चोट खाये हृदय की गहरी मर्माभिव्यक्ति लिये हुए हैं । अपनी न्यूनताओ और अपने ही अभावो पर हँस सकने की कवि की क्षमता रचना की प्रभविष्णुता को कई गुना बढा देती है—

> अ दिन भी तेल उधार ल्यार, दीया जाया छा घरहाळी ।
> म्हैं गयो देखबा दीवाळी ।।
> वा भी दीया का बच्या तेल, वाळा म घाल करी चोटी ।[6]

दीपावली जसे पव पर तेल उधार लाकर दिये जलाना और उन दियो के बचे हुए तेल से माथे म तेल लगाने से अधिक विडम्बनाभरी स्थिति और क्या हो सकती है ? अपने अभावो पर इस प्रकार हँसने का साहस कम ही कवि कर पाते हैं । इसी तरह आज के साधारण अध्यापक की अभावो भरी जिन्दगी का वर्णन ही कारुणिक व्यंग्य चित्र मैं गयो साग लेवा बजार म अकित हुआ है । गरीब अध्यापक के पास इतने पसे भी नहीं है कि वह महीने के अन्तिम दिनो म बाजार से दो पसे की 'साग भी खरीद कर ला सके । जब उसकी गृहिणी सब्जी के लिए अधिक जोर डालकर कहती है—

> गणा गाठा कपडा लत्ता वई ता म खू ही कया ?
> तरकारी तक के ताई भा तनखा आवा का दिन जाया ।[7]

उस समय अध्यापक द्वारा अपने अभावो को आदर्शों की ओट म छिपाने का प्रयास जिस करुण हास्य की सृष्टि करता है वह दृष्टव्य है—

> मैं खीज "हार मत हिम्मत न बस हिम्मत की ही कीमत है
> ई जग मैं व ही अमर हुया ज्यो झेली घणी मुसीबत छ ।
> हो जाव देर भलाई पण, अन्धेर नहीं ऊका घर म
> दे-दे र दु ख वो परख छ, देखाँ म्हा म कितरो सत छ ?'[8]

---

१ चूटक्या श्री बुद्धिप्रकाश, पृ० स० १६
२ वही, पृ० स० २१
३ चबडका श्री बुद्धिप्रकाश पृ० स० २६
४ वही पृ० स० २४
५ वही, पृ० स० २
६ म्हे गया देखबा दिवाळी चूटक्या पृ० १७
७ चूटक्या पृ० स० ३७

श्री विमलेश' ने कई सफल व्यग्य कविताए' लिखी है, पर उनका दृष्टिकोण पाठका-या श्रोताग्रा को हसाने का ही अधिक रहा है। यद्यपि उनकी विरमाजी का वाद, बीनणी ऊपाड मूड भाई रे[1] 'इटरव्यू'[2] 'चुनाव भासण'[3] आदि कविताओ म समग्र रूप स वतमान जीवन की किसी-न किसी सामाजिक या राजनतिक विसगति पर तीखा व्यग्य किया गया है, किन्तु उनम कथ्य शब्द चयन, एव प्रस्तुतीकरण का ढग ही कुछ ऐसा मजाकिया लहजा लिये हुए है कि हसे बिना नहीं रहा जा सकता। 'विरमाजी को वाद' आज की बढती हुई जनसख्या की समस्या पर चोट है, किन्तु कवि ने प्रस्तुत 'कविता मे बढती जनसख्या के भीषण परिणामो का चित्रण करने की अपेक्षा उसे ब्रह्मा एव शिव के विवाद का रूप देकर बोझिलता स बचाकर अच्छी खासी रोचकता प्रदान कर दी है। यह इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि इटरव्यू जसी सफल व्यग्य कविता म भी कवि ने प्रारम्भिक प्रश्नो को सरस बनान की दृष्टि से मोदूड दर्जी की सरचना कर डाली है। बस वह न भी होता तो भी आज की धांधली पर बड़ा तीक्ष्ण प्रहार करन वाला इस कविता के तीखेपन म कही कोई अन्तर नही आता। इसम कवि ने जसे 'इटरव्यू' की ही बखिया उधड कर रख दी है—

> स स पेली मने ऊपर निजर पडी एँचाताणीं की
> मन्नें पूछ्यो आपको नाम ? बाप को नाम ? गाव को नाम ?
> मैं सुनू सो होगो मन म बात विचारी
> दखो आपा खाता पीता कया क माथा स भिडगा
> जाणें कठ धरमसाळा म कमरो मांगण नें आयो हू
> ओभी कोई सुवाल है —
> आपको नाम बाप को नाम गाव को नाम ?
> पण म हिम्मत करके सीदो ही बोल्या सर
> अरजी म स लिख्या पड या है एक बार वाच्या तो होता
> सुणे बिना ही ओ जुवाब बाव कानी अचकनियू उछळ यो
> जो इव ताणी सही सलामत चुप बठ्यो थो
> क क क भा भाई
> बो के पूछ्यो मन सुण्यो ही कोनी पण मैं—
> बडी मुसकला स हासी न डाटी राखी
> सोची ओ तो सार का सारो ही स्हावा डू योडो है
> मैं ग्राल जा पल्या ही बिचल्योडा कमाता बोला —
> 'थ ब्यायोडा हा क कुवारा ?
> ब्यायोडा हा ता थार कितणा टाबर है ?[4]

य उन्मुक्त अट्टहास श्री विमलश का हर व्यग्य कृति म सुन जा सकते हैं।

---

१ छूटखानी विमलेश, पृ० स० ३१

२ वही पृ स० ८६

३ आज रा कवि स० रावत सारस्वत एव वेद व्यास, पृ० स० ७५

४ इटरव्यू छेरखानी विमलेश पृ० स० ४७

व्यग्य की तीखी चोट करने और पाठक के आलस को कचोटने में समर्थ कविताओं के सृजन की दृष्टि से श्री 'अमन' का अपना विशिष्ट स्थान है। उनका ध्यान विशुद्ध राजनीतिक जीवन और समस्याओं की ओर रहा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारत ने जिस सुनहले जीवन का स्वप्न सजोया था, वह स्वार्थ, अकर्मण्यता, भ्रष्टाचार एव वयक्तिक महत्ता की स्थापना में किस कदर लड़खड़ा पड़ा, इसकी बड़ी तीखी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में हुई है। अपने आस्थावादी विचारों के कारण जहा श्री 'सुदामा की कविताए' वाक्छल एव वक्रोक्ति प्रधान बन पड़ी हैं श्री बुद्धिप्रकाश में हल्की मीठी चुटकियां हैं और श्री विमलेश में हास्य से आवृत होकर व्यग्य प्रकट हुआ है, वहां श्री 'अमन' में सीधे चोट करने की प्रवृत्ति प्रबल रही है। कवि ने बिना किसी लाग लपेट एव कटुता की परवाह किये, तिलमिला देने वाले तीखे व्यग्य बाणों की बौछार अपनी कविताओं में की है। उनकी 'थे मत आया,'[1] 'राम राज'[2] 'कई होमी'[3] आदि कविताए इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। थे मत आया' में कवि ने गाधी को सम्बोधित करते हुए इस बात पर खुशी प्रकट की है कि अच्छा हुआ तुम समय रहते इस विश्व से चले गये अन्यथा तुम्हारे अनुयायी तुम्हारे साथ क्या कुछ नहीं करते—

तो खद्दरिया,
स्हो की बिसरा
स भूल-भुला,
गुण-गाळ होय न
पलभर मे,
कपड़ा स्यू बार हो लता
औरगजब बण बापू न

खल्ल म पाणी प्या देता
ए नाका चिणा चवा देता।

गाधी टोपी न फाड फू',
टुकडा-टुकडा कर
चरख न,
बाळण र भाव बिका देता।[4]

राजस्थानी के उपर्युक्त चार प्रमुख व्यग्यकारों के अतिरिक्त श्री नृसिंह राजपुरोहित, श्री किशोर कल्पनाकान्त, श्री नानूराम संस्कर्ता, श्री करणीदान बारहठ, श्री गोपालसिंह राजावत, श्री

---

१ चूठिया श्री सत्यनारायण प्रभाकर 'अमन', पृ० स० ६१
२ वही, पृ० स० ७१
३ वही, पृ० स० ८१
४ चूठिया श्री अमन' पृ० स० ६३-६४

नागराज शर्मा, श्री गिरधारीसिंह पडिहार आदि कवियों ने सुन्दर व्यंग्य प्रधान कविताएं लिखी हैं। मानव 'चांद' पर पहुंच चुका है पर भारतवर्ष कहाँ है जरा दखिये तो—

डील हुगाडो पातियां माय
लीरा लटक नीच धोती गोडा ताई
ऊपर आभा, नीचे धरती
सिसकारी मार मार बोल्यो—
गिरता कानी करस भगवान।
जूआं मारती लुगाई बोली—
'दाणा निवडग्या
इत्त न एक जुआन आयो, पट परग्यो
पट्टा बाया, मूंछ्या माथ—
फिरयोडो पाछणो, हस-हस सुणाई बात—
चाद पर मिनख उतर
लुगाई जू मार
आदमी दस बान्ळी कानी
टावर हुगाडा सेळ
चाद पर मिनख उतर।[1]

विषय वविध्य की भाँति आधुनिक राजस्थानी हास्य-व्यंग्य काव्य का शिल्प वविध्य भी प्राचीन काव्य से काफी आगे बढा है। परोडी कहमुकरणी एव डांखळा (लिमरिक मुक्तक) का हास्य रूप मे प्रयोग सवप्रथम अर्वाचीन राजस्थानी काव्य म ही हुआ है। जहाँ तक कहमुकरणियां का प्रश्न है, हिन्दी मे उसका प्रयोग अमीर खुसरो स ही प्रारम्भ हो गया था किन्तु राजस्थानी म सवप्रथम श्री चन्द्रसिंह ने ही इस ओर अपने चरण बढाय हैं। अमीर खुसरो की 'कहमुकरणियां म जहाँ कहीं-कहीं छिछलापन उभर आया है वहा श्री चन्द्रसिंह की कहमुकरणियां, इस दोष से सवथा मुक्त है—

चचल घणो अडालो मोंगे
लाज उघाडन लाग खोटो
बरज हारी पर मान कूण
क्यूं सखि साजन, ना सखि पून।[2]
हर वेळा गळ-बांथी राख
छाती छोड न मूं सूं भाख
फीको व विन सब सिणगार
क्यूं सखि साजन ना सखि हार।[3]

---

१ चाद पर मिनख श्री करणीदान बारहठ, जलमभोम पृ० स० २६, वष २, अक २-३
२ कहमुकरणी श्री चन्द्रसिंह पृ० स० ७
३ वही, पृ० स० १०

भागण सूती अचानक आयो
ऊपर पडता घणो सुवायो
टपको टपका भीजी देह
क्यू सखि साजन ? ना सखि मेह ।।[१]

श्री चन्द्रसिंह की सभी कहमुकरणियाँ श्रृ गार परक रही हैं। श्री चन्द्रसिंह द्वारा स्थापित हास्य की इस नवीन प्रवृत्ति को एकाध कवि को छोड शेष कविया ने नही अपनाया है—

हाट बाट कर राज दुवार,
आदर पाव कारज सार
कद करू नहिं नणा ओट,
क्यू सखि साजन ? ना सखि लोट ।[२]

'परोडी' एव 'डाखळा' (तुक्तक) दोनो ही पाश्चात्य काव्य जगत से प्रेरित विधाएँ हैं। 'परोडी' मे किसी भी विशिष्ट शली या लेखक की ऐसी हास्यास्पद अनुकृति होती है कि वह गभीर भावो को परिहास मे परिणत कर देती है।[३] मूल विषय मे सवथा विपरीत प्राय इसका विषय अत्यन्त क्षुद्र होता है। वसे परोडी के तीन भेद किय गय हैं[४] किन्तु सशक्त परोडी वही कही जायेगी जो कि मूल काव्य की आत्मा को कही ठेस नही पहुँचावे या जिसमे मूल काव्य की गरिमा कम न हो। वैस कवि या लेखक को उसकी शलीगत न्यूनता दर्शाने म परोडी एक सफल विधा है। राजस्थानी म 'परोडी' लेखन का प्रचलन कम ही रहा है, फिर भी श्री मुरलीधर व्यास, श्री बुद्धिप्रकाश आदि कवियो ने कुछेक सुन्दर पैरोडिया लिखी हैं। हिन्दी की प्रसिद्ध आरती 'ओम जय जगदीश हरे' की सफल परोडी श्री बुद्धिप्रकाश की ज माखी माई है—

ज माखी माई। ओम ज माखी माई।
जण्डे देखो उण्ड तू ही तू पाई।
च्यार पख छ चरणी सेत स्यानबरणी,
दरसण स मन ही क्यू, प्राण तलव हरणी। ओम०
थारा सिरजन आग विरमा सरमावे ?
लाख लाख अण्डा दे जद-जद तू च्यावे। ओम०
जल थल और पवन म विष्णू सी व्यापे,
धरती स आमर तक तू पल मे नापे ।। ओम०
पोळ चोक घर नाळ्या, साळ गुसलखानू
तारत परनाळो तक तै स नहिं छानू ।। ओम०[५]

---

१ कहमुकरणी श्री चन्द्रसिंह, पृ० स० २८
२ श्री मोहनलाल पुरोहित, आधुनिक राजस्थानी साहित्य एक शताब्दी श्री शांतिलाल भारद्वाज, पृ० स० ६१
३ हिन्दी साहित्य म हास्य रस डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी पृ० स० ५० (द्वितीय सस्करण)
४ इस प्रकार 'परोडी तीन प्रकार की कही जा सकती है—
(१) शाब्दिक (२) आकार प्रकार सम्बधी (३) भावना सम्बधी।
हिन्दी साहित्य म हास्य-रस डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी पृ० स० ५१ (द्वितीय सस्करण)
५ तिरसा श्री बुद्धिप्रकाश, पृ० स० ६१

पद्य कथाएं

वीरो के यशस्वी कार्यों का प्रशस्ति गान राजस्थानी साहित्य की परम्परा रही है। यहाँ के लोक साहित्य एव शिष्ट साहित्य म समान रूप से वीरा एव वीरागनाओं की अपूर्व वीरता त्याग, कर्त्तव्यनिष्ठा और प्रण पालन की दृढता का गुणगान हुआ है। अग्रेजा की अधीनता स पूर्व तक यहाँ शौर्य बलिदान आत्म त्याग एव जौहर की जो शानदार परम्परा रही उसकी अनुगूज सामयिक साहित्य म बराबर सुनने को मिलती है। आधुनिक काल म स्थितियाँ बदल जाने क कारण वीर काव्य की वह परम्परा अक्षुण्ण तो नही बनी रही किन्तु उसका एकान्तिक अभाव भी रहा हो ऐसा भी नही कहा जा सकता। एक ओर जहा पारम्परिक शैली के का य रचयिता अब भी पुरान साजो सामान के साथ वीरता की बिरदावलियां बखान रहे थे वहा नवयुग के अनुरूप इस भावना को श्री मघराज मुकुल की 'सनाणी'[1] मे सवप्रथम स्वर मिल।

दीनानपुर के राजस्थानी साहित्य सम्मेलन (वि० स० २०००) म सुरीले कठ से गायी गयी मुकुल की इस कविता ने एकदम सहस्र सहस्र जना का ध्यान अपनी मातृभाषा राजस्थानी की ओर खीचा और सही माने म राजस्थानी कविता का मच पर ला खडा करने का काय भी इसी कविता न किया। इसके पश्चात तो राजस्थानी की मचीय कविता दिनो दिन लोकप्रियता की सरणियाँ पार करने लगी। समय के अनुसार यह मचीय कविता जनरुचि के अनुरूप वश परिवतन करती हुई एक लम्बे अर्से तक राजस्थानी श्रोता के मन मस्तिष्क पर छाई रही। सवप्रथम इसन पद्य कथाओं के सहारे अपना व्यापार शुरू किया। सनाणी की इस अप्रत्याशित लोकप्रियता न एक बार तो उस समय के प्राय सभी राजस्थानी कवियो को न्यूनाधिक रूप म पद्य कथाओं की इस दुनिया मे ला खडा किया। और तो और श्री कन्हैयालाल सेठिया जसे गभीर प्रकृति और परिष्कृत रुचि के कवि भी इस प्रवाह म पातळ अर पीथळ[2] की रचना करने को प्रेरित हुए। सेनाणी' के पश्चात इस कविता ने भी पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की और इन दोना कविताओं की सफलता और लोकप्रियता मे शताधिक पद्य कथाओं के सजन के प्रेरक का काय किया।

यह सही है कि सनाणी और पातळ अर पीथळ की सफलता एव लोकप्रियता राजस्थानी म पद्य कथाओं के सजन का एक बहुत बडा कारण रही है किन्तु इसे ही केवल एकमेव कारण नही माना जा सकता। यह तो युग की आवश्यकता थी जिसन सनाणी को वह लोकप्रियता दी और अन्य अन्य

---

१ सनाणी री जागी जोत श्री मघराज 'मुकुल' पृ० स० १

२ अळगोजा स० श्रीमन्तकुमार व्यास पृ० स० १७ (द्वितीय सस्करण)

पद्य कथाग्रा का भी निरन्तर प्रकाश म आते रहने दन के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया। देश की स्वतन्त्रता का मसला इस समय पूर जोर पर था और लोगा के उत्साह ने अपन अतीत के गौरवशाली पृष्ठा के गीत गुनगुनाने का अवसर कविया को दिया। यह उत्साह स्वतन्त्रता प्राप्ति क बाद के कुछ वर्षों तक भी बना रहा और लोग उसी उत्साह स इन पद्य कथाग्रा का स्वागत करते रहे। कालान्तर म स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय बनाय गय सुख और समृद्धि क काल्पनिक चित्रा के धुधलाते जाने के साथ साथ पद्य कथाग्रा का आकर्षण भी कम होता गया, फिर भी इनका सृजन एकदम रुक नही गया। कविया की इस मान्यता— वीरा रो प्रसस्ति गान सबल राष्ट्रा री जीवती जात्या रो गुण हुव सभाव हुव [1]— ने पद्य कथाग्रा के सृजन पथ को एकदम अवरुद्ध नही होने दिया।

प्रारम्भ म पद्य कथाग्रा के विषय इतिहास एव वीरा क लोक प्रसिद्ध आख्याना स ही सम्बधित रहे किन्तु धीरे धीरे पौराणिक प्रसगा लौकिक प्रेम कथाग्रो एव अन्य लौकिक प्रवादा को लेकर भी पद्य कथाएँ लिखी जान लगी। यद्यपि प्राधान्य अब भी ऐतिहासिक प्रसगा के आधार पर लिखी गयी पद्य कथाग्रा का ही रहा। इन पद्य कथाग्रा के लेखन के पीछे कविया का दृष्टिकोण मुख्यत घटनाग्रो का सरस एव सरल रूप म प्रस्तुत करन का रहा। फलत इनम इतिवृत्त प्रधान हो उठा और का व्य गौण। यही कारण है कि अधिकाश पद्य कथाग्रा म घटनाग्रा की स्थूल अभि यक्ति भर हुई है। कवि लोगा न न तो इन घटना प्रधान कविताग्रा को युग चिन्तन के सन्दभ म प्रस्तुत करन की ओर ही ध्यान दिया है और न ही कथा के मार्मिक स्थला के अपेक्षित विस्तार एव गहराइ म भकन मे ही रुचि ली है। जिन किन्ही कवियो न उपयुक्त दानो बातो की ओर थाडा भी ध्यान दिया है उनकी कविताएँ स्वत ही अन्य पद्य कथाग्रा की अपेक्षा मार्मिक एव प्रभावी बन पडी ह। इस दृष्टि स स्व० गिरधारीसिंह पडिहार की मेघनाद [2], पुरु [3] एव पातळ अक्बर मान [4] तथा श्री करणीदान बारहठ की दशू ठो' [5] आदि कविताएँ उल्लखनीय बन पडी हैं। मेघनाद म मेघनाद के ओजस्वी एव स्वाभिमानी यक्तित्व का उभारन का शानदार प्रयास हुआ है जो उसक पारम्परिक रूप से थोडा भिन्न होत हुए भी पाठक को भाता है, जबकि विभीषण को इसक विपरीत कायर एव देशद्रोही क रूप म चित्रित किया गया है और अपन दश क साथ गद्दारी करन के लिए उस खूब आडे हाथा लिया गया है। इसी भाँति 'पातळ अक्बर मान कविता म महाराणा प्रताप क काय को पर्याप्त महत्त्व दत हुए एव उनके व्यक्तित्व का भ य चित्र अकित करत हुए भी, उनके प्रतिपक्षी अकबर के चरित्राकन म भी कवि न उसी उदात्त मनावृत्ति का परिचय दिया है। फलत अकबर यहा हिन्दू द्वेषी एव सत्ता लोलुप के रूप म चित्रित न होकर सहज मानवीय गुणा से युक्त अकित हुआ है। अपन प्रतिपक्षी महाराणा के प्रति उसक हृदय म पयाप्त आदर क भाव ह और वह अपन राज्य विस्तार का अपेक्षा भारतवप का एकीकरण और हिन्दू मुस्लिम सस्कृतियो का सम वय चाहता ह, ताकि धम क नाम पर आये दिन किये जान वाल भीषण अत्याचारा एव मानवीय सहार से बचा जा सक—

---

१ दो शब्द जागती जोता गिरधारीसिंह पडिहार, पृ० स० १, प्र० का०–१९६० ई०

२ जागती जोता पृ० स० १

३ वही पृ० स० २७

४ वही, पृ० स० ४९

५ भरभर-कथा करणीदान बारहठ, पृ० स० १४, प्र० का०—१९६४ ई०

राजदरबार के राग रग, मादकता एव विलासिता से आपूरण वातावरण क परिप्रेक्ष्य म वस्तुत ही अय पूरा बन पडी है। इसी प्रकार 'चवरी म शान्ती से कुछ पूव क क्षणा म नववधू की मन स्थिति का कितना स्वाभाविक अकन हुआ है—

> चचल चित्त धीरज के पग सूँ, महदी उतार के चाल पड्या।
> बिछिया वाध्या पहली पिछाण जद मिलन रात रो चाव बड्यो।
> हिंगळू म लाज लिपट बैठी, नैणा म काजळ सरमायो।
> बणा मे घुलग्या मधुर गीत, जद पावू तोरण पर आयो।[1]

यहा तक राजस्थानी पद्य कथाग्रो की सामान्य विशेषताग्रा पर विचार हुआ है आगे विषय प्रतिपादन की दृष्टि से उन पर क्वचित विस्तार स विचार करेंगे।

विषय प्रतिपादन की दृष्टि से हम राजस्थानी की इन पद्य कथाग्रा को मुख्यत तीन भागा मे विभाजित कर सकते हैं—क एतिहासिक ख पौराणिक एव ग लौकिक प्रेम कथाग्रा तथा लोक प्रसिद्ध ग्राख्याना पर ग्राधारित। इन पद्य कथाग्रा मे सर्वाधिक सख्या चूँकि एतिहासिक प्रसगा पर आधारित पद्य कथाग्रा की रही है अत पहले इन्ही पर विचार करना ठीक रहेगा।

एतिहासिक पद्य कथाग्रा म इतिहास प्रसिद्ध वीरा का चरित गान हुआ है तथा उनम उनके शौय कत्त यपरायणता स्वामिभक्ति आत्म त्याग स्वाभिमान एव धमनिष्ठा ग्रादि गुणा का दर्शन वाली घटनाग्रा की ग्राभव्यक्ति विशेष रूप स हुई है। यहा यह भी उल्लखनीय है कि इन ऐतिहासिक पद्य कथाग्रा म अधिकाश का सम्बध राजस्थान क ही इतिहास स मुख्य रूप से रहा है और उनम भी कतिपय ग्रति प्रसिद्ध प्रसगो का बार बार दुहराया गया है। पाबूजी के प्रणपालन और अपूव शौय की घटना और राजकुमार चूण्डा के विलक्षण त्याग क प्रसग को लकर कई कहानिया एक साथ उठी है।[2] कुछ मुख्य एतिहासिक प्रसगो के ग्राधार पर लिखी गई पद्य कथाओ म उल्लखनीय रचनाए है - श्री मेघराज मुकुल की सनाणी, कोडमद[3] एव हिरोल[4] श्री कन्हैयालाल सेठिया की पातळ अर पीथळ' डा० मनोहर

---

१ चवरी सनाणी री जागी जोत पृ० स० ३१

२ क पाबू जी क प्रणपालन स सबधित पद्य कथाए—
  (i) पाबूजी राठौड डा० मनोहर शर्मा गीतकथा डा० मनोहर शमा, पृ० स० ११
  (ii) चवरी श्री मेघराज मुकुल सनाणी री जागी जोत पृ० स० ३१
  (iii) पाबूजी श्री गिरधारीसिंह पडिहार, जागती जोता पृ० स० ३८

ख राजकुमार चण्ड के आत्म-त्याग से सबधित पद्य कथाए —
  (i) सत्ता रो त्याग श्री मेघराज मुकुल सनाणी री जागी जोत पृ० स० २२
  (ii) मेवाडो चण्ड श्रीमती रामपाली भाटी चारगाथा श्रीमती रामपाली भाटी पृ०स० २०
  (iii) चूण्डाजी डा० मनोहर शमा गीतकथा, पृ० स० ६०

३ सनाणी री जागी जोत, पृ० स० ७

४ वही पृ० स० ४

शर्मा की सुजानसिंह शेखावत [1], 'बालूजी पचावत'[2], 'मानसिंह झाला'[3], श्री गिरधारीसिंह पडिहार की घूडकोट'[4], एव 'दू गजी ज्वार जी'[5] श्री सूरज सोलकी की 'जूनी बात मेरोरो मोल'[6] एव 'जूनी वात लोहियाणा कवर री'[7] तथा श्री करणीदान बारहठ की 'दोवडा ग्रासू'[8] बाह शाहणी'[9] एव ''महामाया'[10] आदि ।

राजपूती इतिहास से भिन्न भी पुरु के स्वाभिमानी निडर एव देश प्रेम से ओत प्रोत व्यक्तित्व[11] चाणक्य के हठी एव कूटनीतिक चरित्र[12], गुरु गोविन्दसिंह के बच्चो के साहस और दृढता युक्त आचरण[13] तथा रानी दुर्गावती के स्वातन्त्र्य प्रेमी स्वभाव[14] ने पद्य कथा लेखको को आकर्षित किया है । इन इतिहास प्रसिद्ध चरित्रो के त्याग शौर्य बलिदान और स्वाभिमान की गाथा उन्होने उसी उत्साह से गाई है, जिस उत्साह से राजपूती इतिहास के वीरो का गुणगान किया है । राजपूती इतिहास या राजपूतेतर इतिहास के इन प्रसिद्ध प्रसगो के चयन के पीछे सामान्य वीर पूजा की भावना और अपने वैभवशाली अतीत के प्रति गौरवानुभूति के भाव ही मुख्य रूप से प्रेरक रहे है ।

एतिहासिक प्रसगो की अपेक्षा पौराणिक घटना प्रसगो पर लिखी गयी पद्य कथाओ की सख्या बहुत सीमित हैं और उनके लेखन का उद्देश्य भी वीर पूजा के भाव को प्रोत्साहित करना या अपने अतीत के प्रति स्वाभिमान को जागृत करना उतना नही है जितना कि सामयिक चिन्तन के पक्ष मे उनकी पुनर्व्याख्या और उन पौराणिक प्रसगो के बदलते दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति । इस दृष्टि से कतिपय उल्लेखनीय पद्य कथाएँ हैं—श्री गिरधारीसिंह पडिहार की मघनाद' एव सिसपाळ तथा श्री करणीदान बारहठ की देशू ठो' ।

पौराणिक प्रसगो पर लिखी गयी पद्य कथाओ की अपेक्षा लोक प्रसिद्ध आख्यानो एव लोक प्रवादो के आधार पर लिखी गयी पद्य कथाओ की सख्या अधिक रही है । इनमे एक ओर वीर चरित्रो से सम्बद्ध किंवदन्तियो को आधार बनाया गया है तो दूसरी ओर कुछ अति प्रसिद्ध प्रणय-गाथाओ

---

१ गीत कथा, पृ० स० १
२ वही पृ० स० २०
३ वही पृ० स० ५४
४ जागती जोता पृ० स० ७८
५ वही, पृ० स० ६३
६ जूनी वाता सूरज सोलकी पृ० स० १८
७ वही पृ० स० ३५
८ झरझर कथा करणीदान बारहठ पृ० स० ७
९ वही पृ० स० २२
१० वही पृ० स० २७
११ पुरु जागती जोता, पृ०स० २१
१२ चाणक री चोटी चार गाथा, पृ० स० ३६
१३ गोविन्द गुरु रा टाबरिया जागती जोता पृ० स० ६६
१४ दुर्गावती सनाणी री जागी जोत, पृ० स० १३

को उठाया गया है। प्रथम प्रकार की रचनाओ के पात्र तो ऐतिहासिक हैं, किन्तु उनसे सबधित जिन प्रसगो को उठाया गया है, उनम समाहित अलौकिकता के अश के कारण वे विश्वसनीय एव इतिहास सम्मत नही रह गये हैं। वसे ये किवन्तिया उन चरित नायको के प्रति रही हुई लोकभावना को अवश्य व्यक्त करती हैं। एसी पद्य कथाओ म कतिपय उल्लेखनीय रचनाएँ है—'जगदेव पवार'[1] 'सागो गौड'[2], 'जूनी वात आपदकाल म राज रक्षा री'[3] आदि। सागोगौड' म मृत सागा कविराजा ईसरदास की कृपा से पुनर्जीवित हुआ चित्रित हुआ है तो जूनी वात आपदकाल मे राज रक्षा री म अकबर के शिविर म महाराणा प्रताप और एक वृद्ध राजपूत सरदार के अकबर के शीश प्राप्त करने के उद्देश्य से जाने और पीरो के प्रताप स अकबर के जीवित बच जान की चामत्कारिक घटना का वणन हुआ है।

वीरो की शौयभरी गाथाओ के समान ही युगल प्रेमियो क निमल निश्छल प्रेम की अनक गाथाओ को यहा के लोक मानस न बडे स्नेह से अपन अन्तर म सजो रखा है। ढोला मरवण जेठवा ऊजळी, मोमळ राणा, सारठ बीझो आदि की प्रम कथाएँ यहा बहुत ही अधिक लोकप्रिय हैं। इनकी इसी लोकप्रियता से प्रेरित होकर आधुनिक युग के पद्य कथाकारो न वीर गाथाओ के पश्चात इन्ही को अपनी पद्य कथाओ का आधार बनाया। इस दिशा मे डा० मनोहर शर्मा न विशप रुचि दिखलाई है। उन्होने इन वार्ताओ को गेय शली म अपन ढग से प्रस्तुत किया है। उनकी ऊजळी[4], मोमल[5], सोहणी[6] मिरगानदे[7] आदि ऐसी कतिपय उल्लेखनीय पद्य कथाए हैं। डा० शर्मा ने इनक मूल कथ्य मे परिवतन न करते हुए भी अपने सात्विक चितन के अनुरूप इन अमर प्रेमियो के प्रम को वासना पक से ऊपर तरते निमल पकज के समान चित्रित किया है। जहा लोक प्रचलित इन प्रेम कथाओ म प्रेम की उन्मुक्त स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई है वहा उनम शारीरिक आकषण और स्थूल वासना के स्वर भी काफी मुखरित रहे हैं किन्तु डा० शर्मा एसे स्थलो को कुशलता स बचा गये है। एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होगें।

ऊजळी की प्रसिद्ध कथा म जहा ऊजळी का अपने यौवन की उष्मा स पथिक की शीतलता एव तज्जन्य मूर्च्छा को दूर करने का प्रसग नाटकीय ढग स आता है वहा डा० शर्मा ने प्रारम्भ म ऊजळी एव जठवा के परस्पर आकषण का वणन किया है और पश्चात वन म साथ साथ रहत हुए उनके स्वाभाविक प्रेम को विकसित होत हुए चित्रित किया है—

वन वन फिरती धन चराव सार कर मनवार
आप बटावू हळव हाथा साज कर सिणगार
दोनू वन म गाव
पिरथी सरसाव सुण रस रागनी
अम्बर रग राच।[8]

१ गीत कथा पृ० स० २८
२ वही, पृ० स० ३५
३ जूनीवाता पृ० स० २८
४ मरुवाणी पृ० स० ७ वप २ अक १
५ ओळमा पृ० स० २२, वप १ माघ २०११
६ मरुवाणी पृ० स० १० वप ३ अक १
७ वही पृ० स० १८ वप १ अक ५
८ ऊजळी, मरुवाणी पृ० स० ८ वप २, अक ६

भक्ति काव्य

प्राचीन राजस्थानी साहित्य जहाँ अपने विपुल वीर साहित्य के लिए प्रसिद्ध है, वहाँ उसका धार्मिक एव भक्ति साहित्य भी पर्याप्त रूपेण समृद्ध रहा है। उसम एक ओर जन कवियो की शानदार परम्परा रही है तो दूसरी ओर सत कवियो का प्रशसनीय योगदान रहा है और तीसरी ओर भक्त कवियों की पौराणिक एव धार्मिक प्रसगो तथा इतर भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ आज भी अविस्मरणीय बनी हुई हैं। पृथ्वीराज की 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' सायां भूला का नागदमण माधोदास का 'रामरासो' जाम्भोजी, जसनाथजी तथा उनके शिष्यो की वाणी दादू रज्जब वीलोजी आदि सत कवियो का निर्गुण की उपासना मे तल्लीन स्वर और मीरा का भाव विह्वल कर देने वाला भक्ति काव्य राजस्थानी भक्ति साहित्य की ही नही, पूरे भक्ति साहित्य का अनमोल खजाना है। उधर शक्ति की स्तुति मे रची गयी सकडो कवियो की सहस्रों 'चरजाए' भी राजस्थानी भक्ति काव्य की एक विशिष्ट उपलब्धि बनी हुई है।

राजस्थानी क आधुनिक काल म भक्ति सरिता उस उद्दाम वेग से तो प्रवाहित नही हो रही है फिर भी उसका प्रवाह सवथा अवरुद्ध भी नही हुआ है। जन कवि अब भी अपनी आराधना म लगे हुए है, तो सन्तो की वाणी भी यदा-कदा निर्गुण के गीत गुनगुनाती सुनाई पड जाती है। इसी अवधि मे धार्मिक एव पौराणिक प्रसगो को लेकर भी प्रबन्धो की रचना हुई है और यदा-कदा मीरा की भाँति ही तन्मय होकर अपने स्वामी के प्रति पूर्णत समर्पित भाव स भगवद भजन भी गाये गये हैं। किन्तु, इतना सब कुछ होते हुए भी वतमान काल का भक्ति काव्य परिमाण और श्रेष्ठता उभय दृष्टियो से अपने पूववर्ती भक्ति साहित्य से काफी पीछे है।

आधुनिक राजस्थानी धार्मिक साहित्य का एक बहुत बडा अश धार्मिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन और उन्ह आचरण म अपनाने की प्रेरणा देने वाली उपदेशप्रद रचनाओ से सम्बन्धित रहा है। ऐसी रचनाओ म विह्वल भक्त क नही अपितु अपनी ज्ञान गरिमा से साधारण जनों को उद्बोधित कर उपकृत करने वाले आचाय के ही दशन होते हैं। ऐसा स्थिति म इन रचनाओ पर भक्तिकाव्यान्तगत विचार न कर उनका विवेचन नीतिकाव्यान्तगत करना समीचीन समझा गया है।

राजस्थानी क आधुनिककालिक जन भक्ति काव्य पर विचार करने स पूव जन भक्त कवियो के भक्ति सम्बन्धी दृष्टिकोण और मान्यताओ का स्पष्ट हो जाना आवश्यक है। 'जन दशन की मान्यता है आत्मा स्वय अपने ही उपकर्मो मे पवित्र और अपवित्र होती है। कोई विराट शक्ति इस विषय म उस अनुगृहीत नही करता। फिर भी साधक की अन्त शुद्धि के लिए चार शरण और पाच परम इष्ट

नहिं तत ताल, कसाल बजाऊं नहिं टोरर टणकारो।
केवल जस भालर भणकाऊं धूप ध्यान धरणा रो।
म्लान स्थान चंचलता निरखी, नकरो नाव ! नगारो।
तुम थिरवासे निरमलता पा, होसी थिरता वारो॥
वीतराग, मोह माया त्यागी ममता मोहि विसारो।
अशरण शरण, पतित पावन प्रभु 'तुलसी' अब तारो॥[1]

और अनेक स्थलों पर तो उसने बौद्धिक स्तर पर ही आत्मा की मुक्ति के गीत गुनगुनाये हैं —

क
आतमा री नींद उडायल्यो कनां
आतमा सूं आतमा जगायल्यो कनां।
आतमा ही ताळो आतमा ही चाबी
ताळ के चाबी लगायल्यो कनी।
आतमा ही दुनिया आतमा ही मुगति,
दुनिया में मुगती बणायल्यो कनी।[2]

ख
ध्याता स्वयं हो आपो ध्यान भी स्वयं हो
ध्येय न जुदो आपा स्यूं जाव।
तीनां री एकता रो भान हुयां स्यूं
आतमा परम पद क्षण में ही पावै।[3]

इन सबके अतिरिक्त गुरु महिमा गुणगान सिद्ध पुरुषों के चरित्रगान और मुक्त आत्माओं के यशोगान में जैन कवियों की भक्ति भावना प्रकट हुई है। आत्म निरीक्षण के महत्त्वपूर्ण क्षणों में कभी कभी अपने हृदय के कलुषित भावों को निःसंकोच प्रकट कर पाप परिष्कार का प्रयास भी वहां हुआ है।

जैन भक्त कवियों की अपेक्षा वैष्णव भक्त कवियों का भक्ति क्षेत्र अपेक्षया विस्तृत रहा है। वहां ईश्वर के सगुण रूप को स्वीकार करते हुए राम कृष्ण आदि नाना अवतारों के रूप में उसका लीलागान हुआ है। कहीं उसके नाम कीर्तन की महिमा गायी गयी है तो कहीं उसके भक्त वत्सल स्वरूप को प्रधानता देते हुए भक्त ने उससे अपने उद्धार की अभ्यर्थना की है। कहीं उसके पतित पावन अशरण शरण दीनदयाल, समदर्शी आदि नाना गुणों का गुणगान करते हुए उससे यह अपेक्षा की गयी कि वह अपनी इन विशेषताओं की सत्यता प्रमाणित करने के लिए भक्त को तारे तो कहीं भक्त ने उस पर अपना अधिकार मानते हुए साधिकार अपने उद्धार की बात कही है और कहीं इसी अधिकार भाव से प्रेरित भक्त ने उसे उसके शैथिल्य एवं लापरवाही के लिए खूब उपालम्भ भी दिये हैं। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि इन भक्त कवियों से पूर्ववर्ती कवियों ने जिस जिस रूप में अपनी बात कही है अधिकांश में उनकी ही पुनरावृत्ति या पिष्टपेषण इनकी रचनाओं में हुआ है फलतः अपनी मौलिकता या नवीनता

---

१ श्री कालू उपदेश वाटिका आचार्य तुलसी पृ० सं० ५
२ भजनों की भेंट मुनि श्री धनराज प्रथम पृ० सं० ८८
३ सत्यम शिवम मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'प्रथम' पृ० सं० ६२

से किसी को भी एकदम आकर्षित कर लेने जसी बात यहाँ बहुत कम देखने को मिलती है। जहाँ कहीं भी ऐसा हुआ है वे पद या रचनाएँ निश्चय ही उल्लेखनीय बन पडी हैं—

नदलाल ! आवो तो जाऊ थारी गाटडी
सोना रा रूपा रा पात्र म्हारे है नही रे कान्हा।
म्हार ता स्याम ! अक चदण री काठडा
मैं ता हू गरीब घगा दीन औ मलीन प्रभु।
जीमो तो स्याम। म्हार बाजरी री पाटडी
दिल री पुकार सुण आवा जी सावरा।
भूलण म प्रेम डोर नणा हदी पाटडा
'माधव सदा सभागी नित हा पुकार का हा।
मिलवा न आज्यो स्याम ! जमना री पाल्नी।[1]

भक्ति के प्रचलित रूपो म दास्य एव सख्य भाव की भक्ति का ही प्राधान्य रहा है। भक्तो न स्वय को अपने स्वामी के चरणा म सम्पूर्ण भाव म समर्पित करत हुए अपने कर्मों का निष्पक्ष लेखा-जोखा प्रस्तुत कर यम स मुक्ति का और प्रभु चरणा म स्थान पाने की प्राथना बडे आदरभाव से की है —

दीन ब धु इग्ग फता दान रा हना मुण लाजा
दास न दरशन द दाजा।
पल पल याद करू मैं प्रभूजी धीरज न दीजा।
कहा गता हारी अत सम म माचो कह राजा।
तारो मन तुरत भवसागर अवगुण ढक दीजा।
जो काई पाप किया इण भव म माफी कर दीजा।
जमरे पास मति लजाजा टालो कर दीजो।
आणा चाहु आपर शरण भगती द दीजा।
भीणो वक्त नही कोई भेजो ऊपर कर दीजो।
हिल मिल रहस्या हत प्यार मू सोगन न लीजो।
और नही आधार आप बिन साचो सुण लीजा।
पडियो रहै 'फतो' चरणा म मुक्ती द दीजो।[2]

और भी—

थारो एक सहारो।
थे हिवड रा हार हारवण हरदम हिय विहारा।
मैं मतिहीन मलीन, दीन पण चाकर बाजू थारो।
भवसागर भरपूर पूर थ, दूर खड्या न निहारो।
हू चाहे मजबूर नाथ मन म मगरूर तिहारो।

---

१ पद राज श्री साधना' राजस्थान के कवि (राजस्थाना) स० श्रा रावत सारस्वत पृ० स० १४०
२ फत-विनोद राव बहादुर राजा फतेसिह पृ० स० १०८ (चतुथ सस्करण)

लाल क हैया' पतित पतित पावन प्रभु बिड़द विचारो ।
हू दासन को दास, दास की दारुण दशा निवारो ।[1]

भगवान को समवयस्क सखा के रूप म मानकर समानता के धरातल पर उसके साथ बराबरी का व्यवहार भक्त और भगवान के बीच जिस मधुरता की सृष्टि करता है, वह दास्य भाव की भक्ति म सभव नही है। उसे अपने ही बराबर का मानने के कारण मीठी डाटफटकार भी लगायी जा सकती है प्यार भरे उपालम्भ भी दिए जा सकते हैं और प्रत्यक्ष म उस पर क्रोध भी किया जा सकता है। भक्त का यह उपालम्भ और क्रोध भी भक्त और भगवान के बीच के आपसी मधुर सम्बन्धो के कारण कितना स्पृहणीय बन जाता है—

कुण विसवास पातीज कुण ओळख करम हुई अरुळाट ।
थ्यावस क्यू आव जद थारी करणी असी किनारा काट ।
कर जतना सू घणो करायो निरमळ माळयो नया नकार ।
चूक पडी काइ ज्यो चमक्या आता ही क्यू आया जोर।
वडा भाग रा सिरजण वाळा जग रा सरण जुग-जुग दाता ।
घठ गइ थारी साळाई अवनी बगता करी अबार ।
अण हू ता पद पाया इसर नावड माहि लग भळळाट ।
ओछी करया कन न आया वाना आडा दिया कपाट ।[2]

भक्त की यह झल्लाहट और उसका यह सात्विक क्रोध कभी स्वय की उपेक्षा के कारण प्रगट होता है तो कभी विश्व की दु व्यवस्था एव उसम फले अन्याय तथा अत्याचार को देखकर। श्री मुकनसिंह कृत बहुनामा री बलि[3] म वर्तमान समय म फली इस अ यवस्था के कारण ही भगवान को अपने भक्त से अनेक कठोर बात सुननी पडी हैं—

कथा किहा करणी करणाकर अकळ चारळ औखी जाह ।
अनरथ अनाचार अिठ अपर आन्या को अितरीजाह ।।
अनाथात आगी अिठ अूपर करो किहा केहा करणाह ।
आछातणा अगुह अेंठावा धीगाण धूटा धरणीह ।।
अिळा आज आखी अिह आस अतस अुजाड अवनी अेम ।
जण जग जीह् जीह् जग जप, कसव किहा कीत कळ केम ।।
बाळक की विणसावा वसुधा अघमोचण अवनी अणजीत ।
माणस मार मना की मळका कमव ! किहा क रीज कात ।।[4]

राजस्थानी भक्ति साहित्य की एक विशेष देन रही है शक्ति की उपासना म लिखा गया उसका 'चरजा साहित्य'। शक्ति के विभिन्न अवतारो की उपासना म रचित ये चरजाए राजस्थानी

१ गीता री गुजार श्री क हैयालाल दूगड पृ० स० ४६
२ ओळमा छीजण श्री गोपालसिंह राजावत पृ० स० ४५–४६
३ सप्तशक्ति प्रकाशन प्र० का०–१६७ इ०
४ बहुनामी री बलि मुकनसिंह पृ० स० १

चरित्र के वीरता के प्रति सहज आकर्षण भाव को ही व्यक्त करती हैं। चरजाओं में भक्त कवियों ने उपास्य को दो रूपों में देखा है—प्रथम, मंगलकारणी देवी के रूप में एवं द्वितीय शत्रु संहारिका शक्ति के रूप में। भक्तों की इस दृष्टि भिन्नता के कारण ही चरजाओं के दो रूप प्राप्त हैं—'सिगाऊ' एवं 'घाडाऊ'। "सिगाऊ चरजाओं में भक्त अपनी आराध्या के चरित्र का वर्णन और प्रशंसा करता है। घाडाऊ चरजाओं में भक्त के दैन्य भावों का प्राधान्य होता है तथा उसकी देवी का ममत्व भाव में या अपनत्व की भावना से उलाहना देते हुए शक्ति का आह्वान किये जाने की प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है।"[1] प्राचीनकाल में जहाँ अनेक कवियों ने सरस चरजाओं की रचना कर शक्ति के प्रति अपनी आस्था एवं अपनी भक्ति भावना व्यंजित की है वहाँ आधुनिक काल में भी करणी जी आदि कुछ विशिष्ट शक्ति अवतारों की स्मृति में कवि लोगों की लेखनी गतिमान रही है—

मुण अम्बा ए ! म्हारी मैं हूँ रे चरणां री थारो दास।
ऊँचा देवरा आपरा ए अम्बा सिगाऊ आवड जो थार वास।
नहिंजी नरा वस ए अम्बा साचो है थारोडो विश्वास।
अव देसाणे आवसा ए अम्बा छोडा नहीं थारा मन री छाय।
प्रेम भाव पग पूजसा ए अम्बा रहसा औ देवी रा चरणा माय।
आया करसा आपरे ए अम्बा जोवत हा दरशण री थारी वाट।
मिथ्या पाप पड़ परसता ए अम्बा, होसी रे घर घर में आनन्द ठाट।
सुण बीस हती सिघ वाहनी ए अबा पडियो हू चरणा म थार पास।
आप कृपा आछी करी ए अम्बा, पुरी है फता री मोरी आस।[2]

आधुनिक काल में अधिकांश में सिगाऊ चरजाओं की ही रचनाएँ हुई हैं। इस दृष्टि से कतिपय अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ हैं—श्री हिंगलाज दान कविया कृत मेहाई महिमा, रावबहादुर राजा फतेसिंह कृत 'करनी करुणाकर बावनी' एवं श्री शक्तिदान कविया कृत 'करनीयश प्रकाश'।

निष्कर्षतः राजस्थानी का आधुनिककालीन भक्ति साहित्य अपने पूर्ववर्ती भक्ति साहित्य की ऊँचाइयों को छूने में असमर्थ रहा है। इसका मुख्य कारण प्रथम तो सर्जित साहित्य में नवीनता का अभाव एवं द्वितीय बहुत से भक्त कवियों का ध्यान मौलिक सृजन की अपेक्षा अनुवादों में लगा रहना है। अनुवादों की इस परम्परा का सूत्रपात महाराज चतुरसिंह जी की रचनाओं से होता है। उन्होंने महिम्न स्तोत्र और 'चन्द्रशेखर स्तोत्रम' के समश्लोकी अनुवाद मेवाड़ी भाषा में किये।[3] इसी परम्परा में पंडित गिरधरलाल शर्मा ने मार्कण्डेय कृत शिवस्तोत्रम का अनुवाद किया।[4] महाराजा चतुरसिंहजी ने ही 'गीता का अनुवाद'[5] पहली बार मेवाड़ी में किया और पश्चात तो चार अन्य लोगों ने भी इसके

---

१ मालपुरा क्षेत्र में प्रचलित चारण–चरजाएं और उनका अध्ययन श्री गुलाबदान चारण (अप्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध) पृ० स० ११८
राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय जयपुर।

२ फतै विनोद राव बहादुर राजा फतेसिंह पृ० स० १३१ १३२ (चतुर्थ संस्करण) वि० स० २००८

३ आधुनिक राजस्थानी साहित्य श्री भूपतिराम साकरिया पृ० स० ४१

४ वही, पृ० स० ४३

५ वही पृ० स० ४३

अनुवाद राजस्थानी म प्रस्तुत किये जिनम ठाकुर कुमेरसिंह का 'गीता मानामृत'[1] और श्री विश्वनाथ विमलेश का 'गीता (राजस्थानी पद्यानुवाद)[2] उल्लेखनीय बन पड हैं। अनुवादों की इस शृखला की दो अन्य उल्लेखनीय कृतिया हैं, श्री मुकुनसिंह कृत 'उपनिषद-वेलि'[3] एव श्री मनोहर प्रभाकर कृत 'भरथरी सतक'[4]। इनक अतिरिक्त भी श्री कन्हैयालाल दूगड कृत 'योगलहरी'[5] और श्री मुकुनसिंह कृत 'चारण री बेलि'[6] नामक कृतियाँ पूर्णत अनुवादित रचनाएँ न होते हुए भी भावभूमि की दृष्टि से अपने मूल ग्रथों के काफी निकट रही है।

१ प्र० का०—वि स० २०१६

२ प्र० का०—१६६० ई०

३ प्र० का०—१६६८ ई० (मूल इशावास्य उपनिषद्)

४ प्र० का०—१६६८ ई०

५ प्र० का० —१६६६ ई०

६ प्र० का०—१६६७ ई०

नीति काव्य

व्युत्पत्तिजन्य जो व्यापक अर्थ 'नीति' शब्द को मिला है अपने सामान्य प्रचलित अर्थ में वह उस व्यापकता को समाहित नहीं कर पाता है। आज नीति एवं नीति काव्य शब्द एक विशिष्ट अर्थ तक ही सीमित हो गया है। सामान्यतः 'समाज को स्वस्थ एवं सन्तुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति कराने के लिए जिन विधि-निषेधमूलक नियमों का विधान देशकाल और पात्र के सन्दर्भ में किया जाता है उसे नीति शब्द से अभिहित करते हैं और नीति के अन्तर्गत आने वाली इस प्रकार की बातों से युक्त काव्य नीति काव्य है।'[1] संस्कृत और परवर्ती सामान्य आर्य भाषाओं के समृद्ध नीति काव्य ने यहाँ के सभी भाषा साहित्यों को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है। राजस्थानी साहित्य भी उसका अपवाद नहीं है। भर्तृहरि प्रभृति प्रसिद्ध नीति एवं सूक्तिकारों के नीति वाक्यों एवं सूक्तियों में व्यक्त परम्परानुभूत अनुभवों को तो राजस्थानी में अनुवाद रूप में[2] या कि उनके मूल भाव को ग्रहण कर उन्हें अपने ढंग से तो प्रस्तुत किया ही गया है किन्तु साथ ही-साथ रचनाकारों ने व्यष्टि एवं समष्टि जीवन से सम्बन्धित स्वानुभूत अनुभवों को भी वाणी प्रदान करने में संकोच नहीं किया है। 'राजिया' जैसे कवियों के सोरठों में व्यक्तिगत जीवन एवं जगत के यथार्थ से सम्बन्धित ये स्वानुभूत सत्य परम्परानुभूत अनुभवों का दिग्दर्शन कराने वाली रचनाओं से अधिक लोकप्रिय रहे हैं।

राजस्थानी के आधुनिककालीन नीति काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों पर विचार करने से पूर्व उससे सम्बन्धित दो तीन अन्य बातों पर चर्चा कर लेना असंगत नहीं होगा। प्रथम, हिन्दी में जहाँ अधिकांशतः नीति प्रधान रचनाओं के लिए सामान्यतः कवित्त, कुंडलिया, छप्पय एवं दोहे छन्द का उपयोग हुआ है वहाँ राजस्थानी में इस क्षेत्र में वर्चस्व सोरठा छन्द का रहा है। प्राचीन काल में जहाँ राजिया, भैरिया, किसनिया, नाथिया, चकरिया आदि नामों से अनेक कवियों ने[3] नीति काव्य के लिए सामान्यतः 'सोरठा' छन्द को ही अपनाया वहीं राजस्थानी के आधुनिक काल के नीति काव्यकारों ने भी प्रथम वरीयता 'सोरठा' एवं द्वितीय स्थान दोहा छन्द को दिया है।[4]

---

१ हिन्दी साहित्य कोश भाग–१ पृ० सं० ४५७ (द्वितीय संस्करण)

२ भरथरी-सतक अनुवादक मनोहर प्रभाकर, प्र० का०–१९६८ ई०

३ सोरठा संग्रह प्रकाशक मन्त्री भीकमचन्द बुकसेलर कटला बाजार जोधपुर।

४ आधुनिक काल के नीति काव्यकारों के निम्नलिखित नीति काव्य संग्रहों में अधिकांश में सोरठा छन्द ही मुख्यरूपेण व्यवहृत हुआ है —

 १ रमणिया रे सोरठा श्री कन्हैयालाल सेठिया, प्र० का०–वि० सं० १९९७

द्वितीय, राजस्थानी म आधुनिक काल म नीति काव्य की सजना पूव की अपेक्षा कम हुई है यही नही इस युग म रचा गया नीति का य उतना लोकप्रिय एव जन प्रचलित नही हो पाया जितना कि पूवरचित काव्य आज भी है। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक तो आज सामा यत कोई भी व्यक्ति उपदेश सुनना पस द नहीं करता अत स्वाभाविक रूप से प्रोत्साहन के अभाव म नीति का यकारो ने अपनी प्रतिभा का उपयोग दूसरे क्षेत्र म किया। द्वितीय, आधुनिक युग म नीति सम्ब धी जो रचनाएँ सामने आयी हैं, उनम स्थूल उपदश का प्राधा य रहा है और उनके सर्जेताओ का ध्यान परम्परानुभूत व्यावहारिक सत्यो को ही दुहराते रहन म लग रहने क कारण नवीनता के अभाव मे उनका काव्य जन साधारण का ध्यान आकर्षित कर सकने म असमथ रहा है। तीसरे सामयिक राजनतिक एव सामाजिक जीवन से सम्बद्ध प्रसगो को ध्यान मे रखकर लिखी गयी रचनाएँ बदल नव चेतना और परिवर्तित जन रुचि के कारण अधिक लोकप्रिय रही और एक प्रकार से आधुनिक युग म एसी रचनाओ न ही नीति का य का स्थान ले लिया है।

राजस्थानी साहित्य के आधुनिक काल क प्रथम चरण म प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारो और स्थानीय साहित्यकारो म सुधारवादी मनोवृत्ति एव नतिक दृष्टि वाले कवियो ने अधिकाशत उपदेश प्रन कविताओ की रचनाए की है। इस दृष्टि से प्रवासी राजस्थानी साहित्यकारो मे सवश्री शिवच द्र भरतिया गुलाबच द नागौरी धमच द खेमका आदि का नाम उल्लेखनीय हैं और यहा के साहित्यकारो म महाराज चतुरसिंह अमरदान लालस, राव बहादुर राजा फतसिंह प्रभृति कवियों ने ऐसे साहित्य की सजना म विशेष रुचि प्रदर्शित की है। इन रचनाओ के सजन के पीछे सामा य रूप से किसी सामयिक सामाजिक समस्या क प्रति जनसाधारण को उदबोधित करने का दृष्टिकोण प्रमुख रहा है, फलत इन रचनाओ म का यत्व गौण एव उपदेश प्रधान हो गया है। इस श्रणी की बहुत सी रचनाएँ तो सामा य पद्यवद्ध उपदेश होने के कारण का य की श्रणी मे स्थान पाने की अधिकारिणी भी नही है। चू कि एसी रचनाओ म अधिकाशत कल्पना की रम्य उडानो और उक्ति वचित्र्य का भी अभाव रहा है अत यहा उन पर विस्तार से चर्चा अनावश्यक होगी। उदाहरणाथ दो चार रचनाओ के कतिपय अश प्रस्तुत हैं—

क वो नर जग मे ध य है जो करे समाज सुधार।
पर दुख अपणो जाणकर कर देश उपकार।
छोडा सट्टा फाटका, कपट जाल जजाल।
विणज करो परदेश सू फट हो वो धनपाल।[1]

---

२ शेखर का सोरठा श्री च द्रशेखर व्यास प्र० का०–वि० स० २०१४
३ मू घा मोती (सोरठा सग्रह) श्री भीमराज भवीन प्र० का०–१९५४ ई०
४ विचार बावनो (सोरठा सग्रह) श्री क हैयालाल दूगड प्र० का०–१९६९ ई०
५ उभरते रग (सोरठा सग्रह) मुनि श्री दुलीच द दिनकर प्र० का०–१९७० ई०
६ मरुभारती (दोहा एव सोरठा सग्रह) श्री मागलाल चतुर्वेदी प्र० का०–वि० स० २००९
७ सिंहनाद (दोहा सग्रह) मुनि श्री मिश्रीमल प्र० का० वि० स० २०२४

१ भूमिका कनक सुदर शिवच द्र भरतिया पृ० स० ५

ख वश्या प्यालो जहर को,
(हा रे कोई) शहत लपटी धार
धन की प्यासी पापणी
(कोई) झूठो करती प्यार।
वश्या छै पनी छुरी रे
(हा रे भाई) तीन ठौर सूं खाय
धन छीज जोवन हरे
(वाह) मरया नरक लजाय।[1]

ग कर क्षण भंग शरीर को, मिलगा धूड़ कबूल।
पाणी रा पग ऊपरे मनी फूल रे फूल।[2]

घ दारू परनार दोहू है तन धन री हाण।
नर साप्रत देखो निजर, नफा और नुकसाण ॥[3]
विभचारी विभचार कर कुल धरम खोय कुमोज
खूट गया इण मलक में, खुडको हुवो न खोज।[4]

प्रथम चरण के इन नीति काव्यकारों की अपेक्षा परवर्ती नीति काव्यकारों ने अधिकांशत ऐसी परम्परानुभूत एव स्वानुभूत बातों पर लिखा जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के आचरण से अधिक रहा। अन्यथा इस अवधि में सर्जित रचनाओं में धार्मिक जीवन से सम्बन्धित उपदेशप्रद रचनाओं का ही बाहुल्य रहा। इस अवधि में एक अन्य उल्लेखनीय बात यह रही है कि यहाँ एक ओर तो स्वतन्त्र रूप से नीति काव्यों का प्रणयन हुआ एव दूसरी ओर कुछ एक प्रबन्ध काव्यकारों ने अपने प्रबन्ध काव्यों में प्रसगवश आयी नीति सम्बन्धी बातों पर काफी ध्यान दिया है। प्रथम प्रकार अर्थात् स्वतन्त्र रूप में नीति काव्य का प्रणयन करने वालों में मनरूपा के यालाल गठिया भीमराज भतीजे मागीलाल चतुर्वेदी चन्द्रशेखर व्यास, कन्हैयालाल दूगड आचार्य तुलसी मुनि दिनकर मुनि मिश्रीमल प्रभृति के नीति एव धर्मोपदेश सम्बन्धी काव्य सकलन उल्लेखनीय बन पडे है। दूसरी ओर रामकथा, मानखो शकुन्तला राधा एव महमयक जसे प्रबन्धकाव्यों में कतिपय सामयिक (किन्तु चिरकालिक) प्रश्नों पर गम्भीरतापूर्वक विचार हुआ है।

वर्ण्य विषय की दृष्टि से हम आधुनिक राजस्थानी नीतिकाव्य को मुख्यत तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—धार्मिक आचरण से सम्बन्धित सामान्य आचरण से सम्बन्धित एव सम सामयिक सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित। इन तीनों में भी प्रथम दो विषयों पर रचनाए अधिक लिखी गई हैं। धर्मिक आचरण से सम्बन्धित रचनाए अधिकांशत धर्माधिकारियों द्वारा रची गयी हैं जिनमें एक

---

१ वश्या निषेध रामलाल दुगारया मारवाडी अग्रवाल वर्ष ३ खड २ पृ० स० ४८२ आषाढ १९९१ वि०
२ चतुर चितामणि महाराज चतुरसिंह, आधुनिक राजस्थानी साहित्य पृ० स० ४३
३ दारू रो दोस ऊमरदान लालस ऊमर काव्य पृ० स० ३०२ (तृतीय संस्करण)
४ विभचार री बुराई ऊमरदान लालस वही पृ० स० ३०३

कुछ कहा गया होता है तो दूसरी ओर धन, यौवन स्वास्थ्य युद्ध शक्ति गुण अवगुण व्यापार भाग्य कृपि आदि नाना विषयों को लेकर देशकाल के संदर्भ में करणीय अकरणीय पर प्रकाश डाला जाता है। यहां भी बात को सीधे उपदेश रूप में और अन्योक्ति तथा सूक्ति शैली में प्रस्तुत किया जा सकता है। इस क्षेत्र में भी आधुनिक राजस्थानी नीतिकाव्यकारों ने अधिकांशतः परम्परानुभूत सत्यों और अनुभवों को ही अपने ढंग से दोहराया है यथा—

होनहार सो होय करम लिखयो ना टळै।
जो नर मूरख होय रूदन मचावै रमणिया॥
अस्थिर है संसार गरब न कीजे भूलकर।
ले ज्यासी जण च्यार, रथी बणा कर रमणिया॥[1]

इस प्रकार की रचनाओं का काव्य स्वर भी प्राचीनों से ही मिलता जुलता है अतः नवीनता के अभाव में इनका कोई असर पाठक के हृदय पर नहीं पड़ता। इसकी अपेक्षा जहां कहीं भी कवियों ने किंचित भी मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है या कि नूतन कल्पनाओं के सहारे परम्परा अनुभूत अनुभवों को ही प्रस्तुत किया है वे स्थल अधिक प्रभावी बन पड़े हैं—

क कारज ना करतो फिरे हर कोई हकनाक।
जारी ह्वै छीन करै छियो निपाको राख॥[2]
ख दीप सिखा सा नित जळे नारवधू की सेज।
पुप पतंगा सो पड़े, जळे धरम धन तेज॥[3]

कुल मिलाकर स्वतंत्र रूप में नीति काव्य का प्रणयन करने वालों में ऐसी रचनाओं की न्यूनता ही रही है। उनकी अपेक्षा तो प्रबन्धकाव्यकारों ने समयानुकूल सामयिक समस्याओं के सन्दर्भ में युग चिन्तन को वाणी देकर अपनी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है। मानखो और 'राधा' जैसे काव्यों में जहां युद्ध के औचित्य अनौचित्य को लेकर काफी कुछ विचार हुआ है वहां शकुंतला में नारी को प्रतिष्ठा के सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठापित करने का प्रयास कर कवि ने युग की मांग को ही वाणी दी है। राधा एवं मानखो का युद्ध विषयक चिन्तन पर्याप्त रूपेण प्रभावी एवं विचारोत्तेजक बन पड़ा है क्योंकि वहां बुद्धि चातुर्य के साथ साथ हृदय के भावावेग का संयोग भी हुआ है—

सुन रे प्रान कान्हा रे—
जग में ज मंडग्यो घमसाण तो
जमना में कोई रमी नीर
माटी रे जासी लागी बाटियां।
बस्ती में धावा रिसता सूर
लेला लगडा बण थनै भाडसी।

१ रमणिये के सोरठे श्री कन्हैयालाल मठिया
२ आधुनिक राजस्थानी साहित्य पृ० सं० ४४
३ मरुभारती, श्री मागलाल चतुर्वेदी पृ० सं० ४६

मरणघड र जासी सगळी भोम
ऊजड़ विरगी होसी कोटडिया।
क्यू मट रखवाळा रो नाव,
मुड़जा फौजा न पाछी मोड़ळ ।[1]

यहां बडे प्रभावशाली शब्दों म युद्ध क विरोध म आवाज बुलद की गई है पर इसक कवि ने न तो सीधे सीधे युद्ध की निंदा की है और न ही युद्ध क विरोध म भारी भरकम तर्कों का कोई अम्बार ही उपस्थित किया है।

नीति काव्य क प्रणयन म शैली की दृष्टि स सामान्यत उपदेश शैली, अन्योक्ति शैली एव सूक्ति शैली का उपयोग होता है। इनम उपदेश शैली काव्य की दृष्टि स निकृष्टतम प्रयोग माना जाता है। राजस्थानी के आधुनिक काल क अधिकाश नीतिकाव्यकारो न इसी शैली का ही उपयोग किया है। इस शैली म नीतिकार सीधे सादे शब्दों म उपदेशी स्वरो म अपनी बात रखता चलता है। यहाँ न कल्पना की नवीनता और रम्यता स नीतिकार को कोई मतलब होता है और न ही उक्ति वचित्र्य या कि अन्योक्ति के सहारे अपनी बात को आकर्षक बनाने की फुरसत ही उस होती है। फलत बहुत सा बार तो ऐसी उक्तियाँ सामान्य पद्य रचना स अधिक कुछ नहीं कही जा सकती हैं। वसे तो वर्ण्य विषय पर या अन्यत्र विचार करते समय इस शैली क कई उदाहरण प्रस्तुत विवेचन म आ चुके हैं फिर भी यहाँ एक उदाहरण देना असगत न होगा –

भली बात बणाय मान्य गमाव आपणो।
नजरा म गिरज्याय मगन भठ न बोलणो॥
आखर बरी जीत चाल मारग साचर।
मगल रवा नचीत भूठा राव हार ही।[2]

उपयुक्त उपदेश शैली की अपेक्षा अन्योक्ति काव्यतत्त्व की दृष्टि स अधिक सक्षम कहा जा सकता है। यहा नातिकार सीधे उपदेश दने पर न उतर कर अपनी बात को यथाशक्य मधुर बनाकर प्रस्तुत करता है। राजस्थानी के आधुनिक नीति का यकारो म बहुत कम स्थलो पर इस शैली का उपयोग देखन को मिलता है—

साभळ निमल नार तू भी जो कीचड बण।
काजळ काळो चोर चतन कुण उजळावसी॥[3]

यहा किसी सात्विक वत्ति मानव के तामस की ओर बढत चरणो को देख, कवि न अन्योक्ति के सहारे उसको सतक किया है। यहा कोई प्रसग विशेष इस सोरठे की पृष्ठभूमि म रहा है बस किसी सामान्य कथन के लिए अन्योक्ति का सहारा लेकर उस कथन को विशिष्ट बनाया जा सकता है—

पारस परस्यो लोह एक बार सोनो हुयो।
फेर न बणसी लोह कठक फेंको 'कानियाँ॥[4]

---

१ राधा सत्यप्रकाश जोशी पृ० स० ६८–६५
२ मू घा मोती भोमराज भबीरु, पृ०स० ६ प्र० का० १६४८ ई०
३ उभरते रग मुनि दिनकर पृ०स० २१
४ विचार बावनी कन्हैयालाल दूगड पृ०स०२

उक्त ग्रयोक्ति शली की अपेक्षा सूक्ति शली का उपयोग तो और भी कम हुआ है—

जळ स्यू भरियो माट, जळरे मांही डूबसी ।
ज्यू जळ हूसी घाट किरमे उठसी 'कानियां' ।।[1]

सूक्ति शली मे अधिकाशत उदाहरण दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास विशेषोक्ति आदि अलकारो का सहारा लेकर सामान्य बात को भी सुन्दर एव प्रभावपूर्ण बना दिया जाता है—

क नीचा जे ऊचा च*, तो कट कट मर ज्यायँ ।
ज्यो पतग आकाश म, लउकट गिर लुट ज्यायँ ।।[2]
ख आव तणो अस्तुल, गही म रुळतो फिर ।
विहु दिशि चाट धूळ, चेतन हळको मानवी ।।[3]

निष्कषत राजस्थानी के प्राचीन नीतिकाव्य की तुलना म राजस्थानी का आधुनिक नीतिकाव्य काफी अपुष्ट एव क्षीण रहा है । उसम न ता स्वानुभूत अनुभवा की ही सशक्त अभिव्यक्ति हुई है और न ही वह सामान्यत स्थूल उपदेश क माट दायर म ही बाहर निकल पाया है । परम्परानुभूत अनुभवों को साधारण रूप म प्रस्तुत करने वाला वतमानकालिन नीतिकाव्य एक अति साधारण घटना ही बनकर रह गया है ।

---

१ विचार बावनी पृ०म० ८

२ मरुभारती श्री मागीलाल चतुर्वेदी, पृ०स० १०७

३ उभरते रग मुनि दुलीचन्द 'दिनकर, पृ०स० २०

नयी कविता

राजस्थानी म नया कविता का प्रवेश हिन्दी म इस का यान्दोलन क स्थापित हो जाने के बाद ही सम्भव हो पाया। वैसे छुटपुट रूप स १९५५ ई० स ही राजस्थानी की पुरानी पीढी के कवि मुक्त छद का प्रयोग कर स्वय को इस काव्यान्दोलन क साथ जोडन की कोशिश करते रहे, किन्तु नयी कविता के मोड मिजाज मे अपरिचित एव पारम्परिक सस्कारा से गहरे तक जुडे हुए ये कवि नयी कविता के सही स्वरूप को नही पहिचान पाये। वस्तुत १९६५ ई० के बाद स जबकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की पीढी के युवा कवियो न राजस्थानी काव्य क्षेत्र मे—अपनी सुलभी हुई दृष्टि और सामयिक परिवतनो क सही स्वरूप को समझ सकन की क्षमता के साथ—प्रवेश किया तभी से राजस्थानी नयी कविता का प्रारम्भ समझना चाहिए।

इससे पूव की बुजुग पीढी के काव्य म व्यजित आधुनिकता सप्रयास आरोपित आधुनिकता सी प्रतीत होती है, फिर भी यह स्थिति उनके बदलाव के प्रति आकषण एव ललक का तो स्पष्ट करती ही है। बदलते जीवन मूल्यो के प्रति उस पीढी क सभी साहित्यकारा की स्थिति एक जसी नही रही है। उनम से अधिकाश की मन स्थिति इस बदलाव को समझने स्वीकारने के अनुकूल नही बन सकी फलत वे केवल एक अनुतप्ति खीझ लिए बदलन का पोज भर बनाते रहे हैं। श्री मूलचन्द प्राणेश की कविता 'वयू'[1] म इस श्रेणी क साहित्यकारो की झुझलाहट के स्वरा को स्पष्ट सुना जा सकता है। ऐसे साहित्यकारा की अपेक्षा कुछ अधिक प्रगतिशील एव समझदार कवियो न युग परिवतन की प्रबलता को देखते हुए कल्पना के हस की अपेक्षा यथाथ की कोचरी' का स्तवन श्रेयस्कर समझ स्वय को उसी बदले हुए रूप म प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया है किन्तु उनका यह परिवर्तित रूप अन्तर की समझ और भीतर की आवाज का परिणाम नही अपितु बदलत प्रवाह मे अपन पर स्थिर रखन की लालसा का परिणाम ही है। डा० मनोहर शर्मा की 'हस और कोचरी'[2] ऐसी मन स्थिति वाले कवियों की आत्म स्वीकारोक्ति का सबसे अच्छा उदाहरण कही जा सकती है। इन लोगो का मन तो अब भी कल्पनालोक की मधुर वीथिया मे खोया रहना चाहता है किन्तु बुद्धि बदलते हुए परिवेश को ध्यान म रखकर यही

---

१ वयू श्री मूलचन्द प्राणेश पृ० स० ६३ जनम भोम वष २ अक—२३

२ जनम भोम, वष २, अक २३ पृ० स० ८५

सलाह दनी है कि अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए इस नूतन परिवेश का स्वागत ही श्रेयस्कर होगा। कल्पना के हस के प्रति समर्पित होते हुए भी विवश होकर कवि का यह कहना पड़ा है—

कवि
कल्पना रो हस
मन भावतो है
तो यथाथ रो
कोचरी भी
कम रूपाळी कोनी।
हस र गीता साथ
अब कोचरी रा भी
गीत गावो।[1]

प्रस्तुत कविताश की इन अन्तिम तीन पक्तिया म इस वग के कविया की विवशता स्पष्टत व्यजित हो जाती है। उपयुक्त दोनो स्थितिया से भिन्न राजस्थानी के पुरानी पीढी के कवियो का एक वग ऐसा भी है जिन्होंने युग के इस परिवतन को इमानदारी से महसूसा और उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की दृष्टि से भावनात्मक स्तर पर स्वय को तयार किया है। श्री कन्हैयालाल सठिया एव श्री सत्यप्रकाश जोशी इस दृष्टि से उल्लखनीय रचनाकार हैं। इनकी रचनाओ म दृष्टि का यह बदलाव युग आग्रह की आन्तरिक समझ से मुखर हुआ है। श्री कन्हैयालाल सठिया का एक भाव बिम्ब सम्मुख है जिसम मौल्य-बोध की बदलती हुई दृष्टि स्पष्ट है—

पून री धीमी सास म सू
एक अचपळो वगूळियो जनम्यो
गुडाळिया चालयो भी
थकी कर नी
भचक ऊभो हुयर
घूमर घाली तो देमी क
घास पात घळ
जिकी ई चीज लपट म आई
वूकिया पकड र उठाइ अर
वूढ सूरज र आगण म वगाद।

उपयुक्त ववडर वनन की प्रक्रिया म एक विशिष्ट मन स्थिति का चुनाव बिम्ब को तराशत हुए निर्मित करता है। यहाँ सध्या के समय उठते ववडर का जा मानवीकरण किया गया है वह परिचित दृश्य को महसूसन की नितान्त नवीन दृष्टि का परिचायक है।'[2] श्री सठिया की तरह ही श्री सत्यप्रकाश

---

१ 'हस और कोचरी' जलमभोम वष–२ अक २–३, पृ० स० ८६
२ स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी काव्य की नयी प्रवृत्तिया श्री तजसिंह जोधा (लघु शोध प्रबन्ध) राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय जयपुर।

जोशी की 'जोधपुर एक नगरी' जसी कविताम्रा म उनकी कल्लनी सौन्दर्यबोध की दृष्टि को स्पष्ट देखा जा सकता है—

> सोळ बरसा री छोरी है
> हाल न भूगी छाती, भ्रा कव्वीजा कोरी,
> गूगी है ।
> अखबारा रा फाटयोडा पाना वाच
> दिनभर साव पान, कर्दई दारू पीव
> कोट कचेडी म भटक, सिमा रा पिक्चर देखे ।
> छोरी है —प्रेकाध बार जगर जाव है
> एक हार पाळी ही इण न ।
> ग्राधो हो वो हार, भायला पतर स्याळिया
> उण न हाग्य येड म उणरो मास सायग्या ।
> ग्रा सास्यू बीरा र बिचली बीरण बाइ ।[1]

इस प्रकार राजस्थानी म नवबोध की अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल धरातल के निर्माण का काय कई चरणो म मथर गति स सम्पादित हुआ और लगभग सन १९६५ ई० क पश्चात ही नवबोध के स्वर प्रमुख रूप से उभरने लग हैं ।[2] यद्यपि पारम्परिक शली म काव्य रचना करने वाले कवियों का सख्या ग्रब भी कम नही हुई । गत तीन चार वर्षों म प्रकाशित हुए ओळमा, 'मरवाण' और 'जलमभोम' के काव्य विशेषाको स यह स्पष्ट हो जाता है कि परम्परावादी काव्य रुझान ग्रब भी किसी किस्र राजस्थानी मानस पर हावी है वसे इन विशेषाको म स्वय की ऊर्जा स गतिशील बनी "नयी कविता की शक्ति-परिचायक कतिपय रचनाए भी प्रकाशित हुई हैं पर राजस्थानी प्रेम म ही प्रथम बार राजस्थाना नवबोध क स्वर अपने पूर वेग के साथ उद्घोषित हुए हैं । यद्यपि उसम भी दो एक कवियो म कही कही प्रयोग की रुझान एव चमत्कृत करने की प्रवृत्ति विशेष रूप स मुखरित हो उठी है ।

इस प्रकार राजस्थानी ग्रेक म नवबोध को जो स्वर मिले हैं, वह यकायक सभव नही हुआ है अपितु उसके लिए राजस्थानी साहित्यकारो को वर्षो तक धरातल तलाशते रहना पडा है । नवीन और प्राचीन के बीच झूलत राजस्थानी साहित्यकार को केवल नवीनता के मोह म 'छन्द तोडने' से लकर युग

---

१ जोधपुर एक नगरी श्री सत्यप्रकाश जोशी जाणकारी, पृ० स० ७ सितम्बर अक्टूबर १९६८ ई०

२ १९६५ ई० से पूव की राजस्थानी नयी कविता के सम्बन्ध म श्री तेजसिंह जोधा का यह कथन सत्य के बहुत अधिक निकट प्रतीत होता है—'सन १९६५ ताई मुक्त छन्द और छद मे लिखयोडी सगळी कवितावा कथ री निजरसू है जीया ई परोगे री अधबूढी सामाजिक चेतणा रे ग्रड छेड रची ग्रर कथी जर्यों मैं भी मुमाणस् बोनणी ज्यू चालती ग्राइ मा यतावा, धारणावा ग्रौर ग्रादरसारी बुगी-वडेरी डोरिया र पगा लागणरी बाण ग्रर लीक ग्रापर माथ ठौड री ठौड राखी ।'

राजस्थानी ग्रेक स० तेजसिंह जोधा, पृ० स० १७

की पुकार एव 'आतरिक समझ से प्रेरित हो कर मुक्त छद के प्रयोग के बीच अनेक पापड बेलने पडे हैं। जहाँ तक पारम्परिक छन्दो स विद्रोह कर मुक्त छद को स्वीकारने का प्रश्न है इस दृष्टि से राजस्थानी म प्रथम प्रयोग[1] श्री नानूराम सस्कर्ता ने अपने 'समय-वायरो' म किया है। कवि ने स्वय प्रस्तुत कृति की गाथा' म लिखा है कि—"म्हे राजस्थान र विद्यार्थी बालका रा हिडदा करडा एव ऊजळा बणावण वास्ते प्रगतिवादी तथा स्वछन्द छदा न मातृभासा राजस्थानी म ल्यावण रा पूरा पूरा प्रयत्न कियो है। [2] मुक्त छद क प्रयोग के अतिरिक्त भी 'समय वायरो' की दो एक विशेषताएँ एसी हैं जो कि नयी कविता से एक सीमा तक साम्य रखती हैं। प्रथम है, उसम प्रयुक्त दैनदिन व्यवहार की जनसाधारण की भाषा एव उस भाषा क गद्य के निकट पहुँचान की स्थिति एव द्वितीय उसकी अधिकाश कविताओं चित्रित हुआ बदलती हुइ स्थिति का यथार्थ अकन। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात राजा महाराजाओं के जीवन म आया यह परिवर्तन द्रष्टव्य है—

इसा महीपत
मा-बाप दुनिया रा बाज्या
आज ब ही
हरिजना सू
समान हाथ मिलाव
डोकरी साध चू स्या
उडग्या भीठोरा
वायरो बाज।[3]

किन्तु इतना सब कुछ होने हुए भी हम इस कृति का नयी कविता क रूप मे अगीकार नहीं कर सकत, क्योकि इसम सगहीत अधिकांश कविताओं की स्थूल अभिव्यक्ति एव उपदेशवृत्ति उन्ह साधारण नीति काव्य स अधिक कुछ नहीं बनने देती है।

'समय वायरो' क पश्चात तो राजस्थानी काव्य जगत म मुक्त छन्द के प्रयोग का एक **फैशन** सा हो चल निकला। गलबाज मचाय कवियो स लकर पद्यकथा लेखकों न समान रूप स इस अगीकार किया, शायद आधुनिक कहलाने का लालच स। मुक्त छन्द क इस चलन न केवल मुक्तक काव्य प्रणेताओं को ही आकर्षित नहीं किया अपितु प्रबन्धकारो की दृष्टि को टाकने म भी वह सफल हुआ। सव प्रथम 'रामदूत' म कवि न प्रारभ क दो एक पृष्ठो तक इसका साथ कदम बढाये किन्तु

---

१ श्री नारायण सिंह भाटी क 'दुर्गादास' को उस कृति क भूमिका लखका श्री विजयदान देथा एव कोमल कोठारी न राजस्थानी म मुक्त छन्द की प्रथम कृति माना है। (वह मुक्त छद म लिखी हुइ पहली काव्य कृति है। भूमिका दुर्गादास, पृ० स० २१) इसी आधार पर श्री तेजसिंह जोधा न भी इसे राजस्थानी मुक्त छद की प्रथम कृति माना है। (राजस्थानी काव्य म मुक्त छद का प्रामाणिक प्रारभ डा० नारायणसिंह भाटी की काव्य कृति 'दुर्गादास' से होता है।) किन्तु यह बात सही नहीं है क्योकि 'दुर्गादास' का प्रकाशन फरवरी १९५६ म हुआ है जबकि 'समय वायरो' का प्रकाशन काल वि० स० २००९ ई० सन १९५३ है।

२ गाथा नानूराम सस्कर्ता समय वायरो प्र० का०-होली स० २००९

३ समय वायरो श्री नानूराम सस्कर्ता पृ० स० ३-४

परम्परा प्रिय कवि के लिए अंत तक उसके साथ निर्वाह करना संभव नहीं था अत उसने आगे के सर्गों में इसका साथ छोड़कर प्राचीन छंदों से ही मैत्री स्थापित कर ली। इस दृष्टि में 'राधा' के कवि श्री सत्यप्रकाश जोशी ने अधिक प्रगतिशीलता का परिचय दिया। 'राधा' में आद्यान्त मुक्त छंद का ही प्रयोग नहीं हुआ है अपितु भाषा को नया अर्थ देने और उसे पारम्परिक प्रयोगों से मुक्त रखने का प्रयास भी कवि ने किया है। शब्दों को नवीन और सार्थक अर्थ देने की प्रक्रिया में कवि ने मुलम्मा छूटे शब्दों का भी चमत्कृत कर देने वाला रूप सौंदर्य प्रदान किया है। अवोट पुणचो 'हेजली जामण, अडाळी प्रीत कोडीला हाथ' आदि ऐसे ही शब्द प्रयोग है।

राधा' के बाद के प्रबंध काव्यों में मुक्त छंद के प्रयोग की प्रवृत्ति महज आधुनिक कहलाने की ललक से ही कहीं कहीं स्वीकृत हुई है अन्यथा अधिकांश में तो कवियों ने पुरातन लीक पर चलना ही अधिक पसन्द किया है। शकुंतला के ओळमा' सर्ग में हुआ मुक्त छन्द का प्रयोग एवं दुर्गादास तथा हाडी राणी में मुक्त छंद को स्वीकृति अन्तानक की माग एवं कवि की आंतरिक आवश्यकता की प्रेरणा से नहीं मिली है। इन कृतियों में इसके प्रयोग का कौतूहल ही प्रमुख कारण कहा जा सकता है।

इस प्रकार समय–बायरो से लेकर पिरोळ में कुत्ती ब्याई तक में हुआ मुक्त छन्द का प्रयोग और उनमें यत्र-तत्र उभरा छद्मवेशी आधुनिकता बोध महज समय के साथ पिछड़ जाने की अपनी विवशता को छिपाने की छटपटाहट भर कहा जा सकता है जिन परिस्थितियों के कारण आज की कविता में बदलाव आया है उन बदली हुई परिस्थितियों के मानव मन की आंतरिक अकुलाहट का अंकन करने में ये रचनाएं समर्थ नहीं कही जा सकती क्योंकि इन कवियों की चेतना धरातल मध्ययुगीन चेतना में अधिक भिन्न नहीं रहा है। जीवन का अतीत आसक्ति से मुक्त होकर देखने समझने की दृष्टि का विकास इनमें से किसी में भी नहीं दीख पड़ता है और न ही इनमें से कोई भी कवि आधुनिक जीवन के प्रति पूर्वाग्रही तुच्छता के भाव से मुक्ति का साहस ही सजा पाया है। इस श्रेणी के कवियों में श्री अन्नाराम सुदामा की पिरोळ में कुत्ती ब्याई एक ऐसी कृति है जिसे कतिपय आलोचक राजस्थानी नयी कविता की एक सशक्त उपलब्धि मानते है अतः यहां उस पर थोड़ा विस्तार से विचार आवश्यक हो जाता है।

श्री 'सुदामा' की प्रस्तुत कृति में वर्तमान जीवन की असंगतियों पर करारा व्यंग्य प्रहार, आज के महानगरीय जीवन की विकृतियों का नग्न अंकन एवं मानव मन की विवशताओं के चित्रण के साथ ही साथ वर्तमान जीवन के फरेबों और पाखण्डों का भी अच्छा पर्दाफाश हुआ है। इसके साथ ही साथ भाषा की दृष्टि से भी नवीन उपमानों का प्रयोग और नये मुहावरों की तलाश के लिए कवि की उत्कण्ठा भी इस कृति को नयी कविता की दहलीज पर ला खड़ा करती है किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी हम इसे राजस्थानी नये दौर की प्रतिनिधि रचना नहीं कह सकते और न ही इसे वर्तमान जीवन की सही अभिव्यक्ति देने वाली रचना ही माना जा सकता है क्योंकि कवि का ईश्वर में दृढ़ विश्वास प्राचीन के प्रति गहरी आसक्ति ग्राम्य जीवन का दर्शन का अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है? की द्विवेदी युगीन यथार्थहीन भावुकतापूर्ण दृष्टि आधुनिकता को केवल फैशन का पर्याय समझ लेने की संकुचित मनोवृत्ति और इन सबसे बढ़कर वर्तमान जीवन के प्रति उसका असहानुभूतिपूर्ण रवैया उसे युग से काफी पिछड़ा हुआ और कुछ मात्रा में प्रतिगामी विचारों का पोषक घोषित कर देते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक जीवन की जिन विडम्बनाओं एवं आज के भ्रष्ट, पतित भारतीय समाज का जो यथार्थ चित्रण उसमें हुआ है उसके पीछे अतीत

की अपेक्षा वतमान और ग्राम्यजीवन की अपेक्षा शहरी जीवन को हीन सिद्ध करने की भावना प्रबल रही है यही कारण है कि श्री सुदामा का काव्य आम आदमी की विवशता की कहानी नहीं बन सका है। इसी कारण कवि की दृष्टि वतमान जीवन म आते हुए बदलाव टूटते हुए सम्बन्धो, निरन्तर निरथक होते जाते रिश्तो और दिन-दिन स्वकेन्द्रित होते जा रहे मानव के अन्तर की अकुलाहट के चित्रण म सफल नहीं हुई है। इसके अतिरिक्त अभिव्यक्ति के स्तर पर वणनात्मक शैली एव इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता भी उस द्विवदीयुगीन कवि के सस्कारो म जाने रखती है। वस्तुत श्री सुदामा का चितन एक ऐसे सस्कारवान आस्थावादी एव आदशवादी मन चेता का चितन है जो अतीत की उपलब्धियो स अभिभूत है और उसी के परिपाश्व म खडे होकर वतमान को देखन को विवश है। उनकी आकाक्षा[1] और 'स्टण्डड री ममता'[2] नामक कविताओं म अकित ग्राम्यजीवन का चित्र इस कथन की पुष्टि करता है—

थोडा दिन पला
हू गाव म रतो
गाव फूठरो
दो पाम धोरा सू घणा घिर्‌योडो
आछा ऊजळ निरमळ धोरा
कुदरत र सिंघासण सा
फोग जिका पर हर्‌या-भर्‌या
साधक री सुरता सा
मीठे मनरी ममता सा
निष्कामी री सेवा सा[3]

इसके अतिरिक्त भी जिन जिन विशेषणो स गाव का स्तवन इनम हुआ है वह कवि की ग्राम्य ममता और उसके चिन्तन धरातल का स्पष्टत द्योतित करता है।

इस प्रकार समय बायरो स चली मुक्त छन्द की यह गाडी पिरोळ म कुत्तो ब्याइ' तक पहुच कर भी नयी कविता की सही राह को नहीं पकड पायी। वस्तुत तो 'राजस्थानी अेक' ही राजस्थानी का वह प्रथम कविता सकलन है जिसन राजस्थानी नयी कविता को अपन प्रकृत एव सशक्त रूप म प्रस्तुत किया है। यहाँ आकर राजस्थानी कवियो के जीवन के प्रति बदलते नजरिये को साफ साफ देखा जा सकता है। साथ ही सौन्दयबोध की दृष्टि म जो एक बदलाव राजस्थानी कविता म आया है वह भी यहाँ स्पष्ट दृष्टिगत होता है। कविता अब रोमास एव भावुकता की वस्तु न रहकर जीवन का अभिन्न अग बन गयी है और हृदय की अपेक्षा बुद्धि से उसका सम्बन्ध अधिक निकट का हो गया है। नये कवि का जिन्दगी को देखन, निरखन परखन का दृष्टिकोण सवथा बदल गया है। आज के यथाथ जीवन की कटुताएँ कुछ इस कदर नग्न होकर कवि के सम्मुख आती है कि उनका जिन्दगी के प्रति सारा रोमाटिक

१ पिरोळ म कुत्तो ब्याई पृ० स० २६ प्रकाशन काल-१६६६ ई०
२ वही पृ० स० ८८
३ आकाक्षा श्री सुदामा', वही पृ० स० २६

खयाल हवा हो गया है । कवि पारस अरोड़ा को आज के व्यक्ति की जिन्दगी पपरवट म बद रग गध गन्धहीन पुष्प की भांति सारहीन प्रतीत होता है—

> काच रे 'पपरवट' म ब न
> बिणी रग पुसप री भांति
> अक पारदरसी बद म
> बाट उडीकती जिदगानी ।
> जिएन आजादी पाछळा
> चारा भूडा
> सगळा बदळावा ने
> फगत दखण री अधिकार
> दूजा अधिकारा माथ
> दूजा रो अधिकारी बसाव
> टस सू मस हुवण जिसी
> उएन राखी नी ।[1]

यहाँ वतमान जीवन का विवशता की जो बात कही गयी है वह सत्य है, तभी तो श्री कृष्ण गोपाल शर्मा का 'जीवण एक विरथा गुमान[2] प्रतीत होता है और श्री हरमन चौहान को भी जीवन का साथकता एक जली हुई सिगरेट स अधिक प्रतीत नहीं होती—

> आवो अब आपा
> गिटवा नरम हुयोडी
> चाय री घूट—जिदगानी ।
> जळावा—सरम मिटयोडा
> सिगरेट री फूक जिन्दगानी ।
> भुलावा भरम पड्योडी
> पान री थूक—जिदगानी ।[3]

यह बात अलग है कि श्री हरमन चौहान को जिन्दगी की निरथकता का यह आत्म ज्ञान नरेश का जिदगी के कारण ही हुआ है—

> जिंदगी
> दो उगलियों म दबी
> सस्ती सिगरेट के जलते टुकडे की तरह
> जिसे कुछ कमहो म पीकर
> नाली म फेंक दूगा ।[4]

---

१ चिर विद्रोह श्री पारस अरोड़ा राजस्थानी-अक, पृ० स० ४४, प्र० का० १९७१
२ ओळमो पृ० स०२८ मई १९६७
३ आ जिंदगानी श्री हरमन चौहान आज रा कवि स० रावत सारस्वत एव वेद व्यास, पृ० स० ६४, प्रकाशन काल-१९६८ ई०
४ नरेश—नकेन के प्रपद्य पृ० स०१०६

जिंदगी की इस निरथक्ता ने और सम्बन्धो की व्यथता के अहसास ने ही कवि डा० गोवधनसिंह शेखावत को यह लिखने को विवश कर दिया है—

> छाजा सू लटकियोडी उदासी
> आस्थाहीण भीत सू घुटयोडी सासा री
> अथहीण जिंदगी । बगत
> रे लवे हेट मिसके
> आपसी समध
> कई वोमा चाल्योडा ।
> हारयोडा पगा री थकान मा लाग ।[1]

इस प्रकार जिन्दगी की निरथक्ता का अहसास आज के हर नय कवि को होता है और वह अपनी रचनाओं म उसकी घोषणा भी करना चाहता है परन्तु यहा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आखिर जीवन के प्रति यह निरथक्ता बोध क्या ? और जब हम इस क्या पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि यात्रिक सभ्यता की जटिलता, बढते हुए जीवन सघष और प्रचलित रूढ सामाजिक परिपाटियो के कारण व्यक्ति इतना अधिक विवश हो उठा है कि वह इन सबसे घबरा कर एकदम मुक्त होना चाहता है किन्तु वतमान व्यवस्था के रहते यह सभव नही है और न ही उसकी इतनी सामथ्य ही है कि वह अपन चारो ओर फल परिस्थितियो के इस जाल को तोड सके, फलत एक विवश छटपटाहट के अहसास को भोगते रहना ही उसकी नियति बन गया है। श्री पारस अरोडा की थिर विद्रोह[2] और म्हारी मुळक बारी वेदनी[3] श्री गोवधनसिंह शेखावत की अन्भुत छिए[4] एव 'मुरझायोडो पल[5] आदि कविताओ म इस छटपटाहट के स्वरो का स्पष्टत सुना जा सकता है।

जिन्दगी को निरखने परखने का यह बदला हुआ नजरिया वस्तुत हमारे दनन्दिन, जीवन मे आये बदलावा का ही तो परिणाम है। आजादी के बाद के गत २६ वर्षों म ग्राम भारतीय के जीवन म एसे महत्वपूण परिवतन आय हैं, जि ह वह महसूसता तो है किन्तु उसके कारणा को समझने मे असमथ है। बदली हुई भावभूमि के अनुकूल उसका (विशेषरूप म वर्षों सामन्ती व्यवस्था की ढर्रे की जिन्दगी जीन वाले राजस्थानी का) कोई तालमल नही बठता ह और वह बौद्धिक स्तर पर परिवतन की इस गणित को न समझ पात हुए भी अनुभूति के स्तर पर यह महसूसता रहता है कि कही कुछ हो गया है कही कुछ हो रहा है। इस कही कुछ हो गया है' की स्थिति का ग्राम्यजीवन क सन्दभ मे श्री तेजसिंह जोधा का कठ की हैगो है' कविता म बडा सटीक अकन हुआ है। अपनी इस लम्बी कविता म श्री जोधा

---

१ रग बदरग डा० गोवधन शर्मा, राजस्थानी-ग्रेव पृ० स० २८ १९७१
२ वही पृ० स० ४४
३ वही, पृ० स० ४६
४ वही, पृ० स० २७
५, वही, पृ० स० ३६

ने परिवतन की उन न समझ ग्राने वाली तमाम स्थितियो को परिवतन की प्रक्रिया से गुजरते हुए महसूसा एव ग्रभिव्यक्ति प्रदान की है—

ई गाव म कठई की ह्वगो है
ह्वगो है

लाग ईया
क जाएं चौमासे री ग्राड् दोफारी
गट रे पीपळ मूतीं
तळ पडिया बूढिया रे
डील म ग् निसरी
यड' र ऊडी ऊडी
घासी राम निसरगो —
ठाकरा ने साच है
कोन्डी रे मु डागे सू
जातोडे वगत
उगाटे माथे तिसर्‌यो
स्यापो बिसरगो[1]

बस ता सरसरी तौर पर दखने से यही प्रतीत होता है कि गाँव का जोवन ग्राज भी उसी रफ्तार स चला जा रहा है जिस रफ्तार से वह वर्षो से चला ग्रा रहा है—

क चूकली रो ग्राई साल मात ग्रावणो
घर बास ग्राळ ग्राधे घीस्य रो
राम राम करता मागवा ग्रावणों
दोनू बीया रा बीया है
बीयाई है—घीस्य मू जुडयोडी
दूधिया दाता रो ग्रनुप्रासी रिगळ।[2]

किंतु नही वस्तुत ऐसा नही है। गाव ग्राज उस ढर्रे की जिन्दगी को नही जी रहा है। उसम बहुत कुछ परिवतन हो गया है, *मसलन कि उसे सिपाही को थाणेदार कहने की समझ (चालाकी)* का ग्राना, जेर्सिह का कनल बनने के पश्चात सभी नाते रिश्तो का समाप्त होकर मात्र कनल रह जाना (ग्रब वह किसी क कुछ नही लगता है—लगता है तो मात्र कनल ग्रौर शायद ग्रपनी पत्नी क भी) ग्रौर गुम हो जाना गाव की उन परिचित ढारियो का जिनके ग्रल्हड यौवन की छाप ग्राज भी बूढे मस्तिष्को पर है ग्रौर जो गाव म हर किसी प्रस्थान पर रो दिया करती थी—

ई गाव म कठई को ह्हैगो है
ह्हैगो है

---

1 कठई कीं ह्हैगो है श्री तेजसिंह जाधा
लहर स० प्रकाश जन मन मोहिनी पृ० स० १२ वष १४, ग्रक ३

2 वही पृ० स० १४

हाल वा छोरी नी दीसी
जकी किण र भी गाव छाड र जावता
रो ?या करती
अर वा वा छोरी भी नी
जकी गाव रे जोबन नै
काकड म
मिया—मिया सवन्ा मू नी
वा गरणा र लार सुवयोनी
उनावळी हाथ सू अरथ दिया करती[1]

यहाँ इन खोयी नडकिया के माध्यम से दिना दिन गावा से लुप्त होते जा रहे अपनत्व एव ममत्व के भावा और समाप्त होने जा रहे गाव के अल्हड यौवन की ओर सकेत हुआ है। इसी प्रकार इस पूरी कविता म अनेक स्थला पर बिम्बा एव प्रतीका के सहारे गाव म आये परिवतनो को अकित करने का प्रयास किया गया है। गाव की इन बदलती हुई परिस्थितिया को अभिव्यक्ति प्रदान करने म जहाँ श्री जोशी न बिम्बो एव प्रतीको का सहारा लिया है, वहा श्री गोवधनसिंह शेखावत ने सीधे-सीधे उन परिवतना को हमारे सम्मुख ला उपस्थित किया है—

मन्दिर मे जूओ। भगी न मत छूआ
राजनीति सू सूत्योडा
बूढो गाव
ओ गाव म्हारो है
चारी कर पचायत रो चपरासी
जवा भर सरपच
सिरकारी पीसा सू
अर लोगा र साम झूठी बात बणाव
मंदिर र पिछवाड रोज पुजारी
भगणा सू आख लडाव
ओ गाव म्हारो है
फूट सू फूटयोडो नेता सू बिदकयोडो
अर ठाली चूली बाता सू भरियोडो।[2]

ग्राम्य जीवन म तेजी से आ रह इस बदलाव को अय नये कविया ने अपने ढग स महसूसा है। श्री नन्दलाल शर्मा की गाव अर हू[3] एव श्री रामस्वरूप 'परेश की 'एक मादो गाव अर मैं'[4] आदि कविताएँ इस दृष्टि स द्रष्टव्य हैं। यहा यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राजस्थानी के नये कविया

---

१ लहर पृ० स० २४ वष १४ अक—३
२ गाव डा० गोवधनसिंह शेखावत राजस्थानी ग्रेक, पृ० स० ३३
३ गाव अर हू श्री नन्दलाल शर्मा हरावळ पृ० स० २० २१, माच १९७१ ई०
४ एक मादो गाव अर मैं श्री रामस्वरूप परेश जनमभोम पृ० स० ७४, वष २ अक २ ३

ने महानगरीय जीवन की विडम्बनाओं के चित्रण की अपेक्षा ग्राम्य जीवन के सम्बन्धों को अंकित करने में विशेष रुचि दिखाई है और यह एक दृष्टि से ठीक भी है, क्योंकि राजस्थान की वर्तमान स्थिति को देखते हुए महानगरीय जीवन की अभिव्यक्ति का प्रश्न अस्वाभाविक होता, किन्तु केवल स्थानीय एवं क्षेत्रीय जीवन के व्याख्याता एवं प्रस्तोता के रूप में कवि को देखना कवि के साथ अन्याय होगा। विश्व में घटित होने वाली उन समस्त घटनाओं से विश्व के किसी भी भाग का भावनाशील कवि समान रूप से प्रभावित होता है जिनकी चोट सीधी मानवता पर होती है। वियतनाम युद्ध वर्तमान समय में मानवता को चुनौती देने वाली एक ऐसी ही भयंकर समस्या था। विश्व के प्रबुद्ध जन मानस की तरह राजस्थान का चिन्तनशील साहित्यकार भी इस व्यथा के नरसंहार से व्यथित था। इस सन्दर्भ में कवि भूपतिराम साकरिया की यह मौन व्यथा छिप नहीं सकेगी—

आज सवारए मीठा ऊंघ में
राजा करण री वेळा में
जद घटाघर री घड़ी
पांच रा टकोरा बजाया
म्हने उणां जगायो
। कयो "
थांरो बेटो जग में मरग्यो
अमरीकियां सूं लड़तो वियटनाम में
वीर री मौत
मूवग्यो
" " होई बगीचा में
गुलाब गुळकता हा
मोगरा महकता हा
कलियां हसती ही
न सॅग धरती मोतियां सूं सूं भालू व ही
तोई म्हू विचार सकूं हूं
सूंघ सकूं हूं
खायणो पीवणो सॅग कर सकूं हूं
अत्याचारां सूं दब्योड़ो
म्हारो मूंढो बन्द व्यूं है।
अजरज म्हू जीवतो हूं।[1]

इस प्रकार मानवता के अस्तित्व में आगे प्रश्न चिह्न लगाने वाली इन घटनाओं से विश्व के सभी प्रबुद्ध जन समान रूप से सन्त्रस्त हैं।

राजस्थान का जागरूक कवि भी समय समय पर विश्व मानवता को आलोडित करने वाली ऐसी घटनाओं पर अपनी व्यथा व्यक्त करने में अब पीछे नहीं रह रहा है। बंगला देश के ताजा नरसंहार

१ म्हू जीवतो हूं श्री भूपतिराम साकरिया मधुमती, फरवरी १९६८

की घटना न केवल भारत को ही व्यथित किय हुए है अपितु सपूर्ण मानवता इस पीडा स कराह रही है और उसकी प्रतिध्वनि विश्व भाषाग्रा के सामयिक काव्य रचनाग्रा म बराबर सुनने को मिल रही है। राजस्थानी कवि भी इस ओर सजग हैं। श्री प्रकाश परिमल की 'पद्मा रो घायल च रो इस बात का प्रमाण है—

लोक कवे
पद्मा रे किनारे
दिन्नू गे सिभा
लाल-सूरज ऊग
उथळो मिल
लाखा करोडा
निरदोस लाका र
रगत सू राती
आ पद्मा
दोनू रूम
सूरज र दरपण मे
आपरो घायल च 'रो
दख [1]

आज की नयी कविता म सत्रास, कुण्ठा मृत्यु बोध अजनबीपन एव एकाकीपन के अहसास तथा क्षणा म बँटे, कटे एव भोग जा रह जीवन का अभिव्यक्ति समान रूप स मिलती है। यद्यपि राजस्थानी म इन सब स्थितियो का व्यापक चित्रण ता नहा हुआ है फिर भी ओंकार पारीक मणि मधुकर, गोवधनसिह शेखावत, रामस्वरूप परेश ओमप्रकाश भाटी तजसिह जाधा कृष्णगापाल शर्मा जम कवियो न समय समय पर इन भोगी हुई स्थितियो का अभि यक्ति प्रदान की है। श्री ओमप्रकाश भाटी की विवशता की यह कहानी सन्नाट म गू ज रही है—

सन्नाट रो कडवास
घू ट घू ट पा लीदो
बरग कागद पीना रो
कुण दिन ना लीनो
रीढ री हड्डी पै दरद रा भाठा
सासा र हिसाब म पडता रया घाटा
अमर रो एक आर
आखो दिन जी लीदो
धडकन रे दरवाजे यादा रो हाकरा
मन रा गल गल काटा अर काकरा

---

१ राजस्थान भारती जून १९७१ पृ० स० ५५

'हाइकू' रहा है पर क्षणिक अहसासो एव अनुभूतियो को—जो आज के लघु मानव के जीवन की सच्चाई है—अभिव्यक्ति देने म ये क्षणिकाए ही सबसे उपयुक्त विधा प्रतीत हुई है। जसा कि इनका नाम है, लगभग वैसा ही उनका स्वभाव है। य क्षणिक अनुभूतिया पाठक का एक बार तो अवश्य चमत्कृत एव आकर्षित करती है किन्तु अपना कोई गहरा प्रभाव उन पर छोड नही पाती। हा, किसी मजेदार चुटकले या किसी रोचक नवीन परिभाषा की तरह ही कोई-कोई ऐसी क्षणिक अनुभूति अवश्य ही पाठक के मन का खूब भा जाती है और वह जब तब उस स्मरण हो आती है। इस प्रकार क्षणो म जीये जा रहे जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करने का इनका यह वशिष्टय ही इनकी सीमा बन जाता है। कोई गूढ भाव या विचार या कोई गभीर मन स्थिति इनके पीछे न होने के कारण य कार्योचित गाम्भीय को धारण करने म असमय रहती हैं। वस्तुत इनके लेखन के पीछे पाठक को एकदम चमत्कृत कर देने की मनोवृत्ति प्रमुख रहती है, अत गाम्भीय एव स्थायी प्रभाव की अपेक्षा इनम नही की जा सकती। कवि की यह मनोवत्ति कभी-कभी जीवन की एक रसता ता भग करती है पर जब कोई सप्रयास इनके पीछे पड जाता है तब पुनरावृत्ति एव तदजन्य ऊब आय बिना नही रहती। डा० शेखावत की मिनी कविताओ म कई स्थानो पर ऐसा हुआ है, विशेप रूप से वहा, जहाँ व परिभाषा करन लगत है—

क गरीबी
घुटयोडी सासा सू
कळपतो मुसाए[1]

ख अळसाया
चिलकत भरम रा कागरा
उतरगो
रिस्ता-नाता रो कडप

वम नय सन्दभो म पुरानी वस्तु की नई परिभाषा भी कोई गलत बात नही है और जहा यह परिभाषा बदले हुए परिवेश म बहुत अधिक सटीक प्रतीत होती है वहा वह अथशास्त्रियो की परिभाषा की तरह नीरस नही रह जाती है, यथा—

राजनीति
सरग्राम
लोगा र मुडा आग
इमान री अरथी न
खुद्र पर उठाय'र भागती टोळी
अर गील अ घरे माय
खोज सू घती जनता भोळी[2]

---

१ गरीबी, किरकर डा० गोरधन सिंह शेखावत, पृ० स० २२ प्रकाशन काल १९७१ ई०
२ राजनीति, किरकर पृ० स० १६

यहाँ वतमान परिस्थितियो म भारतीय राजनीति का बहुत ही कम शब्दो म किन्तु सटीक ग्र कन हुग्रा है। इसी प्रकार सायाम लिखी हुई पक्तियो की ग्रपेक्षा व स्थल ग्रधिक प्रभावी बन पड़े है, जहा ग्रनुभूतियाँ सहज रूप म ग्रभि यक्त हुई हैं—

ग्रोळयू
थारी ग्रोळयू
धीमे धीमे
हालत पाणी म
लाबी पतळी तिरती
सावळी छीया

यहा प्रियतमा की स्मृति का ग्रस्थिर जल म थिरकती लम्बी, पतली श्यामल छाया स जो उपमित किया गया है वह बहुत ही सुदर बन पडा है।

ऊपर नयी कविता स सम्बधित उन स्थितियो पर विचार हुग्रा है, जिनम थके हुए मानव की निराशा को विशेष स्वर मिला है किन्तु नयी कविता का दशन पलायनवादी दशन नही है जिसम कि जीवन के पराभूत स्वरूप का ही ग्रभिव्यक्ति मिली हो। नय कवि ने मानव मन क ग्रास्थावादी दृष्टिकोण एव उज्जवल पक्ष को भी बडे उल्लास के साथ ग्रभिव्यक्त किया है। सव श्री पारस ग्ररोडा हरमन चौहान ग्रोकार पारीक प्रभृति कवियो की रचनाग्रो म यत्र-तत्र इन ग्राशावादी स्वरो की ग्रनुगूज सुनाई पड जाती है। परिस्थितियो के साथ साजिश कर मानवता क साथ क्रूरता का खेल खलने वाले *समाज के तथा कथित कणधार हर हथकण्डे को काम म लेकर भी कवि क विश्वास को नही तोड पाय* हैं। इतना सब कुछ भलन के बाद भी कवि क चेहर की मुस्कान लुप्त नही होती है—

इत्ती कुटाइ हुया पछ ई
म्हारा चरा माथली
मुळक लोप हुव कोनी
(मुळक री सारास
बार पल्ल पड कोनी)
ग्राख्या रो पीळियो फाट र
प्रगट ग्रगन-ललाई
जिग्गन दख र
बारा दिन तो काई रात ई
कट कोनी।[1]

ऊपर नयी कविता क सदभ म सौदय बोध के बदलत दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला जा चुका है। दृष्टि का यह बदलाव उसक ग्रभि यक्ति पक्ष म भी ग्राया है। डा० गावधन शेखावत की 'प्रीत' कविता इस दृष्टि से द्रष्टव्य है—

---

१ म्हारी मुळक वारी वचनी श्री पारस ग्ररोडा राजस्थानी-ग्रक पृ० स० ४८,

फागण र रात री
उणींदी चानणी सी
कु वारा होठा री
अणबुझी तिरस सी
गीत र माय
हवाळा खावती
गळगळी पीड सी
रूपाळी देह माथ
जोवन री चढती पाण सी

वरफ सू ठारियोडी रात मे
निवायो परस सो[1]

यहाँ 'प्रीत' को जिन अछूते भावों के माध्यम से वाणी प्रदान की गयी है वही उसके नये निखरे रूप का रहस्य है। दूर परदेश गये नायक की 'याद' नायिका को अब भी आती है पर क्यो, यह पूछिये श्री मणि मधुकर से—

भखारिया रीती
भींत लेवडा चिगळै
तवो बतळावण करणी चावै
चकळो पडूतर नी दे
ऊखळी मे एक दत
हड हड हास
डागळ डाकण
फाका भर
निस्कारा न्हाकती
घर री धिराणी
मन माँई कळाप कर
आलीजा आज्यो घरा
क धान बिन भूखा मरा [2]

यहाँ परदेश गये प्रियतम का स्मरण नायिका करती तो है किन्तु इसलिए नहीं कि वह उसके विरह से व्यथित है अपितु गृह-स्वामी तो इसलिए याद हो आया है कि घर पर मान-पीने तक

१ प्रतीत डा० गोवर्धनसिंह शेखावत राजस्थानी अंक पृ० म० ३०
२ आलीजा आज्यो घरा श्री मणि मधुकर राजस्थानी-अंक, पृ०म० ७१

का सामान समाप्त हो चुका है। यहाँ जिस बदली हुई स्थिति का सकेत है, वहाँ एक मीठी चुटकी भी है। ऐसी ही एक स्थिति पर श्रीमती कमला वर्मा की यह चुटकी भी कम रोचक नही है—

आधी रात
पपइयो
पी पी घणी पीपाड मारी
मोर बोलता रया
मेढक भी टर टराया
नीद म बेसवर मूती ही रयी
बिचारो रिवाड कठ ई दूर
चीख्यो——
आजा रे अब मेरा दिल पुकारे।
नीद उघडगी
उठ बठी
दूर परदेश गयोडा री
सुध आई
विरह री अनुभूति सू फेर
नीद ना आइ।[1]

चिंतन का यह बदलाव वस्तुत किसी कवि विशेष के विशिष्ट अध्ययन, मनन या सपक का परिणाम नही है वस्तुत इसे युग की हवा का ही प्रभाव कहा जाना चाहिए तभी तो पुरानी पीढी के श्री रावत सारस्वत तक ने यह लिखने म सकोच नही किया—

कायर हा, बुजदिल हा बेवकूफ हा
आरा पुरखा
जिका इण निरभागी धरती मे
लुक'र प्राण बचाया।
लूठा हा बीर हा सायर हा व
जिका माळ री धरती न दाबी राखी
अर देस निकाळो दियो बा नाजोगा नै
तनतोड मनत कर भी
जिका दो जूण टुकडा नी तोड पाया[2]

जहाँ कुछ समय पूव तक इन और इनके साथी कवियो की जिह्वा राजस्थान की आन बान और शान के गुणगान करते नही थकती थी, वही ये लोग इस धरती को निरभागणी धरती कहने म नही सकुचा रह हैं और जहाँ अपन पूवजा क शौय के गुणगान करते-करते ये नही अघाते थे, वहीं अब उन्ह कायर और बुजदिल कहना बदलते युग के प्रभाव का ही तो परिणाम है।

---

१ दोय विचार श्रीमती कमला वर्मा जलमभोम प०स० २५ वष २ अक २-३
२ काळ रावत सारस्वत, मरुवाणी पृ० स० ६, वष ८, अक-८

इस प्रकार पाँच सात वर्षों की अल्प अवधि मे ही सभी नय पुराने कवियो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेने वाली राजस्थानी काव्य की यह नव प्रवृत्ति, नि सदेह अपनी इस उपलब्धि पर गर्व कर सकती है। आज डा० मनोहर शर्मा एव मेघराज मुकुल से लेकर श्री मणि मधुकर एव तेजसिह जोधा तक नयी पुरानी और बीच की सभी पीढियो के लोग समान रूप से इसकी साधना म लगे हुए हैं। आज राजस्थानी काव्य जगत म चिन्तन अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर जो यह परिवर्तन आया है वह किसी आरोपित वाद या विचारधारा का परिणाम नहीं अपितु समय की आवश्यकता के तकाजे से आया है।

राजस्थानी नयी कविता के विभिन्न पहलुओ पर विचार करने के पश्चात अब एक महत्त्वपूर्ण पहलू और शेष रह गया है और वह है हिन्दी नयी कविता बनाम राजस्थानी नयी कविता। यह बात इसलिए भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाती है कि राजस्थानी के सभी सशक्त नये कवि समान रूप से हिन्दी म भी लिख रहे हैं और हिन्दी नयी कविता से व चेतना के धरातल पर जुडे हुए हैं। आज हिन्दी नयी कविता के आन्दोलन को लगभग दो दशक होने जा रहे हैं जबकि राजस्थानी म वह अभी आधा दशक भी नहीं जी पायी है। अत ऐसी स्थिति म यह तुलना महत्त्वपूर्ण ही नहीं रोचक भी बन जाती है। जहा तक हिन्दी की नयी कविता से राजस्थानी नयी कविता के प्रभावित होने का प्रश्न है यह बात सही है कि राजस्थानी की नयी कविता एक सीमा तक हिन्दी नयी कविता से प्रभावित एव प्रेरित है, किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वह पूर्णत हिन्दी का अनुकरण भर है या कि हिन्दी से भिन्न उसका कोई स्वरूप नहीं है।

दोनो को समान धरातल पर रखकर तोलने से दोनो के अन्तर स्पष्ट हो जायेंगे। प्रथम हिन्दी नयी कविता म पाश्चात्य साहित्य एव जीवन दर्शन से प्रेरित होकर, भय सत्रास कुण्ठा लघुता बोध आदि की जो अभिव्यक्ति मिली है राजस्थानी कविता उससे बहुत कुछ बची हुई है। इसके अतिरिक्त भी उसम हिन्दी की तरह यौन जीवन का छिछला अकन, भदेस का चित्रण एव आधुनिक जीवन की तथाकथित असगतियो का सप्रयास अकन नहीं हुआ है। इसका मुख्य कारण यही है कि हिन्दी नई कविता के साथ राह अन्वेषण म जो बहुत सा छद्म अस्पष्ट एव आरोपित काव्य प्रवाह की प्रबलता के साथ वह चला था राजस्थानी की राह साफ होने के कारण वह सब कुछ उसम नहीं आ पाया। द्वितीय, राजस्थान का स्वय का सामाजिक एव नागरिक जीवन ऐसा नहीं रहा है कि वहाँ महानगरो के अभिशप्त जीवन और अत्याधुनिकता के विकृत परिणामो को कहीं देखा या भोगा जाय। ऐसी स्थिति म यदि यहा का कवि उन सबका चित्रण अपने काव्य मे करता है तो वह सब आरोपित होगा।

इसके अतिरिक्त राजस्थानी के नये कवि की सुलझी हुई दृष्टि ने भी आधुनिकता के नाम पर इन सब बवडरो को काव्य जगत् म प्रविष्ट होने से रोका है। युग की बदली हुई परिस्थितियो को पूर्णत हृदयगम करते हुए भी वह सर्वथा अजनबी बन जाना नहीं चाहता। उसे अपने पूर्वजो की उपलब्धियो से कोई परहेज नहीं है अपितु वह तो स्वय कामना करता है कि— राजस्थान रा नुवो — नवार कवि आप रो खोज म मरुमणा चाय रव पण आपरी हवा और 'हिरणी' र विमाळ अण-सैंधो

नी वण । मरुधर की रेत रमता मे अपनायत जाड़ी है ।'[1] और उसका यह अपनत्व, ममत्व का भाव उन अपने धरातल से कटने नही देता ।

हिन्दी नव काव्य से भिन्न राजस्थानी नव काव्य म नये वादो की बाढ़ भी नही आयी है । यहाँ न तो कभी सनातन सूर्योदयी कविता, अभिनव काव्य, बीट कविता, गीत कविता नवगीत अगीत, ऐण्टी गीत युयुत्सावादी कविता, टटकी कविता, अकविता या अ-कविता, अस्वीकृत कविता आज की कविता, नव प्रगतिशील कविता अगली कविता[2] जसे अल्पजीवी सप्रयास आरोपित एव स्थापित होने की ललक से योजनाबद्ध छोड़े गये काव्यान्दोलन ही जन्मे और न ही अपने से पूर्व के समस्त काव्य को नकारते हुए केवल मात्र अपने को ही एकमात्र सही काव्य सर्जेता ही घोषित किया गया ।[3]

इस प्रकार राजस्थानी की नयी कविता के आन्दोलन की बाढ स बचे रहने के कई कारण हो सकते हैं। प्रथम तो राजस्थानी साहित्य क्षेत्र म किसी भी कवि क सम्मुख स्थापित होने जसी कोई समस्या नही रही है । यहा तो प्रकाशन वितरण आदि के सीमित दायरे क कारण जो भी नया कवि काव्य क्षेत्र म प्रविष्ट हुआ उसका हृदय से स्वागत किया गया है । अत नये रचनाकारो के सामने स्थापित एव चर्चित होने जसी कोई समस्या नही रही है । द्वितीय हिन्दी की अपेक्षा राजस्थानी म नयी कविता के दौर को शुरू हुए भी बहुत कम समय हुआ है और अभी तक तो वह पारम्परिक शली की काव्य रचनाओ के समक्ष अपना वचस्व स्थापित करने मे ही जुटी हुई है अत ऐसी स्थिति म राजस्थानी नयी कविता का इन सब ववडरो से बचा रहना स्वाभाविक ही है ।

●

---

१ भचीड साया ठा पड ला मणि मधुकर राजस्थानी अक पृ० स ६५

२ दखें *नयी कविता किसिम किसिम की कविता*

नयी कविता स्वरूप और समस्याए डा० जगदीश गुप्त, पृ० स० २१६ प्र० का० १९६६ ई०

३ इधर म राजस्थानी मे कुछ एक नये कवियो मे अपने स पूर्व को नकारने की प्रवत्ति कहीं-कहीं उभरी है । राजस्थानी अेक की सम्पादकी' म व्यक्त विचार, अप्रच्छन्न रूप से उसी प्रवत्ति के पोषक नही तो कम-से कम प्रेरित अवश्य कहे जायेंगे । विशष रूप स श्री जोशी का यह कथन ई श्रावण आळी कविता सू पली कविता अन जमीन कोनी ही, अेक भेळवाड हो लावो लूटण न । अर वयू क श्रावण आळी कविता जमीन लावण आळी ही पुख्ता-जमीन सो सई अरथा म तो कविता री सरुआत ई उण सू ई हुणी ही ।'-इसी बात की पुष्टि करता है ।

सम्पादकी राजस्थानी अेक, स० तजसिह जोधा, पृ० स० २०, प्रकाशन काल १९७१ ई०

निष्कर्ष

अब तक के विवेचन म हमने आधुनिक राजस्थानी पद्य साहित्य की विभिन्न विधाओं का जो प्रवृत्तिमूलक अध्ययन प्रस्तुत किया है उसके आधार पर आधुनिक राजस्थानी पद्य साहित्य की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

१ आधुनिक राजस्थानी प्रबन्धकाव्यों के मुख्य आधार तो ऐतिहासिक धार्मिक एवं पौराणिक आख्यान ही रहे हैं किन्तु सामयिक चिन्तन का प्रभाव उनमें स्पष्ट लक्षित होता है। इन प्रबन्ध काव्यों के सम्बन्ध म दूसरी उल्लेखनीय बात यह रही है कि इनमें यत्र तत्र स्थानीय प्रभाव उभर आया है तथा राजस्थानी संस्कृति ने भी इन्हें एक सीमा तक प्रभावित किया है।

२ प्रकृति-काव्यों की प्रधानता आधुनिक राजस्थानी साहित्य की एक मुख्य बात कही जा सकती है। प्राचीन राजस्थानी काव्यों से भिन्न इनमें प्रकृति का आलम्बन रूप मे विस्तार से चित्रण हुआ है। प्रकृति का जीवन सापेक्ष अंकन इनकी दूसरी उल्लेखनीय उपलब्धि कही जा सकती है।

३ राजस्थानी के आधुनिक गीतकारों ने जीवन के हर पहलू को छूने का प्रयास किया है। इन गीतों की पृष्ठभूमि म राजस्थानी का लोक संगीत विशेष सक्रिय रहा है।

४ स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व जन-जागृति और समाज सुधार का दायित्व राजस्थान के प्रगतिशील कवियों ने बड़े साहस के साथ संभाला। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात उन्होंने शताब्दियों से दबे कुचले साधारण व्यक्ति के समर्थन म अपनी आवाज बुलन्द की और अब परिवर्तित परिस्थितियों म वे भ्रष्ट शासन और विकृत सामाजिक-व्यवस्था पर तीव्र व्यंग्य प्रहार कर रहे हैं।

५ राजस्थान के यशस्वी ऐतिहासिक प्रसंगों पर लिखी गयी शताधिक पद्यकथाओं का महत्त्व व्यापक जनसमुदाय को अपनी मातृभूमि और मातृभाषा राजस्थानी के प्रति आकर्षित करने की दृष्टि से विशेष रहा है।

६ राजस्थानी की नयी कविता हिन्दी नयी कविता से प्रेरित प्रभावित अवश्य रही है, किन्तु अपनी जमीन से जुड़ा होने के कारण हम उसे हिन्दी का प्रतिरूप भर नहीं कह सकते। वह अपने क्षेत्र के सामयिक जीवन को ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करने म सचेष्ट है।

मोटे रूप म आधुनिक राजस्थानी पद्य साहित्य की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

१ आधुनिक पद्य साहित्य म प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक काव्य संग्रहों की संख्या बहुत अधिक रही है।

२ आधुनिक कवियों का झुकाव लोक जीवन एवं लोक-साहित्य की ओर विशेष रहा है।

३ प्राचीन कवियों की अपेक्षा आधुनिक कवियों ने उन्मुक्त दृष्टि का परिचय देते हुए अपनी कृतियों में प्रकृति का चित्रण विस्तार से किया है।

४ आधुनिक कवि काव्य शास्त्रीय नियमों या विधि विधानों का कठोरता से पालन करने में विश्वास नहीं रखता।

५ काव्य भाषा की प्राचीनता के प्रति इस युग से पूर्व के कवियों में जो एक मोह रहा, आज का कवि उससे मुक्त हो चुका है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज की कविता सामान्य व्यक्ति के अधिक निकट है।

पंचम खण्ड

उपसहार

उपलब्धियाँ और मूल्यांकन

गत सत्तर वर्षों के राजस्थानी साहित्य का इतिहास सामन्ती परिवेश से निरन्तर अलग हटते जाने और आम आदमी के अधिकाधिक निकट आने, उसे सही रूप मे समझने तथा प्रस्तुत करने का इतिहास रहा है। आधुनिक युग म सामान्य व्यक्ति को जो इतना अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है वह इस युग के साहित्य की सबसे बडी उपलब्धि है। इससे पूर्व सामान्यत साहित्य म साधारण व्यक्ति को कोई स्थान नहा था। वह अधिकाशत राजा महाराजाओ एव आश्रयदाताओ क इच्छानुरूप लिखा जाता रहा या विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तो के प्रतिपादन म ही उसकी सृष्टि होती रही। वसे राजस्थानी साहित्य की यह विशेषता अवश्य रही है कि उसम राजाओ और सामन्तो के शौर्य वर्णन की भाँति ही किसी भी सामान्य वीर के असाधारण शौर्य का बखान भी बडे उत्साह के साथ किया गया है। इस प्रकार प्राचीन राजस्थानी साहित्य के सन्दर्भ म यह तो नही कहा जा सकता कि वह केवल सामन्तो का ही साहित्य रहा फिर भी यह तो निश्चित है कि आज जिस प्रकार सामान्य व्यक्ति साहित्य का आधार बना हुआ है उसकी वसी स्थिति उस समय नही थी। उस समय सामान्य वीर की प्रशसा एव प्रशस्ति म जो कुछ लिखा गया, उसके पीछे वीर-पूजा की भावना प्रबल रही, उपेक्षितो के प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण नही। दूसरे शब्दो म वहा सामान्य व्यक्ति की नही, उसके असामान्य कार्यों की पूछ थी।

इस प्रकार आधुनिक साहित्यकार की दृष्टि मे जो यह भारी परिवर्तन आया है, उसने केवल कथ्य को ही प्रभावित नही किया अपितु भाषा, शिल्प एव शली को भी बहुत कुछ नया रूप प्रदान किया है। आज गद्य की भाषा तो बोलचाल की भाषा है ही, किन्तु कविता के क्षेत्र म भी उसने प्राचीनता के मोह से मुक्ति प्राप्त करली है। आज की कविता काव्यशास्त्रीय बन्धनो और व्यर्थ की आलकारिकता के बोझ से मुक्त होकर अपने सहज किन्तु अधिक प्रभावी रूप म सामने आयी है।

कविता की भाति ही गद्य के क्षेत्र म भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। यद्यपि प्राचीन राजस्थानी गद्य साहित्य की परम्परा कदाचित उत्तर भारत की सबसे अधिक समृद्ध परम्परा रही है, फिर भी आज की परिवर्तित परिस्थितियो के सन्दर्भ म उसका एतिहासिक मूल्य ही अधिक है सामयिक महत्त्व नगण्य। आज गद्य क क्षेत्र म युगानुरूप उपन्यास, कहानी, नाटक एकाकी, निबन्ध समालोचना आदि जिन नवीन विधाओ का सूत्रपात हुआ है उनका प्राचीन राजस्थानी गद्य साहित्य से कोई सीधा सम्बन्ध नही है। प्राचीन राजस्थानी गद्य साहित्य की अधिकाश रचनाओ मे जीवन के प्रति जो एक रोमांटिक दृष्टि पायी जाती है उसका स्थान आज ठोस यथार्थ न ग्रहण कर लिया है। फलस्वरूप अलौकिक एव अविश्वसनीय प्रसगो तथा वायवी कल्पनाओ का तो कोई स्थान ही नही रहा है किन्तु साथ ही साथ 'हीरो' की 'इमेज' भी खण्डित हुई है। आज का कथाकार किसी असाधारण शौर्य एव

प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति को कथानायक बनाने की अपेक्षा जीवन की कठोरताओं से जूझते किसी साधारण व्यक्ति की व्यथा कथा को अपने अधिक अनुकूल पायगा।

काव्य की भाँति ही आज के गद्य साहित्य की शैली भी यथार्थ के अधिक निकट है। प्राचीन गद्य साहित्य की वर्णन प्रधान, अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना पूर्ण शैली का त्याग तो आज का गद्यकार कर ही चुका है, पर साथ ही साथ तुक और लय के माध्यम से गद्य में भी एक चमत्कार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति से भी वह मुक्त हो चुका है।

गद्य और पद्य साहित्य की इन उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता की स्वीकृति और आलम्बन रूप में उसका विस्तार से वर्णन, पत्रकारिता का विकास एवं साहित्य में यथार्थवादी दृष्टिकोण का प्राधान्य आदि अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

ऊपर गत सत्तर वर्षों के राजस्थानी साहित्य की उपलब्धियों का संक्षिप्त विवेचन हुआ है। इस विवेचन में हमने राजस्थानी के प्राचीन साहित्य को ही मुख्य रूप से सामने ध्यान में रखा किन्तु जब हम इन्हीं सत्तर वर्षों की अवधि में सर्जित अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य विशेष रूप से हिन्दी साहित्य को दृष्टिपथ में रखकर विचार करते हैं तो पाते हैं कि उनकी तुलना में राजस्थानी साहित्य के विकास की गति काफी धीमी रही है। आगे कतिपय विस्तार से उन सब परिस्थितियों पर विचार करेंगे जिनके कारण राजस्थानी का आधुनिक साहित्य हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की वर्तमान स्थिति तक नहीं पहुँच पाया है।

आधुनिक राजस्थानी साहित्य की विकास गति धीमी रहने के मुख्य कारण यहाँ की राजनैतिक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों में निहित हैं। समुद्र तट से दूर होने के कारण पश्चिमी देशों के सम्पर्क में यह प्रदेश बहुत बाद में आया, फलस्वरूप पश्चिम जगत की वैचारिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति से यहाँ का सामान्य जन उस समय सर्वथा अपरिचित था जबकि भारत के समुद्रतटीय बंगाल मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र प्रभृति प्रान्त इन सबसे परिचित होकर विकास के नवपथ पर चल चुके थे। ऐसी स्थिति में राजस्थान इन प्रान्तों की तुलना में हर दृष्टि से काफी पिछड़ गया साहित्य पर भी इस स्थिति का प्रभाव अवश्यम्भावी रूप से पड़ा। आज, जबकि स्वतन्त्रता प्राप्ति को २५ वर्ष हो चुके हैं राजस्थान और अन्य प्रान्तों के बीच की यह खाई पट नहीं सकी है।

राजनैतिक दृष्टि से जहाँ अंग्रेजों ने भारत के अधिकांश भू भाग को अपने सीधे नियन्त्रण में लेकर उन क्षेत्रों में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और शासन प्रणाली को लागू किया, वहाँ, उन्होंने राजस्थान का शासन अपनी रक्षा पंक्ति के रूप में यहाँ के राजाओं के ही हाथ में रहने दिया जो बाह्य आक्रमणों के भय से मुक्त होकर अधिक विलासी क्रूर और निष्क्रिय हो गये थे। इन राजाओं का सारा प्रयास अपनी जनता को नवयुग के प्रकाश से दूर रखने में लगा रहा। उनकी रीति-नीतियों का ही यह परिणाम हुआ कि राजस्थान शिक्षा के क्षेत्र में बहुत पिछड़ गया और यहाँ का साहित्य भी नवीन विचारों के अभाव में पुरातनगामी बना रह गया। जनता और राज्य दोनों ओर से नये विचारों को प्रोत्साहन न मिल पाने के कारण साहित्य में युगानुकूल नवीन विचारों का समावेश बहुत कम और विलम्ब से हो पाया।

२० वीं सदी के प्रारम्भ से ही हिन्दी का प्रभाव इस क्षेत्र में बढ़ता जा रहा था। यहाँ के प्राचीन साहित्य से परिचय के अभाव में विदेशी विद्वानों ने राजस्थान प्रदेश को हिन्दी प्रदेश का ही एक

वर्ग माता तथा यहाँ की भाषा को हिन्दी ही बतलाया, परिणाम स्वरूप यहाँ के शासको और थोडे बहुत जो बुद्धिजीवी थे उन्होने भी व्यवहार के लिये हिंदी को ही अपना लिया। इस प्रकार विद्वत वग एव शासक वग दोना द्वारा ही राजस्थान की भाषा हिन्दी स्वीकारे जाने का परिणाम यह हुआ कि राजस्थानी साहित्य सजन को कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। पाश्चात्य सभ्यता एव शिक्षा के सपक मे आये विद्वानों ने साहित्य सजन और अन्य अन्य कार्यों के लिए हिन्दी को ही अपना लिया, फलस्वरूप विद्वत समाज के सहयोग एव प्रोत्साहन से वचित राजस्थानी साहित्य अपेक्षित प्रगति नहीं कर पाया।

इसके अतिरिक्त राजस्थान मे प्रारभिक शिक्षा के लिये भी शिक्षा के माध्यम के रूप मे हिन्दी को स्वीकृति मिल गयी फलत यहा हिन्दी का विकास दिना दिन बढता गया और राजस्थानी केवल कतिपय पारम्परिक रुचि के व्यक्तियो तक ही सीमित रह गयी। उधर शिक्षा म स्थान न मिल पाने के कारण राजस्थानी के पाठक-वग का निर्माण नही हो सका, अत माग के अभाव मे साहित्य का प्रकाशन एव लेखन भी नही पनप सका। परिणाम यह हुआ कि जो लोग अन्त प्रेरणा और रुचि के कारण राजस्थानी मे लिखा करते थे उनका अधिकाश साहित्य प्रकाशन के अभाव म पाण्डुलिपियो के रूप में ही धरा रहा।

आधुनिक राजस्थानी साहित्य की गति मे अपेक्षित तीव्रता न आ पाने का एक मुख्य कारण यह भी रहा कि हिन्दी या अन्य समसामयिक भारतीय भाषाओ के साहित्य को जिस मध्यमवर्गीय बुद्धि जीवी वग का ठोस आधार प्राप्त हुआ, वह राजस्थानी साहित्य को नही मिल पाया। शिक्षा की भारी कमी और यहाँ के अधिकाश प्रतिभाशाली लोगो की व्यापारिक रुझान के कारण स्थानीय बुद्धिजीवियो का कोई प्रभावी वग अस्तित्व मे नहीं आ पाया। शिक्षा, रेलवे चिकित्सा एव अदालतो आदि विभिन्न राजकीय सेवाओ में जो मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी लोग कायरत थे उनम अधिकाश राजस्थान से बाहर यू० पी० आदि अन्य प्रान्ता के रहने वाले थे जिनका राजस्थानी भाषा-साहित्य से लगाव होने का सामान्य स्थितियो मे कोई प्रश्न नही था। ऐसी स्थिति म राजस्थानी समथक बुद्धिजीवी वग के अभाव मे यहाँ का आधुनिक साहित्य यदि अन्य भारतीय भाषाओ के साहित्य की तुलना म पिछड जाये तो आश्चय क्या ?

आधुनिक राजस्थानी साहित्य की मद गति का एक कारण यह भी रहा कि इस बीसवी शताब्दी म अभी तक राजस्थानी साहित्य मे किसी एक ऐसे प्रभावशाली साहित्यकार का प्रादुर्भाव नही हुआ जो रवीन्द्र प्रसाद या प्रेमचन्द की तरह अपन सम्पूर्ण युग का नेतृत्व कर सके और उसे गति प्रदान कर सके। यही नहीं, हिन्दी में जिस प्रकार महावीरप्रसाद द्विवेदी जसी साधक और दृढव्रती प्रतिभा ने हिन्दी साहित्य के एक पूरे युग को अपनी प्रतिभा के बल पर सुदृढ एव सशक्त बनाया वसी किसी प्रतिभा का राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र म अभाव रहा है। इन सत्तर वर्षों की अवधि म अकेले शिवचन्द्र भरतिया ही एक एसे व्यक्ति थे, जिन्होने पूरी शक्ति और सामथ्य के साथ राजस्थानी के नवीन साहित्य को सामने लाने का प्रयास किया। यह उन्ही के प्रयासो का परिणाम समझना चाहिए कि उस समय के साहित्यिक रुचि-सम्पन्न प्रवासी राजस्थानियो के एक बडे वग ने उनके पथ का अनुसरण किया और सदव उन्हें अपना प्रेरक माना, किन्तु राजस्थान--जो कि राजस्थानी साहित्य की मुख्य क्रीडा-स्थली है—मे ऐसी कोई प्रतिभा उस समय सामने नहीं आयी।

वतमान युग मे राजस्थानी की स्थिति के कमजोर बन रहन का एक कारण और भी है वह यह कि जिस प्रकार देवनागरी लिपि और हिन्दी (खडी बोली) के प्रचार प्रसार के लिए प्रचारकों की एक सबल शृंखला एक के बाद एक के रूप मे आती रही, वसा कुछ राजस्थानी के सन्दभ म घटित नही हुआ। राजस्थानी के प्रचार प्रसार के लिए जहाँ कही से भी आवाज उठी या जो कुछ प्रयत्न हुए, वे अधिकाश मे वयक्तिक स्तर पर ही सीमित रहे और व्यापक जन समथन तयार करन म असफल रहे।

आधुनिक साहित्य का एक बहुत बडा सम्बल उस भाषा विशष की पत्र पत्रिकाएँ होती हैं। यह राजस्थानी साहित्य का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए कि राजस्थान म १९०० ई० स १९४६ ई० तक की लगभग ५ दशक की अवधि म 'आगीवाण' के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा का कोई पत्र नही निकाला। यह पत्र भी साहित्यिक की अपेक्षा राजनतिक रुझान वाला अधिक था और बहुत कम समय तक ही प्रकाशित हुआ। ऐसी स्थिति मे बहुत सी नयी प्रतिभाओ को सामने आने का अवसर ही नही मिला और प्रकाशन प्रोत्साहन के अभाव म हतोत्साहित होकर वे प्रतिभाएँ या तो मौन हो गई अन्यथा हिन्दी की ओर बढती चली। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात यद्यपि पत्र पत्रिकाओ का एकान्तिक अभाव तो नही रहा, किन्तु साधनो के अभाव सुलझी हुई प्रखर सपादकीय समझ की कमी और इन पत्रिकाओ की अनियमितता ने राजस्थानी साहित्य को वह सब कुछ नही दिया जिसकी इनसे अपेक्षा थी।

इन सब स्थितियो के अतिरिक्त राजस्थानी भाषा साहित्य की वतमान स्थिति के लिए एक सीमा तक राजस्थान के राजनतिक नेताओ को भी दोषी माना जावेगा। बिजोलिया सत्याग्रह से लेकर राजस्थान की विभिन्न रियासतो म प्रजामण्डलो के माध्यम से चलाय गये सभी आन्दोलना मे यहा के राजनेताओ ने इस बात को बराबर महसूस किया कि यहाँ जन जागृति के लिए जनभाषा ही एकमात्र सम्बल है। इसीलिए उन लोगो ने राजस्थानी भाषा म विभिन्न उदबोधनात्मक एव प्रेरणास्पद गीतो की रचना की तथा 'ऊपरमाळ को डको (हस्तलिखित) एव आगीवाण जसे राजस्थानी पत्रो का सचालन किया। इस प्रकार स्वतत्रता प्राप्ति से पूव जो राजस्थानी भाषा उनक लिए जन-सम्पक का एकमेव माध्यम थी वही स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात एकदम बेगानी हो गयी। तभी ता जब भारतीय सविधान मे विभिन्न प्रान्तीय प्रतिनिधि अपनी अपनी प्रान्तीय भाषाओ के यथेष्ट स्थान के लिए सजग एव सचेष्ट थे, तब यहाँ के लोकनेता उस विषय पर बिल्कुल मौन थे और भारतीय स्तर तो क्या प्रान्तीय स्तर पर भी इस हेतु कोई ठोस कदम नही उठा पाय।

उपयुक्त सभी स्थितियो पर विचार करत हैं ता एक प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि क्या राजस्थानी साहित्य की स्थिति सदव एसी ही बनी रहेगी? क्या वह अपनी विकास गति को तीव्र नहीं कर पायेगा? क्या वह अपन और अन्य समसामयिक भारतीय भाषाओ क मध्य बनी हुई खाई को पाट नही सकेगा? इन प्रश्नो क उत्तर खोजने के लिए राजस्थानी साहित्य की वतमान स्थिति और उन सब गतिविधियो पर दृष्टिपात करना होगा जो कि सजनात्मक साहित्य से सीधी जुडी हुई न होकर भी उसके भविष्य निर्धारण की दृष्टि स काफी महत्वपूण हैं। इस दृष्टि से जब गत चार पाँच वर्षों की साहित्यिक एव इतर गतिविधियो पर विचार करत है तो यह सहज ही विश्वास होता है कि अब राजस्थानी साहित्य के सजन की गति काफी तीव्र होगी और उसका क्षेत्र भी पूर्वापेक्षा काफी बढ जायेगा।

इस विश्वास का पहला कारण गत चार पाँच वर्षों की अवधि म राजस्थानी के सृजनात्मक साहित्य की स्थितियो का बदल जाना रहा है। एक ओर सभी ये पुराने लेखको मे आत्मालोचन की प्रवृत्ति बढी है और सामयिक साहित्य के स्वस्थ मूल्याकन के साथ, बहुत कुछ नया पाने व करने की ललक उनमे जगी है तो दूसरी ओर यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' एव मणि मधुकर जैसे हिन्दी के चर्चित हस्ताक्षरो मे अपनी मातृभाषा राजस्थानी के प्रति विशेष दायित्व बोध के भाव जगे हैं।

इन सब स्थितियो को देखते हुए सहज ही यह विश्वास जगता है कि राजस्थानी साहित्य यथाशीघ्र मानसिक दृष्टि से उस धरातल से जुड जायगा जहा आज सामयिक हिन्दी साहित्य खडा है।

उधर सृजनात्मक साहित्य से इतर ऐसी कुछ घटनाएँ पिछले चार-पाच वर्षों में घटित हुई हैं—जो राजस्थानी साहित्य लेखन को अधिक गतिशील बनाने की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण कही जा सकती हैं। ये घटनाएँ हैं—केन्द्रीय साहित्य अकादमी, दिल्ली द्वारा राजस्थानी भाषा को साहित्यिक भाषा के रूप मे मान्यता प्रदान करना, राजस्थान सरकार द्वारा राजस्थानी भाषा साहित्य के विकास हेतु बीकानेर म 'राजस्थानी भाषा साहित्य सगम (अकादमी)',[1] की स्थापना करना, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान द्वारा उच्च माध्यमिक स्तर पर राजस्थानी को एक वैकल्पिक विषय के रूप मे मान्यता प्रदान करना और राजस्थान म विश्वविद्यालीय स्तर पर राजस्थानी साहित्य के विशेष अध्ययन का प्रारभ।

●

1 सम्प्रति 'राजस्थानी भाषा साहित्य संगम (अकादमी)', नामक यह संस्था 'राजस्थान साहित्य अकादमी (सगम)', उदयपुर की एक शाखा के रूप मे काय कर रही है।

सहायक ग्रन्थों की सूची

क आधार ग्रन्थ

१ गद्य ग्रन्थ

उपन्यास

१ आभ पटकी श्रीलाल नथमल जोशी सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीटयूट बीकानेर (१९५६ ई
२ आभळदे श्री रामदत्त सास्कृत्य
३ कनक सुन्दर शिवचन्द्र भरतिया
४ चम्पा श्रीनारायण अग्रवाल मारवाडी भाषा प्रचारक मडल धामणगाव (स १९८२)
५ तोडोराव (लोक उपन्यास) विजयदान देथा
६ घोरा रो घोरी श्रीलाल नथमल जोशी राजस्थान साहित्य अकादमी (सगम), उदयपु
(१९६८ ई०)
७ परदेशी री गौरडी मूलचन्द प्राणेश राजस्थानी भाषा प्रचारक प्रकाशन बीकानेर (स० २०२
८ मां रो बदळो (लोक उपन्यास) भाग १-२ विजयदान देथा रूपायन सस्थान बोरु
(स० २०२४)
९ मैंकती काया मुळकती धरती श्री अन्नाराम 'सुदामा', धरती प्रकाशन उदयरामसर
१० हू गोरी किण पीवरी यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' राजस्थान भाषा प्रचार सभा जयपुर (१९६६ ई०

कहानी-संग्रह

११ अमर चूनडी नृसिंह राजपुरोहित सूर्य प्रकाशन मदिर, बीकानेर (१९६६ ई०)
१२ आध न भीत्यां अन्नाराम 'सुदामा', धरती प्रकाशन, उदयरामसर
१३ कन्यादान डा० मनोहर शर्मा, राजस्थान साहित्य अकादमी (सगम) उदयपुर (१९७१ ई०)
१४ गोधो नानूराम सस्कर्ता, राजस्थानी भाषा प्रचार प्रकाशन बीकानेर (स० २०२३)
१५ घर की गाय नानूराम सस्कर्ता लोक साहित्य प्रतिष्ठान, कालू (१९७० ई०)
१६ घर की रेल नानूराम सस्कर्ता, लोक साहित्य प्रतिष्ठान कालू (१९६८ ई०)
१७ दस दोख नानूराम सस्कर्ता राजस्थानी भाषा प्रचार प्रकाशन बीकानेर (स० २०२३)
१८ पाबूजी री बात लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत (स० २०१८)
१९ बरस गाठ मुरलीधर व्यास, सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीटयूट, बीकानेर (स० २०१३)
२० राजस्थान के कहानीकार (राजस्थानी) स० दीनदयाल ओझा राजस्थान साहित्य अकाद
(सगम), उदयपुर।
२१ रातवासो नृसिंह राजपुरोहित, नीलकण्ठ प्रकाशन, खाडप (१९६१ ई०)
२२ लाडेसर बजनाथ पवार, राजस्थान साहित्य अकादमी (सगम) उदयपुर

नाटक

२३ अबल बडी कि भस श्रीनारायण अग्रवाल, मारवाडी भाषा प्रचारक मडल, धामणगांव (स० १६८२)

२४ कन्या बिक्री बालकृष्ण लाहाटी, मारवाडी प्रेस प्रकाशन विभाग, अफलगज हैदराबाद (१६३८ ई०)

२५ कलकतिया बाबू भगवतीप्रसाद दारुका (स० १६७६)

२६ कलियुगी कृष्ण रुक्मण नाटक श्रीनारायण अग्रवाल बाल मित्र एलिचपुर मारवाडी भाषा प्रचारक मडल धामणगाव (स० १६७६)

२७ केसर विलास शिवचन्द्र भरतिया (प्रथम सस्करण, १६०० ई०)

२८ जयपुर की ज्योणार मदनमोहन सिद्ध, सिद्ध हिन्दी प्रचारक कार्यालय मिश्र राजाजी का रास्ता, जयपुर

२६ ढळती फिरती छाया भगवतीप्रसाद दारुका (स० १६७७)

३० ढोला मरवण भरत व्यास, राजस्थान कला मदिर, बहादुर हाउस घोडबन्दर रोड बम्बई, (स० २००६)

३१ धमपाल बाबू गगाराम अग्रवाल

३२ नई बीनणी जमनाप्रसाद पचौरिया, राजस्थान ड्रामटिक सोसाईटी ८ बी दूसरी फणस वाडी लेन बम्बई–२ (१६६२ ई०)

३३ पन्ना धाय श्रीनाचन्द भण्डारी, लक्ष्मी पुस्तक भडार, जोधपुर, (१६६३)

३४ प्रणवीर प्रताप गिरधरलाल शास्त्री व्यास वध व्यासाश्रम ब्रह्मपोल उदयपुर (राज०)

३५ फाटका जजाल नाटक शिवचन्द्र भरतिया (स० १६६४)

३६ बाल ब्याव को फास नारायणदासजी सारडा (स० १६८१)

३७ बाल विवाह भगवतीप्रसाद दारुका (१६२० ई०)

३८ बुढापा की सगाई शिवचन्द्र भरतिया (१६०६ ई)

३६ भाग्योदय नाटक श्रीनारायण अग्रवाल मारवाडी भाषा प्रचारक मडल धामणगाव (स०१६८१)

४० महाभारत को श्रीगणेश श्रीनारायण अग्रवाल मारवाडी भाषा प्रचारक मडल धामणगाव (स० १६८१)

४१ मारवाड़ी मौसर और सगाई जजाल नाटक गुलाबचन्द नागोरी मारवाडी भाषा प्रचारक मडल धामणगाव (स० १६८०)

४२ रम्भा रमण मथुरादास भट्ट (१६२० ई०)

४३ रगीलो मारवाड भरत व्यास, व्यास सदन, ६/८ विट्ठलवाडी, विट्ठल नन बम्बई (स० २००४)

४४ विद्या उदय नाटक श्रीनारायण अग्रवाल (स० १६७६)

४५ वृद्ध विवाह भगवतीप्रसाद दारुका रामलाल नेमाणी, मलिकराम प्रेस, कलकत्ता (स० १६६०)

४६ सीठणा सुधार भगवतीप्रसाद दारुका (स० १६८०)

एकाकी-सग्रह

४७ प्रादश विद्यार्थी क हैयालाल दूगड, ग्राम ज्योति केन्द्र, सरदारशहर (१६५८ ई०)
४८ इब तो चेतो नागराज शर्मा त्रिरना एजूकेशन ट्रस्ट, पिलानी (१६६३ ई०)
४६ कुमलो फौज में मालच द कीला दीवट प्रकाशण, लाडनू (१६६७ ई०)
५० गाव सुधार या गोमा जाट श्रीनाथ मोदी ज्ञान भडार, जोधपुर (स० २००५)
५१ ठा पडवा लागी मालचन्द कीला दीवट प्रकासण, लाडनू (१६६७ ई०)
५२ देश र वास्ते डा० ग्रानाच द भडारी (१६६७ ई०)
५३ देश रो हेला सुरग री पुकार रामदत्त साकृत्य
५४ महरी कगडो निरजननाथ प्राचाय
५५ नूवो मारग दिनश खरे प्रशोक प्रकाशन ग्रमर निवास सुभाष रोड, प्रशोक नगर, जयपुर-१ (१६६२ ई०)
५६ बोळावण या प्रतिज्ञापूर्ति सूयकरण पारीक
५७ राजस्थानी एवाकी सग्रह गणपतिचन्द्र भडारी, राजस्थान साहित्य अकादमी (सगम) उदयपुर (१६६६ ई०)
५८ सतरगिणी गोविन्दलाल माथुर, नशनल प्रिन्टस, पब्लि० को आपरेटिव सोसाइटी जोधपुर (१६५५ ई०)

विविध

५६ उणियारा (सस्मरण) शिवराज छगाणी, कल्पना प्रकाशन बीकानर (१६७० ई०)
६० गळगचिया (गद्य काव्य) क हैयालाल सेठिया, रामनिवास ढढारिया आर्यावर्त्त प्रकाशन गृह, चौरगी रोड, कलकत्ता-१३ (स० २०१७)
६१ जूना जींवता चित्राम (रेखाचित्र) मुरलीधर व्यास, मोहनलाल पुरोहित राजस्थान साहित्य अकादमी (सगम) उदयपुर (१६६५ ई०)
६२ राजस्थानी निबन्ध सग्रह चन्द्रसिंह राजस्थानी साहित्य अकादमी (सगम), उदयपुर (१६६६ ई०)
६३ सबडका (रेखाचित्र) श्रीलाल नथमल जोशी, राजस्थानी साहित्य परिषद ४ जगमोहन मल्लिक लेन कलकत्ता (१६६० ई०)

२ पद्य ग्रन्थ

कविता

प्रबन्ध काव्य

६४ अन्तरजामी डा० मनोहर शर्मा
६५ अमरफल डा० मनोहर शर्मा
६६ दल्या को दिवलो बनवारीलाल मिश्र सुमन प्रकाशन, चिडावा (स० २०२०)
६७ परमवीर नारायणसिंह भाटी, कलाकार पुस्तक मदिर, जोधपुर (१६६३ ई०)
६८ पूछ मूछ की मुलाकात कन्हैयालाल दूगड
६६ मरवण डा० मनोहर शर्मा
७० मदमयक कान्ह महर्षि, रामकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, नोखा (बीकानर) (१६६१ ई०)

७१ मानखो गिरधारीसिंह पड़िहार, जगजीवन सर्वोदय आश्रम ट्रस्ट, श्री कोलायत (बीकानेर) (१९६४ ई०)
७२ राधा सत्यप्रकाश जोशी, रूपायन संस्थान, बोरूंदा, जोधपुर (१९६० ई०)
७३ रामरूपा विश्वनाथ विमलेश, ललित प्रकाशन मन्दिर, झुंझनू (१९६६ ई०)
७४ रामदूत श्रीमन्तकुमार व्यास नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर
७५ शकुन्तला करणीदान बारहठ, बारहठ प्रकाशन, पनाना (राजस्थान) (१९६७ ई०)
७६ हाडी राणी रामेश्वरदयाल श्रीमाली कला प्रकाशन जालोर (१९६५ ई०)

मुक्तक-काव्य

७७ अमरसिंह री बेलि मुकनसिंह राजस्थानी साहित्य प्रकाशन जयपुर (१९६५ ई०)
७८ अरावली की आत्मा डा० मनोहर शर्मा
७९ अळगोजो स० श्रीमन्तकुमार व्यास नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर (१९५३ ई०)
८० आज रा कवि स० रावत सारस्वत चन्द्र व्यास राजस्थाना भाषा प्रचार सभा, जयपुर (१९६६ ई०)
८१ उभरते रंग मुनि श्री दुलीचन्द दिनकर (१९७० ई०)
८२ ऊमर काव्य ऊमरदान लालस मथलप्रताप न्यायी एड कम्पनी जोधपुर
८३ ओळू नारायणसिंह भाटी कलावतार पुस्तक मन्दिर, जोधपुर (१९६४ ई०)
८४ एक बीसी भामराज भभीरू साहित्य मन्दिर, राजगढ़ (बीकानेर)
८५ कळायण नानूराम संस्कर्ता सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीच्यूट बीकानेर (स० २००६)
८६ कहमुकरणिया चन्द्रसिंह नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर
८७ *किरकर डा० गोवर्धनसिंह शेखावत सारस्वत प्रकाशन प्रतिष्ठान, पिलानी (१९७१ ई०)*
८८ कूं कूं कन्हैयालाल सेठिया, आर्यावर्त प्रकाशन गृह सुजानगढ़ (स० २०२७)
८९ गांधी गाथा स० सवाईसिंह धामोरा साहित्य समिति सर्वोदय प्रौढ़ साक्षरता संगठन भैसरगढ़ (राजस्थान) (१९६८ ई०)
९० गांधी जस प्रकाश स० चंद व्यास
९१ गांधी शतक नाथूदान महियारिया, सुन्दर सदन लालघाट उदयपुर (१९६१ ई०)
९२ गीत कथा डा० मनोहर शर्मा
९३ गीता री गुंजार कन्हैयालाल दूगड जनहित प्रयास सरदारशहर (१९६७ ई०)
९४ गोख ऊभी गोरडी मदनगोपाल शर्मा, राजस्थानी लेखक सहकारी समिति लिमिटेड, जयपुर (१९६५ ई०)
९५ चबडका बुद्धिप्रकाश पारीक प्रमोद प्रकाशन मंदिर जयपुर (१९६१ ई०)
९६ चारगाथा रामपाली भाटी, रामा प्रकाशन जयपुर (स० २०१०)
९७ चूंटक्या बुद्धिप्रकाश पारीक प्रमोद प्रकाशन मंदिर जयपुर (१९६४ ई०)
९८ चूंठिया सत्यनारायण 'अमन' भाएेज प्रकाशन, सूरतगढ (स० २०१८)
९९ चेत मानखो रेवतदान चारण, रूपायन संस्थान बोरूंदा, (स० २०१४)
१०० छोजरा गोपालसिंह राजावत संघ शक्ति प्रकाशन, जयपुर (१९७० ई०)
१०१ छेड़खानी विश्वनाथ विमलेश'

१०२ जम्बू स्वामी री लूर महेन्द्रकुमार, अणुव्रत समिति जयपुर, (१९७० ई०)
१०३ जागती जोता गिरधारीसिंह पडिहार
१०४ जूनी बाता सूरज सोलंकी, नवयुग ग्रन्थ कुटीर (बीकानर)
१०५ झर झर कथा करणीदान बारहठ, बारहठ प्रकाशन फेफाना (१९६४ इ०)
१०६ तिरसा बुद्धिप्रकाश पारीक प्रमोद प्रकाशन मंदिर, जयपुर (१९६४ ई०)
१०७ दसदेव नानूराम संस्कर्ता राजस्थान संस्कृति परिषद, संग्रहालय भवन, जयपुर (१९५५ ई०)
१०८ दीवा कांप क्यू सत्यप्रकाश जोशी
१०९ दुर्गादास नारायणसिंह भाटी, पीथल प्रकाशन जोधपुर (१९५६ ई०)
११० धरती रा गीत निरंजननाथ आचार्य जय अम्बे पुस्तक भंडार, जयपुर (१९६२ ई०)
१११ धरती री धुन गजानन वर्मा
११२ धरती हेलो मारै वेद व्यास
११३ धूड़सार उदयराज उज्ज्वल
११४ नुंवी रागणी सुमनेश जोशी
११५ पणिहारी ग्रोम पुरोहित (१९७० ई०)
११६ परमार्थ विचार सं० चतुरसिंह (सं० १९९४)
११७ पाबूजी री वेलि मुकनसिंह बीदावत, राजस्थानी साहित्य प्रकाशन, जयपुर (१९६४ ई०)
११८ पिरोळ में कुत्ती ब्याई अन्नाराम 'सुदामा', धरती प्रकाशन, उदयरामसर (१९६९ ई०)
११९ पीरु प्रकाश सं० सवाईसिंह धामारा
१२० पीर्थसिंह री वेलि मुकनसिंह बीदावत, संघ शक्ति प्रकाशन, जयपुर (१९६६ ई०
१२१ फते विनोद फतेसिंह, (चतुर्थ संस्करण, सं० २००८)
१२२ बहुनामी री वेलि मुकनसिंह बीदावत
१२३ बादळी चन्द्रसिंह, चांद जळेरी प्रकाशन, जयपुर (सं० १९९८)
१२४ बारहमासो गजानन वर्मा
१२५ बाळसाद चन्द्रसिंह, चांद जळेरी प्रकाशन, जयपुर (सं० २०२५)
१२६ बिरखा बीनणी नागराज शर्मा, सुशील प्रकाशन मंदिर, पिलानी (सं० २०२६)
१२७ भालाळ री वेलि मुकनसिंह बीदावत, संघ शक्ति प्रकाशन, जयपुर (१९६८ ई०)
१२८ मरण त्यूहार सं० भवरसिंह सामौर राजस्थानी साहित्य संस्थान, जयपुर (१९६६ ई०)
१२९ मरु भारती मांगीलाल चतुर्वेदी, भारती, निकेतन, मुकुन्दगढ (राज०) (सं० २००९)
१३० मींझर कन्हैयालाल सेठिया, आर्यावर्त प्रकाशन गृह कलकत्ता (सं० २०१७)
१३१ मूंघा मोती भीमराज बभीरू, पी० आर० अग्रवाल राजगढ (१९४४ ई०)
१३२ मेघमाळ सुमेरसिंह शेखावत
१३३ मोर पांख ओंकार पारीक, राजस्थानी साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर (१९६८ ई०)
१३४ योग लहरी कन्हैयालाल दूगड, जनहित प्रन्यास, सरदारशहर (१९६९ ई०)
१३५ रक्त दीप गणपतिचन्द्र भण्डारी (सं० २०१६)
१३६ रमणियै रा सोरठा कन्हैयालाल सेठिया, राजस्थान साहित्य सदन, सुजानगढ (सं० १९९७)
१३७ रसाळ , लक्ष्मणसिंह रसवन्त

१३८ राजस्थान के कवि सं० रावत सारस्वत, राजस्थान प्रकादमी (संगम) उदयपुर (१९६१ ई०)
१३९ रामतिया मत तोड़ कल्याणसिंह राजावत
१४० लू चन्द्रसिंह, चाँद जळेरी प्रकाशन, जयपुर (सं २०१२)
१४१ धारण री वेलि मुकनसिंह बीदावत, राष्ट्र भक्ति प्रकाशन, जयपुर (१९६७ ई०)
१४२ विचार बावनी कन्हैयालाल दूगड़ जनहित प्रकाश, सरदारशहर (१९६६)
१४३ सतपकवानी विश्वनाथ विमलेश
१४४ समय बायरो नानूराम संस्कर्ता
१४५ सांझ नारायणसिंह भाटी, पीथळ प्रकाशन, जोधपुर (१९५४ ई०)
१४६ सूरा दीवा देसरा हणुवंतसिंह देवड़ा, राजस्थानी साहित्य प्रकाशन चौड़ा रास्ता, जयपुर (१९६७ ई०)
१४७ सतान सुजस सं० सवाईसिंह धमोरा,
१४८ सैनाणी री जागी जोत मेघराज मुकुल
१४९ सोनो निपजै रेत मे गजानन वर्मा

सन्दर्भ ग्रन्थ

१ एकहानी स० श्याममोहन श्रीवास्तव सुरेन्द्र ग्ररोडा, विवेक प्रकाशन लखनऊ (१९६७ ई०)

२ अचलदास खीची री वचनिका गाडण शिवदास री कही

३ अमर शहीद सागरमल गोपा रामचन्द्र बोरा, लोकायत शोध सस्थान, जोधपुर (१९६५ ई०)

४ आधुनिक कहानी का परिपार्श्व लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, साहित्य भवन प्रा० लिमिटड इलाहाबाद (१९६६ ई०)

५ आधुनिक राजस्थानी काव्य सज्जनकुमारी भडारी, अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध (राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर)

६ आधुनिक राजस्थानी साहित्य भूपतिराम साकरिया राजस्थान सेवा समिति, राजस्थान भवन, अहमदाबाद–४ (१९६६ ई०)

७ आधुनिक राजस्थानी साहित्य एक शताब्दी शान्तिलाल भारद्वाज, प्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध (राजस्थान विश्वविद्यालय)

८ आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त डा० सुरेशचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य ससार, नई दिल्ली (१९६० ई०)

९ आधुनिक हिन्दी काव्य डा० राजेन्द्रप्रसाद मिश्र, प्रथम, कानपुर (१९६६ ई०)

१० आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृतिया करुणापति त्रिपाठी हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी (१९६७ ई०)

११ आधुनिक हिन्दी काव्य मे रूप विधाए डा० निर्मला जन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस (१९७० ई०)

१२ आधुनिक हिन्दी साहित्य (सन १८५० से १९००) डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (१९५२ ई०)

१३ आधुनिक हिन्दी नाटक डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस (१९७० ई०)

१४ आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (१९५२ ई०)

१५ उपनिषद् वेलि श्री मुकनसिंह (१९६८ ई०)

१६ कनु प्रिया धर्मवीर भारती

१७ गीता (राजस्थानी पद्यानुवाद) विश्वनाथ विमलेश (१९६० ई०)

१८ गोरा हट जा परम्परा जोधपुर, वर्ष १, अक २ (१९५६ ई०)

१९ गीता ज्ञानामृत अनुवादक ठाकुर कुमरसिंह वि० स० २०१६

२० चित्तौड़ के जौहर व शाके स० सवाईसिंह धामोरा सघ शक्ति प्रकाशन जयपुर, (१९६८ ई०)

२१ जयपुर की पत्र पत्रिकाओं का स्वाधीनता आन्दोलन मे योगदान महेन्द्र मधुप, सम्प्रेषण जयपुर (१९७० ई०)

२२ डिंगल मे वीर रस डा० मोतीलाल मेनारिया (स० २००८)

२३ डिंगल साहित्य डा० जगदीशप्रसाद, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद (१९६० ई०)

२४ डिंगल साहित्य म नारी हनुवन्तसिंह देवडा (१६५५ ई०)

२५ ढोला मारू रा दूहा स० नरोतमदास स्वामी एव अन्य, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (स० २०११)

२६ देश के इतिहास मे मारवाडी जाति का स्थान बालचन्द मोदी रघुनाथ प्रसाद सिंघानिया, ७३१ चासा घोपा पाडा स्ट्रीट कलकत्ता (स० १६६६)

२७ देश के राज्यो की जन जागृति भगवानदास केला

२८ धुन के धनी स० सत्यदेव विद्यालकार मारवाडी प्रकाशन ४०६ हनुमान लेन नई दिल्ली-१ (१६६४ ई०)

२६ नई कविता स्वरूप और समस्याए डा० जगदीश गुप्त (१६६८ ई०)

३० नई कहानी की भूमिका कमलेश्वर अक्षर प्रकाशन दिल्ली (१६६६)

३१ नई कहानी प्रकृति और पाठ सुरेन्द्र परिवश प्रकाशन जयपुर (१६६८ ई०)

३२ नई कविता का स्वरूप विकास प्रो० श्यामसुन्दर घोष हिन्दी साहित्य ससार दिल्ली ७ (१६६५ ई०)

३३ नव्य हिन्दी नाटक : डा० सावित्री स्वरूप ग थम कानपुर (११६७ ई०)

३४ प्रकृति और काव्य रघुवश, नशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली (द्वि० सस्करण १६६० ई०)

३५ प्रयोगवादी काव्यधारा (तथोक्त नई कविता) डा० रमाशकर तिवारी चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी-१ (स० २०२१)

३६ पूव आधुनिक राजस्थान रघुवीरसिंह राजस्थान विश्व पीठ उदयपुर (१६५१ ई०)

३७ प्रेमचन्दोत्तर कहानी साहित्य डा० राधेश्याम गुप्त विमल प्रकाशन जयपुर (१६७० ई०)

३८ बोरो म्हारा भाई श्रे माय सम्पादक विजयदान देथा

३६ भरतरी सतक अनु० मनोहर प्रभाकर, पकज प्रकाशन जयपुर (१६६८ ई०)

४० भारत मे आर्थिक नियोजन सिंह शर्मा, मेहता (१६७० ई०)

४१ भारत मे मारवाडी समाज भीमसेन कडिया नेशनल इडिया पब्लिकेशनस कलकत्ता-४ (स० २००४)

४२ भारतीय सविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आदोलन आर० सी० अग्रवाल, एस० चन्द एण्ड कम्पनी दिल्ली (पचम सस्करण १६६७ ई०)

४३ मरवण मादी ओ स० विजयदान देथा

४४ मरुधर महिमा स० शरद देवडा अणिमा प्रकाशन जयपुर (१६७१ ई०)

४५ महादेवी का सस्मरणात्मक गद्य चरन सखी शर्मा, शोध प्रबन्ध प्रकाशन दिल्ली-७ (१६७१ ई०)

४६ मारवाडी व्याकरण पडित रामकरण शर्मा (स० १६५३)

४७ मालपुरा क्षेत्र मे प्रचलित चारण चर्जाएँ और उनका अध्ययन गुलाबदान चारण (अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध राज० विश्वविद्यालय, जयपुर)

४८ मुहणोत नणसी की ख्यात-भाग १ एव भाग २ नागरी प्रचारिणी सभा काशी (स० १६८२ एव स० १६६१)

४६ योग लहरी कन्हैयालाल दूगड (१६६६ ई०)

५० राजस्थानी गद्य शैली का विकास रामकुमार गवा (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध राज० विश्वविद्यालय, जयपुर)

५१ राजस्थान स्वतन्त्रता के पहले एव बाद स० चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय व अन्य, हिन्दी साहित्य लिमिटेड, महात्मा गाधी मार्ग, अजमेर (१९६६ ई०)
५२ राजस्थानी गद्य साहित्य उदभव और विकास डा० शिवस्वरूप शर्मा अचल, सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीच्यूट, बीकानेर (१९६१ ई०)
५३ राजस्थानी भाषा डा० सुनीति कुमार चटर्जी, साहित्य संस्थान, उदयपुर (१९४९ ई०)
५४ राजस्थानी भाषा एव साहित्य डा० मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (तृतीय संस्करण, स० २००९)
५५ राजस्थानी भाषा एव साहित्य डा० हीरालाल माहेश्वरी, आधुनिक पुस्तक भवन ३०।३१ कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता-७ (१९६० ई०)
५६ राजस्थानी भाषा एव साहित्य नरोत्तमदास स्वामी (स० २०००)
५७ राजस्थानी लोक साहित्य सा० म० नानूराम संस्कर्ता, रूपायन संस्थान, बोरुदा (स० २०२४)
५८ राजस्थानी बात साहित्य एक अध्ययन डा० मनोहर शर्मा (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध राज० विश्वविद्यालय जयपुर)
५९ राजस्थानी बाता सम्पा० सौभाग्यसिंह शेखावत साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर
६० राजस्थानी वीर काव्य और सूर्यमल्ल मिश्रण डा० नरेन्द्र भानावत
६१ राजस्थानी साहित्य एक परिचय नरोत्तमदास स्वामी, नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर
६२ राजस्थानी साहित्य और संस्कृति स० मनोहर प्रभाकर, आशा पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर (१९५६ ई०)
६३ राजस्थानी साहित्य का महत्त्व स० रामदेव चोखानी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (स० २०००)
६४ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा मोतीलाल मेनारिया
६५ राजस्थानी साहित्य कुछ प्रवृत्तियाँ डा० नरेन्द्र भानावत
६६ राजस्थानी साहित्य के सदर्भ सहित श्रीकृष्ण-रुक्मिणि-विवाह सबधी राजस्थानी काव्य डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, मगल प्रकाशन गोविन्दराजिया का रास्ता, जयपुर (१९६९ ई०)
६७ राजस्थानी शब्द कोष (प्रथम खड) सीताराम लालस
६८ वचनिका राठोड रतनसिंह जी री महेस दासोत री खडिया जगा री कही स० काशीराम शर्मा, राजकमल प्रकाशन दिल्ली (१९६० ई०)
६९ वर्तमान राजस्थान रामनारायण चौधरी चिकित्सा ग्रथमाला नीमकाथाना (१९४८ ई०)
७० वारण री वेलि मुकनसिंह (१९६७ ई०)
७१ विचार दर्शन शिवचन्द्र भरतिया (१९१६ ई०)
७२ वेलि किसन रुक्मिणी री पृथ्वीराज राठोड, सूर्यकरण पारीक एव अन्य
७३ शिवचन्द्र भरतिया किरण नाहटा राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुर (१९७० ई०)
७४ शेष स्मृतियाँ डा० रघुवीरसिंह नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (१९६६ ई०)
७५ सोरठा सग्रह प्रकाशक खत्री भीमकसिंह बुकसेलर कटला बाजार जोधपुर
७६ स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी काव्य श्यामसुन्दर शर्मा, अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)

७७ स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी काव्य की नयी प्रवृत्तियाँ तेजसिंह जोधा, अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध (राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर)

७८ सातवें दशक की हिन्दी कहानियाँ स० शरद देवडा, अपरा प्रकाशन, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता–१ (१९६७ ई०)

७९ हास्य की प्रवृत्तियाँ डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी, राज्यश्री प्रकाशन मथुरा (१९६५ ई०)

८० *हिन्दी उपन्यास विवेचन डा० सत्य द, कल्याणमल एण्ड सस, जयपुर (१९६१ ई०)*

८१ हिन्दी उपन्यासों का वैज्ञानिक मूल्यांकन ब्रह्म नारायण शर्मा, नवयुग ग्रथाकार लखनऊ (१९६० ई०)

८२ हिन्दी उपन्यासो मे लोकतत्व डा० इंदिरा जोशी सरस्वती प्रकाशन मदिर, इलाहाबाद (१९६५ ई०)

८३ हिन्दी एकांकी, उद्भव और विकास डा० रामचरण महेन्द्र साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली (१९५८ ई०)

८४ *हिन्दी कहानी, उद्भव और विकास डा० सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली (१९६७ ई०)*

८५ हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास डा० लक्ष्मीनारायणलाल, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद (१९६७ ई०)

८६ हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया डा० परमानन्द श्रीवास्तव, ग्रन्थम रामबाग कानपुर (१९६५ ई०)

८७ हिन्दी की नयी कविता *पी० नारायरान कुट्टि अनुसधान प्रकाशन आचार्य नगर कानपुर।*

८८ हिन्दी की प्रगतिशील कविता डा० रणजीत, हिन्दी साहित्य ससार, प्रगतिशील प्रकाशन नई दिल्ली (१९७१ ई०)

८९ हिन्दी के वयक्तिक निबन्ध श्री बल्लभ शुक्ल साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद, (१९६३ ई०)

९० हिन्दी गद्य काव्य का उद्भव और विकास डा० अष्टभुजाप्रसाद पाण्डेय

९१ हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव विश्वनाथ मिश्र, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद (१९६६ ई०)

९२ हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास श्री सोमनाथ गुप्त, हिन्दी भवन इलाहाबाद (१९४९ ई० द्वितीय सस्करण)

९३ हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन डा० शांतिलाल पुरोहित, साहित्य सदन, देहरादून (१९६४ ई०)

९४ हिन्दी नाटको पर पाश्चात्य प्रभाव श्रीपति शर्मा विनोद पुस्तक मदिर, आगरा (१९६१ ई०)

९५ हिन्दी निबन्ध का विकास डा० ओंकारनाथ शर्मा, अनुसधान प्रकाशन आचार्य नगर, कानपुर (१९६४ ई०)

९६ हिन्दी नीति काव्य भोलानाथ तिवारी विनोद पुस्तक मदिर, आगरा (१९५८ ई०)

९७ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास : शभुनाथसिंह हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी–१ (१९५६ ई०)

९८ *हिन्दी मे नीति काव्य का विकास* डा० रामस्वरूप शास्त्री, रसिकेश, दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली (१९६२ ई०)

हिंदी रेखाचित्र डा० हरवंशलाल शर्मा, हिंदी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ (१६६८ ई०)

हिंदी रेखाचित्र उद्भव और विकास कृपाशंकर सिंह एम० ए० विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

हिंदी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्रथम भाग) सं० राजबली पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (सं० २००८)

हिंदी साहित्य कोष-भाग १ सं० धीरेन्द्र वर्मा व अन्य (सं० २०२० द्वितीय संस्करण)

हिंदी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष ओंकारनाथ श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली (१६६८ ई०)

हिंदी साहित्य में हास्यरस डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी (द्वितीय संस्करण)